वनौषधि-चन्द्रोदय

पहला भाग

(अकारादि क्रमानुसार अ से ओ तक सम्पूर्ण स्वर)

लेखक—

श्री चन्द्रराज भंडारी 'विशारद'

प्रकाशक—

ज्ञान-मन्दिर

भानपुरा (इन्दौर स्टेट) ।

प्रथम सस्करण) राज-संस्करण ५) (मूल्य ३) साधारण.

जनवरी सन् १६३८ ई०

Published by—
C. R. Bhandari.
Ayurvdediya Granthmala.
Gyanmandir (*BHANPURA*).

ज्ञान-मन्दिर प्रेस

ज्ञान-मन्दिर ने भानपुरा (इन्दौर) मे अपने काम के लिये स्वतः प्रेस खोला है। इसमे सस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी सब प्रकार की छपाई सुदर, सस्ती और समय पर होती है। जिन लोगों को अपनी पुस्तकें आदि छपवानी हों, वे निम्न लिखित पते से पत्र व्यवहार करे।

प्रबन्धक—*ज्ञान-मन्दिर प्रेस*
भानपुरा (इन्दौर)

Printed by—
Bhramarlal Soni.
At, Gyanmandir Press.
Bhanpura (H. S.).
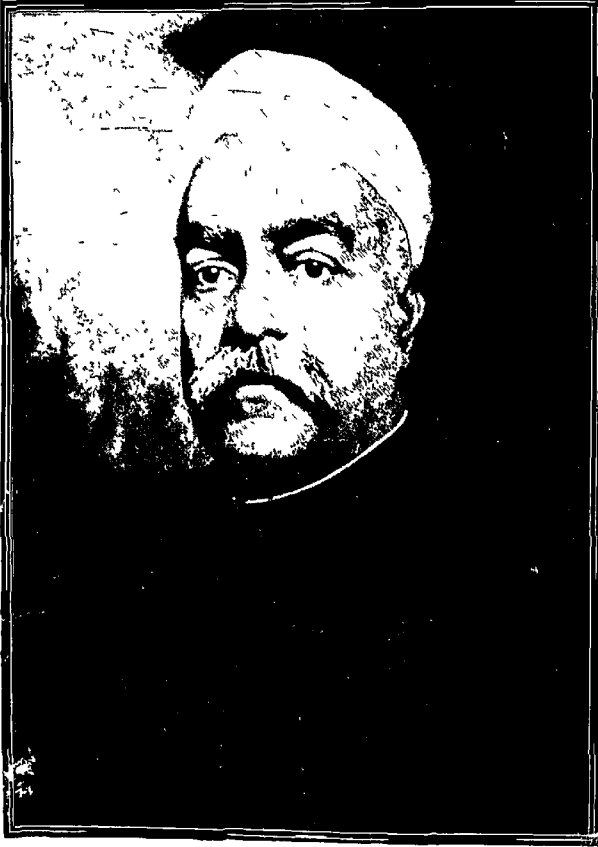
स्वर्गीय सेठ कमलापतजी सिंघानिया, कानपुर।

स्मृति

जिस महापुरुष का जीवन अपने देश की व्यापारिक उन्नति में व्यतीत हुआ, जो व्यक्ति अपने देश की औद्योगिक उन्नति मे जीवन भर चिन्तनशील रहा, जिसका हृदय, दया, उदारता और उद्योगशीलता का केन्द्र था, उन्ही यू० पी० के सुप्रसिद्ध सेठ कमलापतिजी सिहानिया की पवित्र स्मृति मे यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रसन्नता के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

—लेखक।

०

भूमिका

औषधि-विज्ञान मानवीय-जीवन के उन आवश्यक अङ्गों मे से एक है, जिनके बिना मनुष्य का व्यवस्था-पूर्वक जीवन धारण करना कठिन हो जाता है। अपनी भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिये स्वस्थ शरीर का होना मनुष्य के लिये परमावश्यक और पहली वस्तु है। इसके बिना जीवन-यात्रा मे एक कदम आगे रखना भी उसके लिये कठिन हो जाता है और यह स्वस्थ शरीर बिना स्वास्थ्य-विज्ञान और औषधि-विज्ञान की जानकारी के नसीब नहीं हो सकता।

इसलिये सभ्य देशो में सभ्यता के विकास के साथ ही जहाँ अन्यान्य-शास्त्रों और विज्ञानों की उत्पत्ति हुई, वहाँ चिकित्सा-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र की भी काफी उन्नति और विकास हुआ, अगर कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि भारतवर्ष ऐसे सभ्य देशों में सबसे आगे था।

इस देश में आज से हजारों वर्ष पहले चिकित्सा-शास्त्र और औषधि-विज्ञान के सम्बन्ध मे इतनी बारीक और वैज्ञानिक खोजे हुई, जिन्हे देखकर विकास के इस महान युग मे भी हमे आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता, उन दिनों आज के समान न तो लाखों रुपये लागत की लेबोरेटरिज् (रसायन-शालाएँ) थीं, न हजारों प्रकार के चिकित्सा सम्बन्धी अस्त्र-शस्त्र और लाखों रुपये लागत के यंत्र थे, न एक्सरे के समान मशीनें थीं, मगर ऐसी हालत में भी बस्ती से दूर तपोवन में बैठकर उन ज्ञ[illegible] महर्षियों ने अपने ज्ञान-बल से चिकित्सा-शास्त्र, औषधि-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, शल्य-चि[illegible] क्योंकि इत्यादि शास्त्रों के सम्बन्ध में जो सुसंगठित, वैज्ञानिक और सूक्ष्म अध्ययनपूर्ण भेंट [illegible]ाँच-पड़ताल दी, वह इतिहास के अनेकों युग पलटने पर भी मानव-जाति की वैसी ही अनुपम से[illegible] अधिक और भविष्य में भी करती रहेगी।

[illegible]यन कि हमारे देश

आज के युग मे इन महर्षियों की महान-कृतियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनका कुल विवेचन अतिशयोक्ति-पूर्ण और ऐसा मतभेद पूर्ण है कि कोई ग्रन्थकार एक औषधि को गर्म लिखता है तो कोई उसे सर्द लिखता है, ऐसी हालत में पाठकों को किसी निर्णय पर पहुँचना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के आरोप लगाने वाले शायद यह सोचने का कष्ट नहीं उठाते कि मानवीय इतिहास में कोई भी युग ऐसा नहीं रहा, जिसमें मतभेद का अस्तित्व न रहा हो। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी जब कि प्रत्येक बात रसायन-शाला की कसौटी पर कसे जाने के बाद ही प्रकाशित की जाती है—जब वैज्ञानिकों के बीच मतभेद पाया जाता है। (जैसे—जहाँ कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि उसबा मगरबी में रक्त-शोधक और।उपदंश-कीटाणु-नाशक गुण है, वहाँ कुछ वैज्ञानिकों का मत उसके लिए बिलकुल इन्कार करता है) ऐसी स्थिति में अगर राज-निघण्टु और भाव-प्रकाश के बीच में किसी मतभेद का अस्तिव पाया जाय तो इसमें क्या अनर्थ हो सकता है ? इसीलिए तो महर्षियों ने लिखा है कि यह विज्ञान इतना विस्तृत है कि स्वानुभव के बिना जो केवल ग्रन्थ-ज्ञान पर चिकित्सा-विज्ञान में हाथ डालता है, वह कभी कामयाब नहीं हो सकता। रही अतिशयोक्तिपूर्ण विवेचन की बात सो यह तो उस युग का धर्म था, केवल चिकित्सा-शास्त्र ही क्यो, प्रत्येक विज्ञान और प्रत्येक शास्त्र में उस समय अलङ्कार और अतिशयोक्ति का प्रयोग होता था। इसमे उनको दोष देना उनके साथ अन्याय करना है।

आयुर्वेद के पश्चात् चिकित्सा-विज्ञान के सम्बन्ध में यूनानी हकीमों की, की हुई खोजें अत्यन्त महत्व का स्थान रखती हैं। चिकित्सा-विज्ञान और औषधि-विज्ञान के सम्बन्ध में इन लोगों के अन्वेषण भी कई अशों में मौलिक और सुसगठित हैं। हालाँ कि मतभेद और अतिशयोक्ति से ये लोग भी नहीं बच पाये हैं, फिर भी इनकी की हुई खोजों ने मनुष्य-जाति की अनुपम सेवाए की हैं।

आधुनिक-विज्ञान की दृष्टि से भारतीय वनस्पतियों की वैज्ञानिक-खोज का इतिहास अठारहवी शताब्दी के अन्त से प्रारम्भ होता है। फ्लोरा इण्डिका और प्लेएट्स ऑफ कारोमण्डल कॉस्ट के रचयिता डा० डब्ल्यू० रॉक्सवर्ग, मटेरिया मेडिका ऑफ हिन्दुस्तान और मटेरिया मेडिका के लेखक डा० एन्सली फ्लोरा इण्डिया के लेखक डा० एन० एल० बर्मन, मेडिकल बोटानी के लेखक जी० टी० बर्नेट इत्यादि ों ने सर्व प्रथम भारतीय वनस्पतियों की उपयोगिता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और गत् तो इस विषय पर सैकडों लेखकों के सैकडों ग्रन्थ प्रकाशित हुए, गवर्नमेण्ट ने भी इस में बहुत दिलचस्पी ली और कई ऐसी आवश्यक वनस्पतियों की खेती यहाँ पर प्रारम्भ यहाँ पैदा नहीं होती थीं।

इस विषय पर आधुनिक ग्रन्थों मे लेफ्टिनट कर्नल के० आर० कीतिकर और मेजर बी० डी० वसु कृत इण्डियन मेडिकल प्लाण्ट्स और लेफ्टि० कर्नल आर० एन० चोपरा कृत इण्डिजेन्स-ड्रग्स ऑफ इण्डिया नामक ग्रन्थ बहुत प्रामाणिक और बहुमूल्य है। कर्नल चोपरा ने दी स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसन्स कलकत्ता में कई वनस्पतियों के रासायनिक विश्लेषण कर उनके सम्बन्ध के प्राचीन अन्ध-विश्वासों को मिटा दिया है तथा कई वनस्पतियो के नवीन गुणो से जनता को परिचित कर दिया है। इस सम्बन्ध में इनकी की हुई खोजों ने ऐतिहासिक महत्व धारण कर लिया है और इस समय भारतीय-वनस्पतियों के सम्बन्ध में इनके निकाले हुए तथ्य प्रामाणिक माने जाते हैं।

गुजराती साहित्य में पोरबन्दर के प्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजी, जङ्गलनी जड़ी-बूटी के लेखक वैद्यशास्त्री शामलदास, वैद्य-कल्पतरु के सम्पादक स्व० जटाशङ्कर लीलाधर वैद्य आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्रीजयकृष्ण इन्द्रजी ने तो अपने स्वानुभाव से वनस्पतियो के सम्बन्ध में जो खोजें की हैं, वे गुजराती-साहित्य मे अमर रहेंगी।

मराठी-साहित्य में वनौषधि-प्रकाश के लेखक वासुदेव शास्त्री सी० वापट, वनौषधि गुणादर्श के लेखक आयुर्वेद महामहोपाध्याय शङ्करदाजी शास्त्री पदे तथा औषधि-संग्रह के रचयिता डा० वामनगणेश देसाई की रचनाएँ महत्वपूर्ण है। इनमें भी औषधि-संग्रह नामक ग्रन्थ नवीन होने से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार और २ भाषाओं में भी इस विषय पर बहुत-सा साहित्य प्रकाशित हुआ है और वह बहुमूल्य है।

लेकिन राष्ट्र-भाषा का सम्मान धारण करने वाली हिन्दी-भाषा में अभी तक शालिग्राम-निघण्टु तथा ऐसी ही दो-एक छोटी-बड़ी प्राचीन ढङ्ग की पुस्तकों को छोड़कर एक भी ग्रन्थ ऐसा नहीं था जो वनस्पतियों के ऊपर प्रामाणिक और वैज्ञानिक-प्रकाश डाले। यह कितने बडे दुर्भाग्य की बात है।

इसी वनस्पति विषयक-अज्ञान की वजह से यहा के जन-समाज के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये प्रतिवर्ष लाखो रुपयों की औषधियाँ विदेशों से आती है। कई लोगों का यह ख्याल है कि विदेशी औषधियों के मुकाबिले में देशी औषधियाँ लाभदायक नहीं होती। मगर इस प्रकार के ख्याल होना सचमुच भ्रमपूर्ण और हमारी राष्ट्रीय-जागृति के लिये घातक हैं। क्योंकि जब ब्रिटिश फर्माकोपिया के समान प्रामाणिक और सर्वमान्य ग्रन्थ मे, अनेक प्रकार की जाँच-पड़ताल और रासायनिक खोजों के पश्चात् दाखिल की हुई औषधियो मे भी चालीस प्रति सैकड़ा से अधिक और पचास सैकड़ा के करीब औषधियाँ हमारे भारतीय पैदाइश की हैं, तब ऐसे लोगो का कथन कि हमारे देश

कीऔषधियाँ प्रभावशाली नही हैं, कैसे माननीय हो सकता है। ब्रिटिश फर्माकोपिया कोई कल्पना-मूलक ग्रन्थ नहीं है। उसमे तो ऐसी ही औषधियाँ दर्ज की जाती हैं, जिसे हजारो रोगियो पर अजमाई जाने के पश्चात् ब्रिटिश मेडिकल कौन्सिल स्वीकार करती है।

वे ही हमारे देश की बहुमूल्य औषधियाँ, जो हमारे वनस्पति-विषयक-अज्ञान की वजह से दिन-रात हमारे पैरों के नीचे कुचलती रहती हैं, विदेशी जानकारों के हाथ में पड़कर सत्व, अर्क और एक्स्ट्रेक्ट के रूप में सुन्दर २ बोतलों मे भरकर नयनाभिराम रूप से हमारे सामने आती है और तब हम मोहित होकर उनके पीछे अपने जेबों को ढीला कर देते हैं।

अनुभवों से यह बात साबित हो चुकी है कि हमारे देश में कई ऐसी औषधियाँ पैदा होती है जो प्रभाव में विलायती औषधियों ही के बराबर या उनसे भी अधिक है, उदाहरणार्थं हृदय की गति को व्यवस्थित रखने के लिये जो काम अंग्रेजी दवा डिजीटेलीस करती है, वही काम हमारे देशी वैद्य कुटकी के काढ़े से सफलतापूर्वक लेते हैं। पोटास ब्रोमाईड नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी औषधि का मुकाबिला हमारे देश की हरमल (Peganum Haımal) नामक औषधि बहुत अच्छे तरीके से करती है। ब्राइट्स डिसीज अर्थात् गुर्दे की बीमारी पर स्प्रिट ईथरनाइट्रोमी के बदले तथा रक्त-विकार पर सार्सा-परिला की जगह हमारे देश की अनन्तमूल से बहुत बढिया उपचार हो सकता है। इसी प्रकार इपिके-कोना की जगह अन्तमूल और ऑकडे की जड़, क्वासिया के मुकाबले पर नीम, केलम्बा के मुकाबिले में गिलोय, गोयाकम के मुकाबिले पर चम्पा, जेलप के मुकाबिले पर कालादाना, गैलिक के मुकाबिले पर माजूफल, क्राइसोफेनिक के स्थान पर फ़ुवॉडिया (Cassıatoıa), बेलेडोना के मुकाबिले पर धतूरा, वेलेरियन के मुकाबिले में जटामांसी, हैजेलीन के स्थान पर उतरण तथा थायमल के स्थान पर अजवायन इत्यादि कई औषधियाँ विलायती औषधियों के मुकाबिले में या उनसे बढकर मनुष्य जाति का उपकार कर सकती हैं।

इस प्रकार विदेशी औषधियों के मुकाबिले में उतरने वाली औषधियाँ तो इस देश में असंख्य हैं ही, मगर ऐसी औषधियाँ भी इस देश में विद्यमान हैं, जिनका मुकाबिला विदेशी औषधियाँ कदाचित नहीं कर सकतीं। कामले का जो भयङ्कर रोग पोडोफोलीन और टेरेक्सी की मात्राए पीने पर भी नहीं मिटता, वही देशी औषधि कुकरलता (Luffa Echınata) का केवल रस सूघने मात्र ही से विदा हो जाता है। सहदेई के पौधे को पीसकर उसका रस सिर पर लगाने से भयङ्कर बुखार तक उतर जाता है। शरीर में घुसा हुआ शस्त्र, आयापान का रस चुपडने से निकल जाता है और तलवार तथा चाकू के जखम की वेदना नागबला का रस भरने से फौरन बद हो जाती है।

मतलब यह है कि हमारे देश में प्रभावशाली वनस्पतियों का अभाव नहीं है, प्रत्युत उनके सम्बन्ध

के ज्ञान का अभाव है। विदेशों के अन्दर एक २ औषधि पर पूर्ण-ज्ञान देनेवाले सैकड़ों ग्रन्थ हैं, यहां तक कि हमारे देश में पैदा होने वाली औषधियों का परिचय देनेवाले भी वहाँ सैकड़ों ग्रन्थ हैं, मगर हमारी देशी भाषाओं में ऐसे ग्रन्थों का एकदम ही अभाव है। ऐसी हालत मे अगर कुदरत के द्वारा पुरस्कृत की हुई यह दिव्य-निधि हमारे पैरोंतले कुचलती रहे तो इसमें क्या आश्चर्य !

हर्ष है कि हाल ही में हिन्दी में चुनार-निवासी बाबूरामजीतसिंह और बाबूदलजीतसिंह वैद्य ने महान परिश्रम के साथ एक आयुर्वेदीय विश्व-कोष का प्रणयन प्रारम्भ किया है। इस ग्रन्थ के दो भाग निकल चुके हैं। लेखकों ने जिस महान परिश्रम से यह कार्य्य उठाया है, उसे देखकर कहना पड़ता है कि अगर यह ग्रन्थ अन्त तक सफलतापूर्वक प्रकाशित हो गया तो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के गौरव की पूरी तरह से रक्षा करेगा। कमी केवल इतनी ही है कि इसकी भाषा इतनी कठिन रक्खी गई है कि वह सर्वसाधारण को तो क्या मगर कई वैद्यों को भी समझने में कठिन जायगी। अगर इसके लेखक-गण इसकी भाषा पर कुछ ध्यान दें तो पूर्णहोने पर यह ग्रन्थ अनुपम होगा, इसमे सन्देह नहीं। मगर अभी तो यह बिलकुल शैशव अवस्था में है।

इसी कमी को ध्यान मे रखकर और यह सोचकर कि अगर वैद्यों और सर्वसाधारण की वनस्पति विषयक जानकारी के लिए एक प्रामाणिक और वैज्ञानिक-अनुसन्धानपूर्ण ग्रन्थ तैयार किया जाय तो वह बड़ा लाभदायक हो सकता है,हमने इस कार्य में हाथ डाला और ईश्वर की दया से अत्यन्त प्रसन्नता-पूर्वक उसका प्रथम भाग हम पाठकों के सामने लेकर उपस्थित हो रहे हैं।

इस ग्रथ के अन्दर हमने सबसे पहले इस बात पर ध्यान रक्खा है कि जो विषय इसमें प्रतिपादित किये जायँ वे सरल से सरल भाषा में हों, कोई आवश्यक बात छूटने न पावे, मगर फजूल का विस्तार न हो। प्रत्येक वनस्पति को लेकर उसपर हमारे आयुर्वेदाचार्यों ने क्या कहा है, यूनानी हकीमों का उसपर क्या मत है तथा आधुनिक-वैज्ञानिक खोजों ने उसपर क्या तथ्य निकाले हैं, उन सबका सार क्रमानुसार दे दिया गया है। एक ही बात को अगर निघण्टु-रत्नाकर, राज-निघण्टु, भाव-प्रकाश इत्यादि ने कही है तो उन सबका अलग २ उल्लेख करने की अपेक्षा हमने उन सबका सार एक ही स्थान पर देना ठीक समझा। जहाँ पर कोई मतभेद है, वहाँ पर अलग २ उल्लेख कर दिया है। इसके पश्चात् अगर उस औषधि में कोई उल्लेखनीय दिव्य-गुण हमे मालूम हुआ तो उसका स्वतन्त्र रूप से उल्लेख कर दिया है। इसके पश्चात् भिन्न २ रोगो पर उस औषधि का उपयोग किस प्रकार किया जाता है तथा उसके सम्मेलन से कौन २ सी बनावटें बनती हैं, इस सम्बन्ध की सामग्री जहाँ तक हमें प्राप्त हो सकी, हमने देने का प्रयत्न किया है। जहाँ तक हमारा ख्याल है हमने बिलकुल अनुचित विस्तार न बढाते हुए, संक्षेप में प्रत्येक औषधि के सम्बन्ध में पूरा विवरण देने की कोशिश की है, आशा है पाठकों को हमारी यह पद्धति पसन्द आवेगी।

औषधियों के नामों के सम्बन्ध में हमारे देश में काफी मतभेद है, इसलिये इस सम्बन्ध में हमने इण्डियन मेडिकल प्लाट्स का अनुकरण किया है, क्योंकि हमारे मत से वह बहुत प्रामाणिक ग्रन्थ है। रासायनिक विश्लेषण और गुण धर्म के सम्बन्ध मे हमें कर्नल चोपरा के निकाले हुए तथ्य बहुत मान्य प्रतीत हुए और जहाँ तक वे प्राप्त हो सके, हमने उन्हींका अनुकरण किया है। इनके सिवाय इसकी बहुत-सी सामग्री हमने अनेक ग्रन्थो से एकत्रित की हैं, जिनका नाम धन्यवादपूर्वक आगे दिया जा रहा है।

जहाँ तक हमारा अनुमान है, इस ग्रन्थ में आज तक की खोज हुई सम्पूर्ण वनस्पतियों तथा खनिज द्रव्यों का, जिनकी सख्या ढाई हजार और तीन हजार के बीच में होगी, सम्पूर्ण विवेचन रहेगा और करीब ४००० से ५,००० पृष्ठों के भीतर दस भागों मे यह महान् ग्रन्थ पूरा होगा।

हम पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि थोडे शब्दों में वनस्पतियों सम्बन्धी जितनी उपयोगी और चमत्कारिक जानकारी, सरलता और स्पष्टता के साथ इस ग्रन्थ के द्वारा पाठकों को मिलेगी, वह शायद दूसरे स्थान पर प्राप्त न होगी।

हम आशा करते हैं कि भारतवर्ष का वैद्य-समाज। तथा शिक्षित-समुदाय इस विशाल आयोजन में हमारा हाथ बटायेगा।

ज्ञान-मन्दिर, भानपुरा।
१ जनवरी, १९३८ ई०

चन्द्रराज भण्डारी "विशारद"
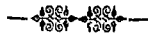
सहायक ग्रन्थों की सूची

इस ग्रन्थ के सङ्कलन मे हमको निम्नाङ्कित ग्रन्थो से बहुत सहायता प्राप्त हुई है, अतः हम इनके रचयिताओं के हृदय से आभारी है।

(१)

हिंदी और संस्कृत

महर्षि-चरक	चरक संहिता
महर्षि सुश्रुत	सुश्रुत-संहिता
महर्षि-वाग्भट्ट	अष्टाङ्ग हृदय
चक्रपाणि	चक्रदत्त
भाव-मिश्र	भाव-प्रकाश
काशीराज	राज-निघण्टु
श्री चौबे दत्तराम	बृहत निघण्टु-रत्नाकर
श्री शालिग्राम	शालिग्राम-निघण्टु
श्री रूपलाल वैश्य	रूप-निघण्टु
श्री गंगाप्रसाद दाधीच	अनूभूतयोग-प्रकाश (दो भाग)
श्री प्रवासीलाल वर्मा	वृक्ष-विज्ञान
श्री हरिदास वैद्य	चिकित्सा-चन्द्रोदय (सात भाग)
बाबू रामजीतसिंह वैद्य बाबू दलजीतसिंह वैद्य।	आयुर्वेदीय विश्व-कोष (दो भाग)

'धन्वन्तरि' के कुछ फाइल

(२)

यूनानी

मखजनूल अदविया — खजाइनुल अदविया

तर्जुमा नफीसी — मुहीत आजम

मुजर्रिबात अकबरी

(३)

अंग्रेजी

Lt Colonel Kirtikar Major B. D. Basu.	Indian Medical Plants 4 Parts
W. Dymock. N. K Gadgil	The Vegetable Materia Medica of the Hindus.
W. Dymock Warden & Hooper.	Pharmacographia Indica(3 Vols.)
R. N. Khori & N N. Katrak	Materia Medica of India & their Therapeutics
K M Nadkarni.	Indian Plants & Drugs, Indian Materia Medica
Lt Colonel R N. Chopra.	Indigenous Drugs of India, A Hand Book of Tropical Therapeutics
Devaprasad Sanyal & Rasbihari Ghosh	Vegetable Drugs of India.
G T. Birdwood	Practical Bazaar Medicines, Files of Medical Journal of India.
Dr Moodeen Sheriff	Materia Medica
Sukhasampati Rai Bhandari	Dictionary of Medical Terms

—❀❀—

(४)

गुजराती

वैद्य-शास्त्री शामलदास गोर	जङ्गलनी जडी-बूटी ३ भाग
वनस्पति-शास्त्री जयकृष्णइन्द्रजी	वनस्पति-शास्त्र
जटाशङ्कर, लीलाधर त्रिवेदी	घरवैद्य तथा वैद्य-कल्पतरु के बीस वर्षों के फाइल

(५)

मराठी

वासुदेव शास्त्री बापट	वनौषधि-प्रकाश
यज्ञेश्वरगोपाल दीक्षित	वनौषधि-गुणादर्श
डा० वामनगणेश देसाई	औषधि-संग्रह

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कई छोटे बड़े ग्रन्थ और सामयिक पत्रों के फाइलों से इस ग्रन्थ के निर्माण में सहायता मिली है। इसलिए लेखक उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है।

———❀———

विषय-सूची

(?)

हिंदी नाम

विषय-सूची

(२)

संस्कृत नाम

विषय-सूची

(३)

बंगाली नाम

विषय-सूची

गुजराती नाम

(४)

विषय-सूची

मराठी नाम

(५)

—:०:—

विषय-सूची

(१)

अरबी नाम

INDEX

(7)

Latin Names

विषय–सूची

[नं० ८]

(रोगानुक्रम से)

इस विषय-सूची मे, इस ग्रथ मे आई हुई औषधियाँ जिन २ रोगों पर काम करती हैं, उनमे से कुछ खास २ रोगों के नाम, औषधियों के नाम और पृष्ठाक सहित दिये जारहे हैं। सब रोगों के नाम इसमे नहीं आसके, इसलिए उनका विवरण ग्रथ के अन्दर ही देखना चाहिये। जिन रोगों के अदर जो औषधिया विशेष प्रभावशाली और चमत्कारिक हैं, उनपर पाठकों की जानकारी के लिये ऐसे फूल ❀ लगा दिये गये हैः— .

ज्वर

अतिसार

जलोदर

संग्रहणी

कब्जियत

बवासीर

मंदाग्नि

अजीर्ण

उदरशूल

गुल्म

प्लीहा व यकृतरोग

हिचकी

हैजा

पांडुरोग

सुजाक

उपदंश

प्रमेह

नपुंसकता और वाजीकरण

पथरी और मूत्राघात

प्रदर रोग

बंध्यत्व

प्रसव और आर्तव सम्बन्धी बीमारियां

क्षय या राजयक्ष्मा

खांसी

मूर्छा

दमा

हृदय रोग

कंठमाल

स्नायुरोग या वातव्याधि

(लकवा, संधिवात, सुन्नवात, जोड़ों की अकड़न वगैरह)

गठिया

उन्माद, हिस्टीरिया और मालीखोलिया

मृगी

वातरक्त

आमवात

उरुस्तंभ

सर्पविष

बिच्छू का विष

पागल कुत्ते का विष

अन्यान्य विष

सूजन

१–अखरोट	६	२–अगस्तिया	११
३–अदरख	५७	४–अपराजिता	७४
५–अपामार्ग	७६	६–अभ्रक *	६५
७–अरनी	१३०	८–अरबी	१३४
९–आँकड़ा	१७५	१०–इस्पगोल	२६३

अर्बुद

१–अग्नियून	२५	२–अपराजिता	७२
३–आँकड़ा	१७२	४–ओसदी	३०६

श्लीपद

२–अनार	६६	२–अपराजिता	७२
३–आम्रगधक	२००		

विद्रधि

१–अतिबला	५२	२–आँकडा	१७२
३–इद्रायनलाल	२४०	४–इसरौल	२६३

कुष्ठ

१–अकोल *	१७	२–अजीर	३८
३–अभ्रक	६५	४–आँकड़ा *	१७७
५–आत्रीलाल	१८६	६–उसवामगरबी	२८६

विस्फोटक

मस्तकशूल और आधाशीशी

नेत्ररोग

कर्णरोग

दंतरोग

दाद

चर्मरोग और रक्तविकार

कृमिरोग

नारु

बच्चों का सूखारोग

प्लेग

स्कर्व्ही

कारबंकल

अंडवृद्धि

हड्डी का टूटना या मोच आना

गुर्दे का रोग (Brights Disease)

शस्त्र का जख़म और दूसरे घाव

विषय-प्रवेश

वनस्पति-विज्ञान की उत्पत्ति और उसका विकास

(ग्रथ को पढने के पूर्व इस विवेचन को पढ़ना विशेष लाभदायक होगा)

(१)

जब से संसार के अन्दर मानव-शरीर की उत्पत्ति हुई है तब से उसके साथ ही रोग की भी उत्पत्ति हुई है, अतएव रोग की उत्पत्ति का इतिहास भी मनुष्य-शरीर के इतिहास के साथ ही प्रारम्भ होता है और जब से रोग की उत्पत्ति हुई तभी से मनुष्य उसको दूर करने के उपायों की खोज करने लगा और तभी से उसके ये उपाय चिकित्सा-शास्त्र की तरह प्रगट होने लगे, अतएव यह कहा जाय तो कोई अति-शयोक्ति नही कि, चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव-जाति का इतिहास। जिस समय मानवी विचारो को लिपि-बद्ध करने के लिये लिपियों का आविष्कार भी नहीं हुआ था उस समय भी औषधि-विज्ञान के तत्व मानव-जाति मे विद्यमान थे। मगर लिपिबद्ध न होने के कारण उनका कोई पता नहीं है।

मनुष्य के विचारों को लिपिबद्ध रूप मे हम सबसे पहिले ससार की पुरातन पुस्तक ऋग्वेद के अन्दर देखते हैं। इस ग्रन्थ की रचना पुरातत्व-वेत्ताओं के मतानुसार ईसा के ४५०० वर्ष पूर्व से १८०० वर्ष पूर्व तक किसी समय मे हुई मानी जाती है। यह ग्रन्थ सोम वृक्ष नामक औषधि का बडा ही कौतुहलपूर्ण परिचय हमको देता है। यह सोम वनस्पति क्या वस्तु है, इसका ठीक २ अनुसन्धान अभी तक नहीं हो पाया है, पर प्राचीन ग्रन्थों से मालूम होता है कि यज्ञ इत्यादि पवित्र कार्यो के समय में इस वनस्पति का उपयोग होता था। आर्य लोग इसे उत्तेजक पेय पदार्थ के उपयोग में लेते थे। धीरे२ यह चिकित्सा-द्रव्यों की तरह भी काम मे आने लगी और इस के पश्चात् दूसरी वनस्पतियों का भी उपयोग होने लगा।

अथर्ववेद, जिसकी रचना ऋग्वेद के पश्चात् हुई है उसमे जड़ी बूटियों का और भी अधिक विस्तृत वर्णन पाया जाता है। मगर उस समय की पद्धति के अनुसार उन वनस्पतियों का उल्लेख जादू-टोनों के रुप में किया गया है।

ज्यों २ औषधि-विज्ञान के ज्ञान का विस्तार होता गया त्यों २ इस विषय की महत्ता अधिकाधिक लोगों के ध्यान में आने लगी और क्रमशः इस विज्ञान ने एक स्वतन्त्र शास्त्र का रूप धारण किया जिसका नाम आयुर्वेद हुआ।

प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार इस आयुर्वेद के पिता स्वय ब्रह्मदेव हैं और उन्होंने इस ज्ञान को मनुष्य-जाति में प्रचार करने के लिये दक्ष प्रजापति को दिया। दक्ष प्रजापति के पश्चात् आयुर्वेद के इतिहास में अश्विनीकुमार नामक दो भाईयों का नाम आता है। जो इस विज्ञान में अत्यन्त निपुण और सिद्धहस्त थे। च्यवनऋषि को पुनर्यौवन देना, दक्ष प्रजापति के कटे हुए सिर को जोड देना, युद्ध क्षेत्र के अन्दर घायलों का उपचार करना, गिरे हुए दाँतों को पीछा लगा देना, राजयक्ष्मा को मिटा देना, कटी हुई टाग के स्थान पर लोहे की टाग जोड देना, इत्यादि अनेकों आश्चर्य जनक काम जडी बूटियो की सहायता से इनके द्वारा सम्पन्न हुए थे।

इनके पश्चात् आयुर्वेद के इतिहास मे महर्षि आत्रेय और धन्वन्तरी का नाम आता है जिनमें से पहिले चरक-सम्प्रदाय के स्थापक और दूसरे महर्षि सुश्रुत के गुरु थे।

महर्षि चरक और सुश्रुत आयुर्वेद के स्तम्भ रूप में प्रसिद्ध हुए। महर्षि चरक की चरक-संहिता और महर्षि सुश्रुत की सुश्रुत-संहिता आज भी आयुर्वेद-विज्ञान की ऐसी चमकती हुई कलाएँ हैं जिनका प्रकाश समय के प्रहारों से भी मन्द नहीं हो सकता। सुश्रुत संहिता मे चिकित्सा के साथ साथ सर्जरी अर्थात शल्य शास्त्र और शस्त्र-चिकित्सा के ऊपर बहुत उत्तम विवेचन किया गया है। इसी प्रकार चरक के अन्दर चिकित्सा विज्ञान के विषय में अत्यन्त विस्तृत और शास्त्रीय विवेचन है। इस ग्रन्थ के सप्तम अध्याय में वामक और विरेचक औषधियों के सम्बन्ध में और बारहवे अध्याय में भैषज्यतत्वों के सम्बन्ध में विद्वत्ता पूर्वक वर्णन किया गया है। साधारण औषधियो को इन महर्षि ने ४५ भागों अन्दर विभाजित की हैं। इन औषधियों को उपयोग मे लेने की विधियों का भी उसमे पूर्णतया उल्लेख किय गया है। काढा, शीतनिर्यास, चूर्ण, गोली, अर्क, अवलेह, तेल, घृत, भस्म, रसायन इत्यादि अनेक रूपों से औषधियों का प्रयोग करने की वैज्ञानिक विधियों का उसमें उल्लेख किया गया है। बहुत से रोगों के लिये सूचिवैध (इंजेक्शन) चिकित्सा का भी इसमें वर्णन किया गया है। इस वर्णन को देखने से उनके वैज्ञानिक ज्ञान का पूर्ण परिचय हम लोगो को मिलता है।

सुश्रुत-संहिता के अन्दर हमको करीब ७०० वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है। लेकिन ऐसा मालूम होता है ये सब वनस्पतियाँ भारत की पैदाइश नहीं थीं। उन दिनो भारत के अन्दर बाहर से भी वनस्पतियाँ आती थीं। पुराने समय मे भारत-वासियों का दूसरे देश वालो के साथ औषधियो का व्यापार होता था। मुलेठी जो कि इस देश मे पैदा नही होती थी, एशियामायनर और मध्यएशिया से आती थी। इनका उल्लेख सुश्रुत और चक्रदत्त इत्यादि ग्रन्थों में पाया जाता है और आयुर्वेदिक नुस्खों के अन्दर यह औषधि काम में भी ली जाती थी।

इस काल से लगाकर भारत पर मुसलमानी आक्रमण होने तक हिन्दु-चिकित्सा-काल के चार भेद किये जा सकते हैं।

(१) वैदिककाल (२) मौलिक अन्वेषण और प्रसिद्ध ग्रथकारों की उन्नति का काल (३) तत्र, सिद्ध और सकलन का काल (४) अवनति और पुनर्सचय काल । इनमें से दूसरे और तीसरे कालों के अन्दर आयुर्वेदीय चिकित्सा की धाक समग्र सभ्य ससार में फैलगई । सभ्य ससार की सभी जातिया हिन्दुओं से वनस्पति-शास्त्र और चिकित्सा-शास्त्र का ज्ञान उपार्जन करने के लिये उत्सुक हुई । ग्रीस, रोम, मिश्र, इत्यादि देशों की औषधियो पर, हिन्दु-चिकित्सा-शास्त्र का बहुत अद्भुत प्रभाव पड़ा ।

महान सिकन्दर के आक्रमण के समय हिन्दू वैद्यों का वनस्पति-विज्ञान, विष-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान बहुतही बढा-चढ़ा था । वे लोग वनस्पतियो की सहायता से रोगों की चिकित्सा बहुतही सफलता के साथ करते थे । ग्रीस के कैम्प के सिपाहियों मे सर्प-विष वगैरे के केसो का इलाज भी वे बड़ी चतुरता से करते थे । ऐसी स्थिति में ग्रीक वनस्पति-विज्ञान पर भारतवर्ष के चिकित्सा-विज्ञान का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था ।

यूनान के महान चिकित्सक डिसकोरिडस के ग्रन्थों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि वहाँ के चिकित्सक चिकित्सा-सम्बन्ध में भारतवर्ष के कितने आभारी थे । श्वास या दमे की बीमारी में धतूरे का धूम्रपान , पक्षाघात या लकवा और मंदाग्नि की बीमारी में जहरीकुचले का उपयोग, विरेचक औषधि के रूप मे जमालगोटे का उपयोग, इत्यादि बातें प्राचीन भारत से ही ससार मे प्रसिद्ध हुई थीं । अधिक मात्रा में धतूरे के धूम्रपान से होने वाले दुष्परिणाम भी भारतवर्ष से ही प्रसिद्ध हुए थे ।

रोमन लोगों ने भी भारतीय जडी-बूटियों के सम्बन्ध मे बहुत दिलचस्पी से भाग लिया था । प्लाइनी के समय में रोम का भारतवर्ष के साथ जड़ी-बूटियों का बहुत विस्तृत व्यापार होता था ।

बुद्धकाल के अन्दर भारतवर्ष मे जडी-बूटियों के ज्ञान का और भी अधिक विकास हुआ । सम्राट अशोक के टाइम मे बहुत से वानस्पतिक द्रव्यों की खेती की जाती थी और वहीं से वैद्यों को सप्लाय की जाती थीं तथा उनको उपयोग में लेने के लिये कई एक उपयोगी सूचनाएँ भी दी जाती थीं । जैसे- वर्षजीवी वनस्पतियों को बीजों के पकने के पहिले इकट्ठी करना चाहिये । साल में दो बार होने वाली वसंतऋतु के पहिले इकट्ठी की जाना चाहिये । जडे ठंड की मौसम में, पत्ते गरमी की मौसम में तथा छिलटे और लकडियाँ बरसात की मौसम में सग्रह करना चाहिये । इसी काल में बहुतसी नई औषधिया भारतीय निघंटु-शास्त्र में सम्मिलित की गई और उनका यथा-विधि अन्वेषण भी किया गया ।

बुद्ध धर्म के पतन के साथही-साथ दूसरे ज्ञानों की तरह औषधिशास्त्र के ज्ञान का भी क्रमशः पतन होने लगा । नवीन अन्वेषण बद हो गये और इसके विकास में बहुत शिथिलता पैदा हो गई ।

ईसा की पाँचवीं या छठी शताब्दी के समय में हिन्दू लोग प्राचीन सस्कृत ग्रथों में उल्लिखित औषधियों के ज्ञानपर ही निर्भर रहते थे । उस समय का कल्पस्तनुन नामक ग्रंथ बड़ा रोचक है । इसमें वनस्पतियों और औषधियों के कई विभाग किये गये हैं जैसे-सुगन्धित छिलटेवाली औषधियाँ, फूल फल

के पंजे में से मुक्त किया जिनको डॉक्टर और वैद्य जवाब दे चुके थे। इस औषधि का वर्णन भी इन्द्रायण के प्रकरण में इस ग्रन्थ के अन्दर विस्तार से किया गया है।

इसी प्रकार बिच्छू के जहर के सम्बन्ध में गुलतुर्रा नामक वृक्ष की जड़ का उपयोग भी एक ऐसा चमत्कारिक उपाय है जिसका शास्त्रीय ग्रंथों में कहीं उल्लेख नहीं है मगर जो बड़े २ डॉक्टरों के द्वारा हजारों केसों में अजमाने के पश्चात् भी पूर्ण रूप से विजयी साबित हुई है।

बगाल के अंदर "बक्खो" नामक एक औषधि होती है, इस औषधि का वर्णन आयुर्वैदिक और यूनानी के किसी भी ग्रंथ में पाया नहीं जाता, पर यह औषधि बगाल के ढाका जिले मे बहुत बडे परिमाण मे पैदा होती है। यह वनस्पति पातालगरुड़ी के समान होती है। इस औषधि का उपयोग वहां के रहने वाले सथाल लोग निर्भीक होकर करते है। बगाली लोगों मे से जब किसी को साप काटता है तब वे लोग बड़े २ डॉक्टरों को बुलाने की जगह पर सथाल लोगों को बुलाकर उनसे इलाज करवाते हैं। इसी बूटी के प्रताप से सथाल लोगों के बच्चे काले सापों को निर्भीकता के साथ खिलवाड़ की तरह गले में पहन लेते है।

'जगलनी जड़ीबूटी' नामक ग्रंथ के लेखक लिखते हैं कि शान्ति-निकेतन के एक विद्यार्थी को बडे जोर से 'नकसीर' (नाक से खून बहना) शुरू हुआ। कई डॉक्टरों का इलाज करने पर भी, उसको लाभ नहीं हुआ और सब लोग बडे हैरान हो गये, इतने ही में उधर एक सथाल आ निकला उसने बक्खो की जड़ लेकर पानी के साथ पीसकर रोगी को पिलादी जिससे तुरन्त खून का बहना बन्द होगया। एक स्त्री को भयकर प्रदर रोग था, करीब घड़ा भर खून उसके रोज बहता था। बक्खो की २ तोला जड़ लेकर पानी में पीसकर उसको पिलाई गई जिससे उसे ऐसा लाभ हुआ कि फिर दूसरी बार दवा लेने की उसे आवश्यकता ही न रही। सर्पदंश के ऊपर भी यह औषधि इसी प्रकार पानी मे घिसकर पिलाई जाती है और कहा जाता है कि बिलकुल मृत्यु के मुख में पहुँचे हुए मनुष्य के पेट में भी अगर यह पहुँच जाय तो १०-१५ मिनट में ही वह चैतन्य लाभ करलेता है।

नर्मदा के किनारे पर बड़ौदा राज्य की सरहद में गौला नामक एक औषधि होती है, इसके लिये कहा जाता है कि पानी में डूबे हुए मनुष्य, को यदि वह मृत्यु के मुख में भी पहुँचगया हो तो यह औषधि पुनर्जीवन दे देती है। इसकी तरकीब यह है कि मुर्दे को गाड़ने के लिये गड्ढा बनाया जाता है वैसा गड्ढा खोदकर उसमें उपले कंडे भरकर जलादेना चाहिये। जब वे कंडे जलकर अगारे हो जायँ तब उनको उस गड्ढे में से निकालकर उस गड्ढे में नीम के पत्ते भरकर उन पत्तों के ऊपर पानी में डूब कर मरे हुए मनुष्य को नग्न करके सुलादेना चाहिये और मुँह खुला रखकर उसको रजाई ओढा देना चाहिये। फिर इस गौला नामक वनस्पति को बारीक पीसकर उसके मुह और ललाट पर लेप करना चाहिये। इससे करीब एक घटे के बाद पसीना और पेशाब होकर वह रोगी चैतन्य लाभ करता है।

कई डाक्टरों का ऐसा खयाल है कि क्लोरोफार्म की तरह मनुष्य को बेहोश करने वाली कोई औषधि भारतवर्ष में पैदा नहीं होती है पर हिमालय के अन्दर नेपाल से भूटान के बीच में "विखमा" नामक एक वनस्पति के पौधे पाये जाते हैं, जिनकी ऊँचाई ४ से ५ फीट तक होती है। इस औषधि के अन्दर यह तासीर है कि इसके नजदीक होकर अगर कोई मनुष्य निकल जाय तो वह मूर्छित हो जाता है। इस औषधि की जड़ को लाकर सुँघाने से यह क्लोरोफार्म का काम कर सकती है। इस औषधि की दर्प-नाशक एक वनस्पति जिसको "निर्विषी" कहते हैं, वह भी इसके नजदीक ही पैदा होती है और उसमें यह गुण है कि उसकी जड़ को नाक के पास रखने से बेहोश व्यक्ति तुरन्त होश में आ जाता है।

एक चाँद मरवा नामक पहाड़ी वनस्पति हिमालय में बरफ के अन्दर पैदा होती है। इस बूँटी का वर्णन भी किसी आयुर्वैदिक या यूनानी ग्रन्थ में नहीं मिलता, मगर जंगली लोग इससे अच्छी तरह परिचित हैं। यह वनस्पति स्नायु-रोगों के लिये एक अचूक औषधि है। न्यूरेस्थनिया, स्नायविक दुर्बलता इत्यादि अनेक प्रकार के स्नायु-रोगों में जटामासी के काढ़े के साथ इसको लेने से यह शास्त्रीय रस, भस्म, घृत, तेल इत्यादि दूसरी औषधियों से बहुत ज्यादे लाभ पहुँचाती है।

इसी प्रकार कुछ वर्षों के पहिले गुजरात के अन्दर एक फकीर ने सैकड़ों वातरक्त, (जिसे गुजराती में "पत" का रोग कहते हैं) नामक कुष्ट के रोगियों को खिचड़ी में छिपकली पका २ कर, उस खिचड़ी को खिलाकर आराम किया था।

इसी प्रकार ऐसी सैकड़ों वनस्पतियाँ इस देश में पैदा होती हैं जिनके गुण-दोष केवल जगली लोगों, शिकारियों और योगी-यतियों को ही मालूम है और वे गुरु परम्परा से उन्हीं लोगों की जानकारी मे रहती आई हैं। उनका ज्ञान न तो प्राचीन ग्रन्थकारों को था और न शायद आधुनिक रसायन-शास्त्रियों को ही है। दुर्भाग्य से इस देश में यह विचार-पद्धति बहुत दिनों से चली आ रही है कि लोग अपने ज्ञान को ससार के सन्मुख प्रकाशित करने में बड़ी हानि समझते हैं और इसी विचार-पद्धति के कारण यहाँ का ज्ञान प्रकाश में न आकर मनुष्य के जीवन के साथ ही खतम हो जाता है, अगर कोशिश करके इन जंगली लोगों के पास रहा हुआ जड़ी-बूँटियों का ज्ञान सकलन किया जाय तो इस शास्त्र के अन्दर एक नवीन युगान्तर हो सकता है।

[४]

कुछ वनस्पतियाँ हमारे देश मे ऐसी भी पैदा होती है जो अत्यन्त प्रभावशाली हैं और जिनका ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों को बहुत अच्छी तरह से था और जिन्होंने अपने ग्रन्थों में उनका पूरा वर्णन दिया है, लेकिन काल परम्परा से और समय के भीषण आघातो से लोग उनकी पहिचान को बिलकुल भूल गये और वे औषधियाँ हमारे लिये एकदम अपरिचित सी हो गईं। इनमें जीवक, ऋषभक इत्यादि

अष्टवर्ग की औषधियाँ तो प्रसिद्ध ही हैं और जिनके लिये खोज भी चल रही है, मगर इनके सिवाय चरक-संहिता के अन्दर और भी कई दिव्य औषधियो का जिक्र किया गया है, जैसेः—ब्रह्मसुवर्चली नाम की एक औषधि होती है जिसको हिरण्यक्षीरा भी कहते हैं। इसके पत्ते कमल की तरह होते हैं। एक औषधि आदित्यपर्णी अथवा सूर्यकांता नामक होती है जिसका दूध सोने के समान पीला और फूल सूर्य-मण्डल के आकार का होता है। एक औषधि नारी नामक होती है जिसको अश्वबला भी कहते हैं। इसके पत्ते बकरे की तरह होते हैं। एक काष्टगोधा नामक औषधि होती है जिसका आकार साँड के समान होता है। एक सर्पा नामक औषधि होती है जिसका आकार सर्प की तरह होता है। सोम नामक औषधि जिसे सोमवल्ली भी कहते हैं और जो सब औषधियों की रानी है। इसके पन्द्रह पत्ते होते हैं और चन्द्रमा की कला के अनुसार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन एक २ पत्ता घटता जाता है और शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक २ पत्ता नवीन आता-जाता है। एक पद्मा नामक औषधि होती है, जो आकार, रंग और गन्ध में कमल के समान होती है। एक अजा नामक औषधि होती है जिसको यजश्रृंगी भी कहते हैं। एक नीला नामक औषधि भी होती है जिसके दूध और फूल नीले रंग के होते हैं तथा शाखा-प्राशाखाएँ बहुत होती हैं।

महर्षि चरक लिखते हैं कि उपरोक्त औषधियाँ महान् दिव्यौषधियाँ हैं। इनके रस का तृप्तिपर्यंत पान करके ऊपर बकरी का दूध पीने से और उसके पश्चात् पलाश की हरी लकड़ी के बनाये हुए ढक्कनदार टब में नग्न स्थिति में सोने से नवीन शरीर की प्राप्ति होती है और वह मनुष्य आयु, वर्ण स्वर, आकृति, बल और प्रभा में देवताओं के समान हो जाता है।

इसी प्रकार भूख और प्यास को दूर करने वाली, दूध पैदा करने वाली, सोना बनाने वाली, इत्यादि अनेक प्रकार के चमत्कृत गुणों से संयुक्त औषधियाँ हमारे यहाँ के पहाड़ों में पैदा होती हैं। मगर जानकारी न होने से हम लोग उनसे बिलकुल लाभ नहीं उठा सकते।

[५]

अंग्रेजी राज्य का इस देश में प्रारंभ होने पर पाश्चात्य लोगों ने और २ बातों के साथ इस देश के वनस्पति-विज्ञान पर पूरी तरह से ध्यान देना आरंभ किया। यूरोप के विद्वानों ने भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की महत्ता और उसकी वैज्ञानिकता को सच्चे दिल से महसूस किया और उन्होंने इस देश के आयुर्वैदिक और यूनानी ग्रन्थों का बहुत गहरे अध्ययन से मनन किया। उन लोगों ने न केवल प्राचीन ग्रन्थों पर आश्रित रहकर ही वनस्पतियों के अन्वेषण का कार्य किया, प्रत्युत पहाडों २ और जंगलों २, में घूमकर वनस्पतियों की पहिचान की। जंगली लोगों से उनके गुणधर्मों को जाना और उसके बाद उन औषधियों को अपने ग्रन्थों में दर्ज किया।

सबसे पहिले इस विषय में सर विलियम जोन्स ने अपना प्रयत्न प्रारंभ किया। वे वनस्पति-शास्त्र के ऊँचे विद्वान थे। उन्होंने भारतीय औषधियों के सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता

बंगाल एशियाटिक सोसायटी के समक्ष प्रगट किया और बतलाया कि सैकड़ों वनस्पतियां जो भारत के जङ्गलों और मैदानों में पैदा होती हे, वे यूरोपीय लोगों के परिचय में नहीं हैं, अपने एक ग्रन्थ में उन्होंने ऐसी कुछ वनस्पतियों का परिचय भी लिखा । इसके बाद उनके अनुयायी राक्सबर्ग ने "फ्लोरा ऑफ इन्डिका" में देशी औषधियों का काफी परिचय दिया। फरमा कोपिया ऑफ इंडिया के प्रकाशित होने तक यह ग्रन्थ ही इस देश की औषधियो के लिये एक उत्तम ग्रन्थ माना जाता था । सन् १८७४ में इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मिस्टर क्लार्क ने लिखा कि राक्सवर्ग ने भारतीय जड़ी-बूटियों के विषय में इतना लिखा है कि उसके आगे हमारा कार्य बहुत ही कम है। इकॉनामिक बोटानी के विषय में रॉक्सवर्ग बहुत ही विश्वसनीय हैं और उनके ग्रन्थ में इस विषय पर बहुत कुछ जानकारी देते हैं।

एंसली कृत मटेरिया मेडिका भी देशी वनस्पतियों के सम्बन्ध में एक बहुत ही महत्व का काम हुआ और इसने इस क्षेत्र के अन्दर बहुत प्रशसा प्राप्त की।

सन् १८६८ में वेरिंग के सम्पादन में फरमाकोपिया ऑफ इन्डिया नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमें यहाँ पर पैदा होने वाली वनस्पतियों पर काफी प्रकाश डाला गया। इस ग्रन्थ ने इस क्षेत्र के अन्दर एक नवीन युग का प्रारम्भ कर दिया । इसके अन्दर की कई महत्वपूर्ण औषधियाँ ब्रिटिश फरमाकोपिया के अन्दर दर्ज की गई । डाक्टर मोहिदीन शरीफ ने सप्लीमेंट टू दी फरमाकोपिया प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ में ऐसी कई नवीन वनस्पतियाँ जिनका इस देश में अधिकतर उपयोग होता है, मगर जिनका उल्लेख वेरिंग ने नहीं किया था, प्रकाश में लाई गई, मोहिदीन शरीफ ने मटेरिया मेडिका ऑफ मद्रास नामक ग्रन्थ की रचना भी की, जिसको उनकी मृत्यु के पश्चात् हूपर ने प्रकाशित किया। यू० सी० दत्त ने सस्कृत मटेरिया मेडिका का अनुवाद किया जिससे हिन्दू-चिकित्सकों के द्वारा उपयोग में ली जाने वाली मुख्य २ औषधियाँ प्रकाश में आगई । इसके बाद फ्लूकीगर और हेम्बी कृत फार्मकोग्रेफिया नामक दूसरा ग्रन्थ प्रकाशित हुआ और सन् १८८३ में डायमॉक ने मटेरिया मेडिका ऑफ वेस्टर्न नामक ग्रन्थ की रचना की । सन् १८८५ में वार्डन और हूपर के सम्पादन में फरमेकोग्रेफिया ऑफ इन्डिया नामक महत्व पूर्ण और विस्तृत ग्रन्थ तयार हुआ, जिसमे बहुत ही परिश्रम और सावधानी के साथ पूर्व और पश्चिम के देशों में काम में ली जाने वाली औषधियों का काफी वर्णन है। सन् १८६५ मे "डिक्शनरी ऑफ इकॉनामिक प्राडक्टस ऑफ इडिया" नामक महान् ग्रन्थ सर जार्ज वेट के द्वारा तयार किया गया। यह एक विस्तृत और उपयोगी ग्रन्थ है। इस स्मरणीय ग्रन्थ में पहले के ग्रथों का साराश ही नहीं लिया गया किन्तु इसके हर एक पेज में भिन्न २ पत्तों, फूलों, जडों, छिल्टों और लकडियों का भिन्न-भिन्न उपयोग बतलाया है। कई वनस्पतियों की खेती के विषय में भी इसमें बहुत कुछ लिखा गया है। इसके बाद कन्हैयालाल दे कृत इंडिजैनस ड्रगूस

ऑफ इंडिया और कीर्तिकर और वसू कृत इंडियन मेडिसिन प्लांट्स नामक ग्रन्थों की रचना हुई। कीर्तिकर और वसू के ग्रन्थ में कई औषधियों के चित्र भी दिये गये हैं जिनसे कि उनके परीक्षण में सहायता मिले।

इन रचनाओं के अतिरिक्त कई सभा-सोसाइटियों, मासिक पत्रों और व्यक्तिगत अनुमानों के द्वारा भी वनस्पति विषयक ज्ञान की बहुत तरक्की हुई। गवर्नमेंट ने भी इस विषय में बहुत दिलचस्पी ली। यह बात भी धीरे-धीरे सर्वमान्य होने लगी कि इस देश की आबहवा मे पैदा होने वाली बीमारियों को दूर करने के लिये यहाँ की आबहवा में पैदा होने वाली औषधिया ही अधिक कामयाब हो सकती हैं। चिकित्सा की देशी प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिये कौन्सिल के अन्दर भी सवाल उठाये गये। अधिकारियों का ध्यान भी इस महत्वपूर्ण तथ्य की तरफ आकर्षित हुआ कि इस देश में पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति पर अवलम्बित रहने वाले लोगों की सख्या केवल दश प्रतिशत है, शेष जन समुदाय देशी औषधियों पर ही अपने को निर्भर करता है। लार्ड हार्डिङ्ग ने एक स्थान पर भाषण देते हुए कहा था कि "जब मैं इस बात को सोचता हूँ कि कितने कम लोग ऐसे हैं जिनकी पहुँच एलोपेथिक चिकित्सा तक है और उनमें भी कई ऐसे हैं जिनकी पहुँच एलोपेथिक तक होने पर भी जो देशी इलाज को ही पसन्द करते हैं, तब मैं इस निर्णय पर पहुँचता हू कि जो भी युक्ति देशी चिकित्सा को पुनर्जीवित होने के लिये मेरे सामने पेश की जावे उसकी अवहेलना करना मेरे लिये भयङ्कर भूल होगी"।

इन्हीं सब बातों के परिणाम स्वरूप, खासकर गवर्नमेंट का ध्यान इधर आकर्षित होने से इस क्षेत्र के अन्दर सर्वतोमुखी उन्नति होने लगी जिसके परिणाम इस प्रकार दृष्टिगोचर होने लगे।

(१) सबसे बड़ा महत्वपूर्ण कार्य इस क्षेत्र मे यह हुआ कि यहॉ पर पैदा होने वाली औषधियों पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से विचार होने लगा। जन समाज का और जिम्मेदार व्यक्तियों का ध्यान उस भारी रकम की ओर गया जो प्रतिवर्ष विदेशी औषधियों के मूल्य स्वरूप विदेशों में जाती है।

यह कितने बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में धतूरा, मीठा तेलिया, एट्रोपा बेलेडोना (गिरबूटी, येब्रुज), खुरासानी अजवायन, इत्यादि अनेकों औषधिया, यहा प्रचुर प्रमाण में पैदा होकर बाहर जाती है और वहा से वे ही टिंक्चर, अर्क और मिक्श्चर का रूप धारण कर हमारे देश के अस्पतालों में आती हैं और वहा से यहां की गरीब जनता के पास पहुंचती, इन सब क्रियाओ मे हमारा कितना राष्ट्रीय धन व्यर्थ नष्ट होता है, इसका अनुमान करना भी कठिन है।

इसी प्रकार कई औषधिया ऐसी हैं, जो ठीक उसी रूप मे तो हमारे यहा पैदा नहीं होतीं जिस रूप में वे बाहर से आती हैं मगर ठीक उन्हीं के समान गुण धर्म और प्रभाव रखने वाली औषधिया हमारे

देश में प्रचुर परिमाण में पैदा होती हैं और जो कौड़ियों के मोल यहांपर प्राप्त हो सकतीं हैं जैसे इपिकेकोना के बदले अन्तमूल और आकड़ा, सारसा परिला के बदले अनन्तमूल, एफिड्रा के बदले असानिया, जेलप के स्थान पर कालादाना, काशिया के स्थान पर नीम, वेलेरियन के स्थान पर जटामासी, इत्यादि कई औषधिया यहा ऐसी पैदा होती हैं जो विलायती औषधियों का मुकाबिला करती हैं। अगर उन औषधियों के स्थान पर ये औषधिया काम में ली जायं, तो इससे भी हमारे देश का बड़ा लाभ हो सकता है।

इसके सिवाय कई औषधिया हमारे यहा ऐसी होती हैं जिनकी अगर व्यवस्थित रूप से खेती की जाय तो वे यहा से सफलता पूर्वक बाहरी देशों को भेजी जा सकती हैं और उनसे हमारे देश को काफी लाभ हो सकता है।

इन्हीं सब बातो पर विचार करने के लिए सन् १८६५ में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ने एक इण्डि-जेनस ड्रग्स कमेटी नियत की थी। इस कमेटी ने गवर्नमेएट का ध्यान इन बातों की तरफ आकर्षित किया (१) व्यवस्थित रूप से भारत में देशी औषधियों की खेती को उत्तेजन देना (२) चिकित्सा-शास्त्र में जिन २ औषधियों की उपयोगिता मानली गई है, उनका मेडिकल डिपो में अधिकाधिक उपयोग कर-वाना (३) डिपो मे कुछ विशेष औषधियों को तैय्यार करने की स्वीकृति देना।

इसके परिणाम स्वरूप कई स्थानों पर गवर्नमेंट ने व्यवस्थित रूप से, यहा पैदा होने वाली और न होने वाली कई औषधियों की खेती भिन्न-भिन्न स्थानों पर करवाना प्रारम्भ की, उसमें यथेष्ट सफलता भी मिली तथा देशी औषधियों की बाहर जाने की तादाद में भी काफी वृद्धि हुई।

फिर भी अबतक जैसी चाहिये वैसी सन्तोषजनक उन्नति इस क्षेत्र में नहीं हुई है। इस देश की आबहवा और यहाँ की जमीन इतनी भिन्न २ प्रकार की है कि अगर प्रयत्न किया जाय तो ससार भर की सारी वनस्पतिया यहा पर पैदा हो सकती हैं और यह देश न केवल अपनी प्रत्युत सारे संसार की वनस्पतियों की माग पूर्ण कर सकता है।

दूसरा महत्व का कार्य्य इस क्षेत्र में यह हुआ कि गवर्नमेएट ने इस देश में पैदा होने वाली औषधियों के रासायनिक तत्वों की जानकारी के लिए कुछ स्कूल खोले। यद्यपि इसके पहले भी वार्डनहूवर इत्यादि लोगों ने सगठित और व्यक्तिगत रूप से यहा की औषधियों के रासायनिक-विश्लेषण किये थे, पर इस सम्बन्ध का सगठित काम करने के लिये कलकत्ते में ट्रापिकल स्कूल ऑफ मेडिसन्स की स्थापना हुई। इस सस्था ने देशी औषधियों का परीक्षण करके उनके सम्बन्ध में नवीन प्रकाश डाला। इसके प्रधान कार्य्यकर्ता ले० कर्नल चोपरा ने अत्यन्त परिश्रम करके देशी औषधियों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेको अन्धविश्वासों को नष्ट कर दिया। उन्होंने एक २ औषधि के रासायनिक तत्वों का प्रथक्क-रण कर उसके गुण-धर्मों का विवेचन किया। इनके कार्य्य से भारतीय वनस्पतियों के इतिहास में

एक नवीन युग का निर्माण हुआ ।

फिर भी यह कहना कठिन है कि इस प्रकार के रासायनिक-विश्लेषणों से प्रत्येक औषधि के वास्तविक गुण प्रकाश में आ जाएँगे । कुदरत की रचना इतनी विचित्र है कि एक वनस्पति में स्वाभाविक रूप से जो गुण रहते हैं, वे विश्लेषण की क्रिया करते २ नष्ट हो जाते हैं, कई वनस्पतिया अग्नि का स्पर्श होते ही निःसत्व हो जाती हैं । डाक्टर भुवन मोहन सरकार ने एक बार लिखा कि " उलटकम्बल " को टिंक्चर, गोली, चूर्ण इत्यादि सभी रूपो में प्रयोग किया गया, मगर इसके ताजा रस में जो गुण मिला, वह इसके दूसरे किसी भी रूप में नहीं पाया गया । इसी प्रकार कई वनस्पतियों के टिंचरों और रासायनिक तत्वों से आधुनिक चिकित्सकों को निराश होना पड़ा, मगर उन्हीं वनस्पतियों के द्वारा सैकड़ों वर्षों से यहा के वैद्य सफलता पूर्वक चिकित्सा करते आ रहे हैं ।

केस और महेस्कर ने साँप के विष को दूर करने वाली यहाँ की प्रायः सभी अर्थात् ४०० औषधियों के विश्लेषण किये और अन्त में उनको सब के लिये निराश होना पड़ा । मगर उन्हीं औषधियों के द्वारा यहाँ के वैद्य और सपेरे सैकड़ों साँप के काटे हुए मृतप्रायः रोगियों को सफलता के साथ सैकड़ों वर्षों से अच्छा करते आ रहे हैं ।

मगर इन अपवादों से या इसी प्रकार के और भी सैकड़ों अपवादों से रसायन-शास्त्र की उपयोगिता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आ सकता । यह जरूर है कि रसायन-शास्त्र अभी अपूर्ण अवस्था में है, फिर भी इसके द्वारा हमको जो ज्ञान प्राप्त हो सकता है उसकी कीमत नहीं आँकी जा सकती । औषधियों के सम्बन्ध में रसायन-शास्त्र की वजह से मानवीय-ज्ञान में जो तरक्की हुई है, वह ऐतिहासिक है । इससे उपयोगी और निरुपयोगी औषधियों के पृथक्करण में बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य हुआ है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि किसी भी औषधि का रासायनिक विश्लेषण करते समय हम उस औषधि से सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन मतों या पहाडी लोगों के अनुभवों को उपेक्षा की दृष्टि से न देखें । इन सब तथ्यों को मद्देनजर रखते हुए किसी भी औषधि के गुण-धर्म और प्रभाव पर हम जिन नतीजों पर पहुँचेंगे, वे अपेक्षाकृत अधिक महत्व पूर्ण होंगे ।

(३) तीसरा महत्व पूर्ण कार्य इस क्षेत्र मे यह हुआ कि यहाँ के मेडिकल कालेजों के पाठ्य-क्रम मे देशी औषधियों का ज्ञान देने वाली प्रामाणिक पुस्तकें भी सम्मिलित की गई हैं । इससे यहाँ के मेडिकल ग्रेज्युएट्स देशी इलाजों से कॉलेजों में ही परिचित हो जाते हैं और वे अपने भावी जीवन मे उनका उपयोग भी लेते हैं ।

(४) इस सम्बन्ध में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं, प्रदर्शिनियों और दूसरे फुटकर साहित्य ने भी इस विषय के ज्ञान को बढाने में काफी सहायता दी ।

इसके अतिरिक्त कई लेखकों ने प्रान्तीय दृष्टि को मद्देनजर रखकर भिन्न २ प्रान्तों में पैदा होने वाली औषधियों के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे । इन ग्रन्थों से भी औषधियों के सम्बन्ध के

ज्ञान की बहुत वृद्धि हुई।

पंजाब की जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में डाक्टर स्टैवर्ट ने पंजाब प्लाण्ट्स नामक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। पजाब प्रान्त की औषधियों के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

डा० एटकिनसन ने इकानामिक प्राडक्ट्स ऑफ दी नार्थ-वेस्ट प्राविन्स नामक ग्रन्थ की रचना की, यह ग्रन्थ संयुक्त प्रान्त, आगरा और अवध की वनस्पतियों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी देता है।

बड़ोदा और काठियावाड़ की वनस्पतियो के सम्बन्ध में गुजरात के सुप्रसिद्ध वनस्पति-शास्त्री श्री जयकृष्ण इन्द्रजी ने अत्यन्त अन्वेषण और मनन के साथ अपने वनस्पति-शास्त्र की रचना की है।

इसी प्रकार सर डेविडप्रेन कृत बगाल प्लाण्ट्स, थियोडोर कुक कृत फ्लोरा ऑफ बाम्बे, हेन्स कृत फ्लोरा ऑफ सेण्ट्रल प्राविन्सेस, गैंबल कृत फ्लोरा ऑफ मद्रास, मोहीद्दीन शरीफ कृत मटेरिया मेडिका ऑफ मद्रास, कर्नल वेबर कृत पंजाब प्लाण्ट्स, जनरल कॉलेट कृत फ्लोरा सिमलेन्सेस, बर्किल कृत प्लाण्ट्स ऑफ बिलोचिस्तान, इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हो चुकी है।

मतलब यह है कि इस सम्बन्ध में इतना क्षेत्र तैयार हो चुका है कि इस विषय में उत्साह रखने वाले किसी भी व्यक्ति को इस सम्बन्ध की काफी जानकारी प्राप्त हो सकती है।

इतना सब होने पर भी अभीतक इस देश में इस ज्ञान का क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। इस देश की जनता का करीब ९९ प्रति सैकड़ा हिस्सा अभीतक इस विषय की आधुनिक जानकारी से अपरिचित है। इसका प्रधान कारण यह है कि इस सम्बन्ध में अभीतक जितने अनुसधान हुए हैं, प्रायः वे सब अंग्रेजी भाषा में ही प्रकाशित हुए हैं और वे भी ऐसे ढङ्ग से प्रकाशित हुए हैं जिनसे मेडिकल लाइन के आदमी ही उनसे किसी अंश मे लाभ उठा सकते हैं। सर्व साधारण को उनसे कोई दिलचस्पी नहीं होती। अगर देशी भाषाओं में इस विषय की जानकारी देने वाला साहित्य और पत्र-पत्रिकाएँ, सरल और सुबोध ढङ्ग से प्रकाशित हों तो सर्व-साधारण के क्षेत्र तक किसी रूप में इस ज्ञान की पहुँच हो सकती है। मगर देशी भाषाओं में इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रायः एक प्रकार का अभाव ही रहा है। गुजराती और मराठी भाषाओं में फिर भी इस सम्बन्ध की दो-चार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। मगर राष्ट्रभाषा का सम्मान प्राप्त करने वाली हिन्दी-भाषा में तो ऐसे साहित्य का करीब २ अभाव ही है। होना तो यह चाहिये कि देशी भाषाओं में वनस्पतियों से सम्बन्ध रखने वाले छोटे २ ट्रैक्ट तथा बड़े २ ग्रन्थ प्रचुर परिमाण में प्रकाशित हों, जिससे जनसमुदाय जीवन में सबसे अधिक आवश्यक औषधि-विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने मे समर्थ हो सके।

इसलिये इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि राष्ट्रभाषा के अन्दर इस विषय का उपयोगी साहित्य छोटे से लेकर बड़े पैमाने पर प्रकाशित किया जाय, जिससे जन-समाज में इस विषय की ओर

अभिरुचि पैदा हो।

इसी कमी की ओर जन-समाज का ध्यान आकर्षित करने के लिये तथा इस अभाव की यत्किंचित पूर्ति करने के लिये इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ में आयुर्वेदिक, यूनानी और आधुनिक वैज्ञानिक ग्रन्थों के अतिरिक्त जंगली लोगों के अनुभव तथा जड़ी-बूँटियों में दिलचस्पी रखने वाले दूसरे लोगों के अनुभवों का भी वर्णन किया गया है। उपयोगिता की दृष्टि से ग्रन्थ कहाँतक सफल हुआ है, इसका निर्णय इस विषय के अधिकारी ही कर सकेंगे।

वनौषधि-चन्द्रोदय

वनौषधि-चन्द्रोदय

———:o:———

अकलकरा

नाम—

संस्कृत—आकल्लक , आकारकरभः,अकल्लकः, हिन्दी—अकलकरा, गुजराती—अक्कलकरो, मराठी—अक्कलकारा, बगाली—अकोरकोरा, तेलगू—अक्करकरम्, अरबी—आकरकरहा, लेटिन Angeyclaus, Anacyclus Pyrethrum (एनासायक्लस पाइरिथ्रम) अग्रेजी—Pellitory Root (पेलेट्री रूट)।

वर्णन—

यह अरब और भारतवर्ष की प्रसिद्ध बूटी (जडी) है । पूर्वकालीन चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में इस बूटी का उल्लेख नहीं मिलता । मगर मध्यकालीन भावप्रकाश, शार्ङ्गधर आदि ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है । इससे ऐसा अनुमान होता है कि भारतवर्ष में इस औषधि का ज्ञान यूनानी हकीमों के द्वारा ही प्रचारित हुआ । यूनानी हकीम "डीओस कुरीदस" (Dioscorides) ने पाइरीथोन के नाम से इस औषधि का वर्णन किया है । इसी शब्द से लेटिन के पाइरीथ्रम शब्द की व्युत्पत्ति हुई है ।

यूनानी ग्रन्थों में अकलकरे का वर्णन बाबूना वर्ग की चार औषधियों के साथ मिलता है। यह सब औषधियाँ एक दूसरी के साथ बहुत मिलती हुई हैं। बाबूना ज़रूमी, बाबूना बदबू, बाबूना गावचश्म और बाबूना स्पेनिश इन चारों औषधियों को यूनानी ने बाबूना और लेटिन में पाइरीथ्रम कहते हैं। इन चारों में स्पेनी बाबूना जिसको लेटिन में एनासायक्लस पाइरीथ्रम कहते हैं। वही वास्तविक अकलकरा साबित हुआ है। यह औषधि अफ्रीका के उत्तरीय अलजीरिया प्रान्त में तथा भारतवर्ष के भी कुछ हिस्सों में पैदा होती है।

भारतवर्ष में पैदा होनेवाला अकलकरा दो प्रकार का होता है। पहिले को लेटिन में "Spilinthes Oleracea" और दूसरे को "Spilanthes Acmella" कहते हैं।

स्वरूप—

यह औषधि क्षुप जाति की है, वर्षाऋतु की पहिली वर्षा होते ही इसके छोटे-छोटे पौधे निकलना प्रारम्भ होते हैं। इसकी डाली रूएंदार होती है, डाली के ऊपर गोल गुच्छेदार छत्री के आकार वाला पीले रंग का फूल आता है। इसकी जड़ २ से ४ इंच तक लंबी और आधे से पौन इंच तक मोटी होती है। छाल मोटी, भूरी और झुर्रीदार होती है। यह औषधि ७ सात वर्ष तक खराब नहीं होती।

रासायनिक विश्लेषण—

इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने से पता चला है कि इसमें "अल्कलाइड अकरकर्मीन" नामक क्षार तत्व, रेजिन और दो स्थायी उड़नशील तेलों का अस्तित्व पाया जाता है। यह वस्तु प्रदाहजनक, लार निस्सारक, कामोत्तेजक, वातनाशक, और मज्जातंतुओं को बल देनेवाली है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से अकरकरा उष्णवीर्य्य, बलकारक, चरपरा तथा सूजन, वात और जुकाम को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थकार इसे दूसरे दर्जे में रूक्ष और गर्म मानते हैं, कोई-कोई इसे तीसरे दर्जे के अन्त में और चौथे दर्जे तक खुश्क मानते हैं। किसी-किसी के मत से यह तीसरे और चौथे दर्जे में शीतल है। फेफड़ों के ऊपर इस औषधि का प्रभाव हानिकारक होता है।

उपयोग—

स्नायु रोग—ज्ञानतंतुओं के ऊपर इस औषधि का अच्छा असर होता है। जिसके फलस्वरूप यह औषधि पक्षाघात, अर्दित (मुँह का लकवा) इत्यादि स्नायुजाल से सम्बन्ध रखनेवाली व्याधियों पर अच्छा लाभ पहुँचाती है। रूमी मस्तगी के साथ इस औषधि को चबाने से दूषित दोषों से पैदा हुई मिर्गी मिटती है। इस औषधि में वातनाशक गुण भी काफी मात्रा में मौजूद है। जिसके परिणाम स्वरूप ग्रध्रसी, सन्धिवात, शूल्यवात, वातजनित मस्तक रोग, पुट्ठे का दर्द, कुबड़ापन, गर्दन की अकड़न, जोड़ों के दर्द इत्यादि वातव्याधियों पर जैतून के तेल के साथ पीसकर मालिश करने से अच्छा लाभ पहुँचाती है।

ज्वर और जुकाम—इस औषधि में पसीना लाने का गुण भी है। जैतून के तेल के साथ इसको पकाकर मालिश करने से पसीना देकर ज्वर उतर जाता है। इसके गरम काढ़े को सिर पर लेप करने से और उसे तालू पर मलने से सरदी और नजला दूर होता है।

दंत रोग—दाँतो की व्याधियो पर भी अकलकरा बहुत लाभ पहुँचाता है। इसके क्वाथ (काढे) को मुँह में रखने से हिलते हुए दाँत मजबूत होते है। इसी प्रकार इसकी जड़ को सिरके मे भिगोकर दाँत के नीचे दबाने से दतशूल नष्ट होता है। इसके चूर्ण को जीभ पर मलने से जीभ की जड़ता दूर होती है और तोतलापन मिटता है।

खाँसी—खासी के ऊपर भी यह औषधि अच्छा फायदा करती है। इसका क्वाथ बनाकर पिलाने से पुरानी सूखी खासी मिटती है। इसी प्रकार इसके बारीक चूर्ण को सुँघाने से नाक बँधजाने से पैदा हुआ श्वासावरोध दूर होता है।

अतिसार और पेट की व्याधि—आमाशय को रोगों पर भी यह औषधि अपना असर दिखलाती है। इस औषधि के प्रयोग से बालको के अतिसार, दाँत निकलने के समय उपद्रव, उदरशूल इत्यादि रोगों में फायदा होता है। सोंठ के साथ इसके चूर्ण की फकी लेने से मदाग्नि और अफारा मिटता है। जलोदर में भी इसका प्रयोग गुण दिखाता है। इसकी चौदह रत्ती की खुराक घोटकर देने से यह बल पूर्वक कफ को जुलाब के द्वारा निकाल देता है। किसी वामक और विरेचक औषधि को पीने से पहले यदि अकरकरा चबा लिया जाय तो उससे दवा पीने की घृणा दूर हो जाती है। इस औषधि के लेने से बच्चों का और गायकों का कठस्वर सुरीला हो जाता है।

वीर्य सम्बन्धी रोग—अकलकरे के अदर उत्तेजक गुण बहुत काफी प्रमाण मे विद्यमान हैं। इसलिए आयुर्वेद के अंदर कामोत्तेजक औषधियो मे यह बहुत प्रधान माना जाता है। यह औषधि भिन्न-भिन्न औषधियो के साथ देने से वीर्यवर्धन, कामोत्तेजन व स्तभन में अद्भुत फायदा दिखलाती है। मगर इस औषधि का लाभ ठंडी प्रकृति वालों को ही अधिक मिलता है। इसी प्रकार इसके तेल को वाह्योपचार की तरह पुरुषेंद्रिय पर मालिश करने से यह कामशक्ति को प्रबल करता है।

कर्नल चोपरा का कथन है—इस पौधे की जड़ पौष्टिक मानी जाती है। इसको पक्षाघात की बीमारी में देते हैं, अर्द्धांग मे भी यह दी जाती है। अपस्मार और मिरगी पर भी इसका उपयोग होता है, कपवात में भी यह दिया जाता है। यह बच्चो की वाचा शक्ति को तेज करने वाला माना जाता है। मगर इन सब धारणाओं को कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। इसकी जड़ का काढ़ा सड़े हुए दाँतो को ठीक करने के लिए कुल्ले करने के रूप मे लिया जाय तो उपयोगी सिद्ध होता है। गले की बीमारी में और तालु मूलग्रंथि के प्रदाह और गलग्रंथि का प्रदाह दूर करने के लिये यह उपयोगी है।

प्रयोग और बनावटें—

मृगी नाशक सूँघनी—अकलकरा १ तोला, इंद्रायण की जड़ ६ माशे, नौसादर ६ माशे स्याह जीरा ६ माशे, कुटकी १ तोला, काली मिरच १ तोला, इन सब औषधियों का चूर्ण प्रतिदिन सवेरे-शाम सुघाने से संचित दोषो को दूर कर मृगी को नष्ट करता है।

अकरकरादि वटी—अकरकरा चार भाग, जायफल तीन भाग, लौंग दो भाग, दालचीनी तीन भाग, पीपलामूल दो भाग, केशर दो भाग, अफीम एक भाग, भंग चार भाग, मुलेठी चार भाग, आँकडे की छाल पाँच भाग, वायविडंग तीन भाग—इन सबका चूर्ण करके उसमें पाँच भाग शहद और शेष पानी मिलाकर घोंट कर आधी रत्ती से लेकर ढाई रत्ती तक की गोलियाँ बनाई जायँ, ये गोलियाँ बच्चों के दाँत निकलते समय के उपद्रव, अतिसार, उदरशूल और वमन के लिये हितकारी हैं।

रति-वर्धक लेप—जायफल, तज, मालकांगनी, (जायफ) अकलकरा, भीमसेनी कपूर, जायपत्री लवंग, ये सब एक एक भाग और रेगमाही पाँच भाग लेकर बारीक चूर्ण कर कपड़े मे छान लिया जाय, फिर उसमे बढ़िया गुलाब का इत्र एक भाग डालकर शीशी मे भर लिया जाय। कामोद्दीपन के लिये इस औषधि का शहद के साथ पुरुषेन्द्रिय पर लेप किया जाता है।

सन्तान-निग्रह लेप—पारा, गंधक, अकलकरा, लौंग, कपूर, टंकनखार—इन सब वस्तुओं का अंजन के समान बारीक चूर्ण कर समागम के पूर्व शहद के साथ लेप करने से गर्भ स्थित नहीं होता। दोनों लेपो का प्रयोग पुरुषेंद्रिय के अगले भाग को छोड़कर करना चाहिये।

टिंचर ऑफ पाइरीथ्रम—एलोपैथिक ढंग से अकलकरे के द्वारा टिंचर ऑफ पाइरीथ्रम बनाया जाता है। जो दाँत के दर्द, गँठिया, अपस्मार, पक्षाघात, कफवात, तोतलापन, इत्यादि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाता है।

उपदंश नाशक गोली—भावप्रकाश के मतानुसार शुद्ध पारा आधा तोला, खैर का चूर्ण आधा तोला, अकरकरा का चूर्ण आधा तोला, इन सबको कूट छान कर बनाई गोलियाँ जल के साथ लेने से फिरंग रोग (उपदंश) नष्ट होता है।

अकलकरे का तैल—एक छटाक भर अकलकरे का चूर्ण कर उसे दो सेर पानी के साथ औटाना चाहिए। जब चौथाई पानी शेष रह जाय, तब उसे मल व छानकर दस रुपये भर शुद्ध काली तिल्ली के तैल मे डालकर मन्दाग्नि से औटाना चाहिए, जब पानी का भाग जलकर तैल मात्र शेष रहजाय, तब ठण्डा कर शीशी में भर देना चाहिये। इस तैल के उपयोग से सभी प्रकार की सर्दी की खाँसियाँ दूर होती हैं।

अकलकरादि चूर्ण—अकलकरा, सेंधानमक, चित्रक, आँवला, अजवायन और हरड़—ये सब एक-एक तोला और सोंठ दो तोला, इन सबों का कपडछान चूर्ण करके उसमे बिजोरा या नीबू के रस की भावना देना चाहिये। यह चूर्ण सुबह-शाम तीन-तीन माशे लेने से पीनस, मृगी, उन्माद, खाँसी, श्वास, मन्दाग्नि, अरुचि इत्यादि व्याधियो मे लाभ पहुँचता है।

जादू का योग—अकरकरे को नौसादर के साथ पीस कर तालू और मुँह में खूब रगड़ने से मुँह में ऐसी शून्यता उत्पन्न हो जाती है कि यदि मुँह मे अङ्गारे भी भर लिये जायँ तो नहीं जलता। कई बाजीगर लोग इसीके प्रयोग से मुँह में अङ्गारे भरने के अद्भुत खेल दिखलाते हैं।

प्रतिनिधि—जिगर के रोगों की चिकित्सा के लिए अकरकरे के अभाव में उसके प्रतिनिधि

पीपर और शहद है और अमाशय के रोगो मे इसके प्रतिनिधि रास्ना और अगर है । अकलकरे के दर्प को नष्ट करने वाली औषधियों में मुनक्का और कतीरा गोंद प्रधान हैं ।

योग्य मात्रा मे देने से जहाँ यह औषधि अनेक प्रकार के दिव्य लाभ पहुँचाती है, वहाँ अधिक मात्रा मे देने से आँतो के श्लेष्मावरण मे दाह उत्पन्न करके खूनी दस्ते (कन्वुलशन) इत्यादि उपद्रवों को पैदा करती है । इसलिये इसका उचित प्रमाण मे ही समझ-बूझकर प्रयोग करना चाहिये ।

अकल-बेर

नाम—

संस्कृत—हिन्दी—अकलबीर व भगजल, पजाबी—अकिलबिर, भगजल, द्रिनखारी, सिदासु, काश्मीरी—कालवीर, बभ्र जल, लेटिन- Datisca Cannalina.

वानस्पतिक वर्णन—

यह हिमालय तथा सिन्ध प्रदेश मे उत्पन्न होनेवाली एक वनस्पति है । इसका झाड़ सीधा व कठोर होता है । इसकी शाखाएँ फूलमय व लम्बी होती है । इसके पत्तो के किनारे कुछ कटे हुए रहते हैं । इसके फूलो का रग पीला होता है । यह फूल करीब ३ इच लम्बा व $1\frac{1}{4}$ इच चौड़ा होता है । इस वृक्ष के बीज वहुत बारीक होते है ।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक निघण्टो के अन्दर इस औषधि का कोई भी उल्लेख नहीं पाया जाता और न यूनानी ग्रन्थों मे ही इसका कोई उल्लेख मिलता है । मगर वनस्पतियों की आधुनिक खोज करने वाले वैज्ञानिको के ग्रन्थों मे इसका उल्लेख मिलता है ।

इडियन मेडिकल प्लान्टस् (Indian Medical Plants) नामक अग्रेजी ग्रन्थ के रचयिताओं के मतानुसार यह एक प्रकार की मूत्र निस्सारक औषधि है । पर्यायिक बुखारों मे इसका उपयोग होता है । जुकाम और खाँसी में इसको कफ निस्सारक औषधि की तरह देते हैं । यह कड़वी व विरेचक हैं । गडमाला रोग के अन्दर भी इसका उपयोग किया जाता है । खभात में इसको जड़ को कूटकर सिर दर्द के ऊपर काम मे लेते है । गठिया के रोग मे भी इसकी जड उपशामक मानी गई है । दाँतो के ऊपर लगाने से यह दाँतो की तकलीफ को मिटाती है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह कड़वी, विरेचक और ज्वर को नष्ट करने वाली है ।

इसके रासायनिक विश्लेषण से इसमे ग्लूकोसाईड नामक एक प्रकार का कडवा सत्व पाया गया है ।

डाईमोक के मतानुसार $2\frac{1}{2}$ रत्ती से लेकर $7\frac{1}{2}$ रत्ती तक की मात्रा में यह औषधि विषम ज्वरों के अन्दर उपयोग की जाती है ।

मि० वेट के मतानुसार गठिया रोग मे भी यह औषधि लाभ दिखलाती है।

इडियन मेटेरिया मेडिका के मतानुसार इस पौधे का ठडा काढ़ा (हिम) कटमाला, मूर्छा तथा विषम ज्वर में लाभदायक होता है।
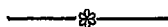
अखरोट

नाम—

सस्कृत—अक्षोटः, फलस्नेहः, रेखाफलः, वृत्तफलः, गुजराती—अखोड़, मराठी—अक्रोड, बगाली—आक्रोट, तेलगी—अक्षोलमु, द्राविडी—अक्रोट्ट, कर्नाटकी—वेट्टदगोनूमर, अरबी—जोजे हिन्दी, फारसी—गिर्दगॉ, लेटिन (Juglans Regia.) जुगलास रेजिया।

वर्णन—

इसके वृक्ष काबुल में और हिमालय में, काश्मीर से मनीपुर तक अधिकता से होते हैं। इसके वृक्ष की ऊँचाई ४० से ६० फीट तक की होती है। पत्ते ४ से ८ इच तक लवे अण्डाकार नुकीले और तीन-तीन कगूरेवाले होते हैं। फूल सफेद रग के छोटे-छोटे गुच्छे के रूप में लगते हैं। एक ही गुच्छे में नर और मादा दोनों तरह के फूल होते है। इसके फल गोल और मैनफल के समान होते हैं। फल के भीतर बादाम की तरह मींगी निकलती है। अखरोट दो प्रकार का होता है,एक को अखरोट और दूसरे को रेखाफल कहते हैं। इस पौधे की लकड़ी बहुत ही मजबूत अच्छी और भूरे रग की होती है।

गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अखरोट मधुर, किंचित खट्टा, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्धक, गरम, रुचिदायक, कफ-पित्त-कारक, भारी, प्रिय, बलवर्धक, मलवर्धक तथा वातपित्त, क्षय, वात, हृदयरोग, रुधिरदोष, रक्तवात, और दाह को दूर कर करने वाला है।

इसका छिलटा कृमिनाशक और विरेचक है। इसके पत्ते सकोचक व पौष्टिक हैं। इसका काढा गलग्रन्थियो के लिये उपयोगी माना जाता है और कृमिनाशक है। गठिया की बीमारी में इसका फल धातु परिवर्त्तक होता है। यूरोप के अन्दर इस के छिलटे और पत्ते रेचक, धातु परिवर्तक और शरीर की क्रियाओं को दुरुस्त करने वाले माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपदंश, विसर्पिका, खुजली, कटमाल इत्यादि रोगों में भी यह मुफीद माना जाता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रुक्ष, प्रकृति को मृदु करने वाला, ओजकारक, अजीर्ण को नष्ट करने वाला तथा मस्तिष्क, हृदय, यकृत और आन्तरिक इन्द्रियों को बल देने वाला है। इसकी भुनी हुई मींगी सर्दी से होने वाली खॉसी में लाभदायक है। यह गरम प्रकृति वालों को हानिकारक है।

प्रतिनिधि—अखरोट के प्रतिनिधि चिरौंजी और चिलगोजा हैं तथा इसका दर्पनाशक अनार का रस है।

उपयोग—

अर्दित (मुँह का लकवा)—अर्दित में इसके तेल का मर्दन करके बादी मिटाने वाली औषधियों के क्वाथ का वफारा लेने से बड़ा लाभ होता है ।

नारू—नारू में इसकी खली को पानी के साथ पीस कर गरम कर सूजन पर लेप कर पट्टी बाँध कर तपाने से सूजन उतर जाती है। ऐसे १५–२० दिन तक नित्य प्रयोग करने से नारू गल कर नष्ट हो जाता है ।

कंठमाला—इसके पत्तो का क्वाथ पीने और उसीसे गाँठ को धोने से कठमाला मिटती है।

दाद—प्रातः काल हाथ-मुँह धोने से पहिले इसकी गिरी को दाँतों से महीन चाबकर लेप करने से दाद मिटता है ।

शोथ (सूजन)—पाव भर गोमूत्र में १ से ४ तोले तक अखरोट का तेल मिलाकर पीने से शरीर की सूजन उतरती है ।

नासूर—इसकी पीसी हुई गिरी को मोम व मीठे तेल के साथ गलाकर लेप करने से नासूर मिटता है ।

अफीम का विष—इसकी गिरी को खिलाने से अफीम और मिलाये के विष के उपद्रव में फायदा होता है ।

कृमि रोग—इसकी छाल का क्वाथ पिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं ।

विरेचन—इसकी गिरी से जो तेल खींचा जाता है वह १ औंस से लगाकर २ औंस तक देने से मृदु विरेचन होता है ।

तेल निकालने की रीतियाँ—(१) इसकी गिरी को महीन कूट गाढ़े कपडे की थैली में भर यन्त्र में दबाने से तेल निकलता है। यह तेल सफेद, पतला और स्वादिष्ट होता है। इसमें जलाने व फफोला उठाने की शक्ति होती है। यह तेल ज्यों-ज्यों पुराना होता है त्यों-त्यों फफोला उठाने की शक्ति बढ़ती जाती है ।

(२) जितनी गिरी में से तेल निकालना हो उसमें से ¾ को पहिले कोल्हू में डालकर पैरना चाहिये। जब वह महीन हो जाती है, तब शेष गिरी भी उसमें डाल दें और उसके बाद एक सेर भर मिसरी के टुकड़े डाल दें जिससे खली तेल को छोड़ देगी। इस तेल को छानकर काँच या चीनी के बर्तन में भर देना चाहिये ।

अगस्तिया

नाम—

संस्कृत—अगस्त्य, हिन्दी—अगस्तिया, गुजराती—अगस्थियो, बंगला—वक, मराठी—अगस्ता, कनाड़ी—अगसेयमरन्, चोगची, तामील—अकम, अगंती, तेलंगी—अविसी, लेटिन—Agatı Grandi-flora (अगटी ग्राडी फ्लोरा)

वर्णन—

इस वृक्ष की उँचाई २० से ३० फीट तक होती है। इसकी छाल चिकनी और हलके भूरे रग की होती है। लकड़ी सफेद और कोमल होती है। पत्ते इमली के पत्तों के समान पर, आकार में उनसे कुछ बड़े इच डेढ़ इच लवे किंचित अडाकार होते हैं। फूल तिरछे, लाल या सफेद होते हैं। फलियाँ १०-१२ इच लम्बी, तिहाई इच चौड़ी, और चपटी होती है। इसकी दो जातियाँ होती है। एक का फूल सफेद होता है और दूसरी का लाल। इसकी फलियों, फूल और पत्तों का शाक बनाया जाता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अगस्तिया शीतल, रूखा, वात-कारक, कड़ुआ तथा शीतवीर्य है और पित्त, कफ, और चौथे दिन आने वाले बुखार तथा जुकाम को नष्ट करने वाला है।

इसके फूल शीतल, चातुर्थिक ज्वर और रतौंधे को दूर करने वाले, कडवे, कसैले, पचने में चरपरे तथा पीनसरोग, कफ, पित्त और वात को नाश करनेवाले हैं। (निघंटु-रत्नाकर)

इसके पत्ते चरपरे, कड़वे, भारी, मधुर, किंचित गरम, स्वच्छ तथा कृमि, कफ, विष और रक्तपित्त को हरने वाले हैं। इसकी फली हलकी, दस्तावर, बुद्धिदायक रुचिकारक, पचने में मधुर, कड़वी स्मरण-शक्ति-वर्द्धक, तथा त्रिदोष, शूल, कफ, पाडुरोग, और विष, शोष और गुल्मनाशक है।

यूनानी-मत—यूनानी ग्रन्थकार इसको दूसरे दर्जे में ठण्डा और रुक्ष मानते है। मीर महमद हुसैन के कथनानुसार इसके पत्तों का रस निकालकर २-३ बूँद नाक में टपकाने से छींक आकर तथा नाक बहकर सिर दर्द व सिर का भारीपन दूर होता है।

उपयोग—

अपस्मार, (मृगी)—अगस्तिया के पत्तों को काली मिरच के साथ गोमूत्र मे बारीक पीसकर मृगी के रोगी को सुँघाने से लाभ होता है।

वातरक्त—अगस्तिया के फूल को चूर्णकर उसको भैंस के दूध में मिलाकर दही जमाना चाहिये। इस दही से निकाले हुए मक्खन से वात-रक्त आराम होता है।

चेचक—चेचक की प्रथमावस्था में इसकी छाल का हिम बनाकर देने से लाभ होता है।

चोट—कहीं पर भी चोट लगने से या कुचल जाने से इसके पत्ते की पुल्टिस बनाकर बाँधने से लाभ होता है।

नेत्र की कमजोरी—इसके फूलों का रस निचोड़ कर आँखो में डालने से दृष्टि की कमजोरी और धुंधलेपन में फायदा होता है।

श्वेतप्रदर—अगस्त की ताजी छाल को कूटकर उसका रस निकाल कर उसमें कपड़े को तर कर बत्ती बनाकर योनि-मार्ग में रखने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

आधा शीशी पर—जिस तरफ के कपाल में दर्द होता हो उसकी दूसरी ओर की नाक में अगस्त के फूलों या पत्तो का रस निकाल कर टपकाना चाहिये।

चित्त विभ्रम—अगस्त के पत्तो के रस में सोंठ, पीपर और गुड़ को मिलाकर सूँघने से चित्त विभ्रम में फायदा होता है।

सूजन—लाल अगस्त्य और धतूरे की जड़ को साथ-साथ गरम पानी में पीसकर लेप करना चाहिये।

चातुर्थिक ज्वर—इसके पत्तों का या फूलो का रस सुँघाने से चातुर्थिक ज्वर और बँधे हुए जुकाम में लाभ पहुँचता है।

गठिया—लाल फूल के अगस्तिया की जड़ को पानी में पीस कर गरम करके लेप करने से गठिया की सूजन उतरती है।

रतौंधी—इसके फूलों का साग खाने से रतौंधी मिटती है।

अगमकी

नाम

संस्कृत—अहिलेय।खान, हिन्दी—अगमकी, बिलारी, बम्बई—चिराती, वर्मा—सतखीवा, कुमाऊँ—बिलारी, गुवाल ककड़ी; मुण्डारि-जयपुटुस, सिन्ध—वेलारी, चिराती, तामील—मुसिमुसि कैई, तैलगू—गोतो बुरामू, लैटिन• Mukia Scabrella, Melothria Maderaspatana.

विवरण—

यह एक प्रकार की वर्षोपजीवी वनस्पति है। इसकी शाखाएं बाँकी टेढ़ी फैली हुई रहती हैं।।शुरू २ मे इसके ऊपर सफेद रुआँ रहता है। इसके आधारभूत तंतु बहुत नाजुक और सीधे रहते हैं। इसके पत्ते भिन्न २ आकार के रहते हैं। ये खण्डयुक्त और कोपयुक्त रहते है। इनकी नोक तीखो होती है। इनके ऊपर का डठल लम्बा और रूएदार होता है। इसके पुष्प गुच्छेदार होते हैं, जिनमें नर और मादा दोनों जातियाँ होती है। पुष्पों के ऊपर का आवरण रूएंदार होता है। इसका फल मटर के आकार का होता है। यह शुरू २ मे कुछ पीलापन लिये हुए हरे रंग का और पकने पर गहरे लाल रंग का होता है। यह गोल और चपटा और चिकना होता है।

इण्डियन मेडिकल प्लाण्टस के रचयिताओं के मतानुसार—इसके बीजों का काढा एक प्रकार की पसीना लाने वाली औषधि है । इसकी जड़ का काढा बादी या कोष्ठवायु में बहुत ही मुफीद है । यह दाँतों की पीड़ा में भी उपयोगी है । दंत-पीड़ा दूर करने के लिये इसकी जड़ का चर्वण करना चाहिये । इसके नरम पत्ते व नरम-नरम डालियाँ मृदु विरेचक माने जाते हैं । ये सिर के चक्कर, घूमरि और पित्त में बड़े मुफीद हैं । छोटा नागपुर में मुंडा जाति के लोग इसके बीजों को कुचल करके दर्द के स्थान पर लगाते हैं । इनका खास उपयोग कमर की लचक पर किया जाता है ।

कोमान का मत—यह वनस्पति, अपने कफ-निसारक गुण के कारण उन जीर्ण रोगों की औषधियों का मुख्य अंग रहती है जिनमें कि कफ का मुख्य लक्षण होता है । इसे वायु नलियों के प्रदाह, खाँस व श्वास की बीमारी में कुछ बीमारों पर अजमाया, किन्तु इसका असर बहुत धीमा व असंतोषजनक पाया ।

डाक्टर चोपरा—उनके मतानुसार यह मूत्र निसारक व अग्निप्रवर्धक है ।

अगर

नाम—

संस्कृत—अगुरु, वशिक, राजार्ह, कृमिजम्, हिन्दी—अगर, द्राविडी—अहिलकट्टे, अरबी—ऊद-हिन्दी, फारसी—ऊदखाम, लैटिन—(Aquilaria Agallocha) एक्वीलेरिया एजेलोका ।

वर्णन—

अगर के वृक्ष सिलहट, मलाबार, मलयाचल, मनीपूर इत्यादि स्थानों पर होते हैं । इस झाड की ऊँचाई साठ से सौ फीट तक और गोलाई ५ से ८ फीट तक होती है । जब यह वृक्ष बीस वर्ष से अधिक आयु का होता है तब इसकी लकड़ी पकने लगती है और उपयोग में लेने योग्य होती है । यह वृक्ष बहुत बड़ा और सर्वदा हरा रहने वाला होता है । इसकी लकड़ी नरम होती है । इसके छिद्रों में राल की तरह कोमल और सुगन्धित पदार्थ रहता है । जो अगर बत्ती बनाने और शरीर पर मलने के काम में भी लिया जाता है ।

प्राचीनकाल के अन्दर भारतवर्ष में अगर द्रव्य की बड़ी महत्ता थी । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस द्रव्य के व्यापार का बड़ा व्यापक वर्णन किया गया है । सुश्रुत, चरक, इत्यादि ग्रन्थों में भी इसका बहुत वर्णन किया गया है । प्राचीनकाल में यहूदी लोग अगर को अलहोट, ग्रीक और रोमन लोग अगेलोकन और अरब निवासी अघलुखी कहते थे । परन्तु बाद में वे इसका नाम बदल कर ऊद-हिंदी कहने लगे ।

अगर की कई जातियाँ होती हैं। आर्य्य वैद्यक ग्रन्थो में इसकी पाँच जातियों का वर्णन मिलता है। जिनके नाम क्रमशः कृष्णागुरु, काष्ठागुरु, दाहागुरु, स्वाद्वगुरु और मगलागुरु है। यूनानी हकीम इसकी चार जातियाँ बतलाते हैं। हिन्दी, समन्दरी, कमरी और समण्डली।

इखतियारत—इ—बादियाई नामक ग्रन्थ के कर्त्ता ने उपर्य्युक्त सभी जातियों से भिन्न एक और जाति का वर्णन किया है। उसकी कीमत सोने के बराबर होती है। अगर की दूसरी जातियों को आग पर रखे बिना सुगन्ध नहीं आती। परतु उसे थोड़ी देर तक हाथ पर रखने से ही सुगन्ध आने लगती है।

उपरोक्त सब जातियो मे कृष्णागुरु जिसे 'ऊदेगरकी' कहते हैं और जो सिलहट से प्राप्त होता है, सर्वोत्तम होता है और वही औषधि के काम में आता है। यह पानी में डालने से डूब जाता है। स्वाद में कड़वा होता है। चबाने में मुलायम होता है और जलाने से सुगन्ध देता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—चरक के मतानुसार अगर शीत, प्रशमक और खाँसी को नष्ट करने वाला है।

सुश्रुत के मतानुसार यह कातिवर्द्धक, कफनाशक, कुष्ठ व खुजली को नष्ट करने वाला है। अगर की लकड़ी को जल में औटाकर उस पानी को पीने से ज्वर मे लगने वाली प्यास बुझ जाती है। इसके अतिरिक्त मृगी, उन्माद इत्यादि रोगों में भी यह लाभ पहुँचाता है।

राज-निघंटुकार के मतानुसार काला अगर कड़वा, उष्ण, लेप मे शीतल, पीने में पित्तनाशक और किसी-किसी के मत से त्रिदोष नाशक है। काष्ठागुरु चरपरी, गरम, लेप मे रूखी और कफनाशक है दाहागुरु चरपरी, गरम, केशवर्द्धक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाली, केशों के दोष को हरने वाली और निरतर सुगंधिदायक है। और मगलागुरु शीतल, गधवाही और योगवाही है।

निघटु-रत्नाकर के मतानुसार अगर सुगंधित, गरम, तिक्त, कटु, स्निग्ध, मंगलदायक, रुचिकारी, धूप के योग्य, पित्तजनक, तीक्ष्ण, तथा वात, कफ, कर्णरोग, और कोढ़ का नाश करने वाली है।

भावप्रकाश के मतानुसार अगर गरम, चरपरी, त्वचा को हितकारक, कड़वी, तीक्ष्ण, पित्तजनक हलकी तथा कर्णरोग, नेत्ररोग, शीत, वात और कफनाशक है।

इसकी लकड़ी तीक्ष्ण, सुगधित, तेलयुक्त, गरम, धातु परिवर्तक, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, कफ, वात, कर्णरोग और चर्मरोग, कुक्कुर खाँसी (Whooping Cough) और नेत्र की पीड़ा में लाभ कारक है।

यूनानी मत—इसकी प्रकृति दूसरी कक्षा मे गरम और तीसरी कक्षा में रुक्ष है। किसी-किसीके मतानुसार दूसरी कक्षा मे गरम और रुक्ष है। इसकी लकड़ी सुगंधित और स्वाद में खराब है। यह विरेचक पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, अग्निप्रवर्द्धक, मूत्र निस्सारक, व कामोद्दीपक है। जीर्ण रक्तातिसार मे भी यह चीज उपयोगी है। यकृत और आतों के रोगो को दूर कर मुंह की बदबू को हटाने वाली है। यह वायु-नलियों के प्रदाह, श्वास और वमन में उपयोगी है तथा मस्तिष्क को शक्ति देने वाली है।

अपने हलके सुगधदायक और अपने स्वाभाविक गरम स्वभाव से यह प्राणवायु, आमाशय, यकृत, हृदय, मस्तिष्क तथा इद्रियों को बल देता है। इसका चबाना मुँह को सुगधिदायक है और वायु को नष्ट करता है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण से मालूम हुआ है कि इसमें एक उड़नशील तेल रहता है जो ईथर मे विलय होता है, दूसरी राल रहती है जो अलकोहल मे घुलनशील और ईथर मे अनघुलनशील होता है।

उपयोग—

त्वचारोग और कातिवर्द्धन के लिये—अगर का लेप करना चाहिये।

कामोद्दीपन—अगर का चोया पान में लगाकर खाने से अत्यत कामोत्तेजना होती है। बाजीकरण औषधि में भी यह मिलाकर दिया जाता है।

मन्दाग्नि—मन्दाग्नि और हृदयरोग में इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से लाभ होता है। इसके प्रतिनिधि दाल चीनी, बालछड़ तथा देवदारु और इसके दर्प-नाशक गुलाब और कपूर हैं।

अङ्कोल

नाम—

सस्कृत—अकोलः, निकोचकः, रेवी, गुप्तस्नेह, हिन्दी—अंकोल, ढेरा, मारवाड़ी—अङ्कोल, गुजराती—अङ्कोल, बंगाली—आंकोड़, तेलंगी—उडुगू, द्राविड़ी—अङ्कोलम, लेटिन—Alangium Lamarckii, एलेंजियम लमारकि।

वर्णन—

अङ्कोल के झाड़ सारे भारतवर्ष के जगलों में पैदा होते हैं, जिनकी ऊँचाई २५ से ४० फीट तक की होती है। इसके पेड़ की गोलाई ढाई फीट तक होती है। इसकी शाखाओं का रंग विशेषकर सफेद होता है। इसके पत्ते ३ से ६ इंच तक लम्बे और एक से दो अगुल तक चौड़े कनेर के पत्तों की तरह होते हैं। वे पतझड़ में गिर जाते हैं और चैत्र, वैशाख मे नये आते हैं। पत्तों की गंध उग्र और स्वाद खट्टा और कडवा होता है। इसके फल कच्ची हालत में नीले, पकते हुए लाल और पक जाने पर जामुन के समान बैगनी रग के हो जाते हैं। इन फलों के अन्दर गुठली होती है जिनको मोड़ने से बीज निकलता है। ये बीज नख से कुरेचने पर रस भरे हुए मालूम होते हैं। देशी वैद्य लोग अकोल के काले और सफेद दो प्रकार के भेद बतलाते हैं। पर डाक्टर मुडिन शरीफ के मतानुसार काली जाति अकोल की नहीं, प्रत्युत उसीके समान जिसको लेटिन में Alangium Hexa-petalum. एलंजियम हेक्सापेटेलम कहते हैं, उसकी है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टुरत्नाकर के मतानुसार अङ्कोल कड़वा, कसेला, पारे को शुद्ध करने वाला, हलका, किंचित चरपरा, दस्तावर, चिकना, तीखा, रूखा, गरम है । इसका रस, वातिजनक, तथा विषविकार, कफ, वात, शूल,कृमि, सूजन, ग्रहपीड़ा, आमपित्त, रुधिर विकार, विसर्प, कुत्ते, मूसे और बिलाव का विष, कटिशूल, अतिसार और पिशाचपीड़ा को नष्ट करने वाला है । इसके बीज शीतल, धातुवर्द्धक, स्वादिष्ट, भारी, मदाग्नि करने वाले, रस और पाक में मधुर, बलकारक, सारक, स्निग्ध, वीर्य्यवर्द्धक तथा दाह, वात और पित्त, क्षय, रक्तविकार, कफ, पित्त, और विसर्प को दूर करने वाले हैं ।

यूनानी मत—कुछ यूनानी ग्रंथकार इसे पहले दर्जे में और कुछ दूसरे दर्जे में गरम और तर मानते हैं । उनके मतानुसार यह औषधि जिगर को ताकत पहुँचाने वाली,जहर को नाश करनेवाली, वायु के विकार, पेट के दर्द और कृमि को नष्ट करने वाली है । इसके ज्यादा उपयोग से आमाशय निर्बल होकर मदाग्नि पैदा होती है और सिर में झझनाहट के साथ दर्द शुरू हो जाना है । इसकी जड गरम और चरपरी होती है फल ठडा, पौष्टिक और शरीर को मोटा करने वाला होता है ।

डाक्टर मुडीन शरीफ (Modeen Sheriff) के मतानुसार यह औषधि पचास ग्रेन (२५ रत्ती) की मात्रा मे सुरक्षित वमन-कारक सिद्ध हो चुकी है । हलकी मात्रा मे यह ज्वर को नाश करने वाली है । इसकी छाल बहुत कड़वी चर्मरोगों मे बहुत लाभ पहुँचाने वाली तथा ज्वर निवारक है विशेष करके प्रदाहिक ज्वर को नष्ट करती है । धातु परिवर्तन के लिये इसकी मात्रा २ से ५ ग्रेन तक तथा ज्वर नाश, मूत्रवर्द्धन और उल्टी लाने के लिये इसकी मात्रा ६ से १० ग्रेन तक उपयोग में ली जाती है । उपदंश और कोढ़ की बीमारी में भी यह उपयोग में ली जाती है । भारतवर्ष के वैद्य इसको विप निवारक समझते हैं और जहरीले जंतुओं के काटने पर काम मे लेते हैं । चरक, भावप्रकाश के लेखक भावमिश्र और शार्ङ्गधर भी इसको सर्प-विषनाशक मानते हैं । मगर केस और मस्कर के मतानुसार इस औषधि में सर्प-विष को नष्ट करने की शक्ति नहीं है ।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इस औषधि में निम्न लिखित द्रव्य पाये जाते हैं ।

Alkaloid ·82

Petroleum Ether (·B P· 35· to 70 Perecnt) ·40

Absolute Ether ·66

Absolute Alcohol 4 0 1

Alcohol (70 Percent) 3 5

इसके पूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण से यह पता लगा है कि इसमें Alkaloid (अलकालाइड) अच्छी तादाद में पाया जाता है । पोटेसियम क्लोरिड (Potesium Chlorid) भी इसमें पाया जाता है । इसमे किसी प्रकार का टेनिन व ग्लूकोसाइड्स (Glucosides) नहीं पाया जाता, इसके

उपचार की उपयोगिता का विश्लेषण करने पर मालूम हुआ कि इसके रस को इन्जेक्शन द्वारा खून में पहुँचाने से यह खून की गति (Blood Pressure) को कम कर देता है, लेकिन वह असर बिल्कुल अस्थायी रहता है। कलकत्ते के स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसन में इसके सम्बन्ध में प्रयोग जारी है।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि अङ्कोल की जड़ की छाल का आमाशय की पाचन-नलियों पर तथा शरीर की त्वचा (चमड़ी) के ऊपर प्रत्यक्ष असर होता है। दो-तीन रत्ती की मात्रा में इसके चूर्ण को देने से आँतों की ताकत बढ़ती है, दस्त साफ होता है, पित्त का स्राव भली प्रकार होता है, कफ ढीला होता है तथा चमड़ी पर स्निग्धता पैदा होती है। अधिक मात्रा में इसको देने से उल्टी होती है, पेशाब की मात्रा बढ़ती है, फिर भी इस औषधि की गणना आयुर्वेद में वामक औषधियों में नहीं की गई है। इसका कारण यह है कि इसके द्वारा कराई हुई उल्टी से शरीर की रक्त-वाहिनी नलियों में बहुत थकावट और शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। आमाशय में दाह भी उत्पन्न हो जाता है और कभी-कभी तो सूजन भी पैदा हो जाती है। इसलिये वामक औषधियों की तरह इसको व्यवहार में नहीं लाना चाहिये। इस औषधि का दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण विष को नष्ट करने का है। यद्यपि कैस और मस्कर ने इस औषधि को सर्प-दंशन में निरुपयोगी माना है, पर प्राचीन और नवीन अनुभवों से मालूम होता है कि वैद्य लोग विषनाशक औषधियों में इसका प्रयोग करके सफलता पाते रहे हैं।

दिसम्बर सन् १६२२ के वैद्य-कल्पतरु में अङ्कोल के सम्बन्ध में एक नोट प्रकाशित हुआ था, उसका अनुवाद हम ज्यों-का-त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं।
करांची से सेठ एदलजी कावसजी वहेराना एक वनस्पति के सम्बन्ध में निम्नाङ्कित प्रश्न करते हैं।

"इस पत्र के साथ आपके पास एक लकड़ी का टुकड़ा भेजते हैं, जिसे मेरे मित्र एक डाक्टर को किसी पारसी गृहस्थ ने आधा सेर दिया है। उसका नाम या तो वे स्वयं जानते नहीं या बतलाना नहीं चाहते। इस टुकड़े को नींबू के रस में घिसकर गाढ़ा प्रवाही बनाकर आधी छोटी चमच सवेरे और शाम को भोजन के दो घण्टे पूर्व लेने से चाहे जैसे भयङ्कर दमे में लाभ पहुँचाता है, और पाँच सात दिन में आराम जैसा हो जाता है। यह लकड़ी किस वनस्पति की है और उसके क्या गुण-दोष हैं, इसको गुजराती के प्रसिद्ध ग्रन्थ "वनस्पति-शास्त्र" के लेखक रा० जयकृष्ण भाई से पहचान कराकर अगर आप अपने पत्र में प्रकाशित करेंगे तो बड़ा लाभ होगा।"

"इस वनस्पति का टुकड़ा जाच के लिए जयकृष्ण भाई के पास भेजा गया और उन्होंने उसकी जाँच कर लिखा की इस टुकड़े की जाँच करने पर यह अङ्कोल का मालूम पड़ा है।" इससे पता चलता है कि इस औषधि में दमे का नाश करने का चमत्कारिक गुण है।

प्रयोग—

दमा—अङ्कोल की जड़ को नींबू के रस मे गाढ़ा २ घोटकर आधा २ छोटा चमच सवेरे-शाम भोजन से दो घन्टे पूर्व लेने से भयंकर दमे की बीमारी में भी लाभ पहुँचाता है।

सर्पदंश पर—अंकोल की जड़ को दस तोला लेकर उसे कूटकर दो सेर पानी में उबालना चाहिये। जब डेढ़ पाव पानी शेष रह जाय, तब उतार कर छानकर प्रति पंन्द्रह मिनट में पाँच तोला काथ गाय के गर्म किये हुए पाच तोला घी के साथ मिलाकर पीने से वमन के द्वारा सर्प का जहर निकल जाता है। जहर उतरने के पश्चात भी आठ दिन तक नीम की अतर छाल का काढ़ा बनाकर उसमें अङ्कोल की जड़ की छाल का १॥ माशा चूर्ण मिलाकर सबेरे-शाम पीने से जहर का सूक्ष्म असर भी नष्ट हो जाता है।

पागल कुत्ते का विष—सुदर्शन चूर्ण डेढ़ माशा, अङ्कोल की जड़ की छाल का चूर्ण डेढ़ माशा दोनों को मिलाकर सबेरे-शाम डेढ़ माशे की खुराक में देने से पागल कुत्ते का विष नष्ट होता है। लगातार तीन महीने तक इस औषधि का सेवन करना चाहिये।

चूहे के विष पर—इसकी जड़ की छाल को घिस कर पीने से तथा उसीको घिस कर डङ्क पर लगाने से चूहे का विष और उससे पैदा हुई शरीर की दाह दूर होती है।

ज्वर पर—इसकी जड़ के चूर्ण की ढाई रत्ती से पाँच रत्ती तक की मात्रा देने से पसीना आकर मौसमी ज्वर उतर जाता है।

जलोदर पर—इसी चूर्ण की डेढ़ मारो से तीन माशे तक की मात्रा देने से दस्त आकर अजीर्ण रोग और जलोदर में फायदा होता है।

कुष्ट रोग पर—इसकी जड़ की छाल, जायफल, जावित्री और लौंग प्रत्येक पाँच-पाँच रत्ती लेकर चूर्ण करके देने से कोढ़ का बढ़ना बद हो जाता है। इसी प्रकार बढ़िया हड़ताल को अंकोल के तेल में घोट कर टिकड़ी बनाकर एक हॉडी मे पीपल के झाड़ की राख भर कर उस पर वह टिकड़ी रख कर ऊपर से फिर राख भर कर बारह प्रहर की आँच देने से जो भस्म होती है; वह भस्म कोढ़ के असाध्य दर्दों में भी लाभ पहुँचाती है।

गठिया—इसकी जड़ की छाल का तेल बनाकर मालिश करने से गठिया वात की तीव्र पीड़ा मिटती है।

नासूर पर—इसकी लकड़ी की राख नासूर के अन्दर भरने से नासूर नष्ट हो जाता है।

बवासीर पर—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण एक माशा लेकर काली मिर्च के साथ फकी देने से बवासीर मे बहुत लाभ होता है।

फोडे फुन्सी पर—वर्षाऋतु मे बगल के नीचे तथा गलेपर जो प्राणनाशक फोडे हो जाते हैं। उनमे आरभ से ही सवेरे के समय यदि इसका एक फल खिला दिया जाय और एक फल का रस निकाल कर फोड़ों पर मल दिया जाय तो तुरत लाभ पहुँचता है।

चेचक के दाग पर—गेहूँ के आटे में हलदी, अकोल का तेल और पानी मिलाकर चेहरे पर मालिश करने से चेचक के दाग मिटते है तथा चेहरा साफ होता है।

सुजाक—इसके फलों के गूदे और तिल के क्षार को शहद में मिलाकर देने से सुजाक में लाभ होता है।

घाव पर—धार वाले हथियार से अगर चोट लग जाय तो इसके तेल में रूई को भिगोकर उसकी घाव पर पट्टी चढ़ाने से खून आना बंद होता है और घाव जल्दी भर जाता है। जंगल की जड़ी बूटी नामक ग्रंथ के लेखक लिखते हैं कि दूसरे उपचारों से दो-तीन महीने में भी जो घाव आराम नहीं हुए वही इसके उपचार से केवल दस बारह दिन में आराम हुए हैं। ऐसे कई उदाहरण मौजूद हैं।

बनावटें—

प्रमेह नाशक चूर्ण—अंकोल के फूल की सुखाई हुई कलियाँ दो तोला, आँवले दो तोला, हलदी दो तोला, इन तीनों का चूर्ण करके तीन माशे की खुराक में शहद के साथ दोनों टाइम लेने से प्रमेह रोग में लाभ पहुँचता है और मूत्र नाली साफ होती है।

अतिसार नाशक वटी—अंकोल की जड़ की छाल, देवदारु, कालीपाड़ की जड़, कूड़े की छाल धावड़ी के फूल, लोध, अनार के वृक्ष की छाल और राल इन सब चीजों को समान भाग लेकर चूर्ण कर चावलों के धोवन के पानी में खरल करना चाहिये। उसके बाद झड़बेर के समान गोली बनाकर चावलों के धोवन के साथ खिलाने से अतिसार, और खून की दस्तें आराम होती हैं।

अंकोल का तेल निकालने की विधि—तंत्र-ग्रंथों के मतानुसार अंकोल के बीजों का चूर्ण करके उस चूर्ण को तिल के तेल में भिगोकर धूप में रखना चाहिये। जब वह तेल सूख जाय तब उस चूर्ण को दूसरी दफे तेल में तर करके फिर उसको धूप में सुखाना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक वह चूर्ण जितना तेल पिए उतना पिलाकर उस चूर्ण को एक काँसी की थाली पर लपेट कर उस थाली को एक दूसरी काँसी की थाली के ऊपर औंधी ढाँक कर कड़ाके की धूप में रखने से ऊपर की थाली में से तेल टपक कर नीचे की थाली में इकट्ठा होगा। इस तेल को एक शीशी में भर कर रख लेना चाहिये। इस तेल में अद्भुत रोपणशक्ति रहती है। नहीं भरने वाले गहरे घावों में इस तेल को लगाने से थोड़े समय में घाव भर जाते हैं। अगर सिर की चाँद के बाल उड़ गये हों तो इस तेल का मालिश करने से नये बाल ऊग जाते हैं।

दूसरी विधि—एक चीनी के प्याले के मुँह के ऊपर कपड़ा कस कर बाँध दें। इस कपड़े के ऊपर अंकोल के बीज की गिरी को कूट कर बिछा दें और उस प्याले पर अङ्कोल का टुकड़ा रखकर कोयले की आँच के ऊपर रखें। इसकी गर्मी से तेल टपक कर प्याले में इकट्ठा होगा जिसे लेकर एक शीशी में भर लें।

अंकोल के तेल का मलहम—उपरोक्त दूसरी विधि से निकाला हुआ अंकोल का तेल ५ तोला और मोम सवा तोला लेकर इन दोनों को हलकी आँच पर गरम करके जब दोनों चीजें एक रस हो जायँ तब उनमें फुलाया हुआ नीला थूथा चार रत्ती डाल कर उतार लेना चाहिये। ठंडा होने पर अच्छी तरह से मिलाकर चौड़े मुँह की शीशी में भर लेना चाहिये। इस मलहम से खुजली, भगंदर, नासूर, इत्यादि कठिन बीमारियाँ आराम होती हैं।

इस तेल की पाँच बूँदें शक्कर डाले हुए गरम दूध में मिलाकर पीने से शरीर बलवान होता है। तथा प्रमेह, निर्बलता, चक्कर आना, वगैरह दर्द दूर होते हैं।

शिवोक्त इन्द्रजाल नामक ग्रन्थ में इस तेल की प्रशसा करते हुए लिखा हुआ है—

"शव वक्त्रे बिन्दु मात्र, तत्तैल निक्षिपेद्यदि।

एक यामं सजीवः स्यान्नान्यथा शङ्करोदितम्" ॥

अर्थात् मुर्दे के मुख में भी अगर एक बूँद अंकोल का तेल डाल दिया जाय तो एक प्रहर के लिये वह संजीवन हो जाता है।

हो सकता है कि उपरोक्त बात में अतिशयोक्ति हो पर यह बात तो इस समय की नवीन शोधों से मालूम हुई है कि अङ्कोल के तेल में विद्युत्शक्ति काफी होती है। सभव है मरणासन्न अवस्था में जब कि प्राणी की ज्ञानशक्ति बिल्कुल लुप्त हो जाती है इस तेल को देने से हेमगर्भ की तरह यह भी क्षणिक चेतनता पैदा करने के लिये शक्ति रखता हो।

अंगूर

नाम—

संस्कृत—द्राक्षा, मधुरसा, स्वादुफला, फलोत्तमा, हिन्दी—अंगूर, गुजराती—द्राख, मराठी—द्राक्ष, तैलंगी—द्राक्षापेडी, गोस्तनीपेड्डु, लेटिन—Vinifera. अंग्रेजी—Grapes.

परिचय—

अंगूर की लता लकड़ियों की टट्टियों पर चलती है। इसके पत्ते गोलाकार पाँच दल वाले हाथ के पंजे की आकृति के होते हैं। इसके फूल सुगन्धित व हरे रंग के होते हैं, बालों के ऊपर फूलों की सींकें लगती हैं और फूल तथा फल गुच्छों मे लगते हैं। मचानों के ऊपर इसकी वेलें खूब छा जाती हैं। हिन्दुस्तान से अफगानिस्तान व फारस देश के अंगूर ज्यादा अच्छे होते हैं।

काश्मीर, औरंगाबाद, दौलताबाद, नासिक इत्यादि स्थानों में भी अंगूर पैदा होते हैं, मगर वे सीमाप्रान्त के अंगूरों के बराबर मीठे व गुणकारी नहीं होते।

अंगूर की जातियाँ कई प्रकार की होती हैं। उनमें पाँच जातियाँ विशेष कर प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो काले रंग की और तीन हरे रंग की होती हैं। काले रंग की एक जाति को हब्शी अंगूर कहते हैं। यह

जामुन के समान गहरे बैगनी रंग का व ज्यादे चमकदार होता है। खाने में बहुत मीठा होता है। दूसरी प्रकार का काला अंगूर साधारण बैगनी रंग का होता है तथा हब्शी अंगूर से कम मीठा व कम गुणकारी होता है। हरे अंगूरों में पिटारी का अंगूर सबसे अधिक बड़ा, लम्बा और अधिक मीठा होता है और हरे अंगूरों में सबसे अच्छा माना जाता है हरे रंग के अंगूर में बेदाना अंगूर बहुत प्रसिद्ध जाति का है जो आकार में सबसे छोटा मगर खाने में सबसे अधिक स्वादिष्ट और सबसे अधिक कोमल होता है। बीज न होने की वजह से यह बेदाना कहलाता है।

पक्के अंगूरों को उनकी लताओं पर ही सुखा कर दाख या मुनक्का बना लेते हैं। काले अंगूर का काला मुनक्का, पिटारी के अंगूर का लाल मुनक्का और बेदाना अंगूर का किसमिस बनता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार कच्ची दाख स्वल्पगुण वाली, भारी खट्टी और कफ पित्त हारी है। पक्की दाख कुछ दस्तावर, शीतल, नेत्रों को लाभकारी, भारी, पुष्टिकारक, सुस्वादु, स्वर को शुद्ध करने वाली, कसैली, मूत्र व मल को निकालने वाली, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, पौष्टिक तथा तृषा, ज्वर, श्वास, वात-रक्त कामला, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, मेह, दाह और शोथ को दूर करने वाली है। काली दाख अथवा गोस्तनी, वीर्यवर्द्धक भारी और कफपित्त को नाश करनेवाली है। छोटी दाख अर्थात् किसमिस, मधुर, शीतल, वीर्य वर्द्धक रुचिप्रद, खट्टी तथा श्वास, खाँसी, ज्वर, हृदय की पीड़ा, रक्त-पित्त, क्षत, क्षय, स्वरभेद, तृषा, वातपित्त और मुख के कड़वेपन को दूर करती है।

अंगूर के ताजे फल रुधिर को पतला करने वाले छाती के रोगों में लाभ पहुँचाने वाले बहुत जल्दी पचने वाले रक्तशोधक तथा खून बढ़ाने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी हकीम इसको दूसरे दर्जे में गर्म व तर मानते हैं। कच्चे अंगूर को पहले दर्जे में ठण्डा और दूसरे दर्जे में रूक्ष मानते हैं। यह स्निग्ध आमाशय व प्लीहा को नुकसान पहुँचाने वाला तथा वायुजनक है। इसके पत्ते बवासीर में उपयोगी हैं। इनके रस से सिर दर्द, उपदंश, बवासीर और तिल्ली का दर्द दूर होता है। ये मूत्र निस्सारक, वमन को दबाने वाले, मुँह से गिरने वाले खून को बन्द करने वाले और खुजली को लाभ पहुँचाने वाले हैं। इसकी लकड़ी की राख जोड़ों के दर्द में फायदेमन्द है। इसकी डाली मूत्राशय, अण्डकोष के सूजन व बवासीर के अन्दर लाभ पहुँचाने वाली है। इसका फल कफ को ढीला कर निकालने वाला, स्त्रियों के मासिकधर्म को नियमित करने वाला, खून बढ़ाने वाला, पौष्टिक, वायु नलियों के प्रदाह में लाभ पहुँचाने वाला और कब्जियत दूर करने वाला है। यह खट्टा, मीठा, पाचक, अग्निदीपक तथा फेफड़े, यकृत, मूत्राशय, व जीर्णज्वर की बीमारी में उत्तम है। इसके बीज ठण्डे, कामोद्दीपक और अँतड़ियों को सकोचन करने वाले हैं। इन बीजों की राख सूजन कम करने के लिये लगाई जाती है। इसकी लकड़ी की राख वस्ति की पथरी में गुणकारी और बवासीर की सूजन को दूर करने वाली होती है।

इसके सूखे फल, अर्थात् मुनक्का शान्तिदायक, रेचक, मृदु तथा प्यास, शरीर की गर्मी, कफ और क्षय की बीमारी में लाभकारी है। इसकी छोटी-छोटी शाखाओं का रस चर्मरोग की उत्तम दवा है। यूरोप के अन्दर आँख के दर्द में भी यह काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह शान्तिदायक, रेचक और अग्निदीपक है। यह कमजोरी को दूर करने वाला और क्षयरोग में लाभकारी है। बिच्छू के डंक में भी यह लाभ पहुँचाता है। इसके कच्चे फल में आक्सेलिक एसिड नामक एक पदार्थ पाया जाता है।

फलों के अन्दर अंगूर सबसे उत्तम व निर्दोष फल है। औषधि की अपेक्षा भी पथ्य के अन्दर यह बहुत अधिक काम में आता है। यह सभी प्रकृतियों के मनुष्यों के अनुकूल होता है। क्या निरोग, क्या रोगी, क्या निर्बल, क्या बलवान, क्या बालक, क्या वृद्ध—सबके लिये यह उपयोगी है। निरोग मनुष्यों के लिये यह उत्तम-पौष्टिक खाद्य है और रोगी के लिये अत्यन्त बलवर्द्धक पथ्य है। जिन बड़े-बड़े भयङ्कर व जटिल रोगों में किसी प्रकार का कोई खाने-पीने का पदार्थ नहीं दिया जाता, उनमें भी अङ्गूर या दाख दी जा सकती है।

हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से इस फल का उपयोग होता आ रहा है। चरक, सुश्रुत, वागभट्ट, चक्रदत्त, भावप्रकाश इत्यादि प्रामाणिक ग्रन्थों में इस फल की काफी प्रशंसा की गई है।

उपयोग—

चर्म रोग—वसन्तऋतु के अन्दर अंगूर की डालों को काटने से एक प्रकार का मद निकलता है। उसको त्वचा के रोगों पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

कुत्ते का जहर—इसकी लकड़ी की भस्म को सिरके में मिलाकर लगाने से कुत्ते के जहर में लाभ होता है।

पथरी—इसकी लकड़ी की भस्म ६ माशे गोखरू के रस में कुछ दिन पिलाने से पथरी में लाभ होता है। इसके पंचांग से निकाला हुआ क्षार भी दो से चार रत्ती तक की मात्रा में देने से पथरी को भेदन करता है।

अण्ड वृद्धि—इसके पत्ते पर घी चुपड़ करके आग पर खूब गरम करके पोतों पर बाँधने से सूजन कम होती है।

तृषा—पित्तज्वर और उसकी तृषा को मिटाने के लिये अंगूर का शर्बत पिलाना चाहिये।

उदावृत व मूत्रावरोध—द्राक्ष का काढ़ा पिलाने से रुका हुआ पेशाब खुल कर आता है व उदावृत में लाभ पहुँचता है।

मूत्र-कृच्छ्र—मुनक्का को बासी जल में चटनी की तरह पीसकर जल के साथ लेने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ पहुँचता है।

बनावटें—

अंगूर का शर्बत—ताजे पके अंगूर का स्वरस १ सेर, जल १॥ सेर, शुद्ध चीनी २ सेर। सबसे पहले जल में चीनी को डालकर आग पर चढ़ावें। जब उबाल आने लगे तब अंगूर का रस उसमें डाल दें। उसके पश्चात एक तार व डेढ़ तार की चासनी आने पर उसको उतार लें। यह शर्बत तृषा, शरीर की गर्मी, खाँसी, स्वरभंग, राजयक्ष्मा, रक्तविकार, पित्त सम्बन्धी मदाग्नि, मूत्रावरोध इत्यादि अनेक रोगों में लाभ पहुँचाता है।

द्राक्षासव—मुनक्का १०० पल, मिश्री ४०० पल, बेर की जड़ ५० पल, धाय के फूल २५ पल, सुपारी १० पल, लौंग १० पल, जावित्री १० पल, जायफल १० पल, तज, इलायची, तेज पान ४० पल, सोंठ, मिरच, पीपल ३० पल, नागकेशर १० पल, मस्तगी १० पल, केसर १० पल, अकरकरा १० पल, कूट १० पल इन सब औषधियों को अधकचरी करके कुल वजन से चौगुने पानी में मिट्टी के बर्तन के अन्दर डालकर जमीन में गाड़ दें। १४ दिन बाद वहाँ से निकाल कर इन सबका भभके से अर्क खींच ले, उस अर्क में केशर, कस्तूरी मिलाकर बोतलों में भर कर रख देवे। यह आसव बलानुसार एक से चार पल तक दिन में तीन बार पीने से बल, कान्ति, कामशक्ति और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। (योग चिन्तामणि)

द्राक्षारिष्ट—मुनक्का ५० पल लेकर उसको दो द्रोण जल में औटा ले, जब चौथाई जल रह जाय तब उसमें दो सौ पल गुड़ तथा तज, तेजपात, इलायची, नागकेशर, प्रियगु, मिरच, पीपर, वायविडंग, इन सबका एक-एक पल चूर्ण डालकर पकावे, पकाते समय बार-बार हिलाते रहना चाहिये। पकने पर उतार कर छानकर बोतलों में भर ले। यह द्राक्षारिष्ट क्षय, खाँसी, उरःक्षत, मन्दाग्नि में अत्यन्त लाभदायक और बल-वर्द्धक है।
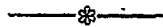
अंगूर-शेफा

नाम—

हिन्दी—अङ्गूर शेफा, सुक्मना, साग अङ्गूर, पंजाबी—सूचि, अरबी—उस्तरंग, इनबातथौलीह, बङ्गाली—येब्रुज, बम्बई—गिरबूटी, लैटिन-Atropa Belladonna

वर्णन—

यह एक सीधा, नरम पत्ती वाला वृक्ष है, जो खास करके पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से शिमला तक ६००० से लेकर ११००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसके फूल हल्के बैंगनी रंग के होते हैं, फूलों की किनारें पीली और हरी होती हैं। इसके फल गोल और जहरीले होते हैं।

इसकी जड़ और पत्ते नींद लाने वाले, मूत्र निस्सारक, शान्तिदायक और आँख की पुतली को बढ़ाने वाले होते हैं। ज्वर के साथ शूल होने की बीमारी मे यह एक उत्तम औषधि है। खाँसी, कुक्कुर खाँसी और रात मे पसीना आने की बिमारी में भी यह लाभदायक है। इसका लेप करने से ग्रन्थि (गठान) मे लाभ पहुँचाता है और वह बिखर जाती है। इसका फल बहुत जहरीला होता है और उदर सम्बन्धी रोगों में वह दूध, पानी और शहद के साथ वमन कराने के लिए दिया जाता है।
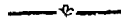
अङ्गन

नाम—

हिन्दी—अङ्गन, नैपाली—कङ्गु, तुहसी, अफगानिस्तान—वनरिश, सीमान्त—अङ्गन, अङ्गु, दखुरी, पंजाब—अङ्गु, हैमर, हम, शुन, सूम, लैटिन—Freximus Feloribunda.

वर्णन—

यह एक बड़ा वृक्ष होता है। इसके पत्ते कँगूरेदार और तीखे रहते हैं। इसके फूल छोटे और सफेद होते हैं, इसके फल में एक बीज रहता है और उसके आस-पास गिरी रहती है यह हिमालय में काश्मीर से भूटान तक और खासिया पहाड़ियों पर होता है।

इसके वृक्ष के तने में से एक प्रकार का मधुर और ठोस रस निकाला जाता है। इस रस को इसके मधुर और हलके विरेचक गुणों के कारण उपयोग में लिया जाता है।

अञ्जनी

नाम—

संस्कृत—अञ्जनवृक्ष, गुजराती—अञ्जन, मराठी—अञ्जनी, बम्बई—अञ्जन, करपा, कुरपा, कनाड़ी—अलामारु, अल्ली, अरचेटि, तैलगू—अल्लि, मिदाल्लि, पेदाल्ली, तामील—अल्लि, अञ्जनी, कासा, अंग्रेजी—Iron Wood Tree (आयर्न उड ट्री) लैटिन-(Memecylon Edule)

पहिचान—

इसके पत्ते गोलाकार होते हैं। उनके आगे कुछ नोक निकली हुई होती है। इसके पत्तों का रङ्ग ऊपर से गहरा हरा और नीचे से फीका होता है। इसके फूल छत्री की तरह होते हैं। इसका फल गोल

होता है। फूल का रंग बैंगनी होता है। इसमें एक और कभी-कभी दो बीज निकलते हैं। यह भारत के पश्चिमी समुद्र के किनारों पर तथा उड़ीसा, आसाम, सिलहट, सिलोन और मलायाद्वीप समूह में पैदा होता है। भारतवर्ष और लङ्का में इसके पत्ते रङ्ग के लिए काम में आते हैं। मद्रास में चटाई बनाने वाले हड़, पतङ्ग और मजीठ के साथ इसे विशेष रूप से रगने के उपयोग में लेते हैं। लाल रङ्ग पैदा करने में वे इसे फिटकिरी से उत्तम मानते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत के अनुसार इसके पत्ते ठण्डे और सङ्कोचक हैं। इनका ठण्डा क्वाथ लोशन के रूप में नेत्रों की बीमारी में काम में लिया जाता है। श्वेत प्रदर और सुजाक में भीतरी उपचार के लिए ये काम में लिए जाते हैं। इनको खरल में कूट कर पानी में उबाल कर इनका सत निकाला जाता है। यह सत्व दक्षिण में सुजाक के लिए मुफीद माना जाता है।

कोंकण में इसकी छाल, नारियल का गूदा, अजवायन और कालीमिर्च, बराबर २ मात्रा में लेकर पीसते हैं, फिर कपडे में पोटली बनाकर उससे चोट आई हुई जगह पर सेंक करते हैं।

इसकी जड़ का काढ़ा अत्यधिक रक्तस्राव पर मुफीद माना जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते नेत्रशूल रोग में लाभकारी है व इसकी जड़ सुजाक तथा अत्यधिक रक्तस्राव में लाभदायक है।

सन्याल और घोष के मतानुसार इसके पत्तों का शीत कषाय नेत्रशूल रोग में आँजने से लाभ होता है। इसके पत्ते भारत और सिलोन में रगने के काम में लिये जाते हैं। सुजाक रोग के अन्दर इसके पत्ते भीतरी उपचार के काम में आते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

प्रोफेसर, ड्रेजन डार्फ के मतानुसार इस औषधि में पीत ग्लुकोसाइड, राल, गोंद, क्लोरोफ़ाइल और रङ्गीन पदार्थ कहते हैं।

उपयोग—

श्वेत प्रदर—इसके पत्तों को पीसकर पानी में छान कर पिलाने से श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

नेत्ररोग—इस की फ़ाट से आखें धोने से नेत्ररोग में लाभ पहुँचता है।

सूजन—इसकी छाल, नारियल की गिरी, अजवायन, जङ्गली हलदी और काली मिरच बराबर ले पीस, गर्म कर लेप करने से तथा इनको औटाकर बफारा देने से सूजन और पीडा मिटती है।

सुजाक—इसके पत्तों का फाट पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

अग्निघास

नाम—

संस्कृत—भूतृण, रोहिष, हिन्दी—गधतृण, अग्नि घास, अगिया घास, बंगाली—गध-बेन, गुजराती—लिलीचा, तेलगू—छिपगाढि, फ़ारसी—छेहकाश्मीरी, लेटिन—Andropogan Citratus.

वर्णन—

यह एक प्रकार का बहु वर्ष जीवी वृक्ष है जिसकी शाखाएँ कई पत्ते वाली होती हैं। जब पत्ते झड़ जाते हैं, तब शाखाएँ बिना पत्ते की रहती हैं। इसके पत्ते नुकीले, हरे और खुरदरे होते हैं। यह वृक्ष भारतवर्ष में सब दूर पैदा होता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि तिक्त, कटु, गरम, विरेचक, भूख बढ़ाने वाली बाधा निवारक, कृमिनाशक, और कामेच्छा को नष्ट करने वाली है। यह बच्चों की खाँसी में लाभ-दायक है। कोढ़ और अपस्मार की व्याधि मे लाभ पहुँचाती है। वात, कुष्ठ और आँतों सम्बधी बीमारियों मे भी यह लाभदायक है।

हैजे की बीमारी में भी यह लाभदायक सिद्ध हो चुकी है। यह सिर्फ हैजे की वमन को ही नहीं रोकती, प्रत्युत उसके सब उपद्रवों में फायदा पहुँचाती है। गठिया की बीमारी में इसका लेप बहुत फायदेमद है। स्नायुशूल, मोच और अन्य कष्टप्रद तकलीफों मे भी यह लाभदायक है। इसका बफारा ज्वर को दूर करने के लिये उत्तम है। (इडियन मेडिकल प्लान्ट्स)

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। यह त्वचा (चमडी) को हानि पहुँचाने वाली और खुजली उत्पन्न करने वाली है। इसके स्वरस में ४० दिनों तक गंधक को भिगोकर धूप में सुखाकर उस गंधक को २ रत्ती की मात्रा में पान में रख कर खाने से बहुत भूख लगती है। इसके स्वरस में फूँकी हुई वग की भस्म श्वास और खाँसी में बहुत लाभ पहुँचाती है।

अग्नि-यून

नाम—

हिन्दी—अग्नियून, बकार, बकर्च, बसोता, जैटेला, कुमायू—अग्निऊ, नैपाल—गिनेरी, पंजाब—गनहिला, गियान, बंकार, तैलगू—नेली, लैटिन—Premna latifolia (प्रेम्ना लैटिफोलिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा पौधा है। इसके पत्ते गोलाकार होते हैं। यह बंगाल, खासिया पर्वत, भूटान, कर्नाटक, त्रिनावेली इत्यादि स्थानों पर पाया जाता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इण्डियन मेडिकल प्लाण्ट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसके पत्ते मूत्र निस्सारक हैं। जलोदर रोग में ये भीतरी और बाहरी दोनों उपचारों में उपयोगी हैं। इसके पत्ते १० ड्राम और धनिया २ ड्राम, दस औंस उबलते हुए पानी में डालकर १० मिनिट तक रखे जायँ, बाद में इसे छानकर तीव्र जलोदर रोग में देने से लाभ पहुँचता है।

इसके बक्कल का दूध अर्बुद और सूजन पर लगाने से लाभ होता है। पशुओं के उदरशूल में भी इसका रस काम में लिया जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते मूत्र निस्सारक हैं और ये जलोदर रोग में बाह्य उपचार की तरह प्रयोग में आते हैं।

अजमोद

नाम

संस्कृत—अजमोदा, वस्तमोदा, मर्कटी, कारवी, हिन्दी—अजमोद, बंगाली—रान्धुनी, फारसी-करफ्स, अरबी—बज्रुलकरफ्स, लैटिन—Apium Graveolens (एपियम ग्रेवियोलेन्स) Carum Roxburghianum (केरम राक्स बर्गिनम्)

वर्णन—

अजमोद के पौधे एक से तीन फुट तक लम्बे होते हैं। इसके पत्ते अनेक भागों में विभक्त रहते हैं। प्रत्येक भाग अनीदार,कंगूरेदार और कटे हुए किनारे वाले होते हैं। यह जाति अजवायन का ही एक भेद है। इसके झाड भी अजवायन के झाड़ की ही तरह होते हैं। इसके बीज शीतकाल के प्रारम्भ में बोये जाते हैं। इसकी शाखाओं पर बडे-बडे छत्ते लगते हैं। उन छत्तों में सफेद रंग के छोटे छोटे फूल निकलते हैं। फूल खिलने पर उनमें दाने पैदा हो जाते हैं। उन्हींको अजमोद कहते हैं।

कई वैद्य और अत्तार जङ्गली अजवायन को ही अजमोद मान कर भ्रम में पड़ जाते हैं, एक दो निघण्टुकारों ने भी इसी भ्रम में पड़कर अजमोद का लैटिन नाम (Sesili Indicum) लिखमारा है, मगर यह नाम असल में जङ्गली अजवायन का है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अजमोद कड़वी,चरपरी,अग्निदीपक, गरम, उष्णवीर्य्य, दाहकारी,हृदय को हितकारी, वीर्यवर्द्धक,हलकी,कफ-वात के रोगों को दूर करने वाली, आँतों को सिकोड़ने

वाली तथा वायु नलियों के प्रदाह, वमन, कुक्कुर खाँसी, जलोदर, गुदाशय की पीड़ा, कृमि, वमन, हिचकी, इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सा के मतानुसार यह पहले दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। *यह गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली स्त्रियों और मृगी के रोगियों के लिये बहुत हानिकारक है।*

इसके बीज गरम और तेज होते हैं। यह रेचक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, क्षुधा को तेज करने वाली, कृमिनाशक और कामोद्दीपक है। यह एक प्रकार की गर्भ स्रावक औषधि है, इसलिए गर्भवती स्त्रियों के लिए हानिकर है। यह आमाशय में गरमी पैदा करती है और उसमें एक प्रकार की भाफ पैदा करती है। यह भाफ जब मस्तक मे पहुँचता है तब घनीभूत होकर वायु बन जाता है। इसी से मृगी रोग को उत्तेजना मिलती है, इसलिए मृगी रोग वालों के लिए यह हानिकारक कहा गया है। यकृत, प्लीहा और हृदय को यह बहुत लाभ पहुँचाती है। रजः रोध, (नष्टार्तव) मूत्र सम्बन्धी बीमारियाँ, ज्वर, गठिया और सीने के दर्द में भी यह लाभकारी है। पथरी के रोग में भी यह बड़ा लाभ पहुँचाती है। यह पथरी के टुकड़े २ कर मूत्रावरोध के कष्ट को मिटा देती है।

इसकी जड़, इसके बीज की अपेक्षा बलवान, सब प्रकार के कफ सम्बन्धी रोगों तथा जलोदर में लाभ पहुँचाने वाली तथा फेफड़े के लिए हानिकर है। इसके सिवाय यह (जड़) रक्तादिक विकारों को दूर करने वाली, मूत्र निस्सारक और सर्वाङ्गोण सूजन में लाभ पहुँचाने वाली है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, मूत्र निस्सारक और ऋतुस्राव नियामक है। इसके तैल और अर्क में ग्लुकोसाइड नामक पदार्थ पाया जाता है।

डाक्टर बीडो के मतानुसार यह औषधी बदहज़मी और दस्त की बीमारी में अत्यन्त उपयोगी है। खराब स्वाद वाली दवा को अजमोद के पानी के साथ देने से उलटी आने की शङ्का नहीं रहती। यह अत्यधिक लार पैदा करने वाली है। इससे पाचक रस अधिक उत्पन्न होते हैं। उपरोक्त विवेचन से पता चलता है कि यह औषधि पाचक-नालियों और शरीर की रस क्रिया पर अपना सीधा असर दिखाती है और इसीलिए पेट से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों को दूर करने वाली औषधियों में यह अपना प्रधान स्थान रखती है।

उपयोग—

पेट का दर्द—काले नमक के साथ अजमोद की फंकी देने से पेट का दर्द दूर होता है तथा इसके चूर्ण की गुड़ के साथ गोली बनाकर देने से पेट का आफरा मिटता है।

पसली का दर्द—पसली के दर्द और हरएक अङ्ग में बादी की पीड़ा मिटाने के लिए अजमोद को गर्म कर बिस्तरे पर बिछा देना चाहिए और उसपर रोगी को सुलाकर हलका कपड़ा ओढ़ा देना चाहिए।

सूखी खाँसी—अजमोद को पान में रखकर उसका रस चूसने से सूखी खाँसी में लाभ पहुँचता है।

हिचकी—जिनको भोजन करने के पश्चात् हिचकी चलती हो, उनको चाहिये कि भोजन के पश्चात् अजमोद के दाने मुँह में डाल कर उनका रस उतारे।

मूत्राशय की बादी—अजमोद और नमक को एक पोटली में बाँध कर गरम कर नलों पर सेक करने से मूत्राशय की बादी मिटती है।

दन्त पीड़ा—अजमोद को जलाकर उसकी धूनी देने से दाँतों की पीड़ा मिटती है।

वात पीड़ा—अजमोद को तेल में औटाकर उसकी मालिश करने से बादी के दर्द मिटते हैं।

वमन—अजमोद और लौंग के सिरे (टोपी) को पीसकर शहद के साथ चटाने से वमन बन्द होती है।

कृमिरोग—बच्चों के गुदा में पड़ने वाले सफेद कृमि (चुन्ने) अजमोद की धूनी देने से मर जाते हैं।

पथरी—तीन माशे अजमोद का चूर्ण एक तोले मूली के पत्तों के रस के साथ पिलाते रहने से पथरी गल जाती है।

बनावटें—

अतिसार नाशक चूर्ण—अजमोद, मोचरस, धाय के फूल और अदरख इन चारों वस्तुओं को कूट कर इनका चूर्ण बनाकर बोतल में भर लेना चाहिये। इस चूर्ण को ३ माशे से ६ माशे तक गाय के दही के साथ देने से प्रवाही अतिसार बन्द होता है।

वात नाशक चूर्ण—अजमोद, पींपर, रासना, गिलोय, सूंठ, असगन्ध, शतावरी, और सौंफ इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण को गाय के घी के साथ देने से सब स्थानों के वात विकार नष्ट होते हैं।

अजमोदादि वटी—अजमोद, पींपर, वायविडंग, बड़ी सौंफ, नागर मोथा, काली मिरच, सेंधा नमक एक-एक तोला, हरड़ ५ तोला, सूंठ १६ तोला वृद्धदारु (विधायरा) १० तोला भारंगी की जड़ ६ तोला इन सब औषधियों को लेकर चूर्ण करके सब वजन से दुगना गुड़ लेकर झड़बेर के समान गोली बनाले। इन गोलियों को गरम पानी के साथ लेने से सब प्रकार की वात व्याधि दूर होती है।

दूसरी अजमोदादि वटी—अजमोद १ सेर, हड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठ मुल्तानी, विदारीकन्द, धनियाँ, मोथा, मोचरस, गजपीपल, लौंग, जायफल, पीपर, चित्रक, अनारदाना, भारंगी, कमलगट्टा, कालामिरच, सफेद जीरा, स्याह जीरा, कुटकी, अजवायन, पीपलामूल, रेणुका, वायविडंग, वच, कायफल, पित्तपापड़ा, विधारा, दन्ती की जड़, कुरदानासार इन सब वस्तुओं को एक-एक तोला लेकर एक सेर पुराने गुड़ के साथ मिलाकर एक-एक तोले के लड्डू बना लें। इनको गर्म पानी के साथ लेने से सब प्रकार के उदर-विकार दूर होते हैं।

अजमोदादि चूर्ण—अजमोद, बायविडंग, सेंधानिमक, देवदारु, चित्रक, पिपलामूल, सौंफ, पिपर, मिर्च, एक-एक तोला, हरड़ ५ तोला, विधारा १० तोला, सोंठ १० तोला, इन सबको कूट पीस चूर्ण कर ६ माशे की खुराक में एक तोला पुराने गुड़ के साथ खाकर ऊपर से गरम जल पीने से सूजन, आमवात, सन्धियों का दर्द, गठिया, कमर का दर्द, पीठ व जाँघ का दर्द तथा सब प्रकार के वायुरोग दूर होते हैं।

अजमोदादि मोदक—अजमोद १२ तोला, चित्रक ११ तोला, हरड़ १० तोला, कूट ६ तोला, पीपर ८ तोला, कालीमिर्च ७ तोला, सोंठ ६ तोला, जीरा ५ तोला, सेंधा नमक ४ तोला, बायविडंग ३ तोला, बच २ तोला, हींग १ तोला, पुराना गुड़ २ सेर। इन सब औषधियों को कूट,छान, मिलाकर आधी २ छटाँक के लड्डू बना लें, इन लड्डुओं में से सवेरे-शाम एक-एक लड्डू गरम पानी के साथ लेने से सब प्रकार के वातरोग, १८ प्रकार के गोले के रोग, २० प्रकार के प्रमेह तथा हृदयरोग, शूल कुष्ट, गलग्रह, श्वास, संग्रहणी, पाण्डुरोग, अग्नि- मान्द्य, अरुचि इत्यादि नष्ट होते हैं।

अजवायन

नाम—

संस्कृत—यवानी, दीप्यक, हिन्दी—अजवायन, मराठी—ओंवा, गुजराती—अजमो, बंगला—यमानी, लैटिन—Carum Copticum. (केरम कोप्टिकम)

वर्णन—

अजवायन की खेती सारे भारतवर्ष में सब दूर की जाती है। इस वस्तु से सब लोग भली प्रकार परिचित हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार, अजवायन पाचक, रुचिकारक, तीक्ष्ण, गरम, चरपरी, हलकी, दीपन, कड़वी, पित्तवर्द्धक तथा शूल, वात, कफ, आध्मान, बवासीर, कृमि, वमन, गुल्म और प्लीहा का नाश करने वाली है।

पाचक औषधियों की दृष्टि से इस औषधि ने इतनी प्रसिद्धि पा रक्खी है कि संस्कृत के अन्दर तो इसके लिये यहाँ तक कहा गया है—

"एका यवानी शतमन्न पाचिका"

अर्थात् अकेली अजवायन ही सैकड़ों प्रकार के अन्न को पचाने वाली है। यह कहावत बहुत प्राचीन-

काल से प्रचलित है। कई अंशों में यह कहावत सच्ची भी है। क्योंकि इस एकही वस्तु में चिरायते का कटु पौष्टिक हींग का वायु-नाशक और काली मिर्च का अग्नि दीपन-यह सब गुण समाये हुए हैं। इन्हीं गुणों की वजह से यह औषधि वायु, कफ, पेट का दर्द, वायगोला, अफरा तथा कृमिरोग को नष्ट करने के लिये बहुत काम में लायी जाती है। हैजे की बीमारी में भी देशी तथा एलोपैथिक चिकित्सकों की तरफ से इस औषधि को प्रधान स्थान दिया गया है। विशेष कर हैजे की प्राथमिक स्थिति में इससे बहुत लाभ होता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह तीसरे दर्जे में गरम और रुक्ष, तथा गरम प्रकृति वालों को हानिकर है। मखजनूल अदविया के लेखक हकीम मीर महम्मद हुसेन के मतानुसार अजवायन शरीर की वेदना को मिटाने वाला, कामोद्दीपक, कोठे को नरम करने वाला और वायु को नष्ट करने वाला है। इसका शर्बत लकवा और कंपनवायु में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके काढ़े से आँख धोने से आँखें साफ होती हैं तथा कानों में डालने से बहरापन मिटता है। छाती के दर्द में भी यह लाभकारी है। यकृत तथा प्लीहा की कठोरता को मिटाकर यह हिचकी, वमन, मिचलाहट, दुर्गंधि, डकार, बदहजमी, मूत्र का रुकना, पथरी इत्यादि बीमारियों में भी लाभ पहुँचाता है।

नींबू के रस में यदि इसे सात बार डुबोकर सुखा लिया जाय तो नपुसकता के अन्दर लाभ पहुँचता है। इसका शर्बत चौथे दिन आने वाले बुखार में लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके अन्दर एक प्रकार का सुगन्धियुक्त उड़नशील द्रव्य रहता है, जिसको अजवायन का फूल, अजवायन का सत तथा अंग्रेजी में थायमल (Thymol) कहते हैं। इस द्रव्य की खोज सबके पहिले मिस्टर स्टॉक ने की। उसके पश्चात मि० स्टेन हाउस और मि० हेन्सने परीक्षा करके जंगली पुदीनेके सत (Thymus-Vulgaris) के साथ इसकी समानता दिखलाई है। अजवायन के सत निकालने के अब तो बड़े-बड़े कारखाने खुल गये हैं। जहाँ पर बहुत बड़े परिमाण में यह वस्तु तैयार होती है। एक कारखाना इन्दौर के पास राऊ नामक गाव में भी इसका बना हुआ है।

अजवायन का तेल—अजवायन को पानी में भिगोकर भपके के द्वारा अर्क खींचा जाता है। इस अर्क के ऊपर अजवायन का तेल तिरकर आ जाता है। अजवायन के अर्क को अंग्रेजी में ओमम वाटर (Omum Water) कहते हैं।

उपयोग—

जुकाम व प्रतिश्याय—अजवायन को गरम करके मलमल के कपडे में पोटली बाँधकर, सुँघाने से छींकें आकर जुकाम व प्रतिश्याय का वेग कम होता है। अजवायन के कपड़छन चूर्ण को सूँघने से भी सिरदर्द नजला और मस्तक के कृमि नष्ट हो जाते हैं।

अफारा—६ माशे अजवायन में १॥ माशा कालानिमक मिलाकर फंकी देकर गरम पानी पिलाने से अफारा मिटता है। इसी चूर्ण की दोनों टाइम तीन २ माशे की फकी देने से वायुगोला का नाश होता है और पेट का फूलना बन्द हो जाता है।

मंदाग्नि—अजवायन, कालीमिर्च और सेंधानिमक तीनों चीजों को पीसकर गरम जल के साथ प्रातःकाल फंकी लेने से उदरशूल, पेट का दर्द और मन्दाग्नि मिटती है।

आँतों की वेदना—अजवायन, सेंधानिमक, सचरनिमक, यवक्षार और हड़ इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण करके ५ से १० रत्ती तक की मात्रा में मद्य के साथ देने से अँतड़ियों की वेदना और उदरशूल दूर होता है।

सूखी खाँसी—अजवायन को पान में रखकर चबा-चबा कर पीक उतारने से सूखी खाँसी में लाभ पहुँचता है।

जोड़ों का दर्द—इसके तेल का मर्दन करने से जोड़ों के दर्द में लाभ होता है।

बच्चों की उल्टी—बच्चों की उल्टी और दस्तें मिटाने के लिये इसके चूर्ण को माँ के दूध के साथ देने से लाभ होता है।

चर्म रोग—अजवायन को पानी में गाढ़ा पीसकर दिन में दो बार लेप करने से दाद, खाज, कृमि पड़े हुए घाव तथा अग्नि में जले हुए स्थान में लाभ होता है।

रजो दोष—अजवायन के चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में दिन में दो बार गरम दूध में देने से स्त्रियों का रुका हुआ रज खुलकर आने लगता है।

कृमि रोग—इसके चूर्ण की चार माशे की मात्रा छाछ के साथ देने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

नेत्र रोग—अजवायन को जला कर उसका कपड़छन चूर्ण करके जस्त की सलाई से सुर्मे की तरह सात दिन तक आँखों में आँजने से आँखों की फूली कट जाती है। इसी चूर्ण को दाँतों पर मलने से दाँत साफ होते हैं तथा दाँत और मसूड़ों के रोग भी मिट जाते हैं।

बनावटें—

अग्निवर्द्धक चूर्ण—बढ़िया अजवायन ६ तोला, यवक्षार ४ तोला, सेंधानिमक ४ तोला, कालीमिर्च ४ तोला, कालानमक ४ तोला, सचरनमक ४ तोला, पेपीन (अरंड ककड़ी का सत) १ तोला, इन सब औषधियों को कूट, पीसकर एक चीनी की बरनी में डालकर उसमें १ सेर नीबू का रस मिलाकर १ महीने तक दिन में सूर्य्य की धूप में और रात्रि में मकान के अन्दर पड़ा रहने देना चाहिये। इस चूर्ण को ३ माशे से छः माशे तक की खुराक में जल के साथ लेने से पाचन शक्ति तीव्र होती है। कब्जियत मिटकर दस्त साफ होता है तथा अजीर्ण, अम्लपित्त, संग्रहणी इत्यादि रोगों में भी फायदा पहुँचता है।

जीवन-रक्षक-सुधा—पिपरमेंट का सत (पोदीने के फूल) १ तोला, अजवायन का सत १ तोला, देशी कपूर २ तोला, इन तीनों चीजों को लेकर मजबूत बूच वाली शीशी में डालकर बूच लगा देने से थोड़ी देर में सब दवाइयें गलकर पानी हो जाती हैं। मनुष्य शरीर के अन्दर जितनी व्याधियाँ होती हैं उन सब में यह औषधि अस्थायी रूप से अपना प्रभाव अवश्य दिखाती है। सिर का दर्द, डाढ़ का दर्द, पसलियों का दर्द, छाती और कमर का दर्द, सन्धिवात इत्यादि रोगों में इस दवा की मालिश करने से तुरन्त फायदा मालूम होता है। हैजे के अन्दर तो यह दवा अपना बहुत ही प्रभावशाली असर दिखाती है।

हैजे की बीमारी के प्रारम्भ में इस औषधि की पाच २ बूदे १-१ बताशे के ऊपर डालकर देने से सैकड़ों हैजे के बीमार बच गये हैं। इसी प्रकार अतिसार (दस्ते लगना) मरोड़ी चलना, पेट दर्द, श्वास, गोला, उल्टी वगैरह बीमारियों में भी इस औषधि को शक्कर के साथ देने से बहुत लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार बिच्छू, ततैया, भँवरी, मधुमक्खी इत्यादि जहरी जानवरों के डंक पर भी इस दवा का मालिश करने से बहुत फायदा होता है।

नामर्दी के मरीज जिनकी जननेन्द्रिय खराब आदतों से शिथिल और निर्बल हो गई है। वे अगर इस औषधि की दो तीन बूदे जननेन्द्रिय पर मसल कर ऊपर से नागरवेल का पत्ता बाँध दें तो नामर्दी दूर होकर जननेन्द्रिय बलवान व सतेज हो जाती है। इसी प्रकार दिन में तीनबार इसकी पाँच २ बूंदे शहद के साथ लेने से स्त्रियों के ऋतु सम्बन्धी सब रोग नष्ट हो जाते हैं। गत आठ-दस वर्षों से यह दवा प्रायः सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो चुकी है। इसके विषय में विशेष विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है।

——:०*०:——

अजवायन खुरासानी

नाम—

संस्कृत—पारसीक यमानी, तुरुष्का, मदकारिणी। हिन्दी—खुरासानी अजवायन। गुजराती—खुरासानी अजमों। मराठी—खुरासानी ओवा। बंगाली—खोरासानी यमानी। तैलंगी—खुरासानी वामसु। द्राविड़ी—कुरोशानी वामम। अरबी—तेरालबज। फारसी—तुख्मेबंग। लैटिन—Hyoscyamus Niger.

वर्णन—

खुरासानी अजवायन के वृक्ष हिमालय में काश्मीर से गढवाल तक ८००० से ११००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होते हैं। यह एक क्षुप जाति का वृक्ष होता है। इसका मकाड सीधा और पुष्ट रहता

है। इसमें एक प्रकार की तेज सुगन्ध आती है, जो कुछ-कुछ अप्रियसी होती है। इसके पत्ते कटे हुए और कगूरेदार होते हैं। इसके फूल पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। इनमें कहीं-कहीं बैंगनी रंग की धारियाँ होती हैं।

भारतीय चिकित्सकों ने इस औषधि को अजवायन के समान समझ कर इसका नाम खुरासानी अजवायन या पारसीकयमानी रख दिया, मगर वास्तव में यह औषधि अजवायन के वर्ग की नहीं है, बल्कि उससे बिल्कुल भिन्न वादञ्जान या सोलेनेसीई (Solanaceoe) वर्ग की औषधि है, जिसमे वेलेडोना, धतुरा आदि विषैली दवाएँ सम्मिलित हैं।

यूनानी चिकित्सक मीरमहम्मद हुसेन ने बंज के नाम से इस औषधि का वर्णन किया है। वे इसको सफेद, काली और लाल के भेद से तीन प्रकार की मानते हैं। इनमें सफेद जाति ही सबसे उत्तम मानी जाती है। इसके अतिरिक्त इसका एक भेद और होता है, जिसे कोही-भग कहते हैं। यह बहुत जहरीला होता है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मतानुसार खुरासानी अजवायन अर्थात् पारसीक यमानी के बीज तीखे, कड़वे, गरम, अग्नि को दीप्त करने वाले, आँतों को सिकोडने वाले, मादक, भारी, अग्निवर्द्धक तथा अजीर्ण, पेट के कीड़े, आमशूल और कफरोग को नष्ट करने वाले हैं।

यूनानी मत—यूनानी मतानुसार खुरासानी अजवायन (सफेद) दूसरे दर्जे मे ठडी और रुक्ष तथा काली खुरासानी अजवायन, तीसरे दर्जे मे ठडी और रुक्ष है। यह नशा लाने वाली और कंठमाला रोग में नुकसान करने वाली है।

इसके पत्ते कफ निस्सारक हैं। दाँतों के दर्द में ये कुल्ले करने के काम में लिये जाते हैं। इनसे मसूड़ों में खून जाना भी बंद होता है। यकृत की पीड़ा में यह एक उत्तम बाह्य उपचार है। सधिवात की सूजन और छाती की जलन मे भी यह लाभ पहुँचाते हैं।

इसके बीज स्वाद में कुछ कडवे और कामोद्दीपक होते हैं। ये नशीले और नींद लाने वाले होते हैं। आँखों से पानी जाने में, कान के रोगों में, नाक की तकलीफो में, सिरदर्द में व जोड़ों के दर्द में भी ये मुफीद हैं। इनका धुआँ खाज और खुजली मे, दाँतों की सड़ान मे, खाँसी में, वायु नलियों के प्रदाह में उपयोगी है। यह पेट के शूल को भी नष्ट करता है।

श्वास, कुकुर खाँसी इत्यादि रोगों में ये उपशामक औषधि की तरह से काम मे लिये जाते है। बच्चों की शिकायतों में जहाँ पर अफीम काम में नहीं ली जा सकती, उसके बदले ये काम में लिये जा सकते हैं।

यह औषधि सब प्रकार के नजले में लाभ पहुँचाने वाली, कान की पीड़ा को शान्त करने वाली, कफ खाँसी को मिटाने वाली, कफ के अन्दर खून का आना बन्द करनेवाली तथा रुक्षता पैदा करने वाली है। तिल के तेल में इसको सिद्ध करके मालिश करने से सधिवात, गृध्रसि, कमर के दर्द इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है। इस तेल को थोड़ा सा गरम करके कान में टपकाने से कान की पीड़ा नष्ट होती

है। इसका लेप करने से पुरानी यकृत की पीड़ा और छाती के दर्द में बहुत लाभ पहुँचता है।

इसके बीजों को ब्रांडी में पीस कर इनकी पुल्टीस बाँधने से छातियों की सूजन और अण्डवृद्धि में लाभ पहुँचता है, इसके बीजों को घोड़ी के दूध में पीसकर उसकी लुगदी जंगली साँड के चमड़े में बाँध कर पहिनने से स्त्रियों के गर्भ नहीं रहता ऐसा कहा जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि विरेचक, उपशामक, पेट के आफरे को दूर करने वाली तथा निद्राकारक है। यह श्वास की बीमारी में भी लाभ पहुँचाती है।

खुरासानी अजवायन के बीज मुसलमान वैद्यों के द्वारा कई वर्षों से उपयोग में लिये जा रहे हैं। यद्यपि यह वनस्पति हिमालय में पैदा होती है फिर भी प्राचीन हिन्दू आयुर्वेद ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता।

रासायनिक विश्लेषण—

ब्रिटिश फरमाकोपिया में इस औषधि के रासायनिक विश्लेषण में पाये जानेवाले उपक्षार का जो अंक दिया हुआ है, उसकी अपेक्षा कलकत्ते के ट्रॉपिकल मेडिसिन और हायजन्स स्कूल में इस औषधि का विश्लेषण करने पर यह उपक्षारीय तत्व कम पाया गया। ब्रिटिश फरमाकोपिया में जहाँ इस औषधि में .०६५ उपक्षारीय तत्व बतलाये गये हैं, वहाँ यहाँ पर इसमें केवल .०३ उपक्षारीय तत्व पाया गया, इससे मालूम होता है कि यूरोप में पायी जाने वाली खुरासानी अजवायन से देशी खुरासानी अजवायन में उपक्षारीय तत्व कम है।

एलोपैथिक चिकित्सा के अंतर्गत इस औषधि की समानता ऐट्रोपीन और बेलेडोना के साथ की जाती है, पर इसके और उनके प्रभाव में कई महत्व के भेद हैं। जैसेः—

(१) बेलेडोना की अपेक्षा हायोसायमस (खुरासानी अजवायन) से उन्मत्तता तो कम पैदा होती है, पर मस्तिष्क के अन्दर शून्यता लाने का प्रभाव उससे अधिक शीघ्र और अधिक बलवान होता है।

(२) बेलेडोना के सदृश हृदय के ऊपर इसका सबल और उत्तेजक प्रभाव नहीं होता, प्रत्युत अत्यंत निर्बल प्रभाव पड़ता है।

(३) मूत्रेन्द्रिय पर बेलेडोना की अपेक्षा इसका प्रभाव अधिक अवसादक होता है।

इसका उपयोग भिन्न-भिन्न रोगों की कठिन पीड़ा में, मस्तिष्क की उत्तेजना को कम करके नींद लाने के लिये किया जा सकता है। स्त्रियों के हिस्टीरिया रोग तथा प्रसूतिका के पागलपन में तथा वात-वेदनाओं में भी इसको दिया जा सकता है। इसके लिये इसके अर्क की ३० तीस बूंदें, एक-एक घंटे के अन्तर से ढाई-ढाई तोले पानी में मिलाकर देना चाहिये। इसी प्रकार मूत्रेंद्रिय सम्बन्धी चीस, चमक, पथरी इत्यादि रोगों में भी इसका सत्व देने से मूत्रविरेचन होकर शांति मिलती है।

ब्रोंकाइटीज की खाँसी को कम करने के लिये भी इसका उपयोग किया जा सकता है। छोटी मात्रा में यह हृदय को बल देने वाला और अवसादक है, मगर अधिक मात्रा में यह उत्तेजक और निर्बलता-जनक है।

इस औषधि के सत्व से एलोपेथिक के अन्दर और भी कई औषधियाँ तैय्यार की जाती हैं जो अर्द्धाङ्ग कपन, वृद्धावस्था और निर्बलता जन्य कपन, अनिद्रा, पागलपन, भ्रम, दमा, वात-वेदना, आक्षेप, मृगी इत्यादि रोगों में अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुई हैं।

उपयोग—

वात व्याधि—गठिया, सधिवात, जोड़ो की सूजन, रक्त पित्त इत्यादि रोगों पर इसका लेप करने से लाभ पहुँचता हैं।

दंत पीड़ा—खुरासानी अजवायन को राल के साथ पीसकर दाँतों की खोखल में रखने से दतपीड़ा दूर होती है।

पेट का दर्द—इसकी गुड़ में गोली बनाकर देने से पेट की वायु-पीड़ा मिटती है।

पेट के कीड़े—प्रातःकाल के समय थोड़ा गुड़ खिलाकर बासी पीने के साथ इसकी फंकी देने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

सत्व निकालने की विधि—खुरासानी अजवायन का पौधा जब फूलने-फलने लगे तब उसका पचाग लेकर पानी से भलीभाति धोकर उसका स्वरस निकाल लें, इस स्वरस को छानकर अग्नि पर औटावें, १०–१५ मिनट औटने के बाद जब उसपर झाग आने लगे तब उसे उतारकर छान लें, उसके पश्चात् चीनी के प्यालो मे उसे १२ घटे तक पड़ा रहने दें, उसके बाद उसे सावधानी से नितारकर ब्लाटिंग में छान लें और फिर आग पर पकावें, जब गाढ़ा अवलेह की तरह हो जाय तब उतारलें, इस सत्व की (हायोसायमीन) मात्रा ३ से ४ रत्ती तक की है, इसका उपयोग ऊपर लिखा जा चुका है।

———❀———

अजवायन जंगली

नाम—
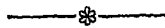
सस्कृत—बनयवानी, वनेमनि। हिन्दी—अजवायनजंगली, अजगधिका, वन अजवायन। बगाली—बन जोआन। मराठी—किरमानिअजवा। लैटिन—Seseli Indicum. (सेसेली इन्डिकम)।

वर्णन—

यह औषधि देहरादून से गोरखपुर तक हिमालय की तराई में तथा आसाम से कारोमण्डल तक और विहार तथा मध्य बंगाल मे पाई जाती है। यह एक प्रकार का सीधा और झाड़ीनुमा वर्षजीवी पौधा होता है। इसकी शाखाएँ ४ से १२ इञ्च तक लम्बी, सघन, सीधी और फैली हुई रहती है। पत्ते

प्रायः तीन भागों में विभक्त होते हैं। प्रत्येक भाग कटा हुआ और नोकदार होता है। इसके फूल छत्तेदार, सफेद, अथवा हलके गुलाबी रंग के होते हैं। फल गोल और बारीक, हलके पीले रंग का होता है।

कुछ वैद्य इसीको अजमोद समझकर अजमोद के स्थान पर इसे काम में लेते हैं।

गुण दोष—

जंगली अजवायन के बीज विशेषकर मवेशियों के उपचार में काम आते हैं। यह पेट के आफरे को दूर करने वाला होता है तथा उत्तेजक, शूलनाशक, आँतो को बल देने वाला और पेट के गोल कृमियों को नष्ट करने वाला है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पेट के आफरे को दूर करती है।

डाक्टर मुहीन शरीफ के मतानुसार ये बीज उत्तेजक, कृमिनाशक, पेट के आफरे को दूर करने वाले और अग्निवर्द्धक हैं। इनकी मात्रा १० रत्ती से लेकर ३॥। माशे तक की है। इतनी मात्रा में लेने से यह औषधि आँतो के कीड़ों को मारने में सफल होती है।

एक और दूसरी तरह का बन अजवायन भी होता है, जिसको लैटिन में (Thymus Serpyllum) तथा पंजाबी में 'माशो' या "रांगस्बुर" कहते हैं। यह औषधि भी काश्मीर से कुमाऊँ तक हिमालय के गरम प्रान्तो में पैदा होती है। पंजाब में इसका बीज पेट के कीड़ों को नष्ट करने के लिये उपयोग में लिया जाता है। हकीम लोग आँतों की पीड़ा, दाद, मूत्र की रुकावट, दृष्टि की कमजोरी आदि पर इसका प्रयोग करते है, फ्रांस में इसके पंचांग का काढा, खुजली और अन्य चर्मरोगों के लिये उपयोग में लिया जाता है।

—:o:—

अजगरी

परिचय—

आयुर्वेद में पारे की गोली बाँधने के विषय में जिन ६४ वेलों का वर्णन आया है, उनमें से यह एक है—यह वेल दीखने में अजगर सी नजर आती है व इसके ऊपर अजगर के शरीर के समान चकते होते हैं, इसीसे इसे अजगरी कहते हैं। यह वेल पांच-छः हाथ लम्बी व रसयुक्त होती है। इसके पत्ते कम होते हैं।

उपयोग—

इस वेल को कार्तिक मास की पौर्णिमा के दिन लाकर उसके टुकड़े कर डालना चाहिये, फिर

उन्हे दूध मे डालकर उस दूध को औटा कर पीना चाहिये। इसके ऊपर कुछ पथ्य रखना चाहिये। इसके सेवन से शरीर बलवान होता है और काति बुद्धि तथा आयुष्य बढ़ती है। ऐसा सुश्रुत का मत है। (वनौषधि गुणादर्श)

अंजीर

नाम—
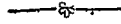
संस्कृत—काकोदुम्बरिका, मंजुल। हिन्दी—अजीर। गुजराती—अजीर, पंजाबी—किमरी फगवारा। लेटिन—Ficus Carica.

वर्णन—

अञ्जीर के झाड़ अरब स्थान, ईरान, टर्की, अफ्रिका तथा भारतवर्ष के बगीचो मे होते है। यह दो प्रकार का होता है। (१) एक बोया हुआ जिसके फल और पत्ते बड़े होते हैं। (२) दूसरा जगली जिसके फल और पत्ते इससे छोटे होते हैं। अञ्जीर का वृक्ष ६ से ६ फीट तक ऊँचा होता है। तोड़ने या चीरा देने से इसके हर एक अङ्ग में से दूध निकलता है। इसके पत्ते ऊपर की ओर से अधिक खुरदरे होते हैं। इसके फल का आकार प्रायः गूलर के फल के आकार के समान होता है। कच्चे फल का रग हरा और पके हुए का रग पीला या बैंगनी और अन्दर से बहुत लाल होता है। यह फल बडा मीठा और स्वादिष्ट होता है। भारत में पूने के पास खेड़शिव नामक गाँव के अञ्जीर सबसे अच्छे होते हैं, मगर अफगानिस्तान तथा फारस के अञ्जीर भारतवर्ष के अञ्जीर से अधिक अच्छे होते है। जिस जमीन मे चूने का अश अधिक होता है उस जमीन में अञ्जीर बहुत फलते-फूलते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अञ्जीर अत्यन्त शीतल, तत्काल रक्त-पित्त नाशक, सिर व खून की बीमारी मे तथा कोढ़ व नकसीर में लाभकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहिली कक्षा में गर्म और दूसरी कक्षा में तर है। इसकी जड़ पौष्टिक तथा धवल रोग (कुष्ट) और दाद पर उपयोगी है। इसका फल मीठा, ज्वर नाशक, पौष्टिक, रेचक, कामोद्दीपक, विष-नाशक, सूजन में लाभदायक, अश्मरी (पथरी) को दूर करने वाला और कमजोरी, लकवा, प्यास, यकृत तथा तिल्ली की बीमारी व सीने के दर्द को दूर करता है।

कच्चा अञ्जीर कान्तिकारी और सूखा अञ्जीर शीतोत्पादक है। जल के अ श की कमी के कारण यह पहले दर्जे मे गर्म है। इससे पतला खून उत्पन्न होता है, जो बाहर की ओर गति करता

है। इसीसे यह कान्तिवर्द्धक भी माना जाता है। यह फल सभी मेवों से अधिक पोषण करता है। इसमें अन्तिम दर्जे की कुव्वते तलय्यन (दोषो को मुलायम करने की शक्ति) है। यह पसीना लाने वाला और गर्मी को शान्त करने वाला है।

अपनी तीक्ष्णता और मधुरता के द्वारा आमाशय में गर्मी उत्पन्न करने के कारण यह गर्म प्रकृति वालो में प्यास पैदा करता है और उस प्यास को जो कफ के कारण पैदा होती है, शमन करता है। क्योंकि यह कफ को पतला करता है और उसे काटता और छाँटता है।

यह अजीर पुरानी खाँसी को लाभ पहुँचाता है। क्योंकि यह खाँसी केवल बलगम से ही पैदा होती है। इसका दूध अपनी तीक्ष्णता के कारण रेचक है।

पथ्यरूप में अंजीर बहुत सहज में पच जाने वाला और औषधि रूप से उपयोग करने पर किडनी एवं बस्ती संबन्धी पथरियों का तथा यकृत और प्लीहा के रोगो को दूर करने वाला है। गठिया और बवासीर में भी यह लाभ पहुँचाता है।

यूरोप के अन्दर भूजे हुए अजीर का पुल्टिस साँघातिक फोडे, बालतोड़ (बरटुट) तथा मसूडे के ऊपर के फोडे पर बाँधा जाता है। सूखे हुए अंजीर का पुल्टिस दूध के साथ में पीबदार जख्म और नासूर की दुर्गन्धि को दूर करने के काम में लिया जाता है। बडे सवेरे खाली पेट इस को खाने से अन्न प्रणाली को खोलने मे यह आश्चर्य्यजनक लाभ दिखाता है। अजीर बादाम और पिस्ते के साथ खाने से बुद्धिवर्द्धक, अखरोट के साथ खाने से कामोद्दीपक तथा बादाम के साथ खाने से विष को दूर करने का काम करता है।

इसके अतिरिक्त स्त्री-समाज के अन्दर भयङ्कर रूप से प्रचलित, प्रदररोग के अन्दर भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके फल के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसके अन्दर ६२ अंगूरी शक्कर (Grapesugar) तथा निर्यास, वसा और लवण का भाग होता है। सूखे अजीर में शक्कर, वसा, अलब्यूमिन (अडे की सफेदी) और लवण का भाग होता है। इसके दूध में (Peptonioing Ferment) होता है।

उपयोग—

बवासीर—दो सूखे अजीर को शाम को पानी में भिगो देना चाहिये। सवेरे उनको खा लेना चाहिए। इसी प्रकार सवेरे के भिगोये हुए अजीर संध्या को खा लेना चाहिये। इस प्रकार ८--१० रोज तक खाने से खूनी बवासीर के अन्दर बहुत लाभ पहुँचता है।

श्वेत कुष्ट—सफेद कोढ के आरम्भ में ही अंजीर के पत्तों का रस लगाने से उसका बढ़ना बन्द होकर आराम होने लगता है।

रुधिर का जमाव—अजीर की लकड़ी की राख को पानी के अन्दर घोल कर गाद के नीचे बैठ जाने के बाद उसका निथरा हुआ पानी निकाल कर उसमे फिर वही राख घोल देना चाहिये, ऐसा सात बेर राख घोल-घोल कर नितरा हुआ पानी पिलाने से रुधिर का जमाव बिखर जाता है ।

गाँठ व फोड़े—सूखे या हरे अजीर पीस कर जल मे औटाकर गुन-गुना २ लेप करने से गाँठों व फोड़ों की सूजन बिखर जाती है ।

श्वास—अजीर और गोरख इमली का चूर्ण समान भाग लेकर प्रातःकाल छः माशे की खुराक में खाने से दमे के अन्दर लाभ होता है ।

बनावटें—

प्रदर नाशक चूर्ण—करज के बीज की मगज ५ तोले, राल २॥ तोला, दाड़िम के फूल की सूखी कलियाँ २ तोला, कड़ा की छाल २॥ तोला, बढिया चदन का बुरादा २ तोला, नागकेसर २॥ तोला, शीतल चीनी २ तोला, सूखे आँवले २ तोला, हरड़ का चूर्ण २॥ तोला, लोध २॥ तोला, इन सब औषधियो को कूट पीस कर कपड़े में छान लेना चाहिये । इस चूर्ण को अजीर के हरे फल के रस की सात भावना देना चाहिये अर्थात् उस चूर्ण को उस रस में तर करके सुखाना चाहिये, इस प्रकार सात बार करना चाहिये । अगर हरे अञ्जीर न मिले तो सूखे अञ्जीर को सध्या को भिगोकर सवेरे उनको मसल कर उस पानी को छानकर उसकी भावना देना चाहिये । उसके पश्चात काली दाख का काढा बनाकर उसकी भी इस चूर्ण को सात भावना देना चाहिये । जब चूर्ण सूख जाय तब उसमे वशलोचन २ तोला, कपूर ६ माशे, सोना गेरु २ तोला, शखजीरा (शंखजरात) २ तोला और मिश्री १४ तोला, इन सब चीजों का चूर्ण मिलाकर बोतल में भरकर रख देना चाहिये । इस चूर्ण को प्रतिदिन दोनों टाइम ६ माशे से १ तोला तक लेने से सब जाति के सफेद,लाल,काले,नीले, प्रदर रोगों में चमत्कारिक फायदा होता है और २१ दिन में तो प्रदर जड-मूल से नष्ट हो जाता है ।

अजीर का अँचार—दो सेर सूखे अञ्जीर लेकर गरम पानी से दो-तीन बार धो कर उनके छोटे छोटे टुकडे कर लेना चाहिये, फिर बादाम की मगज १ सेर लेकर ऊपर का छिलका उतार कर उसके भी बारीक टुकड़े कर लेना चाहिये, फिर उसके बाद एक कलईदार कढ़ाई में अञ्जीर और बादाम की मगज के टुकड़े डालकर उसमें चार सेर घी, चार सेर शक्कर तथा इलायची २॥ तोला, केसर १ तोला, चिरौंजी १० तोला, पिस्ते १० तोला, सफेद मुसली ४ तोला, अभ्रक भस्म डेढ़ तोला, प्रवालभस्म २॥ तोला, मुगलाई बेदाना २॥तोला, शीतलचीनी १॥ तोला, इन सब चीजों को कूट करके थोडी देर तक उसे अग्नि पर चढा देना चाहिये, जब घी अच्छी तरह से पिघल जाय और वे सब चीजे मिल जाय तब उसे उतार कर चीनी की बर्नियो मे भर देना चाहिये ।

इस अँचार की खूराक आधी छटाँक की है । इस औषधि को दोनो टाइम खाने से खून व त्वचा की तमाम गर्मी, पित्त-विकार,रक्त-विकार, कब्जियत, बवासीर और तमाम प्रकार के वीर्यदोष को नष्ट करता है । यह औषधि जीवनीशक्ति वर्द्धक, कामोद्दीपक और अत्यन्त पौष्टिक है ।

बवासीर नाशक गोलियाँ—सूखे अञ्जीर २ तोला, काली दाख २ तोला, हरड़ का चूर्ण २ तोला, मिश्री २ तोला, इन चारों औषधियों को कूट कर सुपारी के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों में से सबेरे शाम एक-एक गोली खाने से बवासीर में लाभ होता है। (जगलनी जड़ी-बुटी-भाग १-२)

अंजीरी

नाम—

हिन्दी—अजीरी, बेदू, बेरू, खबारा, खेमरी। गुजराती—पेपरी। मध्यप्रदेश—धौरा। मारवाड़—केमरी। राजपुताना—केमरी। उत्तरभारत—फगवारा। लैटिन—Ficus Palmata. (फायकस पेलमेटा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा छोटे क़द का वृक्ष है, जो विशेष कर पजाब, आबूपर्वत, उत्तरी हिमालय और बिलोचिस्तान में पैदा होता है। इसके पत्ते कटी हुई किनारी के रहते हैं। इसका फल पकने पर बैंगनी रग का होता है।

गुण दोष—

इसके फल में विशेषकर शक्कर और लुआब का भाग रहता है, इस कारण यह फल कोठे को मुलायम करने वाला, शान्तिदायक, और मृदु विरेचक है। कब्जियत तथा फेफडे और मूत्राशय की बीमारियों में यह लाभदायक है। इसका उपयोग वाह्य उपचार के लिये पुल्टिस के रूप में भी होता है। कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका फल शान्तिदायक और विरेचक है तथा फेफडे और मूत्राशय की बीमारी में लाभदायक है।

अंजुबार

नाम—

संस्कृत—मिरोमती, हिन्दी—मचूटी, निसोमली, इन्द्राणी, बीज बन्द, पंजाबी—केसरू, मसलून, बिल्लौरी, अन्जबार, फारसी—अञ्जुबार, हुजार, बन्दक, अरबी—बतबत, असरागाई। लैटिन—Polygonum Aviculare Viviparum.

वर्णन—

यह हिमालय पहाड़ की चोटियों पर काश्मीर से कुमाऊँ तक छः हजार से बारह हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका पौधा छोटा क्षुप जाति का होता है। इसकी शाखाएँ चारों ओर

फैली हुई रहती हैं। पौधा नरम पत्ते वाला, फैला हुआ और फूलदार होता है। इसके पत्ते बरछी के आकार से मिलते हुए होते हैं। इसके फूल लाल रंग के, धब्बेदार और छोटे तथा किंचित तिकौने होते हैं।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का वर्णन बहुत प्राचीन समय से अर्थात् हकीम डिसकोरिडस (Dioscorides) और प्लाइनी (Pliny) के जमाने से चला आता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह तीसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है, इस पौधे की जड़ रक्तस्राव को रोकने वाली, सकोचक, ज्वर को नष्ट करने वाली, विरेचक और मूत्रल है। पेट की जलन और मूत्राशय की तकलीफ में यह लाभ पहुँचाती है। हाथी पाँव (श्लीपद) और विसर्प रोगमें भी लाभदायक है। फेफडे और वक्षस्थल के रक्तस्राव में यह औषधि खास तौर से उपयोगी है।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि जरिश्क और गिले अरमानी हैं और इसकी दर्पनाशक सोंठ है।

मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसकी जड़ सूजन में लाभ पहुँचाने वाली और सङ्कोचक है। इसका क्वाथ सोमरोग और प्रदररोग में लाभ पहुँचाता है। इसके कुल्ले करने से मसूड़े की सूजन में और गले की बीमारी मे लाभ पहुँचता है। इस वनस्पति का ठडा काढ़ा रक्तातिसार में लाभ पहुँचाता है। मलाया के अन्दर यह सुजाक की बीमारी में काम में लिया जाता है।

इसकी जड़ का क्वाथ ढाई तोले से पाँच तोले तक की मात्रा में मलेरिया बुखार, पुराना अतिसार पथरी, हुपिंग कफ (कुक्कुर खाँसी) इत्यादि रोगों मे लाभदायक होता है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह एक प्रकार की सकोचक औषधि है, जो रोग के कीटाणुओं को नष्ट करती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इस औषधि के अन्दर पॉलीगॉनिक एसिड (अञ्जुबार का सत्व) टेनिन एसिड, गैलिक एसिड, केलसियम ऑक्सेलेट और इसेंशियल ऑइल पाया जाता है।

इस औषधि का एक भेद और होता है, जिसे लेटिन में (Viviparum) और अरबी में अञ्जबार पोल कहते है। यह औषधि भी पौष्टिक, रक्तस्रावरोधक, सकोचक तथा गले के रोगों में मुफीद है।

———:———

अञ्जरूत

नाम—

हिन्दी—लाई, लाही। फारसी—गूजद, अञ्जदक। अरबी—कुहल फारसी, कुहल किरमानी, लैटिन—Astragalus Sarcocolla.

वर्णन—

यह एक वृक्ष का गोंद है, जिस वृक्ष से यह निकलता है, उसका नाम मख्जनूल अदविया के लेखक मीर महम्मद हुसैन के मतानुसार शाहकह है, यह वृक्ष शीराज़ के नजदीक शबानकारह की पहाड़ियों में पाया जाता है। यह वृक्ष छः फीट ऊँचा और काँटेदार होता है, इसके पत्ते लोबान के पत्तों की तरह होते हैं। इसका गोंद निकलते समय सफेद और हवा लगने पर लाल हो जाता है। इसका स्वाद कडुआ और मधुर होता है, आग पर जलाने से यह फूलता है और उस समय शक्कर जलने की सी बास आती है।

गुण दोष—

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

यूनानी मत—मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमहम्मद हुसैन के मतानुसार यह रेचक और कफ के दोषों को मिटाने वाला है, निसोत और हरड के साथ मिलाकर उपयोग में लेने से यह बहुत लाभदायक होता है। इसका प्लास्टर सब प्रकार की सूजन को नष्ट करता है। प्याज के अन्दर इसे रख अग्नि पर भून कर इसका रस कानों में टपकाने से कान का दर्द दूर होता है।

अञ्जरूत की प्रधान उपयोगिता लेपन के द्रव्यों में होती है। पारसी लोग इसे रूई के साथ मिलाकर टूटी हुई अथवा मोच आई हुई हड्डियों पर इसका लेप करते हैं।

डाय मॉक के मतानुसार अञ्जरुत ६ भाग, जदवार १ भाग, एलुवा सकोतरी १६ भाग, फिटकरी ८ भाग, मैदालकड़ी ४ भाग, गूगल ४ भाग, लोबान ७ भाग और उसारह रेवन्द १२ भाग, इन सब औषधियों का बारीक चूर्ण कर जल में मिलाकर, सिल पर पीसकर लुगदी बनाकर लेप के उपयोग में लेना चाहिये।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अञ्जरूत का गोंद या रस एक प्रकार का मृदु विरेचक माना गया है।

अड़ूसा

नाम—

संस्कृत—वासक, आटरूष। मराठी—अडूलसा। बंगाली—वसाका। गुजराती—अरडूसो। लेटिन-Adhatoda, Vasika (अधाटोड़ा वासिका)

वर्णन—

आयुर्वेद के अन्दर, वर्णित की हुई औषधियों में अड़ूसा भी एक दिव्य औषध है। इसके अन्दर ऐसे अनेकों दिव्यगुण छिपे हुए हैं, जो समय पर मनुष्य को भयंकर कष्ट और मौत के मुँह में से बचा सकते हैं। इसके पौधे ४ से लेकर ८ फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते लंबे और अमरूद की तरह होते हैं। अड़ूसे के वृक्ष दो तरह के होते हैं। काले और सफेद। काले अड़ूसे के पत्ते कुटकी के पत्ते की तरह मृदु होते हैं। सफेद अड़ूसे के पत्तों का रंग हरा होता है और उनपर सफेद धब्बे होते हैं। अड़ूसे के फूल सफेद होते हैं। इसकी लकड़ी कोमल और हलकी होती है। इसीलिये इसके कोयले का चूर्ण बारूद बनाने के उपयोग में लिया जाता है।

प्रभाव और गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—अड़ूसा अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतवर्ष में औषधिरूप में व्यवहार होता हुआ चला आया है। इसी कारण जिस प्रकार आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रंथों मे इसका विस्तृत वर्णन मिलता है, उसी प्रकार अशिक्षित और ग्रामीण लोग खाँसी, अतिसार, वमन, बुखार, सूजन, इत्यादि रोगों में इसका उपयोग करते हैं। परन्तु आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थकार इसको खाँसी, श्वास, कफ और क्षयरोग की अनुभूत औषधि मानते हैं।

भावप्रकाश के कर्त्ता भावमिश्र के अनुसार अड़ूसा वातकारक, स्वर को उत्तम करने वाला, कफघ्न, रक्त-पित्त-नाशक, कड़ुआ, कसैला, हृदय को हितकारी, हलका, शीतल तथा तृषा, श्वास, खाँसी ज्वर, वमन, मोह, कोढ़, क्षय आदि रोगों को नष्ट करने वाला है।

राज-निघण्टु के मतानुसार अड़ूसा तिक्त, कटु, शीतल तथा खाँसी, रक्त-पित्त, कामला, कफ निकालने वाला और ज्वर, श्वास, और क्षय रोग को नष्ट करने वाला है।

इसकी प्रशंसा करते हुए एक स्थान पर कहा है—

श्लोक—वासायां विद्यमानायां, माशायां जीवितस्य च।
रक्त-पित्ती, क्षयी, कासी, किमर्थं मवसीदति॥

अर्थात् जीवन अवशेष और अड़ूसे के विद्यमान रहते हुए रक्त-पित्त, क्षय और खाँसी के रोगी किस लिये दुःख पारहे हैं? इससे मालूम होता है कि प्राचीन ग्रन्थकार रक्त-पित्त, खाँसी, श्वास और क्षय की बीमारियों में निःशङ्क होकर इसका उपयोग करते थे।

इसी प्रकार यूनानी ग्रन्थकार भी अड़ूसे के फूल को क्षय, रक्त-पित्त, खाँसी और श्वास में लाभदायक मानते हैं।

आधुनिक शोध-खोज—भारत सरकार के द्वारा निर्मित की हुई "इण्डीजेनस ड्रग कमेटी आफ इंडिया" अपनी रिपोर्ट मे इस औषधि के लिये लिखती है—"यह बात यहाँ पर बतलाना आवश्यक है कि भारतवर्ष के अस्पतालों मे किये हुए परीक्षणों के परिणाम स्वरूप अड़ूसे का पौधा, ब्रोङ्काइटीज (श्वास नली की खाँसी) और दमे के रोगियों के लिये लाभदायक सिद्ध हुआ है। परन्तु क्षय के रोग को नष्ट करने की जो प्रशंसा इस पौधे के सम्बन्ध मे की गई है, वह बहुत संदेहास्पद है।"

फरमाकोपिया ऑफ इंडिया नामक पुस्तक के लेखक खाँसी और दमे के रोग को नष्ट करने के लिये अड़ूसे की जोरदार सिफारिश करते है। परन्तु जिस खाँसी और दमे के साथ बुखार होता है, उसमें उनके मतानुसार इस औषधि से लाभ नहीं होता।

रासायनिक विश्लेषण—

इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें तीन मुख्य तत्व पाये गये है। (Alkloid) नामक उपक्षार (Vasicine) नामक तिक्तक्षारी सत्व और (Oil) तेल, इसमें पाये जाने वाला उपक्षार खून की गति को ढीला करता है और हार्ट (हृदय) की गति को मामूली दर्जे पर ले आता है। यह उपक्षार और भी हृदय-रोगों को नाश करता है और वायु-नलियों को साधारणतौर से फैला देता है। इसके पत्तों का रस कफ की बीमारी पर फायदेमंद है। यह कफ को ढीला कर देता है, जिससे कि बिना किसी कष्ट के वह बाहर फेंका जा सकता है। (Indian Journal Medical Research. Oct. 1925)

कर्नल चोपड़ा और घोष के सिद्धान्त के अनुसार यह औषधि फेफड़ों के क्षय मे बिल्कुल लाभदायक नहीं है।

मेजर बसु और डाक्टर कीर्तिकर के मतानुसार यह वनस्पति नलियों के प्रदाह मे, कोढ मे, रक्त विकार में, हृदय रोग मे, प्यास में, श्वास में, ज्वर में, वमन में, स्मरणशक्ति के नाश, क्षय, पीलिया, व मुँह के रोगों में लाभकारी है। इसकी जड गर्भस्थ संतान को निकालने में मुफीद मानी जाती है। मूत्र-कृच्छ्र, श्वेत प्रदर व नलियों के प्रदाह में भी यह लाभकारी और मूत्रवर्द्धक है। इसके पत्ते ऋतुस्राव को नियमित करने वाले हैं। इसके फूल रक्त की गति (Circulation of Blood) को नियमित करने वाले हैं। इसके फल वायु-नलियों के प्रदाह में उपयोगी हैं।

इस वृक्ष की जड और पत्ते सब प्रकार की खाँसियों पर उत्तम औषधि मानी गई है। इसके पत्ते गठिया रोग के उपयोग मे आते हैं। इसके पत्तों को सुखाकर उनकी सिगरेट बनाकर पीने से दमे के रोग में लाभ होता है।

उपयोग—

सर्जन जे० एफ० डब्ल्यू मिडोज का कथन है कि इसके ताजे पत्तों को पानी मे औटा कर पिलाने से कफ वाली खाँसी का नाश होता है।

पबना के सर्जन आर० एल० दत्त के मतानुसार लाल फूल वाला अडूसा क्षय तथा खाँसी के के लिये बहुत लाभदायक है।

सर्जन पी० कीसली मेकाकोल के मतानुसार अडूसे के पत्तो को बाफ कर उनका सेक करने से चीमें चलना और संधिवात की पीड़ा में फायदा होता है। सूजन को कम करने में भी यह औषधि फायदेमद है।

सर्जन मेजर फिट्स पेट्रिक के कथनानुसार देशी वैद्य पाण्डुरोग के साथ वाली जलोदर की व्याधि में मूत्रल औषधि की तरह इसका व्यवहार करते हैं।

सर्जन मेजर रोव के मतानुसार आम्लातिसार, रक्तातिसार और मरोड़ी के दस्तो में इसके पत्तों का रस बहुत उपयोगी है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक मि० नाडकरनी का कथन है कि अडूसे के पत्ते का ताजा रस साढ़े सात माशा लेकर शहद या अदरख के रस के साथ देने से अथवा इसके पत्तों को उबालकर उसमें कालीमिर्च और छोटी पीपल का चूर्ण डाल कर पिलाने से पुरानी खाँसी, श्वास और क्षय के रोग में बहुत फायदा होता है। इसके पत्तों का रस खून और मरोड़ी की दस्तो में बहुत उपयोगी है और इसके पके हुए पत्तों के द्वारा किया हुआ सेक संधिवात, लकवा और वेदनायुक्त सूजन में लाभ पहुँचाता है।

अडूसे के पत्तों को और नीम के पत्तो को बाफ कर पेड़ू के ऊपर उनसे सेक करने से तथा अडूसे के पत्तो के आधे तोले रस मे उतनी ही शहद मिलाकर पिलाने से गुर्दे का भयकर दर्द जिसे अंग्रेजी मे (Brights Disease) कहते हैं, चमत्कारिक लाभ पहुँचाता है।

उपरोक्त सब अवतरणों से यह पता चलता है कि यह औषधि पुरानी खाँसी, श्वास इत्यादि रोगो में प्रथम श्रेणी का तथा अतिसार, रक्तातिसार, आमातिसार, संधिवात, सूजन इत्यादि रोगों में द्वितीय श्रेणी का असर बतलाती है।

बनावटें—

वासावलेह—अडूसा का रस ६४ तोला, शक्कर ३२ तोला और घी ८ तोला, लेकर धीमी आँच से पकाते २ जब गाढ़ा हो जाय, तब उसे नीचे उतार कर आठ तोला पीपल का चूर्ण डालना चाहिये। जब वह अवलेह ठंडा हो जाय तब उसमें ३२ तोला शहद डालकर चीनी के पात्र में भर के रखना चाहिये। इसकी मात्रा आधे से एक तोले तक है। यह अवलेह खाँसी, श्वास, हृदयरोग और रक्त-पित्त पर बहुत लाभदायक है।

वासासव—अड़ूसे के पत्ते १० सेर लेकर उनको १०२४ तोला पानी में उबालना चाहिये। जब २५६ तोला पानी बाकी रह जाय, तब उसे उतार कर छान कर उसमें २०० तोला गुड़, १६ तोला धावड़ी का चूर्ण तथा तज, इलायची, तमालपत्र, नागकेशर, कंकोल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, नागर मोथा, ये सब वस्तुएँ दो-दो तोला लेकर उनका चूर्ण करके उसमें डाल देना चाहिये। उसके बाद बोतलों में भरकर १५ दिनों तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके पश्चात् उसको छान कर काम में लेना चाहिये। यह आसव आधे से लेकर एक तोला तक पानी के साथ मिलाकर लेने से जलोदर, पाडु और सूजन के दर्द पर फायदा करता है।

अड़ूसे की सिगरेट—इसके ताजा पत्तों को सुखा कर उनमें थोडे से काले धतूरे के सूखे हुए पत्ते मिलाकर उनका चूर्ण करके उसकी बीड़ी बनाकर पीने से दमे की बीमारी में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

अड़ूसे का माजून—अड़ूसे के हरे पत्तों को पीसकर उनका गोला बना लें। उस गोले पर एरंड के हरे पत्ते लपेट कर ऊपर से उड़द का आटा लगाकर गरम राख में दबा दें। जब आटा पक जाय तब उसे और एरंड के पत्तों को हटा कर अड़ूसे के गोले का रस निकाल लें। जितना रस निकले उससे आधी शक्कर, दशमाश पीपल का चूर्ण और दशमांश गाय का घी डालकर पकावें। जब चासनी गाढ़ी हो जाय तब उतारकर उसमें शक्कर के वजन के बराबर शुद्ध शहद मिलाकर बरनी में भर लें। इस माजून की चार-चार माशे की मात्रा सुबह-शाम देने से खाँसी, दमा, जुकाम, छाती का दर्द, क्षय इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है।

अड़ूसे का क्षार—अड़ूसे के पञ्चाग को जला कर उसकी राख से क्षार निकालकर उस क्षार की चार-चार रत्ती की मात्रा देने से खाँसी और दमें में आश्चर्य्यजनक लाभ होता है।

अड़ूसे का अर्क—अड़ूसे के पत्ते एक सेर और अड़ूसे के फूल दस तोला इनको चार सेर जल में शाम को भिगो देना चाहिये। सवेरे आग के नीचे एक जोश देकर चार सेर गाय का दूध मिला देना चाहिये। उसके पश्चात् भपके के द्वारा उसका अर्क खींच लेना चाहिये। अड़ूसे का यह अर्क दस तोला लेकर पाँच तोला शर्बत एजाज के साथ सवेरे और शाम पिलाने से प्रथम और द्वितीय श्रेणी के क्षयरोग में लाभ पहुँचाता है। दो सप्ताह के पश्चात् रोगी के वजन में आश्चर्य्यजनक वृद्धि दीख पड़ती है। शरीर लाल और ओजपूर्ण हो जाता है। मूत्र की ललाई, जलन और गर्मी को दूर करने के लिये यह अर्क अनुपम है। (आयुर्वेदीय कोष)

अड़ूसे का क्वाथ—अड़ूसे के पत्ते दो सेर, अड़ूसे के जड़ की छाल दो सेर, अड़ूसे के फूल दो सेर, इन तीनों वस्तुओं को थोड़ी कूटकर बीस सेर पानी में उबालें, आधा रह जाने पर छानकर फिर तीनों चीजें एक एक सेर डालकर उबालें। जब आधा अर्थात् पाँच सेर पानी रह जाय तब उसको मल-छान कर फिर उपरोक्त तीनों वस्तुएँ आधा २ सेर डालकर फिर उबालें। उसमें जब ढाई सेर पानी रह जाय तब मल-छान कर बोतलों में भरकर रख लें। इसमें से ढाई तोला क्वाथ, एक

तोला शहद मिलाकर दिन में तीनबार पिलाने से खाँसी, ज्वर, मुँह से खून का गिरना, खून की उल्टी, खूनी बवासीर इत्यादि में लाभ पहुँचाता है। (आयुर्वेदीय कोष)।

वासकारिष्ट—अड़ूसे के पत्तों का रस १०० तोला लेकर रेक्टी फाइड स्पीरिट ऑफ वाइन (Rectified Spirit of Wine) एक सौ तोला में मिलाकर चीनी की बरनी में डालकर उसमें मुलेठी का सत दो तोला, कपूर एक तोला, अफीम एक तोला, बहेड़े का चूर्ण दो तोला, लौंग दो तोला, इलायची दो तोला, कालीमिर्च एक तोला, तालीस पत्र दो तोला, काकड़ा सिंगी एक तोला, धतुरे के शुद्ध बीज एक तोला, कठ दो तोला और शक्कर ४० तोला डालकर उस बरनी का मुँह बद करके एक महीने तक पड़ी रहने देना चाहिये। इस औषधि में से तीन माशे से छः माशे तक दो तोला पानी के साथ मिलाकर दिन में तीन बार पिलाने से खाँसी और श्वास में अद्भुत गुण करती है। औषधि पीने के साथ ही श्वास का वेग दूर हो जाता है। रेक्टिफाइड स्पिरीट के बदले यदि मृतसजीवनीसुरा लेली जाय तो अजीब गुण करती है। (जंगलनी जड़ी-बुटी)

गोदन्ती भस्म—अड़ूसे के फूलों के रस में गोदन्ती हड़ताल की खरल करके गजपुट में फूँक दे, इस प्रकार सात बार घोटकर फूँकने से गोदन्ती हड़ताल की बढ़िया भस्म तय्यार हो जायगी। इस भस्म की मात्रा एक रत्ती की है। जीर्णज्वर में यह भस्म अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई है। जिसको खून की उल्टी होती हो, उसे पाँच माशा कहरुआ में एक रत्ती भस्म रखकर शर्बत अंजबार के साथ खिलाने से थोड़ी खुराकों में लाभ होता है। पुरानी खाँसी में यह भस्म शर्बत एजाज के साथ खिलाने से आश्चर्य्यजनक काम करती है। (आयुर्वेदीय कोष)

ताम्र भस्म—ताम्बे के शुद्ध पतरों को अड़ूसे के पत्तों के रस में गरम करके सौ बार बुझाएँ। उसके पश्चात राई की गाँदलों की लुग्दी बनाकर उसमें उनको रख एक मन आरने कंडों की आँच में रख दें। इस प्रकार तीन बार करने से भस्म तय्यार होगी। इस भस्म को एक रत्ती की खुराक में उपयोग करने से समस्त वात-व्याधि, कफ, खाँसी, दमा और बुढापा नष्ट होता है।

अटवी—जम्भीरी

नाम—

सस्कृत—अटवी जम्भी। हिन्दी—जङ्गली नींबू। मराठी—रण नींबू, मकदनींबू। कनाड़ी—अदवीनीम्बू। तामील—कटनरङ्गम्, कट्टेलुमिचय। तेलगू—अदवीनिम्बा, करुनिम्बा, उड़िया—कट-नरङ्ग, नरङ्गुनि। लैटिन—Atalantia-Monophilla

वर्णन—

अटवी-जम्भीरी, यह एक काँटेदार और फैलने वाली झाड़ी है। इसकी शाखाएँ छोटी होती हैं। इसके पत्ते बल्लम के आकार के कुछ गोलाई लिए हुये होते हैं। इनमें नारङ्गी के पत्तों को

तरह खुशबू आती है। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं। फल गोलाकार पीले तथा नीम्बू की तरह होते हैं। इसका ताजा बीज बहुत खुशबूदार होता है। इसके बीज का चूर्ण कर मीठे तैल में डालने से तैल खुशबूदार और गहरे पीले रंग का हो जाता है। इस तैल की मालिश करने से त्वचा में गर्मी पैदा होती है। यह औषधि कोंकण, उत्तरी कनाडा, मद्रास, पश्चिमी समुद्रतट, कर्नाटक, दक्षिणी सीलोन, सिलहट इत्यादि स्थानों पर पैदा होती है।

प्रभाव और गुण दोष—

प्राचीन निघण्टों और यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का वर्णन देखने मे नहीं आया। आधुनिक बूटी-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों में इसका उल्लेख पाया जाता है—

डा० रावर्टस के मतानुसार सीलोन में इसके ताजे पत्ते कुचल कर नमक के साथ मिलाये जाते हैं। फिर उन्हें गरम करके साँप के काटे हुए स्थान पर लगाते हैं। इसका खास उपयोग ट्री स्नेक्स (वृक्ष पर रहने वाले साँप) के दंश पर किया जाता है। मगर कैस और मस्कर का मत है कि सर्पदंश के उपचार में इसके पत्ते बिल्कुल निरुपयोगी हैं। ट्री स्नेक्स तो वैसेही जहरी और प्राणघातक नहीं होते हैं।

डा० एन्सली का मत है कि इसके फूलों से एक प्रकार का उष्ण तैल बनाया जाता है। यह तैल दक्षिणी भारत में गठिया रोग के वाह्य उपचार में बहुत मूल्यवान् माना जाता है। पक्षाघात में भी यह लाभ पहुँचाता है।

कोंकण में इसके पत्तों के रस का लेप अर्द्धाङ्ग (लकवा) में उपयोगी माना जाता है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार इसकी जड आक्षेप निवारक और उत्तेजक है। यह औषधि सर्पदंश में भी काम आती है।

—:०:—

अत्यम्लपर्णी (खटुआ)

नाम—

संस्कृत—अत्यम्लपर्णी, कण्डूला। हिन्दी—रामचना। गुजराती—खाटखटुम्बा। मराठी—आम्बटवेल। बंगला—कउवडवेनि। तेलगू—मण्डलमारी। लैटिन—Vitis Carnosa. (विटिस करनोसा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की वेल होती है, जो बहुधा थूहर पर फैला करती है। इसके तीन २ पत्ते लगते हैं। वे फटे हुए कंगूरेदार किनारे के होते हैं, इसकी जड में करीब नौ इन्च लम्बा एक कन्द निकलता है। इस कन्द पर से तन्तु निकलकर जमीन के भीतर ही भीतर फैलते हैं और स्थान २ पर उनके बैंगनी

कन्द लगते हैं। इसके फल कुछ हरापन लिए हुए सफेद होते हैं, जो गुच्छों के रूप में लगते हैं। इसके फल कच्ची हालत में हरे और पकने पर बैंगनी हो जाते हैं। फलों में से बीज निकलते हैं। इस वनस्पति का एक २ अणु अत्यन्त खट्टे रस से भरा हुआ रहता है। अगर इसको खाया जाय तो गले में जलन पैदा करता है। हिंदुस्तान के प्रायः सभी भागों में यह वनस्पति मिलती है। इसलिये सब लोग इसको जानते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—राजनिघण्टु के मतानुसार यह वनौषधि तीक्ष्ण, खट्टी, अग्नि को दीपन करने वाली, रुचिकारक तथा प्लीहा, शूल, वात, बायगोला और कफ, इन रोगों को दूर करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि रक्तशोधक, पित्तशामक और यकृत तथा हृदय की पीड़ाओं को दूर करने वाली है। तिल्ली के प्रदाह में भी यह गुणकारी है तथा पौष्टिक, अग्निवर्द्धक और कफ को पैदा करने वाली है।

इस औषधि के सम्बध में आयुर्वेद तथा यूनानी में अधिक वर्णन नहीं मिलता, लेकिन 'धन्वंतरि' नामक वैद्यक-पत्र के अन्दर सन् १९१६ के फरवरी मास के अङ्क में इस औषधि के सम्बध में कुछ चमत्कारिक बातें निकली थीं, जिसका कुछ अ श यहाँ पर दिया जाता है।—

"मेरे पड़ोस में हरजी भगत नामक एक वृद्ध भाटिया गृहस्थ रहते थे। वे दाद के रोगियों को चित्रक की जड़ घिसकर लगाने के लिये कहते थे, जिससे लगाये हुए स्थान पर फोड़ा होकर वहाँ की दाद जल जाती थी। मैंने उनको बतलाया कि यह औषधि अत्यन्त दाहक और उग्र है। इसलिये कभी-कभी यह आपको बहुत कष्टप्रद होगी। पर उन्होंने इस बात को नहीं माना। कुछ दिनों के बाद ऐसा प्रसंग आया कि उनके खुद के गले में दाद हुई। हमेशा की आदत के मुताबिक उन्होंने तत्काल चित्रक की जड़ को घिसकर गले के ऊपर लगादी। बदकिस्मती से वे बरसात के दिन थे, जिससे वह जगह सूज गई और सूखने के बदले उसमें पीव पैदा हो गयी और उसमें कीड़े पड़ गये। पर शरम के मारे उन्होंने मुझ से वह बात न कही। पर जब तकलीफ बहुत बढ़ गई, तब मुझे उसकी मालूम पडी तब मैंने उन जन्तुओं का नाश करने के लिये कारबोलिक तेल की तलाश की। मगर वह उस छोटे से गाँव में न मिल सका। तब मैंने धोया हुआ घी और शक्कर मिलाकर पके हुए हिस्से पर लगाना प्रारम्भ किया, जिससे कुछ कीडे ऊपर आने लगे और हम उनको चिमटे से पकड-पकड़ कर बाहर निकालते थे। यह मगज पच्ची चल ही रही थी कि एक दिन एक ठाकुर सिर पर लकडी की भारी लेकर आया और उसने यह हालत देख कर मुझे कहा कि तुम इतनी मगज पच्ची क्यों करते हो, बिना परिश्रम के ही अगर ये सब कीडे जिंदा स्थिति में बाहर निकल जायँ तो कैसा हो। मैंने कहा कि यदि ऐसा हो तो फिर क्या कहना है। तब वह अपनी मजदूरी के चार आने के पैसे ठहरा कर गाँव के बाहर गया और एक वनस्पति की गाँठ लेकर आ गया। उसने उस गाँठ को चन्दन की तरह घिसकर रुई के फेल के ऊपर लगाया और उसको उस नासूर के ऊपर चिपका कर लगा दिया। दस-बारह मिनट के बाद उसने उस रुई

के फुए को हटाया तो जिन्दे कीड़ों का एक गुच्छे का गुच्छा उस रुई के फेल के साथ चिपका हुआ चला आया।

मुझे संदेह हुआ कि कहीं इसने हाथ चालाकी तो नहीं की है। इस सन्देह को दूर करने के लिये मैंने स्वयं दूसरी बार अपने हाथ से उस गाँठ को घिसकर लगाया और दूसरी बार भी बहुत से कीडे उसके साथ चले आये। इस प्रकार तीन बार करने से उस नासूर के सब कीडे बाहर निकल आये और रोगी को बड़ा आराम मालूम हुआ। अन्त में मुझे उस गाँठ का परिचय जानने की इच्छा हुई और बहुत कुछ खुशामद-बरामद के बाद उसने बतलाया कि यह गाँठ खाट-खटूमड़ा की है। उसके पश्चात् और भी कई स्थानों पर मनुष्यों एवं ढोरों पर इसका उपयोग किया गया और सब स्थानों के कृमियों को बाहर निकाल देने में यह गाँठ कामयाब हुई"।

उपयोग—

बैलों के कन्धों पर जुड़ा रखने से जो घाव हो जाते हैं, उसपर इसके पत्तों का पुल्टीस बाँधने से बहुत लाभ होता है।

बिच्छू का जहर—बिच्छू के काटे हुए स्थान पर इसका कंद घिसकर लगाने से लाभ होता है।

फोडे फुन्सी—सूजन और फोडे फुन्सियो पर कद घिसकर लगाने से लाभ होता है।

अतिसार—इसके फलों का शाक बनाकर खाने से लाभ होता है।

अतिबला (कंघी)

नाम—
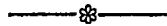
संस्कृत—अतिबला, बालिका, वाल्य, शीतपुष्पा, वृषगंधिका। हिन्दी—कंघी, कंघनी, कम्पी, गुजराती—कसकी। मराठी—मुद्रिका, करडि, चिकणा थोरला। सिन्धी—खपटो। तामील—पेरुति तेलगू—तुति। अरबी—मस्तुल घौल। उर्दू—कंघी। अंग्रेजी—Indian Malow (इंडियन मेलो) लैटिन—Abutilon Indicum. (एब्यूटिलन इंडिकम)

वर्णन—

यह वनस्पति गरम आबहवा वाले प्रायः सभी प्रान्तों में होती है। इसका वृक्ष कुछ फिसलना और रुएंदार होता है। यह औषधि संस्कृत के प्रसिद्ध बलाचतुष्टय (बला, अतिबला, नागबला और महाबला) में से एक है और प्रायः सब दूर सुपरिचित है। इसके बीज छोटे-छोटे रुआंसदार, चिकने और कुछ काले होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार कंघी कड़वी, चरपरी और वात, कृमि, दाह, तृषा,विष, वमन, और क्लेद को शान्त करने वाली है। यह वीर्यवर्द्धक, बलकारक, अवस्था स्थापक, वात-पित्त नाशक और मूत्र-रोग को दूर करने वाली है।

इसकी छाल कड़वी, ज्वर निवारक, कृमिनाशक और जहर के दोष को उपशमन करने वाली है। इसके अतिरिक्त प्यास, त्रिदोष और वात-पीड़ा को भी यह नष्ट करती है। इसकी जड गर्भाशय से होने वाले रक्तस्राव में लाभदायक है। इस वृक्ष का दूध पेशाब सम्बधी बीमारियों में लाभ पहुँचाता है। आयुर्वेद के अन्दर बल बढ़ाने वाली और धातु पौष्टिक जितनी औषधियाँ मानी गई हैं, उनमें यह औषधि अपना प्रधान स्थान रखती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसके लुआबदार बीज पौष्टिक होते हैं और सीने की तकलीफों में लाभ पहुँचाते हैं। ये बच्चों की खाँसी, वायु नलियों की जलन, बवासीर, और सुजाक के अन्दर बहुत मुफीद हैं। इसके पत्ते दाँतों की पीडा, कमर की बादी और बवासीर में उत्तम है। इसकी छाल पथरी और पेशाब सम्बन्धी बीमारियों में अपना असर दिखलाती है। इसकी जड़ का ठण्डा काढ़ा ज्वर के अन्दर ठण्डी औषधि के रूप में दिया जाता है। यह पथरी और मूत्र के अन्दर रक्त के कण आने की बीमारी में लाभदायक है।

खूनी बवासीर के अन्दर इसके पत्तों का काढ़ा दिया जाता है, इसके अतिरिक्त वायुनलियों के प्रदाह, सुजाक, मूत्राशय की जलन, पैत्तिक आमातिसार और ज्वर में भी इसका काढ़ा लाभदायक है।

इसके बीज अत्यन्त पौष्टिक और कामोद्दीपक हैं। बवासीर के अन्दर ये विरेचक औषधि के बतौर काम में लिये जाते हैं। खाँसी के अन्दर भी ये लाभदायक है। बच्चों के गुदाद्वार में जब कृमि पड़ जाते हैं, तब लकड़ी के अङ्गारे पर इसके बीजों को डालकर उनका धुआँ देने से ये कृमि नष्ट हो जाते हैं।

चीन और हाँग-काँग के लोग मूत्रल औषधि की तरह इसकी जड़ का उपयोग करते हैं, वे इसे दमे की बीमारी में भी लाभकारी मानते हैं।

पोर्टर स्मिथ के मतानुसार इसके बीज और यह सारा वृक्ष मूत्रल, शान्तिदायक और मृदु-विरेचक है। यह मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में, पुराने अतिसार में, जीर्णज्वर में, तथा सूतिकारोग में उपयोगी है। औषधि प्रयोग में विशेषकर इसके बीज ही काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसका छिलका, जड, पत्ते और बीज सभी का उपयोग औषधि के रूप में किया जा चुका है। इसके पत्तों को पानी में गलाने से एक प्रकार का चिकना लुआब निकलता है। यह लुआब ज्वर मे शान्तिदायक, मूत्रनिस्सारक, सीने के दर्द में मुफीद तथा सुजाक और मूत्रनली की सूजन में लाभदायक माना गया है। इसके बीजों को अच्छी तरह से पीसकर विरेचक और कफ

निस्सारक औषधि की तौर पर दिये जाते हैं। इनकी खुराक एक से लगाकर दो ड्राम तक की है। इसकी छाल संकोचक और मूत्रल है। इसकी जड ज्वर में फायदेमंद है।

उपयोग—

विद्रधी व्रण—अतिबला की कोमल पत्तियों को बारीक पीसकर लुगदी बनाकर फोडे पर रखना चाहिये और उसपर कपडे की तह रखकर उसपर ठण्डा पानी डालते रहना चाहिये, इस प्रयोग से गाँठ मे होने वाली जलन और झपका बद होता है और गाँठ जल्दी पक कर फूट जाती है। (वनौषधि गुणादर्श)

गरमी के चट्टे—अतिबला की छाल और पुराने पत्तों को पीस कर उनको पानी मे औटाना चाहिये और जब अष्टमाश पानी शेष रह जाय तब उस काढ़े से गर्मी के चट्टो को धोने से लाभ होता है।

ज्वर—अतिबला की जड़ और सूंठ का काढ़ा पिलाने से शीत, कंप और दाहयुक्त ज्वर दो-तीन दिन में नष्ट हो जाता है।

बिच्छू का जहर—अतिबला की जड़ को घिस कर लगाने से लाभ होता है।

अतीस

नाम—
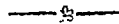
सस्कृत—भगुरा, विषा, अतिविषा। मारवाड़ी—अतीस। गुजराती—अतवस। मराठी—अतिविष। बंगाली—आतइच। पंजाबी—अतीस। तेलगी—अतिवस। द्राविडी—अतिविष। लेटिन—Aconitum Haterophylum (एकोनिटम हेट्रोफिलम)।

वर्णन—

अतीस के पौधे हिमालय में कुमायूँ से हसोरा तक, शिमला और उसके आस-पास तथा चुम्बा में बहुत होते हैं। इसका पौधा एक से तीन फुट तक ऊँचा होता है। उसकी डंडी सीधी और पत्तेदार होती है, इसके पत्ते दो से चार इच तक चौडे और नोकदार होते हैं। डंडी की जड़ से शाखाएँ निकलती हैं। इसके पुष्प बहुत लगते हैं। वे एक या डेढ इच लम्बे, चमकदार, नीले या पीले, कुछ हरे रग के बैंगनी धारी वाले होते है। इसके बीज चिकने, छाल वाले और नोकदार होते हैं। इसके नीचे डेढ-दो इंच लम्बा और प्रायः आध इच मोटा कद निकलता है। इसीको अतीस कहते हैं। इसका आकार हाथी की सूड के सदृश होता है। जो ऊपर से मोटा और नीचे की ओर पतला होता चला आता है।

यह बाहर से खाकी और भीतर से सफेद रंग का होता है। इसका स्वाद कसैला होता है। अतीस सफेद, काला और लाल ऐसे तीन प्रकार का होता है। इसमें से सफेद सबसे अधिक गुणकारी होता है।

प्रभाव और गुण दोष—

आयुर्वैदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अतीस गरम, चरपरा, कड़वा, पाचक, जठराग्नि को दीपन करने वाल तथा कफ, पित्त, अतिसार, आम, विष, खाँसी और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार अतीस किंचित उष्ण, कड़वा, अग्नि-प्रदीपक, ग्राही, त्रिदोष-पाचक तथा कफ, पित्त, ज्वर, आमातिसार, खाँसी, विष, यकृत, वमन, तृषा, कृमि, बवासीर, पीनस, पित्तोदर और सर्व प्रकार की व्याधि को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरी कक्षा में गर्म और पहली कक्षा में रुक्ष है। यह काविज और आमाशय के लिये हानिकारक है। इसके अतिरिक्त यह कामोद्दीपक, क्षुधावर्द्धक, ज्वर-प्रतिरोधक, कफ तथा पित्त जन्य विकारों को नाश करने वाला तथा बवासीर, जलोदर, वमन और अतिसार में लाभ करने वाला है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके अन्दर अतीसीन (Atisine) और एकोनाइटिक एसीड (Aconitic Acid) तथा टेनिन एसिड नामक क्षार और आलीइक, पामीटिक, स्टीयरिक, ग्लिसराइट्स, सुगर, और वानस्पतिक लुआब इत्यादि द्रव्य होते हैं। (Materia Medica of India)

आधुनिक अन्वेषण—

डाक्टर कोमान के मत से अतीस की जड़ ने भयकर पेचिश के रोगियों को तन्दुरुस्त किया और आँतों की सूजन के पुराने रोगियों को भी ठीक किया।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ सामायिक ज्वर निवारक, सकोचक, कामोत्तेजक और और पौष्टिक होती है। इसमें क्षार की मात्रा भी अधिक होती है। इसकी मात्रा एक से दो ड्राम तक अर्थात् तीन से छः माशे तक है। ढाई ड्राम तक यह सर्वथा निरापद है।

सुश्रुत, वाग्भट इत्यादि आचार्य्यों ने इसकी जड़ को सर्प और बिच्छू के विष को नष्ट करने वाली माना है। मगर आधुनिक खोजों के अनुसार इस सम्बध में यह निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

उपरोक्त अवतरणों से यह बात मालूम होती है कि यह औषधि अग्नि को दीप्त करने वाली तथा ज्वर,खून की दस्ते और पेट के कृमियों को नष्ट करने में अद्भुत शक्ति रखती है। इसके अतिरिक्त बालकों के तमाम रोगों पर यह औषधि अमृतोपम अक्सीर साबित हुई है। बालकों की बुखार, खाँसी, दस्तें, सर्दी, अजीर्ण, उल्टी, कृमि, कफ, यकृत की वृद्धि इत्यादि तमाम रोगों को यह औषधि नष्ट करती है।

उपयोग—

ज्वर—ज्वर आने के पहले इसके दो माशे चूर्ण की फकी चार २ घंटे के अन्तर से देने से ज्वर उतर जाता है।

विषमज्वर—विषमज्वर, जूड़ीबुखार और फसली के बुखार में इसके चूर्ण को छोटी इलायची और और वंशलोचन के चूर्ण में मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।

अतिसार—अतिसार और आमातिसार में दो माशे चूर्ण की फंकी देकर आठ पहर की भिगोई हुई दो माशे सोंठ को पीसकर पिलाना चाहिये।

कृमिरोग—इसके चूर्ण में वायविडङ्ग का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से कृमिरोग दूर होता है।

बालरोग—(१) अकेली अतीस को पीसकर चूर्ण कर शीशी में भर कर रखना चाहिये। बालकों के तमाम रोगों के ऊपर आँख मींचकर इसका व्यवहार करना चाहिये। इससे बहुत लाभ होता है। बालक की उम्र को देखकर इसे एक से चार रत्ती तक शहद के साथ चटाना चाहिये।

(२) अतीस, काकड़ासिंगी, नागरमोथा और बच्च चारों औषधियों का चूर्ण बनाकर ढाई रत्ती से १० रत्ती तक की खुराक में शहद के साथ चटाने से बालकों की खाँसी, बुखार, उल्टी, अतिसार वगैरह दूर होता है।

(३) अतीस, नागरमोथा, पीपर, काकड़ासिंगी और मुलेठी, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके ४ रत्ती से ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चटाने से बच्चों की खाँसी, बुखार व अतिसार बंद होता है।

(४) अतीस और वायविडंग का समान भाग चूर्ण शहद के साथ चटाने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट होते हैं।

बनावटें—

अतिविषादि अर्क—अतीस, नागरमोथा मुलेठी, काकड़ासिंगी, पीपर, बच, वायविडंग, जावपत्री, जायफल, केशर ये सब वस्तुएँ एक-एक रुपये भर लेकर चूर्ण कर उसमें २ माशे कस्तूरी मिलाकर उस चूर्ण को काँच के काग वाली स्टॉपर्ड बाटली में भरकर उसमें ४० रुपये भर रैक्टीफाइड स्पिरिट डालकर कॉग लगाकर ७ दिन तक धूप में रखना चाहिये। आठवें दिन दवा को मसलकर ब्लाटिंग पेपर में छान लेना चाहिये, इस दवा में से १ बूंद से लेकर १० बूंद तक अवस्थानुसार पानी या माँ के दूध में मिलाकर देने से बच्चों को होने वाली सर्दी, बुखार, खाँसी, कफ, निमोनिया, नमजे बेहोशी, तथा शीतकाल में बालकों के ऊपर होने वाले अनेक भयंकर रोग आराम होते हैं।

———:o:———

अदरख

नाम—

संस्कृत—आर्द्रक, शृङ्गवेर, कटुभद्र, आर्द्रशाक, आर्द्रिका । हिन्दी—आदा, अदरख । गुजराती—आदु । मराठी—आले । बगाली—आदा । पजाबी—अदरक, तैलंगी—अल्लम, द्राविड़ी—इमि शोठ । फारसी—जजबील रतब । लैटिन—Zingiber Officinale, Amomum Zingiber.

परिचय—

अदरक हिन्दुस्तान में सब स्थानों में बोया जाता है। इसका झाड़ प्रायः १ हाथ ऊँचा होता है। इसके पत्ते बॉस के पत्ते जैसे होते हैं। इसकी जड़ में एक प्रकार का कन्द होता है। उसको अदरख कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है एक चूँसेदार और दूसरा बिना चूँसेदार। यह चैत्र, वैशाख में बोया जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अदरख भेदक, भारी, तीक्ष्ण, उष्ण, दीपन, चरपरा, पाक में मधुर रुक्ष तथा वात व कफ नाशक है।

लवण-मिश्रित अदरख अग्नि को दीपन करने वाला रुचि को उत्पन्न करने वाला, प्रिय, सारक तथा सूजन वात व कफ का नाशक है। एक स्थान पर लिखा है—

> वात-पित्त-कफेभानां, शरीर वन चारिणां।
> एक एव निहंत्यत्र, लवणार्द्रक केसरी ॥

अर्थात् वात, पित्त और कफरूपी हाथी जो, शरीर रूपी वन में विचरण करते-फिरते हैं। उनको मारने के लिये एक ही महापराक्रमी लवणयुक्त अदरखरूपी सिंह है।

अदरख कुष्ट, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्त-पित्त, व्रणरोग, ज्वर, दाह, ग्रीष्मऋतु और शरदऋतु में अपथ्य है, ऐसा भाव मिश्र का कथन है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार अदरख तीसरे दर्जे मे गरम, पहिले दर्जे मे रुक्ष, पाचक, आध्मान व वायु को नाश करने वाला, क्षुधावर्द्धक, पक्वाशय की स्निग्धता व कफ को नाश करने वाला तथा पाचन-शक्ति को बढाने वाला है। यह शीत प्रकृति वाले के लिए गुणकारी और उष्ण प्रकृति वाले के लिए हानिकारक है, इसकी जडे चरपरी, अग्निवर्द्धक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, कफ निस्सारक व पेट के अफरे को दूर करने वाली होती है। यह नेत्र की ज्योति को बढाने वाला, मस्तक के कृमियों को नष्ट करने वाला, गठिया, सिरदर्द, कमर के दर्द तथा दूसरी तकलीफों में फायदा पहुँचाने वाला है।

छोटे नागपुर में इसकी ताजी जड़ को पीसकर शहद के साथ मिलाकर आग पर गरम करके खाँसी के रोगियों को दी जाती है।

कम्बोडिया में इसकी जड़े सुगन्धित व पौष्टिक द्रव्यों के रूप में काम में ली जाती हैं। फोड़े व ग्रन्थियों के ऊपर लगाने पर भी यह काम में लिया जाता है।

पेरक में इसकी जड़ की पतली २ फाँकें कृमिनाशक औषधि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

मलाबार में पयानूर नाम के स्थान में अदरख का ताजा रस जलोदर रोग में लाभ पहुँचाने वाला और मूत्र निस्सारक माना जाता है। ऐसे करीब तीन केस देखे गये हैं, जिनमें कि इसे जलोदर में औषधि के रूप में देने से लाभ हुआ है। इसके देने से पेट की सूजन में भी फायदा हुआ है। इस वनस्पति का ताजा रस तेज मूत्र निस्सारक औषधि मानी गई है। इसके देने से बीमार लोगों के दिन पर दिन मूत्र की मात्रा बढ़ती गई है। लेकिन यह औषधि पुराने हृदयरोग और ब्राइट्स डिसीज (गुर्दे की खास बीमारी जिसका सबसे प्रथम डाक्टर ब्राइट ने वर्णन किया था) में उपयोगी सिद्ध नहीं हुई बल्कि इसके उपयोग से रोगी की हालत दिन प्रतिदिन खराब होती गई है। (इंडियन मेडिकल प्लान्ट्स)

कर्नल चोपरा के मतानुसार अदरख पेट के अफरे को दूर करने वाला और पाकस्थली की अँतड़ियों को उत्तेजित करने वाला है। यही कारण है कि भारतीय चिकित्सा-शास्त्रों के अन्दर इसको इतना अधिक महत्व दिया गया है। यह कोष्ठवायु के लिये एक प्रकार का भेदक इलाज है। इसके मिश्रण से भारतीय व ब्रिटिश औषधि-विज्ञान में कई औषधियाँ बनाई जाती हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

अदरख में १ प्रतिशत से लगाकर ३ प्रतिशत तक एक प्रकार का पीले रंग का तेल रहता है। जोकिउड़नशील होता है। जेमिका के अदरख में यह १ प्रतिशत रहता है, अफ्रिका के अदरख में (दाहक तत्व) तीक्ष्ण तत्व रहते हैं, वे उड़नशील नहीं होते। इसके वैज्ञानिक तत्त्व क्या हैं? इसका पता अभी नहीं लगा है।

सोंठ व अदरख ये दोनों एक ही वस्तु हैं। गीली हालत में जब सोंठ रहती है तब उसे अदरक कहते हैं जब सूख जाती है तब सोंठ कहते हैं। भारतीय वैद्यक-शास्त्र में प्राचीनकाल से ही सोंठ का उपयोग इतना अधिक किया गया है कि जिसका विवेचन नहीं किया जा सकता। इस औषधि पर आर्षग्रन्थकारों कि इतनी श्रद्धा रही है कि प्रत्येक औषधि, चूर्ण, काढ़ा, गोली, पाक, अवलेह इत्यादि सब में इसका उपयोग उन लोगों ने किया है। इसका वर्णन हम आगे चलकर सोंठ के प्रकरण में करेंगे। अदरक के रस का उपयोग भी स्थान-स्थान पर किया गया है। कई औषधि की निश्चित अनुपान के अन्दर अदरक का रस ज्यादा पसन्द किया गया है।

उपयोग—

जलोदर—पाँच तोले ताजे अदरक को कूट कर उसका रस निकाल लेना चाहिये। उस रस

के बराबर की मिश्री उसमें मिलाकर जलोदर के रोगी को पहले दिन प्रातःकाल देना चाहिये । दूसरे दिन ७॥ तोले अदरक का रस निकाल कर समान भाग मिश्री के साथ देना चाहिये ! इस प्रकार प्रतिदिन २॥ तोले अदरक का रस बढ़ाते हुए चले जाना चाहिये । जब यह मात्रा २५ तोले तक पहुँच जाय तब फिर उसको २॥ तोले प्रतिदिन के हिसाब से घटाना चाहिये । जब वह पूर्व की अर्थात् ५ तोले की मात्रा पर आ जाय, तब औषधि को बन्द करना चाहिये । अगर इतने पर भी सूजन का कुछ अंश बाकी रह जाय तो फिर उसे घटती-बढ़ती मात्रा में अदरक के स्वरस का सेवन करना चाहिये । जब तक औषधि चालू रहे तब तक रोगी को केवल दूध का आहार देना चाहिये ।

बहुमूत्र—अदरक के रस में मिश्री मिलाकर दिन में दो बार देने से बहुमूत्र रोग में लाभ होता है ।

वमन—एक तोले अदरक के रस को १ तोला प्याज के रस के साथ देने से उल्टी व जी की मिचलाहट बन्द होती है ।

हैजा—अदरक का रस १ तोला, आक की जड़ १ तोला, इन दोनों को यहाँ तक खरल करे कि गोली बनाने योग्य हो जावे, फिर इसकी कालीमिर्च के बराबर गोली बना लेना चाहिये । इन गोलियों को कुन-कुने पानी के साथ देने से हैजे में लाभ पहुँचता है । इसी प्रकार अदरक का रस व तुलसी का रस समान भाग लेकर उसमें थोडी सी शहद अथवा उसमें थोड़ी-सी मोर के पख की भस्म मिलाने से भी हैजे मे लाभ पहुँचता है ।

खाँसी व श्वास—अदरक के रस मे शहद मिलाकर चटाने से श्वास, खाँसी, जुकाम व कफ मिटता है ।

सूजन—अदरक के स्वरस में पुराना गुड़ मिलाकर पिलाने से सारे शरीर की सूजन उतरती है । परन्तु इस प्रयोग का सेवन करते समय केवल बकरी का दूध पिलाना चाहिये ।

कान का दर्द—अदरक के रस को कुन-कुना करके कान में डालने से कान का दर्द मिटता है ।

जोडों का दर्द—अदरक के एक सेर रस में तिल्ली का आधा सेर तेल डालकर आग पर चढ़ाना चाहिये । जब रस जलकर तेलमात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये । इस तेल की शरीर पर मालिश करने से जोडों की वात-पीडा मिटती है ।

कामला—अदरक, त्रिफला और गुड़ तीनों को मिलाकर पीने से कामला रोग मिटता है ।

मन्दाग्नि—इसके रस में निम्बू का रस मिलाकर पिलाने से मन्दाग्नि दूर होती है ।

दन्त पीडा—सर्दी की दन्तपीड़ा में इसके टुकड़े को दाँतों के बीच मे दबाने से लाभ होता है ।

बनावटें—

आर्द्रक अवलेह—पुराना गुड १ पाव, १ सेर अदरक के रस मे मिलाकर उसकी पतली चासनी करें, फिर उसमें तज, पत्रज,नागकेसर, छोटी इलायची,लवंग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपर आधी-आधी

छटाँक लेकर महीन चूर्ण कर उस चासनी में मिला दें। इस अवलेह को ३ माशे से १ तोले सवेरे-शाम चाटने से श्वास, खाँसी, मन्दाग्नि, कब्जियत तथा अरुचिरोग दूर होते हैं।

अन्तमूल

नाम—

संस्कृत—मलाएड, अरणडमल, पूति, अम्भपर्णी। हिन्दी—खडकी रास्ना, जङ्गली पिकवन। बंगाली—अन्तोमूल। उड़िया—मेरडी। मराठी—पितकारी। तैलगू—कुककपाल। लैटिन—Tylophora Asthmatica.

वर्णन—

यह एक प्रकार की बहु-वर्ष जीवी लता है। इसकी जड़ें घनी और रसपूर्ण होती हैं। इसकी लकडी नरम होती है। इसकी शाखाएँ अधिक नहीं होतीं। इसके फूल बडे और छत्र के आकार के होते हैं। इसके पुष्प-कोष बाहर से रुएँदार होते हैं। इसके बीज पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। ये बीज चौकोर आकार के लम्बाई लिये हुए होते हैं। यह औषधि भारत के मैदानों, सिलोन, श्याम और मलाया द्वीप समूह में पायी जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी निघण्टों में इस औषधि का कहीं भी वर्णन नहीं पाया जाता। सिर्फ भावप्रकाश के अन्दर मलाएड नाम से एक औषधि का वर्णन पाया जाता है और उसके सम्पूर्ण गुण और स्वभाव इस औषधि से मिलते हैं। इससे कई लोगों का अनुमान है कि मलाएड और अन्तमूल एक ही वस्तु है।

लेकिन आधुनिक औषधि विज्ञान के अन्वेषणों में यह औषधि बहुत चमत्कारिक साबित हुई है। यह औषधि ऐलोपेथिक की प्रसिद्ध औषधि इपिकेकाना की उत्तम प्रतिनिधि सिद्ध हुई है। आयुर्वेद के अन्दर वमनकारक द्रव्यों में जिन प्रसिद्ध औषधियों के नाम आते हैं, यह औषधि भी अपने में उनसे कम प्रभाव नहीं रखती है। इसके सूखे पत्ते वमनकारक, ज्वरनिवारक और कफ निस्सारक होते हैं। यह पेट के ज्यादा भर जाने पर या उन बीमारियों में जिनमें वमनकारक औषधियों की आवश्यकता होती है बहुत ही उपयोगी है। पेचिश, जुकाम और उन बिमारियों में जिनमें अंग्रेजी दवा इपिकेकाना व्यवहृत होती है, यह बहुत अच्छा प्रभाव दिखलाती है।

कोकण में इस औषधि के रस को सुखाकर गोलियाँ बनाई जाती हैं, जो पेचिश की बीमारी के काम में आती है। इसके पत्तों का काढ़ा व इसकी जड़ की छाल का काढ़ा पेचिश, श्वास और वायु-नलियों के प्रदाह को दूर करने के उपयोग में लिया गया है और इसका बड़ा सन्तोषजनक परिणाम हुआ है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके सूखे पत्तों का चूर्ण पाँच से लेकर सात रत्ती की मात्रा में, या इसकी जड़की छाल का चूर्ण भी इसी मात्रा में दिन में दो तीन बार देने से प्रवाहिका और पेचिश में लाभ पहुँचता है। वायुनलियों के प्राचीन प्रदाह में और खाँसी में भी यह एक उत्तम कफ निस्सारक औषधि मानी गई है। यह औषधि इपिकाना की प्रतिनिधि है, इसमें टाइलो-फोराइन नामक एक क्षारीय सत्व रहता है।

डाक्टर मोहीदीन शरीफ का कथन है कि "इस देश के सँपेरों में सर्पविष को दूर करने के लिए यह औषधि प्रसिद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि जब नेवले को साँप काट लेता है तब वह इसी पौधे से अपना विष नष्ट करता है।"

"वमन कराने वाली औषधियों में तथा प्रवाहिका (पतले दस्त) की चिकित्सामें यह औषधि देशी औषधियों में इपिकोना की सर्वोत्तम प्रतिनिधि है। दस से बीस रत्ती तक इसका चूर्ण लेकर उसमें दस बूँद टिंचर ओपियाई मिलाकर दिन में तीन-चार बार देने से यह सफलतापूर्वक उपरोक्त रोगों को दूर करता है।"

"सर्प-दंश को दूर करने में एमोनिया के पश्चात् दूसरी औषधियों की अपेक्षा अन्तमूल पर मेरा अधिक विश्वास है, सर्पदंशित मनुष्य को जब तक स्वतन्त्ररूप से वमन न आने लगे तब तक अन्तमूल का ताजा रस थोड़ी २ देर पर देते रहने से अच्छा प्रभाव होता है। देशी औषधियों के व्यापक अनुभव के पश्चात् मुझे विश्वास हो गया कि इस देश की चार-पाँच सर्वोत्तम वामक (उल्टी लाने वाली) औषधियों में अन्तमूल भी एक प्रधान औषधि है। मिनैली तथा मैनफल के पश्चात् वामक औषधियों में इसका नम्बर है, वैसे तो इसका पञ्चाङ्ग ही वामक है, पर प्रवाहिका रोग में इसकी जड़ ही प्रधान रोग निवारक है।"

उपयोग—

प्रवाहिका—प्रवाहिका रोग में इसके पत्तों का चूर्ण साढ़े सात रत्ती, अफीम आधी रत्ती और थोड़ा-सा बबूल का गोंद मिलाकर देने से अच्छा लाभ होता है।

शिर दर्द और वातवेदना—इसकी जड़ को घिसकर सिर पर लेप करने से वातजनित शिर-पीड़ा दूर होती है।

हूपिंग कफ़—(कुक्कुर खाँसी) हूपिंग कफ की प्रथम अवस्था में इसका ढ़ाई रत्ती चूर्ण, २ माशे मुलैठी के शर्बत और सवा तोला पानी के साथ दिन में दो बार देने से लाभ होता है।

अतिसार—अतिसार की प्रथमावस्था में अगर ज्वर भी हो तो इसका पाँच रत्ती चूर्ण, ढ़ाई तोला जल, तीन माशे कीकर का लुआब और २ चाँवल भर अफीम के साथ देने से लाभ होता है।

अंधाहूली

नाम—

संस्कृत—अन्धः पुष्पी, रोमालु, दारपिका। हिन्दी—अन्धाहूली,। मराठी—जिन्धी, गावोजा। गुजराती—ऊँधाहुली,। बंगाली—चेतरहूली। लेटिन—Trichodesma Indicum (ट्राईकोडेस्मा इंडिकम)

विवरण—

अंधाहूली के झाड़ बरसात के दिनों में बहुत पैदा होते हैं। ये १ से लेकर २॥ फीट तक ऊँचे होते हैं। इनकी शाखाएँ जमीन के ऊपर फैली हुई रहती है। इन शाखाओं का रंग हलका हरा तथा लाल होता है। इसके पत्ते रुएँवाले चार इंच लम्बे तथा १ से १॥ इंच तक चौडे होते हैं, इसके फूल कुछ हलके हरे रंग के तथा नीले होते हैं ये उल्टे लटके हुए रहते हैं। इसका फल जब पूरा पक जाता है, तब कुछ हरा रंग लिये हुए या पूरा सफेद हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

प्राचीन आयुर्वेदिक निघंटों में इस वनस्पति का कुछ भी वर्णन नहीं पाया जाता। केवल शालिग्राम-निघंटु के अन्दर इसके विषय में इतना ही लिखा हुआ है कि अंधाहूली नेत्रों को हितकारी, और गूढगर्भ को अपकर्षण करने वाली है।

गूढगर्भ के सबन्ध में आधुनिक खोजों के अनुसार भी यह औषधि बहुत उपयोगी साबित हुई है। वात-दोष से अथवा और दूसरे कारणों से कुछ स्त्रियों के पेट में रहा हुआ गर्भ सूख जाता है। यह गर्भ ज्यों-ज्यों सूखता जाता है त्यों त्यों पेट की वृद्धि इत्यादिक गर्भ चिन्ह मिटते चले जाते हैं। इस प्रकार कुछ दिन महीने या वर्षों तक चलता रहता है,फिर जब अनुकूल संयोग मिलते हैं, तब यह गर्भ फिर पीछे बढ़ने लगता है और पीछे सब गर्भ के चिन्ह नजर आने लगते हैं। मगर थोडे ही समय के बाद वह गर्भ फिर सूखने लगता है और इस प्रकार वर्षों गुजर जाते हैं। मगर न तो वह गर्भ नष्ट होता है और न प्रसव होता है। इसीको गूढगर्भ कहते हैं।

इस रोग के लिये अभी तक कोई भी सफल चिकित्सा नहीं पाई गई है। परन्तु इस औषधि के उपयोग लेने वालों का कथन है कि इस वनस्पति के झाड का स्वरस प्रति दिन सवेरे-शाम चार २ तोले की खुराक में गूढगर्भा स्त्री को पिलाया जाय तो कुछ ही समय में गूढगर्भ निकल जाता है। इस प्रकार जो कार्य्य दूसरी किसी भी औषधि और अन्य क्रिया से नहीं हो सकता, वह इस दवा के द्वारा चमत्कारिक ढंग से हो जाता है।

उपयोग—

जोड़ों की सूजन—इसकी जड़ को पीस कर लेप करने से जोड़ों की सूजन में लाभ पहुँचता है।

बच्चों की पेचिश—इसको पानी के साथ मिलाकर देने से बच्चों की पेचिश मे लाभ पहुँचता है।

ज्वर—हक्स गूलर का कथन है कि लासवेला में इस औषधि को ज्वर दूर करने के उपयोग में लेते हैं।

सर्प-दंश—मेडिकल प्लाट्स के लेखक मेजर वसु और डा० कीर्तिकर इसे सर्प-दश में भी उपयोगी मानते हैं। गारूडी ग्रन्थों में भी इसको सर्प-दश के लिये उपयोगी माना है। एक स्थान पर कहा है—

ऊँधा फूली जड़ को आन, दो पैसा भर जल सँग पान।
सर्प-विष कोई ना रहै, सिद्धनाथ योगी यूँ कहे॥

मगर केस और महेस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प-दश में बिल्कुल निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

——:०#०:——

अनन्नास

नाम—

संस्कृत—अंनंनास, कौतुलसञक। हिन्दी—अनन्नास। मराठी—अननस। गुजराती—अनंनास। लैटिन—Annassa Sativa. (अननास सेटिवा)।

वर्णन—

यह वृक्ष आजकल हिन्दुस्तान के दक्षिणी और पूर्वी प्रान्तों में बहुत पैदा होता है। पहिले यह हिन्दुस्तान में पैदा नहीं होता था। इसके पत्ते केवड़े के पत्तों के समान होते हैं। पौधे के बीज में से बालियाँ निकलती हैं, जिसपर फल उत्पन्न होते हैं। फल के ऊपर कटे हुए आकार के छिलके होते हैं। फल का रग पीला या कुछ ललाई लिये होता है। इसकी जड़ गुँवार पाठे की जड़ के समान होती है। इसके कच्चे फल का स्वाद खट्टा और पके हुए का खट-मीठा होता है।

प्रभाव और गुण दोष—

आयुर्वेदिक मत—निघंटु-रत्नाकर मतानुसार कच्चा अनन्नास रुचिकारक, हृदय को हितकारी, भारी, कफ-पित्तकारक, रुचिवर्द्धक तथा श्रमनाशक है। इसका पका फल स्वादिष्ट, पित्तकारक तथा रस विकार और आतप-विकार को दूर करता है।

इसके सिवाय आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसका कोई और उल्लेख नहीं मिलता। क्योंकि उस समय में यह फल यहाँ पैदा नहीं होता था।

यूनानी मत—मखजनूल अदविया के लेखक मीर महम्मद हुसेन के मतानुसार अनन्नास दो प्रकार का होता है। पहिला साधारण, दूसरा क्षुद्र जो अत्यन्त मधुर और स्वादिष्ट होता है। इसकी प्रकृति दूसरे दर्जे में सर्द और तर तथा किसी-किसी के मत से पहिले दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे

में तर है। यह स्वरयन्त्र और श्वासोच्छ्वास सम्बन्धि अंगो को नुकसान पहुँचा है। अन्ननास का प्रतिनिधि सेब है।

अनन्नास पित्त की तेजी तथा यकृत और आमाशय की तेजी को नष्ट करने वाला, हृदय को बल देने वाला, प्रसन्नता पैदा करने वाला और मूर्छा को दूर करने वाला है। यह मस्तिष्क और आमाशय को ताकत देने वाला और निर्बल तथा शोर प्रकृति को बल देने वाला है।

मेजर वसु और डा० कीर्तिकर के मतानुसार इसके पत्तों का ताजा रस एक उत्तम कृमिनाशक औषधि मानी गई है और इसके फलों का रस शीतादि रोगों को नष्ट करने वाला माना गया है। कम्बोडिया में इसके फल और इस वृक्ष की जड़ें मूत्र निस्सारक समझी जाती हैं। इसका इस्तेमाल सुजाक और मूत्रकृच्छ्र की बीमारी में भी किया जाता है। गुरदे की पथरी में भी यह उपयोगी माना गया है। कहीं-कहीं पर इसके कच्चे फल को काट कर उबालते हैं, और मूत्रेंद्रिय सम्बधी बिमारी के अन्दर पीने में काम में लेते हैं।

डा० चोपड़ा के मतानुसार इसके ताजे फलों का रस शक्कर के साथ मिलाकर कृमि-नाशक और दस्तावर औषधि के रूप में दिया जाता है। इसके पत्ते कृमि-नाशक हैं और फल एक प्रकार की गर्भस्रावक औषधि है।

प्रयोग—

आँतों के रोग—इसके पत्तों का रस पिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं।

हिचकी—इसके पत्तों के रस को शक्कर के साथ पिलाने से हिचकी बन्द होती है।

पेट की जलन—इसके पके फल का रस पिलाने से ज्वर से उत्पन्न हुई पेट की जलन शान्त होती है।

मूत्र-वृद्धि—इसके फल के रस में मिश्री मिलाकर पीने से मूत्र-वृद्धि होती है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।

मासिकधर्म—इसके पत्तों का रस पिलाने से असमय में रुका हुआ मासिकधर्म फिर से शुरू होता है।

पित्तोन्माद—इसके एक भाग रस में दो भाग बूरा मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

कृमिरोग—इसके पत्तों के सफेद भाग को मिश्री के ताजे रस के साथ पिलाने से कृमि-रोग मिटता है और साफ दस्त आता है।

बनावटें—

इसके फल के रस से शर्बत बनता है, जो पित्त को शमन करने वाला और प्रसन्नता को पैदा करने वाला होता है। इसी प्रकार इसके फल को काट करके उसका मुरब्बा भी बनाते हैं। जो भी यही गुण रखता है।

अनार

नाम—

संस्कृत—दाड़िम । हिन्दी—अनार । मराठी—डालिंब । गुजराती—दाड़म । बंगला—दाड़िम । करनाटकी—दारलिब । तेलंगी—डानिबचेट्टु । तामील—मादलई चेट्टुं । फारसी—अनार । अरबी—रूमान हामिज । लेटिन—Punica Granatum. (प्यूनिका ग्रेनेटम)

वर्णन—

अनार का वृक्ष प्रायः सर्वत्र बगीचों में होता है । इसे प्रायः सभी लोग जानते हैं, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यक्ता नहीं है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—भावप्रकाश के मतानुसार अनार तीन प्रकार का होता है । एक मीठा, दूसरा खट-मीठा, तीसरा केवल खट्टा । मीठा अनार—त्रिदोषनाशक, तृषा, दाह, ज्वर हृदयरोग, कंठरोग, और मुखरोग को दूर करने वाला, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक, हलका, किंचित कसेला, मलरोधक, स्निग्ध, मेधाजनक और बलवर्द्धक है । खट-मीठा अनार—दीपन, रुचिकारक, किंचित पित्तकारक, और हल्का है । खट्टा अनार—पित्तकारक, खट्टा तथा वात और कफ नाशक है ।

आयुर्वेद के मतानुसार इसकी छाल और जड़ वायु नलियों के प्रदाह में उपयोगी तथा अतिसार को रोकने वाली और कृमिनाशक है । इसके फूल नाक से बहने वाले खून में बहुत लाभकारक हैं । इसका कच्चा फल पौष्टिक, पाचक, क्षुधावर्द्धक, पित्तकारक और वमन को रोकने वाला है । इसका पका फल पौष्टिक, आँतों को सिकोड़ने वाला, कामोद्दीपक, पित्तनाशक और त्रिदोष को नाश करने वाला है । प्यास, शरीर की जलन, बुखार, हृदयरोग, गले की बीमारियाँ और मुख की सूजन में भी इसका पका फल उपयोगी है । इसके फल का छिलका कृमिनाशक, रक्तातिसार और खाँसी में लाभ दायक है ।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सा के मतानुसार मीठा अनार पहले दर्जे में सर्द और तर है । खट्टा अनार दूसरे दर्जे में सर्द और रूक्ष है । खट-मीठा अनार, पहिले दर्जे में सर्द और तर है । अनार के बीज पहले दर्जे में सर्द और तर हैं ।

मीठा अनार—खून को पैदा करने वाला, रस क्रिया को दुरुस्त करने वाला, मूत्र निस्सारक, पेट को मुलायम करने वाला, यकृत को शांति देने वाला, कामोद्दीपक तथा कामेंद्रियों को बल प्रदान करने वाला है ।

खट्टा अनार—छाती की जलन तथा आमाशय और यकृत की गर्मी को शांत करने वाला तथा खून के प्रकोप, ज्वर-जन्य अतिसार और वमन में लाभदायक है ।

खट-मीठा अनार—पैत्तिक वमन, अतिसार और खुजली में लाभ पहुँचाने वाला, आमाशय को बल प्रदान करने वाला व हिचकी को नष्ट करने वाला है ।

सब तरह के अनार—मूर्च्छा में लाभ पहुँचाने वाले, हृदय को बल देने वाले और खाँसी को नष्ट करने वाले होते हैं। बेदाना अनार सब अनारों में उत्तम होता है।

उपरोक्त वर्णन से मालूम होता है कि अनार के अन्दर हृदय को बल देने की और कृमियों को नष्ट करने की अच्छी शक्ति है। विशेष कर पेट के अन्दर चपटी जाति (Tape Worm) के कीड़े पड़ते हैं, उनको नष्ट करने में अनार बहुत अक्सीर वस्तु है। ब्रिगेड सरजयन्ती-जॉइट एम० डी० का कथन है कि अनार की जड़ की छाल के समान चपटे कृमियों को नष्ट करने वाली दूसरी कोई दवा नहीं है। इसका उपयोग करने की तरकीब यह है—

अनार की जड़ की छाल ५ तोला लेकर २॥ सेर पानी में २४ घंटे तक भिगोना चाहिये। उसके बाद मल-छानकर उबालना चाहिये, जब सवा सेर पानी बाकी रह जाय तब उसके तीन भाग करके दो-दो घंटे में एक-एक भाग रोगी को भूखे पेट पिलाना चाहिये, उस रोज रोगी को कुछ भी खाने के लिये नहीं देना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल एरंडी के तेल का जुलाब देना चाहिये। जिससे तमाम टेप वर्म्स मरी हुई हालत में सही सलामत ढंग से निकल जाते हैं। इन कृमियों को नष्ट करने में जहाँ अन्य औषधियाँ निष्फल हो जाती हैं, वहाँ यह औषधि कभी निष्फल नहीं जाती।

कर्नल चोपड़ा का कथन है कि यह फल बहुत उपयोगी है। कृमि उपचार के लिये इसकी उपयोगिता अमूल्य मानी गई है। टेप वर्म्स के नाश के लिये इसकी बहुत तारीफ की गई है। इसके देने की तरकीब यह है कि इसकी जड़ का ताजा छिलका १ छटाँक लेकर १। सेर पानी में औटाया जाय, जब आधा सेर पानी रह जाय तब ठंडा करके छान लिया जाय।। इसमें से एक छटाँक भर पानी प्रातःकाल ही खाली पेट दिया जाय। शेष पानी की चार खुराकें करके हरएक खुराक आधे २ घंटे के अन्दर देदी जाय। उसके पश्चात् अरंडी के तेल का जुलाब दे दिया जाय। इससे आँतें साफ होकर पेट के सब कीड़े बाहर निकल पड़ते हैं।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डॉ० नाडकरनी, डाक्टर वामन गणेश देसाई M. B. इत्यादि महानुभाव भी उपरोक्त विधि का जोरों के साथ समर्थन करते हैं।

कृमियों के अतिरिक्त नकसीर के अन्दर भी इसके फूलों का रस बहुत फायदेमंद साबित हुआ है।

डाक्टर नॉडकरनी का कथन है कि दाडिम के फूल का रस और दूर्वा का रस समान भाग लेकर सुंघाने से नाक के अन्दर से गिरने वाला खून बंद हो जाता है।

बंगाल के सिविल सर्जन डाक्टर बसु लिखते हैं कि नकसीर के बड़े एक केसों में अनार के फूलों का रस सुँघाने से बहुत लाभ होता हुआ दिखलाई दिया है।

उपयोग—

सूखा रोग—यह रोग प्रायः बच्चों को होता है। रोग होने पर बच्चा दिन-ब-दिन सूखता हुआ चला जाता है, उसका पेट कठिन हो जाता है। इस रोग में अनार की जड़ की छाल का क्वाथ (काढ़ा)

नाकर देने से बहुत लाभ होता हुआ दिखाई दिया, यह काढ़ा बड़े मनुष्यों की कमजोरी, यकृत की वृद्धि जीर्णज्वर इत्यदि रोगों में भी लाभ पहुँचाता है।

कामला—अनार का रस ६-७ तोले और जरिश्क ६ माशे मिलाकर दोनों टाइम पिलाने से कामला रोगी को लाभ पहुँचता है।

खाँसी—अनार के फल के छिलके को मुँह में रख कर उसका रस चूसने से खाँसी में लाभ होता है।

खूनी अतिसार--कुटज और अनार के वृक्ष की छाल इन दोनों का काढ़ा बनाकर शहद के साथ देने से दुर्दमनीय रक्तातिसार में भी फौरन लाभ पहुँचता है।

बवासीर—अनार के वृक्ष की छाल के काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाकर पिलाने से बवासीर से बहता हुआ खून बद होता है।

उन्माद और हिस्टिरिया—अनार के पत्ते १ तोला, गुलाब के ताजे फूल १ तोला, दोनों को आधा सेर पानी में औटाकर आधपाव पानी शेष रहने पर उसको छानकर १ तोला गरम-गरम गाय का घी मिलाकर सुबह-शाम पिलाने से हिस्टिरिया और उन्माद में लाभ होता है।

कुच-कठोर—स्त्रियों के यौवन की शोभा उनके कुचों की कठोरता में समाई हुई है। यदि उसमें किसी प्रकार की खामी होती है तो दम्पति के बीच में जैसी चाहिये वैसी प्रीति नहीं रह सकती। अनार के वृक्ष के अंदर यह गुण बहुत बड़ी मात्रा मे है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है।

अनार के झाड़ का पचाग अर्थात् फल, फूल, पत्ते, छाल और जड़े सब मिलाकर, २ सेर वजन लेकर उसको कूटकर ६ सेर पानी और २ सेर सिरके में ३ दिन तक भिगो देना चाहिये। उसके पश्चात् उसको औटाकर जब २ सेर पानी शेष रह जाय, तब छानकर लोहे की कढ़ाई में डालकर १ सेर बादाम का तेल तथा १० तोला थूहर का हरा गर्भ डालकर मदाग्नि से पकाना चाहिये। जब पानी और थूहर का गर्भ जल जाय तब उसको उतार कर छानना चाहिये। उसके पश्चात् उसे फिर हल्की आँच पर चढ़ाकर उसमें १। रुपये भर हीराबोल (बीजा बोल) का चूर्ण डालकर खूब हिलाना चाहिये। जब अच्छी तरह से मिल जाय तब उतारकर बोतल में भर कर ७ दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये। इसके पश्चात् उपयोग में लेना चाहिये।

इस तेल को प्रतिदिन सवेरे शाम कुचों पर मालिश करना चाहिये। फिर ढीले पड़े हुए कुचों को उठाकर कपड़े का पट्टा बाँधना चाहिये। कुछ समय तक इस तेल का प्रयोग करने से कुच अनार की तरह कठोर हो जाते हैं। (जगलनी जड़ी-बूटी)

स्त्री-प्रदर—अनार की जड़ की छाल ५ रुपये भर लेकर एक सेर पानी में उबालना चाहिये। जब आधा सेर पानी शेष रह जाय तब उसमे ३ तीन माशे फिटकरी डालकर उस पानी की पिचकारी लेने से स्त्रियों के श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, गर्भाशय के व्रण इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचता है।

कंठमाला, भंगदर इत्यादि—अनार के पत्तों का रस १ सेर, सत्यानाशी का रस १ सेर, गोमूत्र १ सेर, काले तिलों का तेल २ सेर, अनार के पत्तों की लुग्दी आधा सेर, सबको मिला कर आग पर चढ़ाना चाहिये। जब सब द्रव्य जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर ठडा करलें, इस तेल के लगाने से कठमाला, भगदर, कोढ़ के जख्म, दाद, चेहरे के काले धब्बे, कील, झाँई इत्यादि रोग दूर होते हैं। इसको दिन में तीन बार लगाने से हाथी पाँव (श्लीपद) में भी लाभ पहुँचाता है।

सिर की गंज—अनार के पत्तों को पानी में पीसकर दिन में दो बार मालिश करने से गंज दूर होती है।

बहिरापन—अनार के पत्तों का रस १ सेर, बिल्व पत्रों का रस १ सेर गाय का घी १ सेर तीनों वस्तुओं को मिलाकर हलकी आँच पर पकाना चाहिये। जब घी मात्र शेष रह जाय तब उतार कर ठडा कर लेना चाहिये। इसमें से २ तोला घी, पावभर गाय के दूध के साथ मिश्री मिलाकर पीने से कानों का बहिरापन दूर होता है।

जहरी जानवरों का डंक—अनार के हरे पत्तों को पीसकर भिड़, बर्र, ततैया, मधुमक्खी, बिच्छू इत्यादि जहरी जानवरों के डक पर मसलने से लाभ होता है।

बृहत् दाड़िमाष्टक चूर्ण—अनार दाना ३२ तोले, मिश्री ३२ तोले, पीपर ४ तोले, पीपलामूल ४ तोले, अजमोद ४ तोले, कालीमिर्च ४ तोले, धनियाँ ४ तोले, जीरा ४ तोले, सोंठ ४ तोले, बंशलोचन १ तोला, दालचीनी ८ माशा, तेजपात ८ माशा, इलायची के बीज ८ माशे, नागकेसर ८ माशे, इन सब वस्तुओं को कूट पीसकर चूर्ण कर लेना चाहिये। इस चूर्ण की ३ माशे की खुराक दिन में दो-तीनबार लेने से अतिसार, क्षय, गोला, संग्रहणी, मंदाग्नि, खाँसी, गले के रोग इत्यादि में लाभ पहुँचता है।

दाड़िम पुटपाक—एक अनार को साबित लेकर उस पर बड के पत्ते लपेट कर डोरे से बाँध दो, फिर उसपर कपड मिट्टी कर सुखालो, जब सूख जाय तब उसे जगली कंडों की आग में पकालो। पकने पर ठंडा कर उसकी मिट्टी दूर करलो। फिर इस अनार को कपडे में रखकर जोर से दबाकर रस निकाल लो। इस रस में शहद मिलाकर तीन तोले तक की खुराक में लेने से अतिसार, आम के दस्त, खूनी दस्त इत्यादि रोग आराम होते हैं।

शर्बत अनार—पानी के अंदर एक सेर चीनी डालकर उसकी चाशनी करलो, उसके बाद उसमें आधा सेर अनार का रस डालकर उसकी एक तार की चाशनी करके बोतलों में भर दो। इस शर्बत को २ तोले से ढाई तोले तक की मात्रा में लेने से दिल की जलन, आमाशय की जलन, घबराहट, मूर्छा, प्यास, इत्यादि शिकायतें दूर होती हैं। यह शर्बत हृदय को बलकारी है।

———:०:———

अनास-फल

नाम—

हिन्दी—अनास फल। बंगाली—बादियान। मराठी—अनसफल। फारसी—बादियाने खताई, राजियानहे खताई। तैलगू—अनासा पुब्बू। लैटिन—Illıcıum Relıgısum.

पहिचान—

यह एक प्रकार का झाड़ीदार वृक्ष होता है। इसकी शाखाएँ नीचे से ही फूटतीं हैं। इसके पत्ते नरम और दोनों तरफ से नोकदार होते हैं। इसके फूल में अठारह के करीब पंखड़ियाँ होतीं हैं। यह हिमालय में चार हजार से पाँच हजार फीट तक की ऊँचाई पर होता है।

गुण—

इसके बीज सुगन्धित, उत्तेजक और पेट के आफ़रे को दूर करने वाले होते हैं। इनको परिश्रुत करने से इनमें से सौंफ की तरह एक प्रकार का तैल प्राप्त होता है। इसीसे यह औषधि सौंफ के स्थान में व्यवहृत होती है।

अनोना मुरीकेटा

नाम—
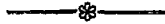
तामील—पूलिफल, मुलुचिता। कनाड़ी—मुलुरामफल। लैटिन—Annona Muricata.

वर्णन—

यह वनस्पति अमेरिका में विशेषरूप से पैदा होती है, मगर कुछ समय से पूर्वीभारत में भी लगाई जाने लगी है। यह एक छोटे कद का हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष होता है। इसके पत्तों में गंध आती है। इनकी नोक तीखी होती है। ये ऊपर से चमकीले और नीचे से मटमैले होते हैं। इसके फूल बड़े होते हैं। इनकी बाहरी पंखड़ियाँ मोटी और दलदार रहती हैं तथा भीतरी पंखड़ियाँ छोटी और पतली रहती है। इसका फल गोल, बड़ा, दलदार और मनुष्य के दिल की शकल का होता है। इसका रंग गहरा हरा रहता है। इसका छिलटा फिसलना और गंधयुक्त होता है। इसका गूदा सफेद और रसदार रहता है। यह स्वाद में कुछ खट्टा होता है और इसमें आम से मिलती हुई गंध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद और यूनानी ग्रंथों में न तो इस औषधि का नाम ही मिलता है और न वर्णन ही। आधुनिक वानस्पतिक अन्वेषणों में इस औषधि का उल्लेख हुआ है।

इण्डियन मेडिकल प्लांट्स के मतानुसार इसके बीज वमनकारक और संकोचक होते हैं, इसकी जड़ आक्षेपनिवारक मानी जाती है। इसके पत्ते ज्वर में उपयोगी हैं और पीब निकालने के लिये ये घाव पर लगाये जाते हैं। इसके फूल और इसकी कलियाँ खाँसी की बीमारी में उत्तम होती हैं। इसके सुखाये हुए कच्चे फल जीर्ण आमातिसार में उपयोगी समझे जाते हैं। इनका प्रयोग काढ़े के रूप में किया जाता है।

आम्कोन के अन्दर इसके पत्तों को गरम पानी में उबाल कर या तेल के साथ पीसकर अर्बुद (गठान) को पकाने के लिये बाँधे जाते हैं। इसकी जड़ कृमिनाशक होती है।

अनंतमूल

नाम—

संस्कृत—उत्पल सारिवा। हिन्दी—गौरीसर, अनंतमूल। बंगाली—अनतमूल। मराठी—ऊपरसाल। गुजराती—उपलसरी, कावरवेल, धूरीवेल, कालीवेल। लेटिन—(Hemi Desmus Indicus) हेमी डेसमस इन्डिकस। अंग्रेजी—Indian Sarsaparilla (इन्डियन सार्सापरीला)

वर्णन—

यह औषधि उत्तर हिन्दुस्तान में बांदा से अवध और सिक्किम तक और दक्षिण में ट्रावनकोर और सिलोन तक पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होती है। इसकी लताएँ गहरे लाल रंग की होती हैं। पत्ते तीन-चार अंगुल लम्बे जामुन के पत्तों के समान होते हैं। इन पत्तों पर सफेद रंग की लकीरें होती हैं। इन पत्तों को तोड़ने से उनमें दूध निकलता है। इसके फूल छोटे और सफेद रंग के होते हैं। उनके ऊपर फलियाँ लगती हैं और फलियाँ फटने पर उसमें से रूई निकलती है। इसकी जड़ लम्बी, गोल और टेढ़ी-मेढ़ी रहती है। जड़ के ऊपर की छाल का रंग लाल होता है। जड़ के अन्दर कपूर कचरी के समान मनोहर सुगंध आती है। जिन जड़ों के अन्दर सुगंध आती हो, वही जड़ें औषधि के काम में लेने योग्य होती हैं। इसकी जड़ में एक उड़ने वाला और सुगन्धित द्रव्य रहता है। उसी द्रव्य के ऊपर इसके सारे गुण अवलम्बित हैं। अनंतमूल दो प्रकार की होती है, एक सफेद और एक काली, गोरी को गौरीसर और काली को कालीसर कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार अनंतमूल शीतल, मधुर, शुक्रजनक, भारी, स्निग्ध, पतली, दुर्गन्धनाशक, तथा कंड, कुष्ठ, ज्वर, देह की दुर्गंध, मन्दाग्नि, श्वास, खाँसी, अरुचि, आम, त्रिदोष, विष, कोठ विकार, प्रदर, तृषा, अतिसार, तृषा, दाह, रक्तपित्त और रक्त को हरने वाली है।

भाव प्रकाश के मतानुसार दोनों प्रकार की अनंतमूल स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्रजनक, भारी तथा मदाग्नि, अरुचि, श्वास, खाँसी, आम, विष, त्रिदोष, रक्तप्रदर, और ज्वरातिसार को हरने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसकी जड़ विरेचक, ज्वर-नाशक, मूत्रवर्द्धक तथा आधा शीशी, जोड़ों के दर्द, उपदंश, एव धवलरोग को नष्ट करने वाली है। इसके पत्ते वमन, सर्दी, घाव और धवलरोग मे लाभकारी है। इसकी लकड़ी का स्वाद कड़वा होता है। यह ज्वरनिवारक, मूत्रवर्द्धक, मृदुविरेचक, सूजन को कम करनेवाली, मस्तिष्क और यकृत के रोगों मे लाभदायक, किडनी, मूत्राशय, उपदंश पुरातन प्रमेह व अन्य मूत्ररोगो में उपयोगी, गर्भाशय सम्बंधी शिकायतो को दूर करनेवाली, पक्षाघात, (लकवा) खाँसी, और श्वास में फायदा पहुँचाने वाली है। दाँत के दर्द पर इसकी डाली के कुल्ले उपयोगी होते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह पोषणशक्ति के क्षय मे उपयोगी, रक्तशोधक, उपदंश व गठिया में हितकारक, सर्पदंश व वृश्चिकदंश में उपयोगी है।

आधुनिक खोजों से यह पता चला है कि यह औषधि रक्त के ऊपर अपना सीधा असर दिखलाती है और इसीलिये अंग्रेजी में इसे (Indian Sarsaparrilla) इन्डियन सार्सापरिला के नाम से सम्बोधित किया गया है। डाक्टर नॉडकरनी (इन्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक) का कथन है कि—

" Indian Sarsaparrilla is said to be more useful than the American. Sarsa-root as an alterative tonic. "

अर्थात् रक्त की शुद्धि और धातु परिवर्तन के लिये अनतमूल अमेरिकन सार्सापरिला की अपेक्षा विशेष उपयोगी कहा जाता है। रक्त के अतिरिक्त, मूत्राशय, आमाशय और स्नायुमण्डल पर भी इस औषधि का अच्छा असर होता है। इसके बनाये हुए शीतल क्वाथ से मूत्राशय पर किसी प्रकार का खराब असर नहीं होते हुए मूत्र विरेचन (पेशाब का जुलाब) होकर साधारण तौर से तिगुना-चौगुना पेशाब उतरता है, पसीना होता है, भूख लगती है और रक्त की शुद्धि होती है।

कर्नल चोपड़ा का कहना है कि सार्सापरिला के अन्दर दो मुख्य अंग हैं। पहला 'Enzyme' जो कि एक प्रकार का तेल है और दूसरा 'Saponin' मगर इन दोनों तत्वों मे उपदंश के विष को नाश करने का गुण नहीं पाया जाता।

वालको के रोगों पर भी यह औषधि बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। बायविडंग के साथ इस औषधि का सेवन करने से भयंकर "सूखा" (Rickets) रोग में भी लाभ पहुँचाता है।

प्रतिनिधि—इस औषधि की प्रतिनिधि उसबा है।

उपयोग—

आँख की फूली—अनन्तमूल के पत्तों की राख करके उसको शहद के साथ आँजने से, या इस की जड़ को बासी पानी मे घिसकर आँजने से आँख की फूली नष्ट हो जाती है।

सर्प-दंश—अनन्तमूल की जड को घिसकर चाँवल के धोवन के साथ पिलाने से तथा उसको आंख में आंजने से सर्प-दश मे लाभ होता है।

बवासीर—दूधेली के पत्ते के रस में अनन्तमूल की जड़ का चूर्ण एक चाँवल बराबर देने से सात दिन में बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रावरोध—खाँखरे के फूल का पानी बनाकर उस पानी में अनन्तमूल की जड़ घिसकर देने से रुका हुआ पेशाब होने लगता है।

पथरी रोग—इसकी जड़ के चूर्ण को गाय के दूध के साथ देने से पथरी और मूत्र की पीड़ा बंद हो जाती है।

कंठमाल—अनन्तमूल का शीतल कषाय दिन में तीन बार ढाई-ढाई तोला पिलाने से कंठमाल, फोड़े, फुन्सी और उपदंश सम्बन्धी बीमारियों में लाभ पहुँचता है।

मूत्र रोग—इसकी छोटी जड़ को केले के पत्ते में लपेट कर आग में भून कर जीरे और शक्कर के साथ पीस कर घी में मिलाकर चटाने से वीर्य और मूत्र सम्बन्धी कई रोग मिटते हैं। इसी वस्तु को लेप के रूप में मूत्रेंद्रिय पर लगाने से मूत्रेंद्रिय की सूजन भी मिटती है।

जिन स्त्रियों के गर्मी की वजह से या और किसी कारण से गर्भपात होता हो या बालक जन्मतेही मर जाता हो, उस स्थिति में स्त्री के गर्भवती होते ही अनन्तमूल का शीतल कषाय देते रहने से गर्भपात होना बंद हो जाता है तथा अत्यंत निरोग हृष्ट-पुष्ट और गौरवर्ण का बालक पैदा होता है।

दंत रोग—इसके पत्तों को पीसकर दाँतों के नीचे दबाने से दंतरोग दूर होता है।

बनावटें—

बालोपयोगी शर्बत—अनन्तमूल १० तोला, बायविडंग १० तोला, दोनों औषधियों को पीसकर १ सेर पानी में जोश देकर जब डेढ़पाव पानी शेष रहे, तब छान कर उस पानी में १ सेर शक्कर का बूरा डालकर फिर आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब एक तार की चाशनी हो जाय, तब उसमें "केलशियम हायपो फासफेट" और "हायपो फासफेट ऑफ सोडा" नामक दोनों अंग्रेजी दवाएँ छः २ माशे डालकर अच्छी तरह से मिलाकर बोतल में भर देना चाहिये। यह दवा बालकों की उम्र के अनुसार २ माशे से ६ माशे तक दिन में ३-४ बार देने से बालकों का सूखा रोग नष्ट होता है। तथा उनकी पाचनशक्ति बढ़कर उनका रक्त साफ होता है।

अनन्त मूलादिक चूर्ण—अनन्तमूल १० तोला, शतावरी ५ तोला, चोपचीनी ५ तोला, तालमखाना ५ तोला, मुलेठी २॥ तोला, हरडे का चूर्ण २॥ तोला, सालमिश्री २ तोला, उपलेट १॥ तोला, लवंग ६ माशा, नागर मोथा ६ माशा, गिलोय का सत २॥ तोला, इन सब चीजों को मिलाकर कूट पीसकर छानकर बोतल भर कर रख देना चाहिये। इस चूर्ण में से ३ माशा सुबह-शाम लेकर ऊपर से दूध पीने से प्रमेह, जीर्णज्वर, कमजोरी, कब्जियत, मंदाग्नि और रक्तविकार दूर होते हैं।

सार्सापरिला—अनंतमूल २० तोला और मंजिष्टादिक्वाथ का चूर्ण २० तोला लेकर ४ सेर पानी के अन्दर जोश देकर जब एक सेर पानी बाकी रहे, तब उतार कर छान लेना चाहिये। उसके बाद

उसको फिर से उबालकर जब आधा सेर पानी बाकी रहे तब उस में "एक्स्ट्रेक्ट सार्सापरिला लिक्विड" ५ तोला, रेक्टीफाइड स्पिरिट ५ तोला और पोटास आयोडाइड ५॥ माशा, मिलाकर बोतलें भर लेना चाहिये। इस सार्सापरिला में से ३ माशे से ६ माशे तक की खुराक दिन मे तीन बार पानी के साथ लेने से रक्तविकार, खाज, खुजली तथा गर्मी के उपद्रव मिटते हैं।

रक्तशोधक अरिष्ट—अनन्तमूल, उसबे की जड़, खैर की छाल, गोरखमुण्डी, इन्द्रायण की जड़—ये सब वस्तुएँ आधा २ पाव, मजीठ, नीम-गिलोय, उन्नाव, सरपखे की जड़, चिरायता, सिरस की अन्तर्छाल, चोबचीनी, गुलाब के फूल, बावची के बीज, ये सब चीजें छटाँक २ भर, लेकर सबको कूटकर सोलह सेर पानी में औटा लें, जब औटते २ चार सेर पानी शेष रह जाय, तब उतारकर छान लें, पश्चात् इन्द्रायण की जड़ सवा तोला, तथा नीम के फूल, वरियारी, खैरसार, मेंहदी, कूट, कासनी की जड, गुलबनफशा, ये सब औषधियाँ साढ़ेसात २ माशे, धावड़ी के फूल आठ तोला और काली दाख पाँच तोला, इन सब का चूर्ण करके उपरोक्त क्वाथ में अच्छी तरह मिलावें। उसके बाद उसमें पचास तोला शहद और सवा सेर गुड डालकर खूब मिलाया जाय, जब सब चींजें एक जीव हो जाय, तब उसको चीनी की बरनियों में भरकर मुँह बन्द करके एक मास तक पड़ी रहने दें। उसके बाद छानकर बोतलों में भरलें।

इस औषधि को एक तोले से अढ़ाई तोले तक भोजन के पश्चात् दोनो टाइम पानी के साथ लेने से हर तरह का रक्तविकार, कोढ़, खुजली, उपदंश के विकार, फोड़े फुन्सी आदि रोग नष्ट होते हैं।

अपराजिता

नाम—

संस्कृत—विष्णुक्रान्ता, अपराजिता, गोकर्णिका, गिरि कर्णिका। हिन्दी—कोयल, कालीजीर। बंगाली—अपराजिता। मराठी—काजली, गोकर्णी। गुजराती—गरणी। मारवाड़ी—कोयली का बीज। लैटिन—Clitoria Ternatea. (क्लिटोरिआ, टरनेटिआ) फारसी—अशखीस। अरबी—माजरीयून।

वर्णन—

यह बहुवर्ष जीवी एक वानस्पतिक लता है। यह दो प्रकार की होती है। एक सफेद, दूसरी नीली। नीले फूलों की बेल भी दो प्रकार की होती है, एक के इकहरे और दूसरी के दोहरे फूल लगते हैं। इसके पत्ते वनमूग के पत्तों के समान, पर उनसे कुछ बड़े और एक २ सींक पर सात २ लगते हैं। इसके फूल का आकार गाय के कानों के समान होता है। इसीसे इसको गोकर्णी भी कहते हैं। इसकी

कुछ वेलों पर नीले रंग के सुंदर फूल आते हैं, जिससे इसको विष्णुकांता भी कहते हैं। इसके फूल दो इंच लम्बे और डेढ़ इंच चौड़े होते हैं। इसके फूल बहुत सुन्दर और आकर्षक होते हैं और इसीसे अनेक धनी और शौकीन लोग अपनी पुष्प-वाटिकाओं में वितान बनाकर उस पर इस वेल को छाते हैं। इसके ऊपर मटर की फलियों के समान चपटी फलियाँ लगती हैं, जिसमें से उड़द के समान काले बीज निकलते हैं।

आजकल के कुछ वैद्य कालादाना और अपराजिता के बीजों को एक ही वस्तु मानते हैं। तामील भाषा के अन्दर अपराजिता और कालादाना दोनों औषधियों के लिये एक ही नाम का प्रयोग हुआ है। मगर आयुर्वेदीय कोष के रचयिताओं के मतानुसार ये दोनों अलग २ वस्तुएँ हैं। उनके मतानुसार कालेदाने का गात्र एवं वर्ण रूक्ष और कृष्ण होता है। इसके विपरीत अपराजिता के बीजों का रंग कृष्ण और गात्र चिकना होता है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार सफेद कोयल, चरपरी, शीतल, कड़वी, बुद्धिदायक, नेत्रों को हितकारी, कसैली, दस्तावर, विषनाशक तथा त्रिदोष, मस्तक-शूल, दाह, कोढ़, शूल, आम, पित्तरोग, सूजन, कृमि, व्रण, कफ, ग्रहपीड़ा, मस्तकरोग और सर्प के विष को नष्ट करती है।

नीली कोयल कड़वी, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, शीतवीर्य तथा वातपित्त, ज्वर, दाह, भ्रम और पिशाच-बाधा, रक्तातिसार, उन्माद, मद, अत्यंत खाँसी, श्वास, कफ, कोढ, जंतु और क्षयरोग को दूर करती है।

सफेद फूल वाली की जड़ स्वाद में कड़वी, ठंडी, विरेचक, मूत्रनिस्सारक, कृमिनाशक और विषनिवारक होती है। यह दिमाग को पुष्ट करती है, नेत्ररोग में लाभ पहुँचाती है। आँखों की पलकों के फोड़ों को नष्ट करती है तथा क्षयरोगजन्य ग्रंथियाँ, श्लीपद, सिरदर्द, त्रिदोष, धवलरोग, जलन, विष, सूजन, फोड़ा, कफ तथा सर्पदंश में उपयोगी है।

नीले फूल वाली, इसमें भी सफेद फूल वाली जाति के सभी गुण मौजूद हैं। इसके अलावा यह कामोद्दीपक और पेचिश को ठीक करने वाली है। भयंकर वायु-नलियों के प्रदाह में, श्वास में, जलोदर में तथा पेट के बढ़ जाने में भी यह लाभ पहुँचाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसकी जड़ मूत्रनिस्सारक और विरेचक है। यह उदर शोथ (पेट की सूजन) में भी उपयोगी है तथा ज्वर में भी लाभ पहुँचाती है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डॉक्टर नॉडकरनी के मतानुसार यह औषधि [illegible], कंठव्रण, श्लेष्मविकार, अर्बुद तथा शोथ इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है। उनका कथन है कि अपराजिता के बीज को भूनकर १० से लेकर ३० रत्ती की मात्रा तक देने से जलोदर, सीहा व यकृत की वृद्धि में बहुत लाभ पहुँचता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अपराजिता की जड़ मलशोधक तथा मूत्रल है और सर्पविष में प्रयोग की जाती है।

मटेरिया मेडिका ऑफ इंडिया के लेखक डॉक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार अपराजिता की जड़ स्निग्ध, मूत्रकारक एवं मृदु रेचक है और पुरानी खाँसी, जलोदर, सूजन, प्लीहा, यकृत की वृद्धि, और क्रूप (Croup.) खाँसी में व्यवहृत होती है।

डॉक्टर ए० सी० मुकर्जी के मतानुसार कर्णशूल (कानों की पीड़ा) में विशेषतया उस अवस्था में जब कि कान के आसपास की ग्रंथियाँ सूज गई हों,कान के चारों ओर अपराजिता के पत्ते के रस में सेंधा निमक मिलाकर गरमा-गरम लेप करने से लाभ होता है।

'हिन्दी-आयुर्वेदीय कोष, के लेखकों के मतानुसार अपराजिता के पत्तों की लुगदी नरकहिया (Whitlow) फोड़े पर बाँधने और निरंतर जल में तर रखने से बहुत लाभ होता है।

सर्प-विष—'जगलनी जड़ी-बुटी' नामक गुजराती ग्रन्थ के लेखक के मतानुसार इस औषधि में सबसे अधिक चमत्कारिक गुण यह है कि सर्प-विष को उतारने के लिये यह एक उत्तम दवा है। इसकी जड़ का चूर्ण-एक तोला लेकर घी के साथ मिलाकर पिलाने से चमड़ी के अन्दर पहुँचा हुआ साँप का जहर दूर होता है। दूध के साथ खिलाने से खून तक पहुँचा हुआ सर्प-विष नष्ट होता है। कठ के चूर्ण के साथ खिलाने से मास में व्यापक हुआ सर्प-विष, हल्दी के चूर्ण के साथ खिलाने से हड्डी में पहुँचा हुआ सर्प-विष, असगध के चूर्ण के साथ खिलाने से चर्बी में फैला हुआ सर्प-विष और चडाल-कद या नोरवेल कद के चूर्ण के साथ देने से ठेठ वीर्य तक पहुँचा हुआ सर्प-विष नष्ट होता है, मगर यह गुण सफेद फूल की अपराजिता में ही विशेषरूप से रहता है, ऐसा वृद्ध वैद्यों का कथन है।

उपरोक्त कथन की मान्यता हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती है। सुश्रुत-संहिता के अन्दर दर्वीकर सर्प की चिकित्सा में और द्रव्यों के साथ २ अपराजिता का प्रयोग भी दिया हुआ है। चरक-संहिता में भी दर्वीकार सर्प के काटने पर निर्गुंडा की जड़ की छाल और अपराजिता की जड़ की छाल को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर पिलाने का आदेश किया गया है। अथर्ववेद में भी इस औषधि को चितकबरे, कौड़िये और बजनामक साँप और बिच्छू के विष को नाश करने वाली माना है। लेकिन केस और मस्कर इस औषधि के सम्बंध में भी निराश हैं और वे इस औषधि को भी सर्प तथा बिच्छू के विष में निरुपयोगी मानते हैं।

उपरोक्त अवतरणों से मालूम होता है कि यह औषधि आमाशय पर असर पहुँचाकर विरेचन करने में सहायता देती है तथा मूत्रनिस्सारक भी है, यकृत के ऊपर भी यह अपना प्रभाव डालती है और साँप तथा बिच्छू के जहर को दूर करने में भी यह प्रभावशाली मानी जाती है।

उपयोग—

जलोदर—अपराजिता की जड़, शंखपुष्पी की जड़, दंतीमूल और नील की जड़, इन चारों औषधियों को ६ माशे लेकर पानी के साथ पीसकर इनका रस निचोड़कर चार तोला गौ-मूत्र के साथ पिलाने से जलरेचक असर होकर जलोदर आराम होता है।

इसी प्रकार इसके बीजों को भूनकर उनका चूर्ण १॥ माशे से ३ माशे तक देने से प्लीहा, यकृत की वृद्धि तथा जलोदर में चमत्कारपूर्ण लाभ होता है।

भूतोन्माद—श्वेत अपराजिता की जड़ की छाल के स्वरस को चाँवलों की धोवन और गौ के घृत के साथ पिलाने से भूतोन्माद का नाश होता है।

सूजन—अपराजिता की जड़ की छाल को जल में घोटकर पिलाने से सूजन में लाभ होता है।

परिणाम शूल—नीली अपराजिता की जड़ की छाल को १॥ से ३ माशे तक शहद और गौ के घृत के साथ एक सप्ताह तक सेवन कराने से परिणाम-शूल नष्ट होता है।

नोट—शहद और घी समान भाग लेने से जहरीले हो जाते हैं, इसलिये इन दोनों वस्तुओं को मिलाते समय इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि दोनों चीजें समान भाग न हों।

पुरानी खाँसी—अपराजिता की जड़ का स्वरस २ तोला ठंडे दूध के साथ पिलाने से पुरानी खाँसी में लाभ होता है।

आधा शीशी—इसके बीजों का रस नाक में टपकाने से आधा शीशी में फायदा होता है।

गर्भपात—सफेद अपराजिता की छाल को दूध में पीसकर शहद मिलाकर पीने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है।

कामला रोग—इसकी जड़ के चूर्ण को छाछ के साथ पीने से कामला रोग में लाभ होता है।

हिचकी—इसके बीजों को पीसकर चिलम में रखकर धूम्रपान करने से हिचकी मिटती है।

अंडवृद्धि—इसके बीजों को पीसकर गरम कर लेप करने से अंडकोष की सूजन बिखर जाती है।

गलगंड—सफेद अपराजिता की जड़ को पीसकर घी के साथ सेवन करने से गलगंड में फायदा होता है।

—*—

अपामार्ग

नाम—

संस्कृत—अपामार्ग। हिन्दी—चिरचिरा, लटजीरा, ओंगा। गुजराती—अघेडो। मराठी—अघाड़ा। बंगाली—आपाग। मारवाड़ी—ऑधीझाडो। सिंधी—मजिका। कर्नाटकी—उत्तरेणी। तेलगी—दुच्चेणीके। लेटिन—Achyranthus Aspera. (एचीरेन्थस एस्पेरा)। फारसी—खारेवाजूं। अरबी—अत्कूमह।

वर्णन—

अपामार्ग का छोटा झाड़ (क्षुप) होता है, जो विशेष कर बरसात में स्थान २ पर पैदा होते हुए देखा जाता है। कहीं २ पर यह बारह मास भी होता है। इसकी ऊँचाई एक से तीन हाथ तक

होती है, पत्ते लबाई लिये हुए कुछ गोल और नोकदार होते हैं। पत्तों के बीच में से एक मजरी निकलती है। उसमें सूक्ष्म और काँटेयुक्त बीज होते हैं।

अपामार्ग दो प्रकार का होता है। एक लाल और दूसरा सफेद! लाल अपामार्ग के डठल का रग लाल होता है और उसके ऊपर जो बीज लगते हैं, उनके ऊपर काँटे के समान वस्तु होती है। (दूसरी जात के) सफेद अपामार्ग के डंठल और पत्तो का रग हरा कुछ सफेदी लिये हुए होता है और उसके ऊपर जौ के समान लंबे बीज आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के अदर अपामार्ग की गणना अत्यत प्रभावशाली दिव्य औषधियों में की गई है। वैदिकयुग से ही इस औषधि की जानकारी यहाँ के लोगों को थी। शुक्ल यजुर्वेद में नमूचि के कथानक में लिखा है कि नमूचि को वरदान था कि उसे किसी ठोस या द्रव पदार्थ से दिन और रात में कोई न मार सकेगा, तब इद्र ने कुछ ऐसे फेन एकत्रित किये कि जो न तो द्रव थे न ठोस और उसे दिन और रात्रि के मध्यकाल में मार डाला, उस दैत्य के सिर से अपामार्ग के पौधा पैदा हुआ, जिसकी सहायता से इन्द्र संपूर्ण दैत्यों को मार डालने में समर्थ हुआ। अथर्ववेद के ७० सूक्त के चौथे काड मे अपामार्ग की स्तुति की गई है।

श्लोक—क्षुधामार तृष्णामार, मगोतामनपत्यताम्।
अपामार्गत्वयावय, सर्वं तदपमृज्महे॥ १॥
तृष्णामार क्षुधामार, मारमथो अक्षपराजय।
अपामार्ग त्वयावय, सर्वंतदपमृज्महे॥ २॥

अर्थात्—हे! अपामार्ग तू हमारे अत्यन्त भूख लगने के रोग को, प्यास लगने के रोग को, इद्रिय शक्ति की कमजोरियों को और संतान न होने के रोग को दूर कर!

हे! अपामार्ग तू हमारी तृष्णा और भूख को नष्ट कर और कामशक्ति की हीनता और आँख की शक्ति की हीनता को दूर कर!

राज-निघण्टु के मतानुसार अपामार्ग कडुआ, गरम, चरपरा, कफनाशक तथा कंडु, उदररोग आँव और रुधिरविकार को दूर करता है। इसके अतिरिक्त यह वमनकारक व मलरोधक है।

भावप्रकाश के मतानुसार यह दस्तावर, तीक्ष्ण, दीपन, कडुआ, चरपरा, पाचक, रुचिकारक तथा वमन, कफ, मेदरोग, वात, हृदयरोग, आध्मान, बवासीर, कडु, शूल, उदररोग, और पाचनशक्ति की हीनता को दूर करता है।

शोढल के मतानुसार अपामार्ग अग्निकारक, तीक्ष्ण नास लेने (सूघने) से सिर के कीड़ों को नष्ट करने वाला, वमनकारक, रक्त-विकारनाशक, और रक्तातिसार-निवारक है। यह औषधि नास व वमन कार्य में अत्यंत प्रभावशाली है। तथा दाद, खुजली, और कफ को नाश करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पौधा पहिले दर्जे में शीतल और रूक्ष है तथा कामोद्दीपक, हर्षोत्पादक, वीर्यवर्द्धक, संकोचक, मूत्रल, और धातुपरिवर्तक है।

रासायनिक विश्लेषण—

आर० एन० खोरी लिखित मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसके बीज में क्षारीय भस्म होती है जिसमें पोटाश की मात्रा रहती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस पौधे के फूल के डठल और पौधे के बीजों का चूर्ण साँप व अन्य जहरीले जीवों के डंक पर लगाने के काम मे आता है। सारे पौधे का काढ़ा एक अच्छी औषधि है, जो गुर्दे की पथरी के उपयोग में आता है। सारे शरीर पर सूजन आ जाने के समय भी इसका काढ़ा दिया जाता है। डायरिया व डिसेंट्री की प्रारम्भिक अवस्था में इसके ताजे पत्ते का काढ़ा शहद के साथ देने से बहुत लाभ होता है। काढ़ा बनाने की तरकीब लिखते हुए कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके २ औंस पौधे को लेकर डेढ़ पिंट पानी में करीब आधे घंटे तक औटाना चाहिये। उसके बाद उस पौधे को दबाना चाहिये। उसके दबाने से जो रस निकलेगा वही काढ़ा कहलाता है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डा० नॉडकरनी के मतानुसार अपामार्ग का उत्तम काढा मूत्रल है। वृक्कीय जलोदर में यह लाभदायक पाया गया है। उदरशूल तथा आँतों के विकारो में इसके पत्तों का रस उपयोगी है। अधिक मात्रा में देने से यह गर्भपात और प्रसव-वेदना को उत्पन्न करता है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर कलीमिर्च, लहसन, और गुड़ के साथ मिलाकर गोलियाँ बनाकर देने से काले बुखार मे लाभ होता है।

इसके पत्तों के ताजे रस को सूर्य की धूप में गाढ़ा करके इसमें थोड़ीसी अफीम मिलाकर उसका लेप करने से उपदंश के प्रारम्भिक घावों में बहुत फायदा करता है। इसके बीजों को दूध में डालकर बनाई हुई खीर मस्तक के रोगों के लिये उत्तम औषधि है।

उपरोक्त अवतरणों से मालूम होता है कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन सभी लोगों ने इस औषधि के दिव्यप्रभाव को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है, दिल, दिमाग, आमाशय इत्यादि मनुष्य के सभी अङ्गों पर इसका प्रभाव पहुँचता है। खास करके इस औषधि में वामक (उल्टी लाने वाला) कृमिघ्न, (पेट के कीड़ों को नष्ट करने वाला) शिरोविरेचनकारी, कामोद्दीपक, व्रणपूरक, क्षुधानाशक, आदि गुण विशेष तौर से रहते हैं।

उपयोग—

शिरोविरेचन—मस्तिष्क की पुरानी बीमारियाँ, पीनस के भयङ्कर रोग, आधाशीशी, मस्तक की जड़ता, इत्यादि रोगों में जिसमें मस्तक के अन्दर कफ इकट्ठा हो जाता है, कीड़े पड़ जाते हैं, और कोई दूसरी औषधियाँ काम नहीं करतीं, अपामार्ग के बीजों का चूर्ण करके सुँघाने से चमत्कारिक

लाभ होता है। इस चूर्ण को सुँघाने से मस्तक के अन्दर जमा हुआ कफ पतला होकर नाक के जरिये निकल जाता है और वहाँ पर पैदा हुए कीड़े भी झड़ जाते हैं। अकेले अपामार्ग के अतिरिक्त इसके चूर्ण में अगर वायविडंग, सूंठ, मिर्च, पीपर, इलायची, मुलेठी, तुलसी के बीज इत्यादि कृमिनाशक तथा कफ निस्सारक औषधियों का चूर्ण भी मिला दिया जाय तो वह और भी अधिक लाभ पहुँचाता है। अगर इन्हीं औषधियों को पानी के साथ पीसकर लुगदी बनाकर उसमें चौगुना गौ-मूत्र और चौगुना काली तिल्ली का तेल डालकर मदाग्नि पर पकाकर गौ-मूत्र जलजाने पर तैल को छानकर रख लिया जाय तो यह तैल सुंघाने से भी मस्तक के कृमियों को नष्ट करता है।

प्रसव विलम्ब चिकित्सा—जिस स्त्री को प्रसव के समय भयङ्कर कष्ट हो रहा हो और प्रसव में विलम्ब हो रहा हो, उसकी कमर में अगर रविवार और पुष्य-नक्षत्र के दिन लकड़ी के औजार से खोदकर (कुदाली इत्यादि लोहे के औजार से खोदना हानिकारक है) लाई हुई अपामार्ग की जड़ को बाँध दिया जाय तो तुरन्त प्रसव हो जाता है। लेकिन प्रसव होते ही उस जड़ को फौरन खोल लेना चाहिये, अन्यथा गर्भाशय के बाहर आने का डर रहता है, जङ्गलनी जड़ी बुटी नामक ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि गूढ़गर्भ के कई विकट केसों में जिनमें डाक्टरों ने ऑपरेशन की सलाह दी थी, इस जड़ी ने विचित्र प्रभाव बतलाया है। अगर जड़ी बाँधने के बजाय उसे पीसकर स्त्री के पेड़ू पर लेप कर दिया जाय तो भी वही लाभ होता है।

पथरी—अपामार्ग की ६ माशा ताजी जड़ को पानी में घोटकर पिलाने से पथरी रोग में बड़ा लाभ पहुँचता है। यह औषधि बस्ती से पथरी को टुकड़े २ करके निकाल देती है। वृक्कशूल के लिये भी यह महौषधि है।

खूनी बवासीर—इसके बीजों को पीसकर उनका चूर्ण तीन माशे की मात्रा में सबेरे-शाम चाँवल के धोवन के साथ देने से बवासीर से पड़ने वाला खून बन्द हो जाता है। अथवा इसकी जड़, बीज और पत्तों को कूटकर उनके चूर्ण में समान भाग मिश्री मिलाकर ६ माशा की मात्रा में जल के साथ देने से भी खूनी बवासीर मिटता है।

नेत्र रोग—इसकी जड़ को पानी के साथ महीन पीसकर आँख में आँजने से आँख की फूली तथा दूसरे नेत्ररोग में लाभ पहुँचता है। अगर रतौंधी आती हो तो इसकी जड़ का ६ माशा चूर्ण शाम को भोजन के पश्चात् खाकर ऊपर से पानी पीकर सो जाने से तीन दिन में अच्छा लाभ पहुँचता है।

मलेरिया ज्वर—इसके पत्ते और कालीमिर्चों को समान भाग लेकर गुड़ के साथ दो २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर बुखार आने के पहले देने से मलेरिया बुखार रुक जाता है।

जलोदर—डाक्टर कार्निश ने जलोदर रोग में इस औषधि का उपयोग किया और इसे काफ़ी लाभदायक पाया।

दन्तशूल—इसकी ताजी जड से प्रतिदिन दतून करने से दाँत मोती की तरह चमकने लगते हैं। यह दतून, दन्तशूल, दाँतो का हिलना, मसूडो की कमजोरी तथा मुँह की दुर्गन्ध को दूर करता है।

कंठमाला—इसकी जड़ की राख को खाने और उसको गाँठों पर लगाने से कठमाला में लाभ पहुँचता है।

रति-शक्ति की कमजोरी—इसकी जड का चूर्ण छः माशे लेकर उसमें दो रत्ती बगभस्म मिला कर खाने से प्रबल कामोद्दीपन होता है।

बिच्छू का जहर—इस औषधि मे विषनाशक प्रभाव भी बहुत है। मेजर मोहीउद्दीन का कथन है कि इसकी फूल वाली डालियों पर अगर बिच्छू को रख दिया जाय तो उसे पक्षाघात हो जाता है। राजवैद्य सतशरण के मतानुसार इसके पत्तों के रस को हाथ में चुपड कर चाहे जैसे जहरीले बिच्छू को हाथ में ले लिया जाय और वह चाहे जितने डङ्क मारे तो भी उनका कुछ असर नहीं होता। जिसको बिच्छू ने काटा हो और वह चढ़ गया हो, उसके यदि चढे हुए स्थान पर इसके पतों के रस की लकीर खींच दी जाय तो बिच्छू का जहर नीचे उतरने लगता है। ज्यों-ज्यों जहर नीचे उतरे त्यों-त्यों वह लकीर भी नीचे २ करते जाना चाहिये। जब जहर डङ्क पर आ जाय तब इसके पत्तों को पीसकर उनकी लुग्दी डङ्क पर बाँध देना चाहिए। इसके साथ ही भीतरी उपचार की तरह अगर इसकी जड़ को महीन पीसकर दस-बारह गुने पानी में घोल कर उसका पानी थोड़ा २ जब तक कड़ुवा न लगने लगे तब तक पिलाया जाय तो जहर उतर जाता है। पानी ज्योंही कड़ुवा लगने लगे त्योंही पिलाना बन्द कर देना चाहिये, क्योंकि यही जहर उतरने का सबूत है।

रक्त-प्रदर—सफेद अपामार्ग का पचांग २ तोला, भेड़ के बालों की भस्म २ तोला, सुनहला गेरू २ तोला, इन तीनों चीजों को कूट पीसकर चूर्ण करें। इसमें से छः माशा चूर्ण गाय के कच्चे दूध में पिलाने से रक्त-प्रदर शीघ्र आराम होता है।

श्वास और खाँसी—इसके सूखे पत्तों को हुक्के में रख कर पीने से श्वासरोग में लाभ पहुँचता है। तिब्बे नादरी के लेखक का कथन है कि अपामार्ग की जड़ में कफ की खाँसी और दमे को नष्ट करने का चमत्कारिक गुण विद्यमान है। इसके सारे झाड़ को जड़ समेत उखाड़ कर उसे जलाना चाहिये। फिर इसकी राख दस रुपये भर लेकर उसमे दो तोला सेंधा नमक, दो तोला सज्जीखार, दो तोला यवक्षार, दो तोला नौसादर, तीन तोला हलदी और दस तोला अजवायन डालकर उसका चूर्ण कर प्रतिदिन डेढ माशे के करीब सवेरे-शाम लेने से कफ की खाँसी मे बहुत लाभ होता है। इसी प्रकार इसकी जड़ का चूर्ण आधा तोला लेकर उसमें सात कालीमिर्च का चूर्ण डालकर दोनों टाइम ठण्डे जल के साथ फंकी लेने से दो वर्ष का पुराना दमे का रोग दूर होता है। यह दवा सात दिन तक पथ्यपूर्वक लेने से नव्वे प्रतिशत लाभ होता है। जब तक दवा चालू रहे तब तक गेहूँ की रोटी, भात इत्यादि ही खाना चाहिये। तथा छाती और कठ पर घी की मालिश करते रहना चाहिये। इस प्रयोग से यदि कभी उल्टी हो तो उससे नहीं डरना चाहिये।

नासूर—इसके पत्तों का रस नासूर के ऊपर लगाने से नासूर भर जाता है।

भस्माग्नि—भस्माग्नि का रोग जिसमें बहुत भूख लगती है और खाया हुआ अन्न भस्म हो जाता है, उसमें अपामार्ग के बीजों का चूर्ण एक तोला देने से रोग मिट जाता है।

उदर-शूल—भयंकर उदर-शूल में अपामार्ग की जड छः माशे, कुंकरोंधा के पत्ते छः माशे, सफेद जीरा तीन माशा, काला नमक एक माशा, इन सबको पीसकर इसमें से छः माशे की खुराक देने से आराम होता है।

कान का बहरापन—अपामार्ग की जड़ को धोकर उसका रस निकाल ले। जितना यह रस हो, उससे आधा तिल्ली का तेल मिलाकर आग पर चढ़ा दें। जब रस जल कर तेल मात्र शेष रह जाय तब छानकर शीशी मे रख ले। इस तेल की २-३ बूंद गरम करके कान में हर रोज डालने से कान का बहरापन दूर हो जाता है।

बनावटें—

अपामार्ग क्षार—अपामार्ग के झाड़ के पचाग को (अर्थात् फूल,फल,डठल जड और पत्तो को) जलाकर उसकी राख को आठ गुने पानी मे खूब अच्छी तरह से मिलाकर रात भर पड़ा रहने देना चाहिये। जब राख का सब हिस्सा पानी में नीचे बैठ जाय तब ऊपर के स्वच्छ पानी को नितार कर हलकी आँच से उसे उबालना चाहिये। जब उसकी हालत रबड़ी सरीखी हो जाय तब उसको उतार कर ठडा कर उसकी टिकिया बनाकर धूप मे सुखा लेना चाहिये। सूखने पर खरल में पीसकर बोतल में भर देना चाहिये। यह क्षार अपामार्ग क्षार कहलाता है। इस क्षार को शहद के साथ चटाने से कफ वाली खाँसी आराम हो जाती है। इसके अतिरिक्त बस्ति (आमाशय) के विकार से होने वाला सूजन, जलोदर, यकृत की वृद्धि और वायुगोला इत्यादि रोगों मे बहुत लाभ पहुँचता है।

अपामार्ग-क्षार-तेल—अपामार्ग का बनाया हुआ क्षार २० तोला, तिल का तेल ४० तोला, जल १६० तोला लिया जावे। जल के अन्दर क्षार को २१ बार अच्छी तरह मिला कर उसमे तेल डाल दिया जाय, उसके पश्चात् अपामार्ग के पचाग को पानी के साथ पीसकर बनाई हुई लुगदी १० तोला लेकर उस पानी के बीच में रखकर मदाग्नि से जल को उबालना चाहिये। जब इसमे से सारे जल का भाग जल जाय और केवल तेल का भाग मात्र शेष रहे, तब उतार कर छान लेना चाहिये। यह तेल कानों के प्रत्येक दर्द के लिये लाभकारी है। इसको कान मे टपकाने से कान का सूजन, बहरापन, पीप वगैरह रोग नष्ट होते है।

अपामार्ग आसव—अपामार्ग २ सेर, अडूसे के पत्ते २ सेर, केले के नये नरम पत्ते २ सेर, जगली बेर की जड की छाल २ सेर, देशी गुड ४ सेर। गुड़ को ६ सेर पानी मे भिगो कर इन औषधियों को जौ कुट करके एक मिट्टी के बर्तन में अच्छी तरह मिला कर डाल दें। दूसरे दिन इसी बर्तन में यवक्षार एक छटॉक, सर्जीखार २ छटांक और पपड़िया नौसादर आधी छटॉक मिला दें।

उसके पश्चात् उस बर्तन का मुँह १५ दिनों तक बंद कर पड़ा रहने दें। फिर कपड़े से छान कर बोतलों में बंद करके रख दें। यह आसव तेज शराब की तरह बरता जाता है। श्वास के रोग में बहुत अक्सीर साबित हुआ है। पहली मात्रा में अपना असर दिखाता है।

अपामार्ग अवलेह—'जौहरे हिकमत' नामक पुस्तक में लिखा है कि अपामार्ग का क्षार, यव क्षार, सज्जीक्षार, केले का क्षार, आँकड़े का क्षार, ताड़ का क्षार, खाँखरे का क्षार, इमली का क्षार, मूली का क्षार और कली चूना ये सब वस्तुएँ एक-एक रुपए भर, फूला हुआ टकनक्षार २ रुपये भर, कलमीशोरा ३ माशा, कालीमिर्च २॥ तोला, सेंका हुआ जीरा २ तोला, लींडीपीपल ३ तोला, इन सबको लेकर बारीक चूर्ण कर उसको एक बरनी में भरकर उसमें अदरख का रस ४० तोला, गँवारपाठे का रस ४० तोला तथा नींबू का रस ४० तोला, अच्छी तरह से मिलाकर सात दिन तक धूप में पड़ा रहने देना चाहिये। इसके पश्चात् इसमें से ६ माशा अवलेह सुबह शाम चाटने से उदरशूल, यकृत की वृद्धि, वायुगोला, हैजा, जलोदर इत्यादि रोग आराम होते हैं।

अपामार्ग द्वारा दूसरी बनने वाली भस्मे—

सिंगरफ़ भस्म—बढ़िया सिंगरफ २ तोला खरल में डालकर २० तोला आँकडे के दूधमें खरल करें। जब सारा दूध खतम हो जाय तब उसकी टिकिया बनाकर छाया में सुखालें। फिर एक मिट्टी की छोटी हंडी में १० तोला अपामार्ग की राख बिछाकर उसपर सिंगरफ की टिकिया रख ऊपर से और १० तोला अपामार्ग की राख डालकर हाथ से अच्छी तरह से दबा दें। फिर हंडी पर ढक्कन लगाकर अच्छी तरह से कपड़ मिट्टी करके सुखालें। उसके पश्चात् १० सेर कंडों की आँच मेंउस हंडी को रखकर फूंक दें। जब ठंडी हो जाय तब निकाल लें। सिंगरफ की इस भस्म को एक रत्ती प्रमाण में शरदऋतुमें देने से कामशक्ति बढ़ती है।

सोमल भस्म—दो तोला संखिया को लेकर एक शीशी में डालकर उसमें इतना आक का दूध डालें कि वह डूब जाय। फिर २१ रोज तक उसे भूमि के अन्दर गाड़ रक्खें। फिर एक मिट्टी की हंडी में अपामार्ग की राख को हाँडी के आधे हिस्से तक भरकर उसपर संखिया की टिकड़ी रख और उसके ऊपर फिर मुँह तक अपामार्ग की राख भर दें। उसके पश्चात् उसे तीन प्रहर तक हलकी आँच और तीन प्रहर तक मध्यम आँच और तीन प्रहर तक तीव्र आँच देने से संखिया की श्वेत रंग की भस्म तय्यार होती है। इस भस्म को परीक्षा के लिये थोड़ी-सी आग के ऊपर डालना चाहिये। अगर उसमें से धुआँ न निकले तो समझना चाहिये कि भस्म शुद्ध हो गई है। इस भस्म की चौथाई चाँवल के बराबर देने से श्वास रोग में बहुत फायदा होता है।

हड़ताल भस्म—शुद्ध हड़ताल एक तोला भर और एक तोला अभ्रक दोनों को खरल में डालकर अपामार्ग के पानी में चार प्रहर तक खरल करके उसकी टिकड़ी बाँधकर छाया में सुखाना चाहिये। फिर उस टिकड़ी को मिट्टी की एक छोटी हाँडी में अपामार्ग की राख को आधे हिस्से तक

दबाकर भरकर उस पर रख देना चाहिये। उसके पश्चात् शेष हिस्से में भी अपामार्ग की राख को दबाकर भरकर ढक्कन लगाकर कपड़मिट्टी कर एक गज लम्बे, एक गज चौड़े और एक गज गहरे गड्ढे में ऊपले (आरने) कडे भरकर बीच में उस हॉडी को रख कर फूंक दें। इस प्रकार गजपुट में तीन बार फूंकने से अत्यन्त उत्तम भस्म तय्यार हो जायगी। इस भस्म की खुराक आधी रत्ती से लेकर २ रत्ती तक की है। यह भस्म प्राचीन से प्राचीन ज्वर के लिये रामबाण औषधि है। इससे ज्वर, एकातरा, पाली, आदि सभी विषमज्वर नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त खाँसी व श्वास के अन्दर भी यह अच्छा लाभ पहुँचाती है।

अमृताख्य तैल—अपामार्ग के बीज, सिरस के बीज, दोनों प्रकार की श्वेता (कटभी और महाकटभी) और मकोय, इन सबको समान भाग लेकर गौ-मूत्र में पीसकर लुग्दी करलें, फिर बीस तोला लुग्दी २ सेर तिल का तैल और दो सेर गौ-मूत्र डालकर हलकी आँच पर चढ़ावे, जब तैल मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लें। सुश्रुत ने इस तैल को महा-विषनाशक बतलाया है।

अफसन्तीन

नाम—

फारसी—अफसन्तीन। अरबी—अफसन्तीन। हिन्दी—विलायती अफसन्तीन। संस्कृत—। दमर। लेटिन—Artemisia Absinthium.

वर्णन—

यह औषधि और इसकी कुछ जातियाँ भारतवर्ष में उत्पन्न होती हैं, पर आयुर्वेदीय ग्रन्थों में इसका कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। विशेष कर यह औषधि उत्तरी आफ्रिका, सायबेरिया, मंगोलिया तथा भारतवर्ष में हिमालय पहाड़ के ऊपर १०००० से १२००० फीट तक की ऊँचाई पर काश्मीर, तिब्बत, कुमाऊँ, नेपाल इत्यादि प्रान्तों मे पैदा होती है। यह एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा है। इसकी शाखाएँ सीधी और सरल होती हैं। पत्ते रेशम की तरह मुलायम रूएदार और हरे रंग के होते हैं। इसके फूल पीले रहते हैं। इसके बीज बारीक २ और गोलदाने की तरह होते हैं। इसकी छाल कुछ ललाई लिये हुए बादामी रंग की रहती है। इसकी गंध अत्यन्त तीव्र, उग्र, अप्रिय और स्वाद अत्यन्त कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में रूक्ष

है। यह मस्तिष्क और स्नायु-मंडल को अव्यवस्थित करने वाला और सिरदर्द को पैदा करने वाला है। इसके अन्दर सकोचक गुण भी है। यह यकृत को बल पहुँचाने वाला और कामला रोग में लाभदायक है। इसका शर्बत आमाशय और यकृत को बल देता है। बवासीर के अन्दर भी यह औषधि लाभदायक है। इसके क्वाथ का बफारा देने से कान का दर्द आराम होता है। पेट के कीड़ों को मारने की शक्ति भी इस औषधि में है।

इण्डियन मेडिकल प्लाट्स के रचयिता इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि यह सारी वनस्पति एक प्रकार का सुगन्धित पदार्थ है। कुछ समय पहले पाचन-क्रिया की कमजोरी के उपचार में इस औषधि की बहुत तारीफ थी और यह कृमि-नाशक समझी जाती थी। सिंकोना के प्रचार के पहिले पार्यायिक ज्वरों में इसका काफी उपयोग होता था। स्नायु-मडल के ऊपर इस औषधि का बड़ा तीव्र असर होता है। स्नायु-मडल की क्रियाओं में दुर्व्यवस्था पैदा कर यह सिरदर्द उत्पन्न करती है।जो लोग काश्मीर और लोदक के मार्ग में इसके खेतों के बीज मे से होकर निकलते हैं,वे इसके उपरोक्त गुण से भली प्रकार परिचित हो जाते हैं, क्योंकि जब मार्ग में इसके विस्तृत खेतों के अन्दर वे यात्रा करते हैं तब उनको यह महान कष्ट सहन करना पड़ता है।

बाह्योपचार में इस औषधि की पुल्टिस बनाकर उपयोग करने से यह अपना कृमि-नाशक गुण बतलाती है, मगर केस और मस्कर के मतानुसार इसमें या इसके तेल में कृमि-नाशक गुण नहीं है।

इस औषधि में से एक प्रकार का गहरा हरा या पीले रंग का तेल निकाला जाता है, जोकि स्वाद में कड़वा होता है और अधिक मात्रा में मादक और उत्तेजक होता है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल जिसको एब्सिंथोल (Absinthol) कहते हैं, रहता है। इसके अतिरिक्त ग्लुकोसाइड तथा एक प्रकार का रवादार सत्व जिसको एब्सिंथीन (Abisinthin) कहते हैं, वह भी रहता है। यह औषधि पार्यायिक ज्वरों में एक प्रकार का पौष्टिक पदार्थ है।

एलोपैथिक मतानुसार अफ्सन्तीन का पौधा कड़ुआ, बलप्रद, सुगन्धित, आमाशय को बल देने-वाला, अग्निदीपक, ज्वर और कृमियों को नष्ट करने वाला, रजःप्रवर्तक, दिमाग को उत्तेजना देने वाला, और निद्राजनक है।

डाक्टर नॉडकरनी अपनी इण्डियन मटेरिया मेडिका में लिखते हैं कि इस पौधे को अजीर्ण, केंचुए (Round worms) और सूती कीडे (Tread worms.) को नष्ट करने के लिये उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त विषमज्वर, रजःकष्ट, मृगी, मस्तक की कमजोरी इत्यादि रोगों में भी इसके क्वाथ का उपयोग किया जाता है।

बनावट—

अर्क अफसन्तीन—अफसन्तीनरूमी आधा सेर को अर्कगुलाब ३ सेर में रात भर भिगो दे। सवेरे २ सेर पानी और डालकर अर्क खींच ले, फिर उस अर्क में आधा सेर अफसन्तीनरूमी, ३ सेर गुलाबजल और २ सेर पानी डालकर दुबारा अर्क खींच लें।

१॥ तोला की मात्रा में इस अर्क को ६ तोला अर्क-सौफ और २ तोला शर्बत कसूस के साथ पीने से यह यकृत की बिमारियों को दूरकर सूजन, और सूजन से होनेवाले बुखार को मिटाता है यह अत्यन्त प्रभावशाली है।

अफीम

नाम—

संस्कृत—अहिफेन । हिन्दी—अफीम । बङ्गाली—आफिङ्ग । मराठी—अफू, कड़वी । गुजराती—अफेण । तैलङ्गी—नाल्लामन्दु । फ़ारसी—अफ्यूनतिर्य्याक । अरबी—लबनुल खसखस । लैटिन—Opium (ओपियम)

वर्णन—

अफीम की खेती भारतवर्ष मे विशेष कर मालवा, मेवाड़ इत्यादि प्रान्तों में की जाती है। आज से करीब ३५ वर्ष पहिले इसकी खेती बहुत बड़े परिमाण में होती थी और इसके व्यापार से लोग क़रोडो रुपया पैदा करते थे, मगर अब गवर्नमेण्ट ने इसकी खेती बहुत ही कम कर दी है।

अफीम पोस्तदाने के वृक्ष से पैदा होती है, पौष मास मे इस वृक्ष पर अनेक रङ्गों के रङ्ग बिरङ्गे बड़े सुन्दर फूल खिलते हैं और उनपर डौड़ियाँ लगती हैं, दो-तीन सप्ताह में ये डौडे अफीम निकालने लायक हो जाते हैं। तब उनको लोहे के एक तेज औजार से तीन २ चार २ चीरे लगा देते हैं। उन चीरों में से दूध के रूप में अफीम निकलती है और डौड़ों पर जम जाती है। दूसरे दिन सबेरे वह दूध अफीम की शक्ल मे जम जाता है और लोग खुरच लेते हैं। इकट्ठी होने पर इसे तैल के हाथ दे देकर साफ करते हैं जिससे जल का अंश निकल जाता है।

अफीम के व्यवसाय पर गवर्नमेण्ट के एक्साइज डिपार्टमेंट का एकाधिपत्य है। जितनी अफीम पैदा होती है, सब सरकारी गोदामों में पहुँचाई जाती है। जिसकी बट्टियाँ बाँध कर उस पर गवर्नमेण्ट की सील-मुहर लगाई जाती है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार अफीम वीर्य्यवर्द्धक, बलकारक, ग्राही, सप्त-

धातु शोषक, वात-पित्तकारक, आनन्ददायक, नशीली, वीर्य्य को स्तम्भन करने वाली, कटवी, मधुर तथा सन्निपात, कृमि, कफ, पाण्डुरोग, क्षय, प्रमेह, श्वास, खाँसी, प्लीहा, और धातुक्षय को मिटाने वाली है।

चरक के मतानुसार अफीम दूसरी वस्तुओं के साथ साँप और बिच्छू के जहर के इलाज में दी जाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह चौथे दर्जे में ठंडी, रुक्ष, कब्जियत करने वाली, शिथिलताकारक, नींद लाने वाली, सूजन मिटाने वाली तथा नजला, कफ, खाँसी, कानों की पीड़ा और नेत्ररोग में हितकारी है। भीतरी-बाहरी स्नायु-मण्डल को यह नुकसान पहुँचाने वाली है। अफीम यह एक तीव्र-विष है। इसलिये इसका प्रयोग बहुत सोच-समझ कर करना चाहिये। कम-से-कम तीन रत्ती की मात्रा में यह प्राणनाशक हो जाती है। एक घंटे के अंदर इसका प्रभाव मालूम पड़ने लगता है, २४ घंटे में यह मार डालती है। औषधि के उपयोग में इसको शुद्ध करके लेना चाहिये।

कर्नल चोपड़ा अफीम का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"ऐसा कहा जाता है कि यह रसादि विकारों को दूर करती है व शरीर की शक्तियों को कुछ समय के लिये बढ़ाती है। वीर्य सम्बन्धी शक्तियों व मास-पेशियों पर विशेष असर दिखलाती है तथा मस्तिष्क में मादकता का सचार कर उसे ढीला बनाती है।

"मुसलमान चिकित्सकों के मतानुसार यह शारीरिक अगों की पीड़ा को दूर करने में मुफीद है। आधाशीशी, कटिवात (कमर की बादी) और जोड़ों के दर्द में भी इसका उपयोग किया जाता है। बाह्य उपचार में भी लेप के रूप में इसका उपयोग किया जाता है, रक्तातिसार व अतिसार में भी यह लाभ पहुँचाती है।

"सबसे पहिले यह मस्तिष्क की शक्ति को उत्तेजन देती है। फिर शरीर की शक्ति और शरीर की गर्मी को घटाती हुई दिखलाई देती है, जिससे कुछ आनद व सतोष मालूम पड़ता है। किन्तु कुछ ही काल के पश्चात् इसको लेने की आदत पड़ जाती है। यह मादकोत्तेजक है। श्वास की क्रिया पर यह अपना उपशामक असर दिखलाती है। यही कारण है कि कफ, श्वास, व कुक्कुर खाँसी में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

"मुसलमानी हकीम इसे कामोद्दीपक बतलाते हैं। उनके मतानुसार यह मैथुन में स्तम्भन का काम करती है। वर्तमान काल में बहुमूत्र और मधुमेह रोगों में भी इसका उपयोग किया जाता है।

"अधिकाश लोगों का विश्वास है कि पेशाब में शक्कर जाने की हालत में यह अपना अच्छा असर दिखलाती है। लेकिन सन् १९२१ में जब इस बात की जाँच की गई, तो मालूम हुआ की थोड़ी और साधारण मात्रा में दी जाने पर यह शर्करारोग में निष्फल सिद्ध हुई।

"चिकित्सकों का एक यह भी विश्वास है कि यह मूत्राशय की बीमारियों पर खराब असर दिखलाती है, मगर इस विषय में भी जब जाँच की गई व मूत्ररोग से पीड़ित लोगों को १ ग्रेन से ६ ग्रेन

तक की खुराक में दी गई तो भी इसने चर्बी पर कोई बुरा असर नहीं बतलाया, बल्कि बहुत से मामलों में इसने चर्बी को घटाने का काम किया।

रासायनिक विश्लेषण—

"अफीम का रासायनिक विश्लेषण करने पर उसके अन्दर प्रधान रूप से "मारफाइन" नामक उपक्षार और "नॉरकोटाइन" नामक एक प्रकार का सत्व, ये दो तत्व पाये गये।

पटने की अफीम में "मॉरफाइन" ३.६८ परसेंट और "नॉरकोटाइन" ६.६६ परसेंट पाया गया।

मालवे की अफीम में "मॉरफाइन" ४.६१ परसेंट व "नॉरकोटाइन" ५.१४ परसेंट पाया गया।

स्मरना की अफीम में "मॉरफाइन" ८.२७ व "नॉरकोटाइन,, १.२४ परसेंट पाया गया।

"नॉरकोटाइन अफीम में से प्राप्त होने वाला एक प्रकार का सत्व है। जिसमें कि निद्रा लाने का खास गुण होता है। यह अफीम में काफी मात्रा में रहता है। अगर जानवरों की शिराओं में इसका इजेक्शन दिया जाय, तो उनका ब्लडप्रेशर गिर जाता है। रक्तवाहिनी नलियाँ ढीली हो जाती हैं। ब्लडप्रेशर गिरने से हृदय की गति पर भी प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क की गति पर भी असर दिखाकर यह उसे ढीला करता है।

"दूसरा तत्व "मॉरफाइन" नॉरकोटाइन से अधिक जोरदार व अधिक महत्वपूर्ण है। यह भी अफीम का एक उपक्षार है। प्रारभ में लोगों का ध्यान इसकी ओर कम गया, लेकिन बाद में इसके ऊपर कई प्रकार के अनुसधान हुए, और कई बीमारियो के उपचार में इसकी उपयोगिता पाई गई।

"ओपियम कमिशन ने भी वैज्ञानिक ढग से इसका मनन किया। वे भी इसी नतीजे पर आये कि इसमें मॉरफाइन व नॉरकोटाइन ये दो मुख्य पदार्थ रहते हैं। मॉरफाइन मे उपशामक और निद्रा लाने वाला गुण विशेष है। और नॉरकोटाइन एक प्रकार का पुष्टिकारक और सामयिक ज्वरों को नष्ट करने वाला पदार्थ है। यही गुण क्विनाइन में भी पाये जाते हैं। क्विनाइन और अफीम में इन गुणों की समानता होने से ही यह (अफीम) भी मलेरिया में उपयोगी मानी जाती है। लेकिन प्रयोगों से मालूम हुआ कि, उपशामक पदार्थ होने की वजह से अफीम मलेरिया के बाह्यचिन्हों को दबा देती है पर इस बीमारी के मूल-भूत कारण पर कोई असर नही पहुँचाती।

"डाक्टर रॉबर्टस ने नॉरकोटाइन को मलेरिया में मुफीद बतलाया है। किन्तु इस विषय में में मतभेद है और इसके पश्चात् के अनुसधानो से भी यह मालूम हुआ है कि, नॉरकोटाइन में रक्तोपजीवी मलेरिया के कीटाणुओं को मारने की शक्ति नहीं है।"

"कर्नल चोपरा ने मलेरिया, मधुमेह, और निमोनिया में ५ ग्रेन से लगाकर २० ग्रेन तक की मात्रा में रोगियो को दिया, किन्तु कोई उल्लेखनीय असर नहीं दिखलाई दिया। हृदय पर और श्वास

क्रिया पर इसका किसी भी प्रकार का उत्तेजक प्रभाव दिखलाई नहीं दिया। इतना ही मालूम हुआ कि बीमार के ऊपरी कष्ट,नष्ट होगये, उसकी थकान मिट गई और उसे शीघ्र ही नींद आ गई।"

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि अफीम का असर सीधा स्नायु-मडल के ऊपर होता है। यह स्नायु-जाल को एक दम स्तब्ध या मदहोश कर देती है, जिससे सारे शरीर में एक प्रकार की निस्तब्धता हो जाती है और रोगी की चाहे वह किसी भी रोग से ग्रसित हो, यन्त्रणा दब जाती है, जिससे उसे आराम मालूम होता है। इसका दूसरा विशेष गुण स्तभन का है। इसलिये अतिसार इत्यादि रोगों में भी यह फायदा पहुँचाती है तथा वीर्य-स्तम्भन के लिये तो यह एक मशहूर औषधि मानी गई है। वीर्य-स्तम्भन सम्बधी शायद ही कोई नुस्खा होगा, जिसमें अफीम का उपयोग न हो।

प्रयोग—

अतिसार—अतिसार के अन्दर अफीम और केशर को समान भाग लेकर पीसकर एक रत्ती प्रमाण की गोली बनाकर शहद के साथ देने से लाभ होता है।

अजीर्ण—भयंकर अजीर्ण में नारियल में छेद कर २ रत्ती अफीम उसमें रखकर आग पर पकाकर खिलाने से लाभ होता है।

आमातिसार और विशूचिका—आमातिसार और विशूचिका में अफीम, जायफल, केशर और कपूर समान भाग खरल करके २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर जल के साथ देने से लाभ होता है।

संग्रहणी—अफीम और बच्छनाग तीन २ माशे, लोहे की भस्म १० रत्ती और अभ्रक भस्म १२ रत्ती इन चारों वस्तुओं को दूध में घोटकर एक २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर दूध के साथ सेवन करना चाहिये, किंतु इसको सेवन करने तक जल का त्याग करके खाने-पीने में दूध ही का व्यहार करना चाहिये।

नारू—अफीम और साँप की कैंचुली की टिकिया बनाकर नारू पर लगाने से फायदा होता है।

नासूर—मनुष्य के नाखून की राख में दो या ढाई रत्ती अफीम मिलाकर गोलियाँ बनाकर सेवन करने से लाभ होता है।

गठिया और आक्षेप वायु—गठिया, आक्षेपक वायु, हनुस्तम्भ, प्रलाप आदि रोगों में उचित मात्रा मे अफीम देने से वहुत लाभ होता है।

स्नायु पीड़ा—स्नायु सम्बन्धी वात पीडा पर अफीम का लेप करने से बहुत लाभ होता है।

दंत पीड़ा—अफीम और नौसादार को पीस कर दाँत के छिद्र में रखने से दंत पीडा मिटती है।

मस्तक रोग—चार रत्ती अफीम और दो लौंग पीसकर गरम करके लेप करने से सर्दी और बादी का सिर दर्द मिटता है।

नासूर—अफीम और हुक्के के कीट की बत्ती बनाकर भरने से नासूर में लाभ होता है।

पक्वातिसार—अफीम को सेंक कर उचित मात्रा में खिलाने से पक्वातिसार मिटता है।

कर्ण पीडा—अफीम की आधी रत्ती भस्म गुलाब के तेल में मिलाकर कान मे टपकाने से कान का दर्द मिटता है।

कंठ रोग—अफीम के डोडे और अजवायन को पानी में औटा कर उस पानी से कुल्ले करने से बेठा हुआ गला दुरुस्त हो जाता है।

गर्भाशय की पीडा—अफीम के डोडों का क्वाथ पिलाने से बच्चा होने के बाद की गर्भाशय की पीडा मिटती है।

खाँसी और जुकाम—अफीम के बीज सहित ६ तोले डोडों का काढ़ा बनाकर उस काढ़े मे ढाई छटाँक मिश्री डालकर शर्बत बना लेना चाहिये। इसमें से तीन तोला शर्बत दिन में दो बार देने से खाँसी और जुकाम मिटते हैं।

कमर की पीडा—एक तोले पोस्ते दाने में एक तोला मिश्री मिलाकर फक्की देने से कमर की पीडा मिटती है।

केश रोग—इसके बीजों को दूध के साथ पीसकर लेप करने से केशों का दारुण रोग मिटता है।

आमाशय की सूजन—आमाशय की झिल्ली की सूजन में इसका लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

बनावटें—

अफीम पाक—अकरकरा, केशर, लवग, जायफल, भंग, सिंगरफ, सब चार ४ तोला, दूध में डोला * यत्र द्वारा शुद्ध की हुई अफीम २ तोला लेकर पीसकर छः गुनी मिश्री की चासनी में अच्छी तरह से मिलाकर चार २ मासे की गोलियाँ बनावें। स्त्री-प्रसंग में दो घटे पूर्व इस गोली को खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिये, इससे बहुत स्तम्भन होता है।

अफीम का प्लास्टर—अफीम का बारीक चूर्ण २॥ तोला, रेजिन प्लास्टर २२॥ तोला। रेजिन प्लास्टर को गरम पानी के अन्दर पिघला कर उसमें धीरे २ अफीम को मिलाना चाहिये, किसी भी स्थान की वेदना को मिटाने के लिये इस प्लास्टर का उपयोग किया जाता है।

---

* *डोलायंत्र*—एक कढाई में दूध भरके उसके ऊपर दोनों कडो में एक लकड़ी फँसाकर उस लकड़ी में कपड़े में बंधी हुई अफीम की पोटली को बाधकर नीचे आँच लगाना चाहिये। प्रत्येक वस्तु डोलायन्त्र से इसप्रकार आँच लगाई जाती है।

स्तम्भन वटी—एक जायफल के अंदर बड़ा छेद करके उसमे अफीम भर कर उसका मुँह बंद करके उसको किसी बड़ के वृक्ष में छेद करके २१ दिन तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद उसको निकाल कर उसमें से अफीम निकाल कर आधी २ रत्ती की गोलियाँ बनाकर दूध के साथ सेवन करने से स्तम्भन होता है।

अफीम विष-नाशक प्रयोग—

(१) अगर किसी ने अफीम खा ली हो और उसके उपद्रव शुरू होगये हों तो उसी समय उसे हींग पानी में मिलाकर पिलाना चाहिये। उसी समय जहर उतर जायगा।

(२) मेनफल, नीमका क्वाथ या तम्बाखू के क्वाथ इनमें से किसी भी एक औषधि के द्वारा वमन कराने से भी अफीम का विष उतर जाता है।

(३) अरीठा भी अफीम का प्रबल शत्रु है, अरीठा के जल को पिलाने से भी अफीम का विष उतर जाता है।

(४) करेमूँ के शाक का रस निचोड़ कर पिलाने से अफीम द्वारा प्राणत्याग करता हुआ बीमार भी बच जाता है।
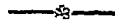
अभ्रक

नाम—

संस्कृत—अभ्रक। हिन्दी—अभ्रक। बंगाली—अभ्र। फारसी—सितारा ज़मीन। अरबी—तलूक़। लैटिन—Mica

विवरण—

अभ्रक का वर्णन करते हुए आयुर्वेद के अन्दर लिखा है कि प्राचीनकाल में भगवान् इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने के लिये वज्र उठाया, उस समय उस वज्र में से चिनगारियाँ निकल कर आकाश-मंडल में फैल गईं। फिर वे ही चिनगारियाँ गरजते हुए बादलों में से निकल कर जिन २ पर्वतों की चोटियों पर गिरीं, उन्हीं २ पर्वतों में अभ्रक उत्पन्न हुआ। वज्र से उत्पन्न होने के कारण संस्कृत में इसका नाम वज्र है। बादलों के शब्द से होने के कारण इसको अभ्रक कहते हैं और आकाश से गिरने के कारण इसको गगन कहते है।

अभ्रक एक प्रकार का खनिज द्रव्य है। इसकी रचना पतले २ परतों की तह से होती है। पर्वत के अन्दर खदानों में यह बड़े २ ढोकों के अन्दर तह-पर-तह जमा हुआ मिलता है। साफ करके

निकालने पर इसकी काँच की तरह तह निकलती है। यह आग में नहीं जलता है। इसके पत्र पारदर्शक व मुलायम होते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक युग के अन्दर इस पदार्थ की महत्ता बहुत अधिक बढ़ गई है। इस युग की वैज्ञानिक खोज जनित समुन्नत कला-कौशल में विद्युत्-शक्ति का कितना व्यापक हाथ है, यह किसी जानकार से छिपा नहीं है। इस विद्युत्-शक्ति के आश्चर्य-जनक चमत्कारों को यशस्वी बनाने में यदि कोई पदार्थ सहयोग देता है तो वह एक मात्र अभ्रक है। अभ्रक के प्राकृतिक गुणों ने उसकी अतुलनीय उपयोगिता को पूरी तरह से प्रमाणित कर दी है। यह पदार्थ विद्युत्-शक्ति को जिस प्रकार प्रभावशून्य कर देता है। उसी प्रकार अग्नि के प्रचंड प्रकोप को भी तृणवत् समझता है। इन्हीं गुणों के कारण आधुनिक युग के विज्ञान-विशारद इसके गुणों पर रीझे हुए हैं।

लेकिन हमारे भारतवर्ष के अन्दर अत्यत प्राचीन काल से इस पदार्थ के गुण-धर्म और इसकी उपयोगिता के विषय में जानकारी चली आ रही है। जिस अभ्रक को आजकल के वैज्ञानिक अग्नि के प्रभाव से शून्य मानते हैं, उसी अभ्रक को भारत के पुराने रसायन-शास्त्रियों ने भस्मीभूत करडाला है, और उसकी ऐसी भस्म बना डाली है कि उसका पुनरुत्थान भी न हो सके। इससे मालूम होता है कि यहाँ के लोगों को हजारों वर्षों से इस पदार्थ की पूर्ण जानकारी रही है।

अभ्रक के भेद—आयुर्वेद के अतर्गत अभ्रक की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ऐसी चार जातियाँ मानी गई हैं। इनमें से ब्राह्मण अभ्रक सफेद रंग का, क्षत्रिय अभ्रक लाल रंग का, वैश्य अभ्रक पीले रंग का और शूद्र अभ्रक काले रग का होता है। इनमें से चाँदी बनाने के लिये सफेद, रसायन कार्य के लिये लाल, सोना बनाने के लिये पीला और औषधि कार्य के लिये काला अभ्रक लेनेकी सूचना की गई है।

औषधि के कार्य में आने वाला कृष्णाभ्रक भी पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र, ऐसे चार प्रकार का बतलाया गया है। इनमें से पिनाक नाम का अभ्रक अग्नि में डालने से परत २ बिखर जाता है, इसके खाने से महाकुष्ट रोग उत्पन्न होता है। दर्दुर नाम का अभ्रक आग में पड़ने से मेंडक के समान शब्द करता है और गोलाकार हो जाता है, इसके खाने से मृत्यु होती है। नाग नाम का अभ्रक अग्नि में पड़ने से फूंकार करता है। इसके खाने से भगदर रोग पैदा होता है। वज्र नाम का अभ्रक अग्नि में डालने से ज्यों का त्यों रहता है, यह अभ्रक सब जातियों में उत्तम होने के कारण औषधि के उपयोग में लिया जाता है। यह सब प्रकार के रोगों तथा वृद्धावस्था और मृत्यु को हरने वाला है।

आधुनिक वैज्ञानिक लोग अभ्रक को दो प्रकार का मानते हैं। जिसमें से एक का नाम "मिस्कोवाइट मायका" (Miscovite Mica) और दूसरे को "फ्लोगोपी मायका" (Phlogopi Mica) कहते हैं। यह दोनों ही प्रकार की बहुमूल्य जातियाँ भारतवर्ष के अन्दर काफी तादाद में पाई जाती हैं और यहाँ का अभ्रक संसार भर में सर्वोच्च श्रेणी का माना जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

रसायन-शास्त्र के अनुसार अभ्रक "अल्यूमिना" और अन्य खारदार पदार्थों का सम्मिश्रण है। इसमें "मेगनेशिया" और "आयर्न आक्साइड" नामक पदार्थ भी कभी-कभी सम्मिलित पाये जाते हैं। अभ्रक की एक जाति को अंग्रेजी में "बियोटाइट" कहते हैं। इसमें "मेगनेशिया" का अंश १० से ३० प्रतिशत तक पाया जाता है। "मिस्कोवाइट" की अपेक्षा इसमें लोहे का अंश ज्यादा होता है। मिस्कोवाइट में अल्यूमिना और सीलिसिक एसिड का भाग अधिक पाया जाता है। इसमें जल का भाग १५ प्रतिशत रहता है, परन्तु बियोटाइट में जल का भाग ७ प्रतिशत ही रहता है। अभ्रक के अन्दर सोडियम और पोटेशियम का भाग भी पाया जाता है। जिस अभ्रक में मेगनेशिया का अंश अधिक होता है, वह यदि जोरदार गंधक के तेजाब में डालकर गरम किया जाय तो गलकर विलीन हो जाता है और प्याली में सफेद सिलीका रह जाती है। अभ्रक और तेल का संयोग भी चमत्कारिक होता है। अभ्रक का संपर्क तेल से होते ही तेल उसकी तहों में प्रवेश करने लगता है और उसके परमाणुओं को बिखेर कर चूर-चूर कर डालता है।

अभ्रक के गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार अभ्रक मधुर, कसैला, शीतल, धातुवर्द्धक, आयु को बढ़ाने वाला तथा त्रिदोष, घाव, प्रमेह, कोढ़, उदररोग, प्लीहा, विषविकार और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

यथा विधि पूर्णरूप से मरा हुआ अभ्रक सकल रोग नाशक, देह को दृढ करने वाला, वीर्य-वर्द्धक, तरुणअवस्था युक्त सौ स्त्रियों से नित्य प्रति रमण करने की सामर्थ्य पैदा करने वाला तथा सिंह के समान पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करने वाला और मृत्यु के भय को दूर करने वाला है।

इसके विपरीत अशुद्ध अभ्रक अनेक प्रकार के रोग कुष्ट, क्षय, पाण्डुरोग, सूजन, हृदय की पीड़ा भारीपन और ज्वर को उत्पन्न करने वाला है।

अभ्रक भस्म कसैली, मीठी, सुशीतल, उम्र बढ़ाने वाली, धातु बढ़ाने वाली, त्रिदोष, फोड़े, प्रमेह तिल्ली, माँस की गाँठ, विष और कीड़े-इनको नाश करने वाली, शरीर को पुष्ट करने वाली इसके सेवन से सिंह के समान प्रभावशाली और दीर्घायु पुत्र होते हैं एवं मृत्यु का भय नहीं रहता।

इस अमृत रूपी अभ्रक के लगातार कितने ही बरसों तक, सेवन करने से ये फल हो सकते होंगे। हाँ, अभ्रक भस्म अनेक रोग नाश करती है, इसमें जरा भी शक नहीं।

अभ्रक, आयु को स्तम्भन करने वाला, मृत्यु तथा बुढापे को भगाने वाला, बल तथा आरोग्य को प्रदान करने वाला और महाकुष्ट को नष्ट करने वाला है। यह रुचिकर्ता, कफनाशक, दीपन और शीतवीर्य है। भिन्न २ अनुपानों के साथ यह संसार के तमाम रोगों को दूर करता है।

बुढापा और मृत्यु को हरने वाली इसके समान दूसरी दवा नहीं है। मृतअभ्रक को सब रोगों मे बरतना चाहिये, क्योंकि इसमें पारे के समान, प्रभावशाली गुण विद्यमान हैं। देह की दृढ़ता के लिये इसको तीन रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ खाने से चिरस्थायी यौवन प्राप्त हो सकता है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार अभ्रक दूसरे दर्जे में ठडा और तीसरे दर्जे में रुच है। इसकी भस्म शीतजन्य मस्तिष्करोग, बादी की कमजोरी, कामेंद्रिय की निर्बलता, श्वासकष्ट, खाँसी, प्रमेह, रक्तपित्त, क्षय और उरक्षत के रोगों मे लाभदायक है। यह पदार्थ तिल्ली और गुर्दे को हानिकारक है, इस के दर्प को नष्ट करने वाले पदार्थ कतीरा, शहद और घृत हैं।

✓ *अभ्रक शुद्ध करने की विधि*—बढ़िया वज्राभ्रक को तेज आग मे तपा २ कर सात बार त्रिफले के काढ़े में बुझाओ। इसके बाद तपा २ कर सात बार गौमूत्र में बुझाओ। उसके बाद फिर तपा २ कर सात बार काँजी में बुझाओ। अभ्रक शुद्ध हो जायगी।

धान्याभ्रक की विधि—ऊपर की तरकीब द्वारा शुद्ध किये हुए अभ्रक को धूप में फैला कर सुखा लो। सूखने पर उसे खरल में डालकर खूब कूटो, ताकि महीन हो जाय। कुटी हुई अभ्रक को तोल लो। जितनी अभ्रक हो, उसका चौथाई भाग "समूचे धान" ले लो। अभ्रक और धान दोनों को एक कम्बल के टुकडे में बाँध कर तीन दिन-रात।अर्थात् ७२ घंटो तक एक पानी के टब या बाल्टी या अन्य वर्त्तन में भींगने दो। चौथे दिन उस पोटली को पानी में * ही खूब मलो अथवा मोगरी से कूटो, जिससे सारी अभ्रक महीन होकर कम्बल के छेदों में छन-छन कर पानी में गिर जाय। इस तरह मसलने से अभ्रक के कंकर, पत्थर वगैरह खराब पदार्थ धानों के साथ कम्बल में रह जायँगे और अभ्रक पानी में चली जायगी। उस पानी को होशियारी से नितार कर बहा दो, पर अभ्रक न जाने पावे। जो अभ्रक मिले, उसे धूप मे सुखा लो। यही "धान्याभ्रक" है। अब यह अभ्रक मारने या फूंकने के काम की हुई।

अभ्रक का सत्व बनाने की विधि—

काले अभ्रक को शास्त्रीय रीति से शुद्ध करके उसका धान्याभ्रक बनाना चाहिये। यह धान्याभ्रक ४० तोला, टंकण क्षार (सुहागी) १० तोला, सादा गूगल १० तोला, घी १० तोला, शहद १० तोला, चिरमी (गुजा) १० तोला, इन सब वस्तुओं को कूट कर उनमें १० तोला इमली का पानी डालकर उनके छोटे २ गोले बना लेना चाहिये। इन गोलों को सुखाकर कोष्ठी-यंत्र में रखकर कोयले की अग्नि पर चढ़ाकर धमना चाहिये, जिससे अभ्रक का सत्व गलने लगेगा। सत्व गलते समय पीले रंग की ज्वाला निकलेगी और जब सत्व गल चुकेगा तब विद्युत् के समान सफेद रंग की ज्वाला निकलने लगेगी। ४० तोले अभ्रक का सत्व निकलने में करीब ढाई तीन घटे का समय लगेगा। यह सत्व पहिले रवे के आकार मे पड़ता है, इसलिये उसे लोह चुम्बक से पकड़ कर इकठ्ठा करना पड़ता है। इन

* अभ्रक पानी के बजाय "काँजी" में भी भिगोई जाती है।

इकट्ठे किये रवों को फिर से कोष्ठीयंत्र में रख कर आधे घटे की सख्त आँच देने से रवे गलकर एक ढाली पड़ जाती है। यह सत्व ४० तोले अभ्रक में से कम से कम ३ और अधिक से अधिक ५ तोले तक निकलता है। इस सत्व को निकालने के लिये काला अभ्रक ही सबसे उत्तम माना जाता है, क्योंकि उसमें लोहे का अंश विशेष भाग में रहता है। इसलिये सत्व निकालने के पहिले कृष्णाभ्रक की प्रारंभ में वर्णन किये हुए ढंग से अग्नि में तपाकर अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिये।

अभ्रक सत्व की भस्म—ऊपर बतलाये अनुसार अभ्रक का सत्व निकाल कर, उसको कूटकर, बारीक चूर्ण कर लेना चाहिये। उसके पश्चात् इस चूर्ण से १० वाँ भाग सिंगरफ डालकर उसे गवाँरपाठा और त्रिफला के रस या क्वाथ में एक-एक प्रहर घोटना चाहिये। उसके पश्चात् उसकी टिकड़ियाँ बनाकर उसे सराव संपुट में (मिट्टी के कुल्हड़ मे) रखकर, उसका मुँह बंद कर गजपुट (एक गज लंबा, एक गज चौड़ा और एक गज गहरा गड्ढा खोदकर उसमें जंगली कंडे भरकर आँच लगाने को गजपुट कहते हैं) में रखकर फूँक देना चाहिये। इस प्रकार बीस, साठ या एक सौ गजपुट देना चाहिये। इस प्रकार गजपुट देने से इस सत्व में पारे का कुछ अंश मिलता जाता है, जिससे २० गजपुट में करीब एक तोले भर वजन पारे का बढ जाता है। इस सत्व की भस्म का गुण साधारण अभ्रक भस्म से अधिक प्रभावशाली होता है। जिन २ रोगों में अभ्रक भस्म काम करती है, उन सब में यह सत्व भस्म साधारण भस्म से कम मात्रा में अधिक प्रभावशाली कार्य करती है।

अभ्रकसत्व का रसायन—अभ्रक के सत्व को कूटकर उसको कपड़े से छानकर थोड़ा घी का हाथ देकर लोहे के तवे पर गरम करना चाहिये। जब वह लाल सुर्ख हो जाय तब उसे लोहे की खरल में डालकर घोटना चाहिये, इस प्रकार तीनबार करने पर उसमें आठवाँ भाग शुद्ध गंधक का डालकर बड़ की जटा के काढ़े में घोटकर उसकी टिकड़ियें बनाकर सुखा लेना चाहिये। उसके पश्चात् उन टिकड़ियों को सरावसंपुट में रखकर कपड़ मिट्टी कर गजपुट में फूँक देना चाहिये। इस प्रकार ५० गजपुट बड़ की जटा के क्वाथ में और ५० गजपुट त्रिफला के क्वाथ मे घोटकर देनेसे अभ्रक सत्व का रसायन तयार होता है। इसको एक चाँवल की मात्रा में १॥ माशा सोंठ, मिर्च, पीपर और वायबिडंग के सम्मिलित चूर्ण के साथ देने से जठराग्नि प्रदीप्त होकर संग्रहणी के समान भयंकर रोग नष्ट होते है तथा क्षय, प्रदर, प्रमेह इत्यादि रोगों में भी बहुत लाभ पहुँचता है।

अभ्रक भस्म की विधि—

दसपुटी अभ्रक भस्म—धान्याभ्रक की हुई अभ्रक को साफ खरल में डालकर आँकड़े के दूध में डालकर ४ पहर तक घोटो, फिर उसकी गोल टिकिया बनाकर सुखा लो। उस टिकिया को आक के पत्तों में लपेट कर ऊपर से डोरा बाँध दो, फिर उस टिकिया को मिट्टी की एक मजबूत सराइ में रखकर ऊपर से दूसरी सराइ ढँककर दोनों की संधियाँ कपड-मिट्टी से मिला दो। उसके बाद सारी सराइयों पर कपड़-मिट्टी कर सुखा लो और गजपुट में रखकर फूँक दो। इस प्रकार सात बार उसको फूँको।

जब ऊपर की तरकीब से अभ्रक सातबार फुँक चुके, तब उसे निकाल कर, खरल में डालकर, उसमे "बड़ की जटाओं का काढ़ा" डाल-डालकर चार पहर घोटो और टिकिया बनाकर सुखा लो। सूखने पर टिकिया को सराई में रख, ऊपर से दूसरी सराई रख, कपड़-मिट्टी कर सुखा लो और उसी खड्डे में फूँक दो। यह आठ आँच हो गई। शीतल होने पर, फिर बड़ की जटा के काढ़े में घोट, टिकिया बना सुखा लो और सराइ में रख कपड-मिट्टी कर, उसी तरह फूँक दो। यह नौ आँच हुई। शीतल होने पर, मसाले को निकाल, फिर बड की जटाओ के काढ़े में घोट, टिकिया बना, सुखा सराई में रख, कपड़-मिट्टी कर, उसी तरह उसी खड्डे में फूँक दो। तीन पुट बड़ की जटा के साथ देकर फूँकने से अभ्रक की "निश्चद्रभस्म" हो जायगी।

शतपुटी अभ्रक भस्म—अगर १०० आँच की या शतपुटी अभ्रक-भस्म बनानी हो तो अभ्रक को पहिले आक के दूध में ७ बार खरल करके, सात बार गजपुट में फूँक दो। फिर तीन बार बड़ की जटा के काढ़े में खरल कर-करके तीन बार गजपुट में फूँक दो। इस तरह जब दस आँच लग जायँ, ११ वीं बार घीग्वार के रस में खरल करके, टिकिया बनाकर सुखा लो। फिर सराई में रखकर, ऊपर से दूसरी सराई धरकर, कपड-मिट्टी करके, उसी खड्डे या गजपुट में फूँक दो, फिर निकाल कर घीग्वार के रस में खरल करके टिकिया बनाकर सुखा लो और सराव-सम्पुट यानी सराई में रख ऊपर से दूसरी सराई रख, कपड़ मिट्टी कर गजपुट या उसी खड्डे में फूँक दो। इस तरह सात बार आक के दूध में, तीन बार बड की जटा के काढ़े में और नब्वे बार घीग्वार के रस में खरल कर करके, यानी कुल १०० बार खरल कर-करके, प्रत्येक बार गजपुट में फूँको, तब १०० आँच की अभ्रक भस्म तैय्यार हो जायगी।

सहस्रपुटी अभ्रक भस्म—शुद्ध धान्याभ्रक लेकर उसे नीचे लिखी हुई ६३ मारक दवाओं के रसों या काढ़ों में अलग २ बारह २ घटे तक खरल करके टिकिया बनाकर धूप में सुखाओ और सराइयों में बद करके गजपुट की आँच दो। इस प्रकार प्रत्येक औषधि में सोलह बार घोटकर आँच देने से कुल ६३ × १६=१००८ आँच हो जायगी, इसी को सहस्रपुटी अभ्रक भस्म कहते हैं। यह भिन्न २ अनुपानों के साथ तमाम रोगों का नाश करती और अतुलनीय बल, वीर्य पैदा करती है।

६३ औषधियों के नाम—१ आक का दूध २ बड़ का दूध ३ थूहर का दूध ४ घीग्वार का रस ५ अरडी के पत्तों का रस ६ नागर मोथे का काढा ७ गिलोय का काढ़ा ८ भाँग का काढ़ा ९ छोटी कटेरी का काढ़ा १० गोखरू का काढ़ा ११ बड़ी कटेरी का काढ़ा १२ शालपर्णि का काढ़ा १३ पृष्टपर्णि का काढा १४ सफेद सरसों का काढ़ा १५ चिरचिरे के पत्तो का रस १६ बड़ की जटा का काढ़ा १७ बेल के पत्तो का रस या काढा १८ अरनी की छाल का काढ़ा १९ चीते की जड़ का काढ़ा २० तिन्दू की छाल का काढा २१ हरड़ का काढा २२ पाटल का काढा २३ गौमूत्र २४ आँमलों का रस या काढ़ा २५ बहेड़ों का काढ़ा २६ पीपरों का काढ़ा २७ तालीस पत्र का काढ़ा २८ मूसली का काढ़ा या रस २९ अडूसे का काढ़ा या रस ३० असगध का काढ़ा ३१ मौलसरी के पत्तो का काढ़ा ३२ भाँगरे का रस

३३ केले के थम का रस ३४ सतवन की छाल का काढ़ा ३५ धतूरे के पत्तों का रस ३६ लोध का काढा ३७ देवदारु का काढ़ा ३८ हरी और सफेद दूब का रस ३९ कसौंदी के पत्तों का रस ४० कालीमिर्चों का का काढ़ा ४१ अनार का रस ४२ मकोय का रस ४३ शखपुष्पी का रस या काढ़ा ४४ अनार का काढा ४५ पानों का रस ४६ पुनर्नवा का रस ४७ गोरखमुंडी का काढा ४८ इन्द्रायण की जड़ का काढा ४९ भारगी का काढ़ा ५० बड़ी तरोई का रस ५१ शिवलिंगी का काढ़ा २५ कुटकी का काढ़ा ५३ ढाक के बीजों का काढ़ा ५४ बदाल के पत्तों का रस या काढ़ा ५५ मूषाकानी के पत्तों का रस ५६ जवासे का काढ़ा ५७ ब्राह्मी का रस या काढ़ा ५८ काले जीरे का काढ़ा ५९ अगस्त्य का रस ६० शतावर का काढ़ा या रस ६१ मछेछी का काढ़ा ६२ घी और ६३ दूध।

उत्तम अभ्रक भस्म की पहचान—

जो अभ्रक भस्म काजल जैसी चिकनी और महीन तथा निश्चंद्र हो, यानी जिसमें चमक न हो, वह अमृत के समान है। अगर सचद्र हो, यानी उसमें चमक होतो वह विष की तरह प्राण नाशक और रोग पैदा करने वाली है।

उपयोग—

वाजीकरण-(१) सेमल की मूसली के चूर्ण के साथ, भाँग के चूर्ण के साथ या चीनी और शहद के साथ अभ्रक भस्म एक से दो रत्ती तक सेवन करना चाहिये।

(२) असगध, शतावर, सेमल की मूसली, चीते की जड़, सफेद मूसली, तालमखाने के बीज, विदारी कद, कौंच के बीज और कमलकद, इन सबको समान भाग लेकर पीस, छान लेना चाहिये। जितना चूर्ण हो उतनी ही निश्चंद्र अभ्रक भस्म मिला देना चाहिये। इस मिली हुई दवा को उचित मात्रा में मिश्री और दूध के साथ सेवन करने से बेहद बलवीर्य और रतिशक्ति बढ़ती है।

क्षय—(१) सुवर्ण भस्म के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से क्षय के रोग में लाभ होता है।

(२) त्रिकुटा, त्रिफला, दालचीनी, तेजपात, बड़ी इलायची, नागकेशर, मिश्री और मधु के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से क्षय के रोग में बहुत लाभ पहुँचता है।

(३) वशलोचन, इलायची, सत्तगिलोय के साथ अभ्रक भस्म सेवन करना चाहिये। बवासीर, पित्त और खून विकार के रोगो मे भी यह अनुपान ठीक है।

प्रमेह—(१) हल्दी के चूर्ण और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से प्रमेह का रोग आराम होता है।

(२) गिलोय सत्त और मिश्री के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करना चाहिये।

(३) शुद्ध शिलाजीत, पीपल के चूर्ण और सोनामक्खी की भस्म के साथ अभ्रक भस्म सेवन करना चाहिये।

(४) हल्दी और त्रिफले के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म का सेवन करने से प्रमेह आराम होता है।

(५) इलायची, गोखरू, भुई आँवले, मिश्री और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र दोनों आराम होते हैं।

ववासीर—(१) शुद्ध भिलावे के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से ववासीर के रोग में वहुत फायदा होता है।

(२) त्रिफला, दालचीनी, वड़ी इलायची, तेजपात, नागकेशर, चीनी और शहद के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से ववासीर रोग का नाश होता है।

मूत्रा घात, मूत्रच्छ्र और पथरी—इन रोगों में जवाखार आदि चारों के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से वहुत लाभ होता है।

विविध रोग—संग्रहणी, आमाशय, पेट के रोग, पाण्डुरोग, खाँसी, पेट के कीड़े, अरुचि और मन्दाग्नि इन तमाम रोगों में अभ्रक भस्म को त्रिकुटा, वायविडग, गाय का घी और शहद के साथ देने से वेहद फायदा पहुँचता है।

हृदय रोग—अर्जुन वृक्ष की छाल के चूर्ण के साथ, हजार पुटी अभ्रक भस्म को अर्जन की छाल के काढ़े में सात वार भावना देकर फिर हृदय रोगियों को देने से यह बीमारी दूर होती है।

जीर्ण ज्वर—अभ्रक भस्म को शहद और पीपर के साथ लेने से जीर्ण ज्वर नष्ट होता है।

नेत्र रोग—अभ्रक भस्म को त्रिफला के डेढ़ माशा चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ चटाने से नेत्र रोग में लाभ होता है।

बुद्धि वर्द्धक—अभ्रक भस्म को वायविडग और त्रिकुटा के चूर्ण के साथ देने से मस्तिष्क शक्ति बढ़ती है।

कुष्ट रोग—शहद और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से श्वास, विष, कोढ़, वायुरोग पित्त, कफ, क्षय, भ्रम इत्यादि रोगों में लाभ होता है।

सन्निपात—अदरख के रस और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से सब प्रकार के सन्निपात में लाभ होता है।

ज्वर—तुलसी के पत्तो के रस और पीपर के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म देने से सब प्रकार के ज्वर उतरते हैं।

उन्माद—बच के चूर्ण में अभ्रक भस्म मिलाकर ऊपर से गाय का दूध पीने से उन्माद मृगी, और अतिसार में लाभ होता है।

फिरङ्ग रोग—कंटकारी की जड़ तथा गोलमिर्च के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म लेने से फिरङ्ग रोग (उपदश) में लाभ होता है। इस औषधि को लेते समय नमक नहीं खाना चाहिये।

रक्तार्तव—चौलाई की जड़ और पीपर वृक्ष की छाल को चाँवल के धोवन में पीस कर छान लेना चाहिए। इसके पश्चात् शहद के साथ अभ्रक चाट कर ऊपर से यह पानी पीने से मासिक धर्म में नदी की तरह बहता हुआ खून भी रुक जाता है। (चिकित्सा-चन्द्रोदय)

बनावटें—

अभ्रक का कल्प—अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म, आमला, त्रिकुटा, वायविडंग इन सब औषधियों को समान भाग लेकर भागरे के रस में दो प्रहर तक खूब घोटें। उसके बाद एक-एक माशे की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। इन गोलियों में से पहिले वर्ष में एक-एक गोली, प्रतिदिन दूसरे वर्ष में दो-दो गोली प्रतिदिन और तीसरे वर्ष में तीन-तीन गोलियाँ प्रतिदिन सेवन करें। इस योग से तीन वर्ष में जो मनुष्य ४०० तोला अभ्रक का सेवन कर लेता है वह वज्र के समान शरीर वाला हो जाता है। इसके तीन ही महीने के सेवन से रक्तविकार, क्षय, असाध्य दमा, सब प्रकार की खाँसी, हृदयशूल, संग्रहणी, बवासीर आमवात, शोथ, भयानक पाण्डु और अठारह प्रकार के कोढ दूर होते हैं। (रसयोग-सागर)

अभ्रक हरीतिकी—अभ्रक भस्म ८ तोला, शुद्ध गधक २ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म २४ तोला, हरड़ ४० तोला, आमला ८० तोला इन सबों का चूर्ण कर एक दिन जंबीरी नीम्बू के रस की भावना देवें। उसके पश्चात् भागरा, सोंठ, छिरहटा, भिलामा, चित्रक, कुरंटक, हाथी शुंडी, कलिहारी, दूधी, और जलकुभी इन प्रत्येक के रस में एक २ दिन खरल करें, उसके पश्चात् चीनी के पात्र में भरकर रख लेवें।

इस औषधि को बलानुसार डेढ़ माशे से ढाई माशे तक की खुराक में लेने से सब प्रकार की बवासीर दूर होती हैं। बवासीर रोग की यह एक महौषधि है। (आयुर्वेदीय कोष)

अभ्रक गुटिका—शुद्ध पारा, शुद्ध गधक, शुद्ध वच्छनाग, सोंठ, मिर्च, पीपर, भुना सुहागा, कांतिसार, अजमोद, अफीम सब एक २ तोला और अभ्रक भस्म १० तोला इन सबको लेकर चित्रक के काढ़े में एक दिन तक खरल करके कालीमिर्च के बराबर २ गोलियाँ बना लें। इन गोलियों को एक मास तक सेवन करने से सग्रहणी दूर होती है।

विशेष—इनके अतिरिक्त अभ्रक भस्म से अग्निकुमार रस, कन्दर्पकुमारअभ्र, हरिशकर रस, अर्जुनाभ्रक, श्रृंगाराभ्रक, वृहत्चन्द्रामृत रस इत्यादि मूल्यवान औषधियाँ बनती हैं।

———:o:———

अमरबेल

नाम—

संस्कृत—आकाशवल्ली, दुस्पर्शा, व्योमवल्लिका, अमरवल्लरी। हिन्दी—अमरबेल। गुजराती—अमरवेल। मराठी—अमरवेल। बंगाली—आलोक-लता। अरबी—अफतीमून। फारसी—कसूसे हिन्द। लैटिन—Cuscutareflexa (कुसकुटारिफ्लेक्सा.)

वर्णन—

यह पीले रंग की, पराश्रयी लता है, जो बबूल, बेर, पीपल, थूअर, इत्यादि वृक्षों के ऊपर जाले की तरह छा जाती है। इस बेल में से चूसने वाले सूत्र (Suckers) निकल कर जिस वृक्ष पर यह बेल फैली हुई रहती है, उस झाड़ की डालियों का रस ये चूसते रहते हैं। यह बेल बड़ी और छोटी के हिसाब से दो प्रकार की होती है। यूनानी चिकित्सा के अन्दर जो गुण अफ़तीमून के माने गये हैं। वही गुण वैद्यकग्रन्थों में भी प्रायः आकाशबेल के माने जाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार अमरबेल तीखी, मधुर, पित्तनाशक, वीर्यवर्द्धक, बलकारक, रसायन और दिव्यौषधि है।

यूनानी मत से इसके बीज कड़वे, उपशामक, ऋतुस्राव को नियमन करने वाले, पेशाब को साफ लाने वाले, धातुपरिवर्तक, यकृत और तिल्ली की बीमारी में फायदा पहुँचाने वाले हैं। यह बेल चौथिया पाली (जूड़ी) एकाँतरा और बुखार को दूर करती है तथा जीर्णज्वर, आँतों के दर्द और कुक्कुर खाँसी में लाभ पहुँचाती है, यह बेल खून और आँतों को साफ करती है। इसका सत आँखों की बीमारियों में दिया जाता है।

सिन्ध और पंजाब के स्थानीय डाक्टर इसको शरीर के रसों को शुद्ध करने वाला समझते हैं। रक्तशुद्धि के लिये सार्सापरिला के साथ यह इस्तेमाल की जाती है। इसके बीजों को उबालकर पेट पर बाँधने से पेट का आफरा दूर होता है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डा० नॉडकर्णी के मतानुसार अमरबेल का काढ़ा कब्जियत, लिवर की बीमारियों तथा पित्तविकार में उपयोगी मानते हैं और खून शुद्ध करने के लिये इसका सार्सापरिला के साथ प्रयोग करते हैं।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि इस औषधि का यकृत और तिल्ली के ऊपर सीधा प्रभाव होता है। और इन दोनों के दोष से जितनी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, उन सब में यह फायदा पहुँचाती है।

प्रयोग—

यकृत की वृद्धि—यकृत की वृद्धि और उसकी कठोरता को मिटाने के लिये अमरबेल का काढा पिलाना चाहिये तथा पेट पर इसका लेप करना चाहिये।

रक्त विकार—उसबे के साथ इसका क्वाथ, शहद मिलाकर पीने से रुधिर शुद्ध होता है।

आफरा—इसके बीजों को उबाल कर पेट पर बाँधने से डकारें, अपशब्द आदि दूर होकर पेट की पीड़ा मिट जाती है।

पुराना घाव—इसके चूर्ण में सोंठ और घी मिलाकर लेप करने से पुराना घाव भरता है।

खुजली—इसको पीसकर लेप करने से खुजली में फायदा होता है।

बनावटें—

शर्बत दीनार—अमरबेल के बीज १॥ तोला, कासनी के बीज २ तोला, गुलाब के फूल २ तोला, कासनी की जड़ की छाल ४ तोला, नीलोफर के फूल १ तोला, गावजवान के पत्ते १ तोला, इन सब वस्तुओं में से अमरबेल को छोड़कर बाकी सब वस्तुओं को कूट लेना चाहिये। और अमरबेल को कपड़े की एक थैली में डालकर तीन सेर पानी में चूर्ण के साथ आग पर चढ़ा देना चाहिये। जलते २ जब जल १ सेर रह जाय तब उसमें १॥ सेर शक्कर डालकर एक तार की चासनी बनाकर शर्बत बना लेना चाहिये। इस शर्बत को सब से पहिले हकीम नहसू ने बनाया था और उस समय यह दीनार के बराबर (मुगलकाल का एक सिक्का) तोल कर बिकता था, इसीसे इसका नाम शर्बतेदीनार पड़ा।

यह शर्बत धातु-परिवर्तक है। इसको १ से २ रुपये भर के प्रमाण में पानी के साथ पीने से यह बुखार और शरीर के दूसरे दोषों को सुधारता है। जलोदर, हाथ पैरों की सूजन, फसली का दर्द तथा लीवर, पेट, गुर्दा तथा योनि के तमाम विकारों में यह लाभ पहुँचाता है।
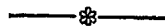
अमरबेल विलायती

नाम—

फारसी—अफतीमून। हिन्दी—अमरबेल विलायती। लेटिन—Cuscuta Epythymum. (कसक्यूटा एपीथीमम)

वर्णन—

इसका रूप-रंग, वगैरः सब देशी अमरबेल से मिलता-जुलता है, जिसका वर्णन ऊपर कर दिया गया है।

गुण दोष और उपयोग—

आयुर्वेद के अन्दर इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं पाया जाता।

यूनानी मत—यूनानी के प्रसिद्ध ग्रन्थ मखजनुल अदविया और तर्जुमा नफीसी में इसका वर्णन मिलता है। उसके अनुसार यह औषधि तीसरे दर्जे में गरम और पहले दर्जे में रुक्ष है। यह गरम प्रकृति वालों को तथा नौजवान मनुष्यों को हानि पहुँचाने वाली है, यह मूर्च्छा को पैदा करने वाली और तृषाजनक है। इसके प्रतिनिधि निसोथ, पित्त-पापडा, उस्तखद्दूस इत्यादि चीज़ें हैं तथा इसके दर्प को नष्ट करने के लिये शर्बत अनार, शर्बत सन्दल और केशर इत्यादि चीज़ें हैं।

यह औषधि अपने गरम और रुक्ष स्वभाव की वजह से वात-व्याधियों को दूर करती है और अधेड़ और वृद्ध मनुष्यों की प्रकृति को साम्य अवस्था पर लाती है। नवयुवकों के अन्दर यह प्यास और मुख शोषपैदा करती है। यह सूजन के अन्दर तथा मस्तिष्क के रोगों में लाभ पहुँचाती है। खून और चर्मरोगों में भी यह हितकारी है।

इसके बीज जिन्हें कशूस कहते हैं, वे भी गरम और रूखे होते हैं। ये पेशाब और पसीना लाने वाले, रजःप्रवर्तक, दुग्धवर्द्धक तथा प्रकृति को मुलायम करने वाले होते हैं।

यूनानी के अन्दर इस औषधि के मेल से कई प्रकार की वटिकाएँ, चूर्ण, माजून और क्वाथ बनाये जाते हैं।

अमरूद

नाम—

संस्कृत—पेरूकम, दृढ़बीजम्, मोसलम्। हिन्दी—जामफल, अमरूद। गुजराती—जामफड़। मराठी—पेरू। बंगाली—पियारा। तैलंगी—गोइया। द्राविड़ी—कोइया। कर्नाटकी—शिवे। अरबी—कमुसरा। लैटिन—Psidium Gujava.

विवरण—

अमरूद या जामफल सारे भारतवर्ष में सब दूर बगीचों में होता है। इसे सब लोग जानते हैं। इसके विशेष विवरण की आवश्यकता नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—अमरूद कसैला, मधुर, ग्राही, किंचित खट्टा तथा पकने पर स्वादिष्ट, शीतल, तीक्ष्ण, भारी, कफकारक, वातवर्द्धक, उन्माद-नाशक, वीर्यवर्द्धक, त्रिदोषनाशक, तथा भ्रम, दाह और मूर्च्छा को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहिले दर्जे में ठण्डा और तर तथा दूसरे दर्जे में उष्ण प्रकृति-युक्त है। शीत-प्रकृति वाले को तथा जिसका आमाशय निर्बल है, उसके लिये यह हानिकारक है।

यह बलकारी, मृदु, मन को प्रसन्न करने वाला, क्षुधा को बढ़ाने वाला तथा हृदय और पाचन-शक्ति व मस्तिष्क को बल देने वाला है। इसके पत्ते अतिसार और व्रण को नाश करने वाले हैं। इसके फूल हृदय को बल देने वाले,खून को बन्द करने वाले तथा अतिसार को नष्ट करने वाले होते हैं। इसका लेप आँखों की सूजन को मिटाता है। मीठा अमरूद पेचिश मे लाभदायक है। भोजन के बाद लेनेसे यह मृदुविरेचन का काम करता है। इसके काढे का बच्चों के अतिसार मे सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

बच्चों के गुदाभ्रंश रोग में भी इसका काढ़ा फायदेमन्द साबित हुआ है। इसके छोटे पत्ते पाचन-क्रिया सम्बन्धी विकारो को नष्ट करते हैं। हैजे के रोग में भी इसका काढ़ा उपयोग में लिया गया है और उसमें कुछ दर्जे तक सफलता भी प्राप्त हुई है। दाँतों के दर्द में इसके पत्तों को चबाने से लाभदायक मालूम हुआ है।

वेस्ट इंडीज में इसके काढ़े का स्थान ज्वरनाशक और आक्षेप-निवारक माना गया है। गठिया की बीमारी मे इसका लेप किया जाता है। इसके पत्तों का अर्क मूर्छा व कम्पवात में दिया जाता है। इसका मुरब्बा अतिसार व रक्तातिसार वालों के लिये लाभदायक है।

रासायनिक विश्लेषण

डा० चोपडा के मतानुसार इसकी जड़ व छाल में टेनिन एसिड काफी मात्रा में रहता है। इसके अतिरिक्त केल्सियम और ऑक्जेलेट के रवे भी इसमें पाये जाते हैं। इसके पत्तों का काढ़ा मसूड़ों की सूजन और मुँह के फोड़ों मे कुल्ले करने के काम में लिया जाता है। इसकी जड़ का छिलका उत्तम, सकोचक, ज्वरनिवारक और आक्षेपनिवारक औषधि है। इसके फल दस्तावर और इसके पत्ते रोचक हैं।

उपयोग—

भग का नशा—जामफल के पत्तों का रस पिलाने से या जामफल खाने से भङ्ग का नशा उतरता है।

बच्चों का पुराना अतिसार—इसकी सवा तोले जड़ को पन्द्रह तोले पानी में औटाकर, जब साढ़े सात तोला पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये। इस काढ़े में से छः माशे पानी दिन में तीन बार पिलाने से बच्चों का पुराना अतिसार बन्द होता है।

हैजा—इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर पिलाने से हैजे की दस्त, उल्टी बन्द हो जाती है।

पुराना अतिसार—इसके कोमल पत्तों की जड़ की छाल का काढ़ा बनाकर पीने से पुराने अतिसार में लाभ पहुँचता है।

दंत पीड़ा—इसके पत्तों को चबाने से दन्त की पीड़ा दूर होती है।

अमरूल

नाम—

संस्कृत—अम्लिका । बबई—अम्बुटि । तामील—पलियाकिरी । हिन्दी—अमरूल । लेटिन—Rumexadentatus. (रूमेक्सडेन्टेटस)।

वर्णन—

यह औषधि भी अमलवेत का ही एक दूसरा प्रकार है। यह विशेष कर खानदेश, दक्षिणी भारत और कुमायूँ में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ सकोचक है और विशेष कर चर्मरोगों में लाभ पहुँचाती है ।

कर्नल चोपडा के मतानुसार इसके पत्ते बुखार, अतिसार और बच्चों के स्कर्व्ही (Scurvy) रोग में काम में लिये जाते हैं। अतिसार के अंदर इसके पत्तों का ताजा रस शकर या शहद मिलाकर लेने से फायदा पहुँचाता है। पजाब और सीमाप्रान्त मे इस सारे झाड़ का रस फोड़ों को दूर करने के लिये काम में लिया जाता है।

अमलतास

नाम—

संस्कृत—नृपद्रुम, आरगबधः, हेमपुष्पः,दीर्घफलः, व्याधिघातः। हिन्दी—अमलतास, धनबहेड़ा। मारवाड़ी—करमाछो। गुजराती—गरमाछो। मराठी—वाहवाह। बंगाली—सोनालू। तेलगी—रेल-चट्टू। कर्नाटकी—कक्केमर। लेटिन—Cassia Fistula (केसिया फिस्चूला)

परिचय—

अमलतास के पौधे हिन्दुस्तान में सब दूर होते हैं। इसके वृक्ष बहुत ऊँचे नहीं होते। इसके पेड़ की गोलाई ३ से ५ फीट तक होती है। इस झाड़ में दो-डेढ़ फुट लम्बी काले रंग की फलियाँ लगती हैं, जो शीतकाल में पकती हैं। फली के भीतर छोटे २ खाने बने हुए होते हैं और उसमें काले रंग का गोंद के समान एक लसदार पदार्थ भरा रहता है जोकि उसका गिर कहलाता है। इस झाड़ की शाखाओं में से एक प्रकार का लाल रस निकलता है, जो जम कर गोंद सरीखा हो जाता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार अमलतास भारी, स्वादिष्ट, शीतल, मृदुरेचक (हलका जुलाब) तथा ज्वर, हृदयरोग, रक्तपित्त, वात उदावर्त और शूल को नष्ट करने वाला है। इसकी फली रुचिकारक, कुष्टनाशक, पित्तनिवारक, कफ नष्ट करने वाली, कोठे को शुद्ध करने वाली, तथा ज्वर में पथ्य है। इसके पत्ते कफ और मेदा को शोषण करने वाले और मल को ढीला करने वाले है। इसके फूल स्वादिष्ट, शीतल, कड़वे, कसैले, वातवर्द्धक तथा कफ और पित्त को दूर करने वाले हैं। इसकी मज्जा जठराग्नि को बढ़ाने वाली, स्निग्ध, पाक में मधुर, रेचक तथा वात पित्त को नष्ट करने वाली है। इसकी जड़ दूध में औटाकर देने से वात-रक्तनाशक, दाह और दाद को नष्ट करने वाली है। इसकी जड़ चर्मरोग, कोढ, क्षयरोग व उपदश में उपयोगी है। इसके,पत्ते मृदु-विरेचक, सामयिकज्वर को दूर करने वाले, घाव को जल्दी पूरने वाले तथा गठियावाय में अधिक लाभ पहुँचाने वाले होते हैं। अग्नि विसर्परोग में इनका रस दिया जाता है। इसकी फलियाँ मृदुविरे-चक, ज्वरविनाशक और स्वाद को दुरुस्त करने वाली होती हैं। ये कफ, पित्त, चर्मरोग और कुष्ट को आराम करती है। इसके फूलों में सुगध आती है। फूलों का स्वाद कटु और तिक्त रहता है। ये ठंडे और संकोचक होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहले दर्जे में गरम, तर और किसी २ के मत से मउतदिल अर्थात् (समशीतोष्ण) है। इसके पत्ते प्रदाह को नाश करने वाले और इसके फूल विरेचक हैं। इसके फल मीठे, स्वाद में खराब और एक प्रकार की हीक लिये हुए रहते हैं। यह ज्वर को नाश करने वाला, गर्भस्रावक और शातिदायक होता है, छाती की तकलीफ, गले की तकलीफ, नेत्ररोग, गठियारोग और आँतो के दर्द को दूर करता है। इसकी जड़ प्रायः पौष्टिक और ज्वर-नाशक औषधि के रूप में दी जाती है। यह एक तेज विरेचक का भी काम करती है। कोकन में इसके पत्तों का रस, दाद की दवा के रूप में लगाया जाता है।

डा० चोपड़ा के मतानुसार इसके बीज विरेचक हैं तथा गठिया और सर्पदंश में इनका उपयोग किया जाता है। चरक, सुश्रुत और योगरत्नाकर के कर्ता भी इसको दूसरी औषधियों के साथ सर्पदंश और वृश्चिकदंश में उपयोगी मानते हैं। मगर केस और मस्कर के मतानुसार यह सर्पदश और वृश्चिकदश में बिल्कुल निरुपयोगी सिद्ध हुआ है।

रासायनिक विश्लेषण—

फल के बारीक चूर्ण में भपके के द्वारा अर्क खींचने से एक मधुर गंधयुक्त श्याम तथा पीले रग का एक उड़नशील तेल प्राप्त होता है। तेलीय अर्क में साधारण ब्यूटिरिक एसिड होता है। फल व गूदा में शक्कर ६० परसेंट, लुआब, संग्राही पदार्थ, ग्लूटिन, रंजक पदार्थ, पॅक्टीन, केलशियम ऑक्जेलेट, भस्म, निर्यास और जल ये द्रव्य पाये जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि यह औषधि आमाशय के ऊपर अपना मृदुप्रभाव डालकर कोमल विरेचन करती है। इसलिये कमजोर आदमियों को तथा गर्भवती स्त्रियों को भी विरेचक-औषधि के रूप में यह औषधि दी जा सकती है।

अमलतास का कल्प—कल्प किया हुआ अमलतास साधारण अमलतास से ज्यादा गुणकारी होता है। और चार वर्ष के बच्चे को भी आसानी से हजम हो सकता है तथा कोई हानि नहीं पहुँचाता, इसलिये अमलतास को काम में लेने के पहिले अगर उसका कल्प कर लिया जाय तो विशेष अच्छा रहता है। इसकी विधि इस प्रकार है—अमलतास का पका हुआ फल लाकर एक सप्ताह तक बालू के ढेर में गाड़ दिया जाय। फिर उसे धूप में सुखा लिया जाय। इस फल के गूदा को दाख के रस के साथ देने से उत्तम विरेचन होता है और कोई हानि नहीं होती।

प्रयोग—

चर्म रोग—अमलतास के पंचाग (जड़, छाल, फल, फूल और पत्ते) को जल के अन्दर पीसकर दाद, खुजली और दूसरे चर्मविकारों पर लगाने से जादू के समान असर होता है। मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पेशाब के साथ खून गिरना आदि विकारों पर इसका गूदा, नाभि पर लेप करने से बहुत फायदा होता है। लेप सूख जाने पर उखाड़ देना चाहिये और रात में लेप नहीं करना चाहिये।

श्वास की रुकावट—इसकी गिरी का क्वाथ पिलाने से लघुविरेचन होकर श्वास की रुकावट मिटती है।

सुन्नवात व गठिया—इसके पत्तों को गरम करके इनकी पुल्टिस बाँधने से सुन्नवात, गठिया और अर्दित में फायदा होता है।

अंड-वृद्धि—इसकी डेढ़ तोले गिरी को दस तोले पानी में औटाकर ढाई तोला रहने पर उसमें तीन तोले गाय का घी मिलाकर खड़े-खडे पीने से अड-वृद्धि में लाभ होता है।

कंठमाल—इसकी जड़ को चाँवलों के पानी के साथ पीसकर सुंघाने और लेप करने से कंठमाल में फायदा होता है।

कब्जियत—अमलतास का गूदा और इमली का गूदा दोनों को समान भाग लेकर, भिंगोकर, उसके पानी के मल-छानकर रात को सोते समय पीने से सबेरे साफ दस्त हो जाता है।

कर्ण रोग—इसके क्वाथ को कान में डालने से पीप बहना बद हो जाता है।

कुष्ट—कुष्ठ, दाद इत्यादि त्वचा रोगों पर इसके पत्तों को सिरके के साथ पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

बालक का आफरा—बालकों के आफरा और पेट के शूल में इसकी गिरी को नाभी के चारों ओर लेप करने से लाभ होता है।

सुख प्रसव—अमलतास के छिलके को औटाकर उसमें शक्कर मिलाकर पिलाने से गर्भवती स्त्री को आराम से प्रसव हो जाता है।

हरिद्रा-प्रमेह—अमलतास के पत्तों और जड़ का क्वाथ बनाकर हरिद्रा-प्रमेह में देने से लाभ होता है।

बनावटें—

अमलतासादि तैल—अमलतास के पत्ते, चकोर के पत्ते, मैंसल, हल्दी, कूठ, दारुहल्दी, पीपर, गंधक, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर लुगदी बनाकर कड़वे तेल में पका लें, इस तेल को फोड़ा, फुन्सी, दाद, खुजली आदि चर्मरोगों पर लगाने से बहुत लाभ होता है।

अमलतासादि अवलेह— नीबू के एक सेर रस में आधे सेर अमलतास की फलियों को कूट कर डाल दे। दो दिन भीगने के बाद स्वच्छ वस्त्र में डालकर हाथ से हिला २ कर छान लें। उसके पश्चात् दालचीनी, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपर, भुनी हुई हींग, छोटी इलायची के दाने और बड़ी इलायची के दाने इन सबको दो-दो तोला लेकर लोहे की खरल में पीसकर कपड़छन कर उसमें मिला दें। इसके पश्चात् सेंधानमक, कालानमक, अग्नि पर भुना हुआ काला दाना और भुना हुआ सफेद जीरा ये चारों चीजे भी पीसकर उसमें मिला दें।

इस अवलेह को ३ माशे से लेकर एक तोले की खुराक तक चाटने से मदाग्नि और आलस्य दूर होते हैं। रात्रि को चाटकर सोने से प्रातःकाल साफ दस्त हो जाती है। चित्त खूब प्रसन्न रहता है। भोजन में अरुचि होने पर दो घटे पहिले चाट लेने से भोजन में रुचि पैदा हो जाती है। ज्वर के अंदर मुँह का जायका बिगड़ा रहता है, वह इससे शुद्ध हो जाता है। इस अवलेह में पाँच तोले मुनक्का को नींबू के रस में पीसकर मिला देने से तथा थोड़े पके हुये अनार के दानों का रस मिला देने से इसकी गरम प्रकृति भी शीतल हो जाती है। इस औषधि को हमेशा मिट्टी या चीनी के पात्र में बनाना चाहिये। धातु के पात्र में कभी नहीं बनाना चाहिये।

अमलतासादि अरिष्ट—अमलतास का गूदा एक सेर, जमालगोटे की जड़ एक सेर, गुड़ एक सेर, धायके फूल ५ तोला, सोंठ ५ तोला, कालिमिर्च ५ तोला, पीपर ५ तोला, पानी ३२ सेर। सब से पहिले पानी में जमालगोटे की जड़ का क्वाथ बनाकर जब चौथाई जल शेष रहे, तब उसमें अमलतास का गूदा और गुड तथा दूसरी सब दवाओं का चूर्ण मिलाकर घी के घडे में (हाँडी में) भरकर मुँह बद करके जमीन मे गाड दे। एक महीने के बाद उसको निकाल कर, छानकर, बोतलों में भर दें। इस अरिष्ट को सुबह-शाम ढाई तोले की मात्रा मे देने से यह पेट की सब बीमारियों को नष्ट करता है। धन्वतरि के बूँटी-चित्राक में एक वैद्य महोदय ने लिखा है कि इस अरिष्ट के साथ "नारायण" चूर्ण का सेवन करने से असाध्य पेट के रोगी भी आराम हुए हैं।

माजून अमलतास—गुलाब के फूल ७ तोला, सनाय मक्की ७ तोला, सूखा धनियाँ १ तोला, सत मुलहठी (रुब्बेसूस) १ तोला, सेंधानमक १ तोला, इन सब औषधियों को कूट पीसकर बरसात के झेले हुए (Rain water) २ सेर पानी में भिगो दें। फिर १२ तोला अजीर, ६ तोला इमली, ५ तोला आलूबुखारा और २० तोला अमलतास का गूदा, इनमें से पहली तीन चीजों का काढ़ा बनाकर अच्छी

तरह मिलाकर चलनी से छान लें। फिर अमलतास को भी उस जल में भिगोकर हलकी आँच से कुछ देर पकावें और फिर इसको तरह से मिलाकर चलनी से छान लें, उसके पश्चात् एक सेर शक्कर मिलाकर उसे गाढ़ा होने तक औटाकर पकाना चाहिये। फिर उतारकर बारीक की हुई दवाइयों को उसमें मिलाकर उसमें चार तोला रोगन बादाम मिला लें। रोगन बादाम ठंडा होनेपर मिलावें, नहीं तो जलने का अंदेशा रहता है।

यह माजून प्रत्येक प्रकृति वालों के लिये आँतों की रूक्षता को मिटाकर उनको मृदु करने में लाभदायी है। विशेष कर अर्शरोगों के लिये यह बहुत फायदेमंद है।

इसकी खुराक ४ माशे से ८ माशे तक है, जो पानी के साथ रात को सोते समय दी जाती है।

———०———

अमलवेत

नाम—

संस्कृत—अम्लवेतस, चुक्र, शतवेधी, [illegible], अम्ल, रसाम्ल, भीम, अम्लनायक। हिन्दी—अमलवेत, चूका, अम्बेरी। बंगाली—बेरड, अम्लवेतस्। मराठी—चूका। गुजराती—अमलवेत। तामील—शेक्किराई। तैलगू—चूक्कूरा। अरबी—हमाझ, हुमर बोस्तानी, हबीजित। फारसी—तुरुक, तुरशाक, तुरशुनुक। पंजाबी—खट्टामीठा, खटबीरी, खट्टातान, मालुनि। लैटिन—Rumex Vesicarius (रूमेक्स वेसीकेरियस) इंग्लिश—Bladder Dock,Sorrel.

वर्णन—

यह एक हलके हरे रंग की वर्षजीवी वनस्पति है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले होते हैं। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है। यह दो जाति का होता है। एक को अमलवेत व दूसरे को चेंती कहते हैं। यह पेड़ मालियों के बगीचों में बहुत होते हैं। इसके फूल सफेद रंग के और फल गोल खरबूजे के समान कच्ची हालत में हरे और पकने पर पीले पड़ जाते हैं। यह चिकना होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अमलवेत अत्यन्त खट्टा, भेदक, हलका, अग्निदीपक, पित्त बढ़ाने वाला, रूखा तथा हृदयरोग, पेट दर्द, वायुगोला, कब्जियत, प्लीहा, हिचकी, शराब से पैदा हुई विकृति, श्वास, खाँसी, अजीर्ण और वातरोग को हरने वाला है। इसके रस में लोहे की सुई डालने से वह गल जाती है। चरक के मतानुसार इसके पत्ते सर्पविष को दूर करने वाले और बीज बिच्छू के जहर को नाश करने वाले होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि ठंडी, पौष्टिक और खुजली की बीमारी में उपयोगी है। मंदाग्नि को दूर कर यह भूख को बढ़ाती है। अपने संकोचक गुण की वजह से यह जी का मिचलाना बंद करती है। इसके पत्ते ठंडे और मृदुविरेचक हैं जो मूत्रनिस्सारक औषधि की तरह उपयोग में लिये जाते हैं। इसका रस दाँतो की तकलीफ को कम करता है। अपने ठंडे स्वभाव की वजह से यह पेट की गर्मी को शमन कर भूख को बढ़ाता है। इसके रस को लगाने से जहरीले जानवरों के डंक की पीड़ा दूर होती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि अग्निदीपक, मूत्रनिस्सारक, और संकोचक है। साँप और बिच्छू के जहर पर इसका उपयोग किया जाता है।

केस और मस्कर के मतानुसार सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर इसके पत्ते और बीज दोनों ही निरुपयोगी सिद्ध हुए हैं। लाक्षणिक और विषनिवारक दोनों ही उपचारों में इनका कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

उपयोग—

आमाशय की दाह—इसके पचांग का रस पिलाने से आमाशय की जलन शान्त होती है।

बिच्छू का जहर—इसके पत्तों को पीस कर लेप करने से बिच्छू और दूसरे जानवरों के डंक में फायदा होता है।

आमातिसार—इसके बीजों को सेक कर उनका चूर्ण बनाकर फकी देने से आमातिसार में लाभ पहुँचता है।

———:०:———

अमसानिया

नाम—

पंजाब—अमसानिया, बुदसुर, बुतसुर, चेवा, केवा। अफगानिस्तान—हुमहुमा। सतलज—फोक। लैटिन—Ephedra Pachyclada. Ephedra Gerardiana.

वर्णन—

यह एक प्रकार का कठोर और गठा हुआ पौधा होता है। इसकी जड़ें परस्पर में लिपटी हुई होती हैं। इसकी शाखाएँ खडी और चिकनी होती हैं। इसके फूल गोलाकार और फैले हुए रहते हैं। इसके फल गोल, लाल, मीठे और स्वादयुक्त रहते हैं।

यह औषधि पश्चिमी हिमालय, अफगानिस्तान, चीन, पश्चिमी मध्य एशिया, पूर्वीय फारस, यूरोप तथा हिमालय पहाड़ पर ८००० फीट से लेकर १४००० फीट की ऊंचाई तक मिलती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद और यूनानी के अन्दर इस औषधि का वर्णन दिखलाई नहीं देता।

इडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी जड़ और लकड़ी का काढ़ा रूस में आमवात और फिरग रोग मे दिया जाता है। इसके फल का रस श्वास-क्रिया प्रणाली के रोगों में देने के काम मे आता है। चीन में इसकी पतली शाखाएँ ज्वरनिवारक मानी गई हैं।

आधुनिक अन्वेषणों के अन्दर इस औषधि ने बहुत महत्व प्राप्त किया है, जिसका वर्णन कर्नल चोपडा के ग्रथ के आधार पर नीचे किया जाता है।

आधुनिक काल मे कुछ औषधियों ने संसार के चिकित्सकों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया है। इन औषधियों में अम्सानिया के अन्दर पाया जाने वाला उपक्षार जो एफीड्राइन (Ephedrine) के नाम से प्रसिद्ध है। वह भी एक प्रधान है। इस विषय पर कई अनुभव किये जा चुके है। प्रोफेसर बी० ई० रीड ने भी इस विषय के ऊपर अपना पूरा ध्यान दिया है। उनकी पुस्तकों का अवलोकन करने से इस विषय का विस्तृत वर्णन प्राप्त हो सकता है। यह पदार्थ चीन में गत पाँच हजार वर्षों से उपयोग में लिया जा रहा है। इस वनस्पति का सम्बध सिर्फ चीन से ही नहीं है, प्रत्युत इसका भोगौलिक विस्तार बहुत बड़ा है। इसकी पैदाइश पृथ्वी के सभी भागों पर फैली हुई है। भारतवर्ष के अन्दर हिमालय के शुष्क प्रातों में भी इस जाति की वनस्पतियाँ पैदा होती हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस औषधि का उपयोग नहीं देखा जाता। आयुर्वेदीय और तिब्बी ग्रंथों में भी इसका कहीं वर्णन नही मिलता। यह कहा जाता है कि एफीड्रा (Ephedra.) की एक जाति जिसे एफीड्रा इंटरमीडिया कहते है—यह वही प्रसिद्ध सोमवृक्ष है, जिससे कि वैदिककाल में ऋषि लोगों का परमप्रिय पेय तैयार किया जाता था, किंतु इस कथन को पुष्ट करने के लिये उचित प्रमाणो का अभाव है।

चिकित्सा-शास्त्र के अन्दर एफीड्राइन का बहुत अधिक उपयोग और उसकी बहुमूल्य कीमत को देखकर कर्नल चोपड़ा ने सन् १६२६ में इस औषधि का रासायनिक सगठन और अनुसंधान किया। एफीड्राइन की फुटकर कीमत ६००) पर पौंड है। इसके इतना मँहगा होने के कारण एक इसीसे मिलता-जुलता उपक्षार स्यूडो एफीड्राइन (Pseudo Ephedrine.) का भी परीक्षण किया गया।

सन् १८६० मे मि० वाट ने हिन्दुस्तान मे पैदा होने वाली तीन जातियों का वर्णन किया है।

(१) एफीड्रा व्हलगेरियस जिसको कि एफीड्रा गिरारडियाना (Gerardiana.) और एफीड्रा डिस्टच्या (E.Distachya.) और एफीड्रा मोनोस्टचया (E.Monostachya.) भी कहते हैं, और जिसे देशी भाषाओं में अमसानिया, चेरा बुतशुर, खडा, खामा, कुनावर तथा फोक इत्यादि नामों से भिन्न-भिन्न प्रातो मे पहचानते है।

(२) एफेड्रा पचीक्लेडा (E.Pachyclada) जोकि एफेड्रा इन्टरमीडिया (E.Intermedia) के नाम से प्रसिद्ध है। इसे फारस में हुमा, बम्बई मे गेमा और पश्तो में ओमान कहते हैं।

(३) एफेड्रा पेडनक्यूलरिस (Pedunculoris) है, जिसे भारतीय भाषाओं में कुचन, नोकी कुरकर, ब्राटा, टडला, लस्तुक, मगखल और बन्दूकी कहते हे।

उपरोक्त तीन जातियों के अतिरिक्त दो जातियाँ और पाई जाती हैं, जिनके नाम एफीड्रा फोलियेटा (E · Foliata.) और एफीड्रा फ्रेगलिस (E· Fragilis.) कहते हैं। ये दोनों जातियाँ उपरोक्त तीनों जातियों से तुलना मे कम महत्व की हैं।

ये सभी जातियाँ उत्तरी-भारत के भिन्न २ स्थानों मे पैदा होती हैं। भिन्न २ स्थानों की वनस्पतियों का विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि उत्तर, पश्चिम, भारत के शुष्क स्थानों से प्राप्त हुए एफीड्रा मे चान की एफीड्रा की अपेक्षा क्षार की मात्रा ज्यादा रहती है।

सन् १६२६ में कर्नल चोपड़ा और उनके सहयोगी लोगों ने भेलम प्रान्त की पहाड़ियों पर पैदा होने वाली दो जातियों का वर्णन किया है जो अपनी उपक्षार की बाहुल्यता के कारण विशेषरूप से ध्यान आकर्षित करती हैं।

(१) इनमे से पहली एफेड्रा व्हलगेरियस अथवा एफेड्रा गिरारडियाना है, इसके क्षारीतत्वों का अनुपात .८ से १.४ प्रतिशत तक है। इनमें से करीब आधे तो एफीड्राइन हैं और बाकी के स्यूडो एफीड्राइन हैं। इसके तनों के अन्दर जितना क्षार मिलता है, उससे इसकी हरी डालियों में चौगुना उपक्षार अर्थात् एफीड्राइन प्राप्त होता है।

(२) दूसरी जाति एफीड्राइन इटरमेडिया है। इसके अन्दर २ से १ प्रतिशत तक उपक्षार की मात्रा पाई जाती है और बाकी का स्यूडो एफीड्राइन होता है।

सन् १८८७ में इस बात का पता लग जाने पर कि एफीड्राइन एक काम की वस्तु है, इस विषय में कई अनुसधान किये गये तथा इसके रासायनिक तत्वों पर भी विशेष लक्ष्य दिया गया। सन् १६२४ में चेन (Chen) और स्कमिट (Schmidt) ने अपने अनुसधानों में इसकी क्रिया, गुण और धर्म का वर्णन किया और एफीड्राइन की एड्रेलाइन नामक वस्तु से क्या २ समानता और सम्बध है, उसपर भी प्रकाश डाला। एफीड्राइन और स्यूडो एफीड्राइन, जो कि भारत की एफीड्रा की जाति से प्राप्त किया जाता है, उसपर भी विशेष अनुसधान किये गये।

स्यूडो एफीड्राइन और एफीड्राइन दोनों के गुणों में विशेष घनिष्ठता है। दोनो ही उपक्षार यकृत और आँतड़ियों की क्रियाओं पर अपना असर समानरूप से बतलाते हैं और दोनों ही रक्तवाहिनी नलियों का संकोचन भी समानरूप से करते हैं। मूत्राशय और मासपेशियों के ऊपर भी दोनों ही उपक्षार समानरूप से असर दिखलाते हैं। फेफड़े और श्वासक्रिया पर स्यूडो एफीड्राइन के बजाय एफीड्राइन का असर बहुत जोरदार होता है।

चूंकि भारतवर्ष में पैदा होने वाली इस वनस्पति में एफीड्राइन के बनिस्पत स्यूडो एफीड्राइन की मात्रा अधिक होती है, इसलिये इस बात की विशेष रूप से जाँच की गई कि एफीड्राइन के स्थान पर स्यूडो एफीड्राइन कहाँ तक काम कर सकता है।

कलकत्ता स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन्स एफीड्राइन श्वास की बीमारी पर अजमाई गई। किन्तु इसका असर पूर्णरूप से सतोषजनक नही रहा। निःसन्देह यह पन्द्रह मिनट से तीस मिनट के अन्दर श्वास के सामायिक आक्रमण को रोक कर उपद्रवो को दूर कर देता है। किन्तु इसके दूसरे असर ठीक नहीं होते। इससे हृदय में पीड़ा उत्पन्न होती है और कुछ समय तक अर्थात् दस, बीस मिनट तक वह पीड़ा चालू रहती है। हृदय रोगियो के लिये इसका उपयोग विशेषतौर से हानिकारक होता है। इसका विशेष उपयोग कब्जियत की शिकायत पैदा करता है। इसके फल स्वरूप कभी २ श्वास का प्रकोप भी बढ़ जाता है। इस औषधि के अधिक उपयोग से पाचनशक्ति निर्बल होकर भूख नष्ट हो जाती है। यद्यपि इसके विषैले असर के प्रति कुछ निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता, फिर भी इसका विशेष उपयोग हानिकारक है। इसलिये बिना बीमारी का कारण खोजे सामयिक आक्रमण को मिटाने के लिये इसका उपयोग करने की आदत डालना हानिकारक है।

स्यूडो एफीड्राइन भी श्वास-क्रिया-प्रणाली पर एफीड्राइन के समान ही असर दिखलाता है। स्यूडो एफीड्राइन का असर वायुप्रणाली के प्रसरण पर एफीड्राइन के समान ही होता है। इस विषय में स्यूडो एफीड्राइन की परीक्षा भी की जा चुकी है। इसके परिणाम भी संतोषजनक रहे हैं। १५ मिनट से लगा कर आधे घंटे के भीतर ही इसकी आधे ग्रेन की मात्रा ने सीने की पीड़ा को दूर करके श्वास क्रिया को व्यवस्थित कर दिया है। श्वास के प्रकोप के पूर्व भी इसका इस्तेमाल करके देखा गया तो भी परिणाम अत्यत सतोषजनक रहा। अभी तक अनुभव से यही पता चलता है कि इसका गुण सतोष जनक है और इसके विकार भी अधिक नहीं हैं। अगर एफीड्राइन के बजाय स्यूडो एफीड्राइन का ही इस्तेमाल किया जाय तो कम मूल्य में ही काम न होगा बल्कि एफीड्राइन के जो अन्य दुर्गुण हैं, वे भी बखूबी दूर हो जायेंगे।

एफीड्रा गिरारडियाना और एफीड्रा इटरमिडिया दोनों वनस्पतियों से तय्यार किया हुआ सत्व भी उपरोक्त स्कूल में तीन साल से काम में लिया जा रहा है। यह स्वतत्र रूप से भी काम में लिया जाता है और श्वास को दूर करने वाली अन्य औषधियों के साथ भी उपयोग में लिया जाता है, यह श्वास के प्रकोप को रोकने के लिये उत्तम वस्तु है। शुद्ध उपचारों की तुलना में यह सस्ता भी है।

इन उपचारों का उत्तेजक असर खून के दबाव (Blood Pressure) पर भी अधिक होता है। यह हृदय को उत्तेजना देने वाली औषधि के रूप में काम में ली जाती है। एफीड्राइन का हृदय पर अवसन्नताजनक असर होता है। स्यूडो एफीड्राइन का असर ठीक इसके विपरीत है। स्यूडो एफीड्राइन हृदय की पेशियों को उत्तेजना देता है। कर्नल चोपड़ा ने एफेड्रा जाति की वनस्पति का सत्व,

जिनमे एफेड्राइन और स्यूडोएफेड्राइन दोनों ही सम्मिलित रहते हैं, काम में लेकर देखा है, जिसका परिणाम बहुत ही सतोषजनक पाया गया है। जिन लोगों का हृदय कमजोर था उनपर भी इसका इस्तेमाल करके देखा गया तो परिणाम उत्तम ही पाया गया। इससे रक्त भार (Blood Pressure) ठीक होगया। जिनका रक्त-प्रवाह अनियमित होने से और रक्त अभिसरण (Blood Circulation) प्रणाली दोषयुक्त होने से मूत्राशय पर असर हो गया था, उनको भी इससे फायदा पहुँचा।

जलोदर की बीमारी में भी यह उत्तम वस्तु है। हृदयरोग के द्वारा होने वाले पेट के सूजन मे भी यह लाभदायक है। ऐसे रोगों में हृदय की धडकन और अन्य उपद्रव, बीमारी के प्रारभ से ही बढ जाते है। ऐसे रोगियों के उपचार मे डीजीटेलिस के उपयोग से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। दिन-प्रतिदिन बीमारी भयकर होती गई और कई हृदय को उत्तेजना देने वाली औषधियाँ काम में ली गईं। मगर कोई लाभ न हुआ। ऐसे स्थानों पर एफिड्रा के अर्क काम में लिये गये, जिससे बीमार को फायदा पहुँचा और लक्षण सब एकदम दूर हो गये, बाँये हृदय की गति रुकने पर भी एफीड्रा के अर्क ने बहुत लाभ पहुँचाया।

निमोनिया रोग के कारण उत्पन्न हुए विषों से जो भी दूषित असर हृदय की गति पर पहुँचते हैं, उसको निवारण करने के लिये भी एफीड्रा का अर्क बहुत ही उत्तम वस्तु है। इसी प्रकार रोहिणी-रोग (Diphtheria.) से उत्पन्न हुए दूषणों को भी यह दूर करता है।

इसके अर्क की मात्रा आधा ड्राम अर्थात १॥ माशे की है। यह दिन में तीन-चार बार दिया जाना चाहिये।

उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि यह वनस्पति भारतवर्ष की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है और इसका सत्व तथा इसका अर्क श्वासरोग, हृदयरोग, जलोदर, डिफ्थीरिया, निमोनिया इत्यादि रोगों पर चमत्कारिक असर बतलाता है।

———:०#०:———

अम्बर

नाम—

संस्कृत—अग्निजारः, वह्निजारः, अम्बर सुगन्धः, अम्ब्रम्। हिन्दी—अम्बर। फारसी—अम्बर शाहेबू। अरबी—अम्बर। लेटिन—Amber Gris। तामील—मिनम्बर।

वर्णन—

अम्बर एक प्रसिद्ध मूल्यवान और सुगन्धिपूर्ण वस्तु है। इसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में यूनानी

के भिन्न २ लेखकों में बड़ा मतभेद है। कोई-कोई इसको समुद्रतल के स्रोत का जोश, कोई इसे किसी समुद्री जानवर का डगार, कोई मधुमक्खियों के द्वारा निर्मित मोम का सुगन्धित भाग इत्यादि बतलाते हैं। मगर आधुनिक गवेषणाओं से यह मालूम होता है कि यह औषधि समुद्र में रहने वाली स्पर्मव्हेल (Sperm Whale) नामक विशालकाय मछली के पेट में से निकलता है। स्पर्मव्हेल मछली का शिकार अधिकतर उसके सिर का तेल और अम्बर प्राप्त करने के लिये ही किया जाता है।

आयुर्वेद के अन्दर भी इस औषधि के सम्बन्ध में बड़ा सन्देह है। कोई २ तो इसको एक प्रकार का समुद्री पौधा या अब्धिक्षार बतलाते हैं। कई कोषों में इसको एक वानस्पतिक द्रव्य मानकर ही इसका विवेचन किया गया है। मगर रसरत्न-समुच्चयकार के मतानुसार यह एक प्राणिज द्रव्य सिद्ध होता है। उनका कथन है कि अग्निनक्र नामक जीव का जरायु समुद्र से बहता हुआ किनारे पर आकर सूर्य की गर्मी से सूख जाता है। इसीको अग्निजार कहते हैं। चूँकि अम्बर भी एक सामुद्री प्राणिज द्रव्य है, और अग्निजार भी प्राणिज द्रव्य माना गया है, इसलिये सम्भव है कि लोगों ने अग्निजार को ही अम्बर का पर्याय मान लिया हो।

जो कुछ हो, अब यह बात एक प्रकार से निश्चित हो चुकी है कि अम्बर स्पर्मव्हेल मछली के द्वारा प्राप्त होने वाला एक प्राणिज द्रव्य है। यह लाल सागर, ब्राज़ील और अफ्रीका के समुद्र तटों पर तैरता हुआ पाया जाता है। एक २ मछली के उदर से ७५० पौंड तक अम्बर पाये जाने के दृष्टान्त मौजूद हैं।

पहिचान और परीक्षा—

अम्बर मोम की शकल का एक पदार्थ है, जो पीला, गुलाबी, धूसर और कुछ काले वर्ण का होता है। इसमें से शुद्ध पीली झाई वाला अम्बर उत्कृष्ट होता है। श्यामवर्ण का अम्बर उससे हलका होता है। उत्तम पीले अम्बर पर छोटे २ छींटे लगे हुए होते हैं। इसमें एक प्रकार की मधुर सुगंध आती है और यह स्निग्ध, कुछ चरपरा और लगभग स्वाद रहित होता है।

आजकल बाजारों में अम्बर के नाम से कई नकली वस्तुएँ भी बिकती हैं, इसलिये इस वस्तु को लेते समय पूरी सावधानी रखने की जरूरत है। इसकी परिक्षाएँ निम्नांकित हैं—

(१) इसको एक शीशी में डालकर कोयले की आँच पर रखने से यदि यह सब पिघल जाय और शीशी में तेल की भाँति बहने लगे तो उसको शुद्ध समझना चाहिये।

(२) अम्बर को लेकर आग पर डालने से अगर सुगंधित धुआँ निकलने लगे तो उसको उत्तम समझना चाहिये।

(३) अम्बर को चबाने से यदि मुँह खुशबूदार हो जाय और चबाते समय दाँतों पर वह मोम सरीखा लगे तो उसको ठीक समझना चाहिये।

यह औषधि बहुत शीघ्र जलने वाली तथा आँच दिखाते रहने से बिल्कुल भाप बनकर उड़

जाने वाली होती है। यह ईथर, वसा, उड़नशील तेल, गरम अलकोहल में घुलनशील होती है, मगर ठंडे जल में अघुलनशील रहती है। इस पर अम्लों का कुछ भी प्रभाव नहीं होता, सूखने पर अम्बर की विशिष्ट गुरुत्व ·७८० से ·९२६ तक होता है। १४५ फारेन हीट की गर्मी पर यह पिघल जाता है और २१२° फारेन हीट की गर्मी पर भाप बनकर उड जाता है। (आयुर्वेदीय कोष)

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदीय मत—आयुर्वेद के मतानुसार अम्बर कटुरस, उष्णवीर्य, लघुपाकी, पित्तकारी तथा कफ, वात, सन्निपात और शूल को नाश करने वाला है। यह पक्षाघात, कम्पवात हृदयरोग, नपुंसकता, क्षय, मस्तकरोग, यकृतरोग, उदररोग, प्लीहारोग, इत्यादि अनेक रोगों को नाश करने वाला है। कामाग्नि को प्रदीप्त करने में यह औषधि अत्यत प्रभावशाली और बेजोड़ है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में गर्म, पहले दर्जे में रूक्ष, जिस्मानी, (शारीरिक) रूहानि, (आध्यात्मिक) और नफ्सानी (मानसिक) तीनों शक्तियों को दृढ़ करने वाला, प्राणरक्षक, प्रकृति को प्रसन्न करने वाला, शीतलप्रकृति वालों के लिये अत्यंत लाभकारी, बाह्य और आभ्यतरिक इंद्रियों को पुष्ट करने वाला, ओजदायक, कामोद्दीपक, वृद्ध पुरुषों के लिये अत्यंत लाभकारी, हृदय रोग, और यकृतरोग को नाश करने वाला और हृदय की व्याकुलता को मिटाने वाला है।

यह लकवा, धनुर्वात, अवसन्नता, सिरदर्द, आधाशीशी, खाँसी, उरःक्षत, हृदय की निर्बलता, मूर्छा, कामला, जलोदर, आमाशय शूल, संधिशूल और आमाशय तथा यकृत की कमज़ोरी में लाभ पहुँचाने वाला है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार अम्बर सर्वांगिक निर्बलता, अपस्मार, आक्षेप और स्नायु-दौर्बल्य में उपयोगी है। यह बेहोशी, उन्मादयुक्त तीव्रज्वर, हैजे की निस्तेज अवस्था तथा प्लेग इत्यादिक संक्रामक बीमारियों में भी उपयोग में आता है।

उपयोग—

रतिशक्ति की वृद्धि—सोने के वरक, घुटे हुए मोती और अम्बर को शहद में मिलाकर चटाने से पुरुषार्थ-शक्ति की वृद्धि होती है।

कफ के रोग—इसको पान में रखकर खाने से कफ के रोग मिटते हैं।

वातरोग—लौंग, जायफल और अम्बर को मिलाकर देने से सब प्रकार की वात-पीड़ा मिटती है। वातनाशक तेलों के साथ इसको मिलाने से उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

उन्माद—ब्राह्मी और शखाहूली के साथ इसको शहद में मिलाकर चटाने से उन्माद मिटता है और स्मरणशक्ति बढ़ती है।

प्रतिनिधि—अम्बर के प्रतिनिधि कस्तूरी और केशर हैं। इसके दर्प को नाश करने वाले बबूल का गोंद, धनियाँ, तबाखीर हैं। कपूर सूँघने से भी इसका दर्प नष्ट होता है।

यह आँतों को हानि पहुँचाने वाला है, इसलिये आँतो के रोगी को इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

बनावटें—

अर्क अम्बर—मुश्क खालिश ४॥ माशा, अम्बर बढ़िया ६ माशा, रूमी मस्तगी ६ माशा, वर्गरिहाँ, नागरमोथा, तज, सूखा धनियाँ गुले गावजबान-गिलार्मी अर्मनून, दरूनज अकरबी, पिस्ता प्रत्येक १ तोला १०॥ माशा। जर्नेबाद, अगर, कबाबह, खदाँ, छड़ीला, बालछड़, बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, शक्राकुलमिश्री, तेजपात, दालचीनी, केशर, लौंग, बबजीदान, गुलाब, वंशलोचन, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, दूब, पोस्तइत्रज, अबूरेशम कतरा हुआ, श्वेत चन्दन, ये सब चीजें ०२ तोला, ताजे विलायती सेव का रस आधा सेर, खट्टे अनार का रस १ सेर, अर्क वेदमुश्क, अर्क गावजबान और अर्क भिल्ली-लोटन, सब ढाई २ सेर। इनमें से कूटने योग्य औषधियों को कूटकर तथा सब अर्कों मे मिलाकर उन औषधियों को रात भर भिगोई रखे। सवेरे सेव और अनार का पानी मिलाकर देग में डाल दे और अम्बर व मुश्क को नीचे के मुँह में रख कर भपके म अर्क खीच लें।

यह अर्क हृदय, मस्तिष्क और कामेन्द्रियों को बल प्रदान करने के लिये अनुपम है। मूर्छा को नष्ट करने और शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिये अत्यंत प्रभावशाली है। आयुर्वेदीय कोष के रच-यिताओं का कथन है कि कई ऐसी स्त्रियाँ जो अत्यधिक रज.स्राव के कारण और कई ऐसे पुरुष जो बवासीर से अत्यधिक रक्तस्राव के कारण मौत के मुँह मे पहुँच चुके थे, इस अर्क के पीते ही अपनी असली हालत पर लौट आये। इस अर्क के अत्यन्त विस्मयकारक प्रभाव अनुभव में आ रहे हैं।

इसकी खुराक ४ तोले की है। भिन्न २ रोगों मे, भिन्न २ अनुपानों के साथ यह दिया जाता है।

अम्बरकन्द

नाम—

संस्कृत—बालकंद, कदलता, मलकंद, पत्तिकंद। हिन्दी—अम्बरकंद, गोरमा, सकाकुल भेद लेटिन—Eulophia Nuda (एलोफिया नूडा)

वर्णन—

यह औषधि हिमालय पहाड़ के समशीतोष्ण प्रांतो में नैपाल से सिकिम तक तथा छोटा नागपुर, आसाम, खासिया पहाड़ियाँ और कोंकन से दक्षिण की ओर पाई जाती है। यह सालम मिश्री की जाति का एक कंद है। इसकी गाँठ छोटे आलू की तरह होती है। पत्ते १० से १४ इंच तक लम्बे और अणी-दार होते हैं। फूल बड़े, हरे रंग के या कालापन लिये हुए लाल रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इंडियन मेडिकल प्लॉन्ट्स के लेखकों के मतानुसार यह कंद क्षुधावर्द्धक, गरम, गले की क्षयरोग-जनित ग्रंथियों को आराम करने वाला है, यह वात-जन्यदोष, अर्बुद, और बच्चों की खाँसी पर बहुत लाभदायक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वस्तु कृमिनाशक है और कंठमाला सम्बंधी रोगों में विशेष तौर से ली जाती है।

अम्बरबेद

नाम—

फारसी—अम्बरबेद। अरबी—गुलेअर्द ज्यादह। लैटिन—(Poley Germander) पोली जरमेंडर (Teucrium Polium) ट्युक्रियम पोलियम।

वर्णन—

इसका पौधा लगभग एक फुट ऊँचा होता है। इसके फूल पीलापन लिये हुए सफेद और पत्ते सफेद, पतले तथा रुएँदार होते हैं। इसके मस्तक पर बालों का एक गुच्छा लगता है, जिसमें बीज भरे हुए रहते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। इसकी उत्पत्ति भारतवर्ष में नहीं होती, यह अरब मे पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में गरम और रूक्ष है : यह मूत्रनिस्सारक, आर्तव प्रवर्तक, जलोदर के लिये गुणकारक लेकिन आमाशय और मस्तक के लिये हानि करता है। इसका क्वाथ बुद्धि को तीव्र करने वाला और विस्मृति को दूर करने वाला, पेट के कृमियों को नष्ट करने वाला तथा मूत्रावरोध और संधिशूल में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके नवीन पत्तों का लेप व्रण को भरने वाला और इसकी धूनी विषैले जानवरों को भगाने वाली है। शहद के साथ इसका अंजन करने से दृष्टि तेज होती है। गर्भाशय को शुद्ध करने और प्लीहा की सूजन को नष्ट करने की शक्ति भी इसमें है।

अरब के निवासी इसको ज्वरविकार के नष्ट करने के लिये उपयोग में लेते हैं। इसके लिए वे ढाई तोला इस औषधि को रात भर जल में भिगोकर प्रातःकाल उसी पानी को छान कर पिलाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से मालूम होता है कि इस औषधि में बुद्धिवर्द्धन, मूत्रनिस्सारन और आर्तव प्रवर्तन के गुण प्रधान रूप से हैं।

प्रतिनिधि—इसके प्रतिनिधि पहाडी पोदीना, तज, अनार की जड़ की छाल और शेह हैं, यह औषधि सिर की पीड़ा को पैदा करने वाली तथा आमाशय को हानिकारक है, इसके दर्प को नाश करने वाला धनियाँ है। इसकी मात्रा दो से चार रत्ती तक की है।

अम्बाड़ा

नाम—

संस्कृत—आम्रातक। हिन्दी—अंबाडा। बंगभाषा—आमड़ा। मराठी—अंबाड़ा। कर्नाटकी—आवोडेयकायि। तैलंगी—आमाटस। गुजराती—अभेड़ा। अंग्रेजी—स्पोन्डिआस मिनट। Spondias Minute. लेटिन—स्पोंडिआस मेंगिफेरा (Spondias Mangifera.)

वर्णन—

यह एक प्रकार का जगली आम है। हिमालय की तलहटियों में चिनाव के पूर्व में तीन हजार फीट की उँचाई तक तथा ब्रह्मा, अंडमान व हाग-काग में यह पैदा होता है। इसका झाड़ बहुत बड़ा व सीधा होता है। इसकी छाल सुगन्धयुक्त, चिकनी, फिसलनी व खाकी रग की होती है। इसकी लकड़ी कोमल, हलकी व खाकी होती है। इसके पत्ते जिंगनी के पत्तों के समान होते हैं। ये दो से ६ इच तक लम्बे तथा १ से चार इच तक चौड़े होते हैं। इसके फूल मंजरी के रूप में आते हैं। फल मुर्गी के अंडे के समान होता है व पकने पर पीला हो जाता है। इसके दो भेद होते हैं। देशी व विलायती। देशी आमड़ा बहुत खट्टा होता है तथा विलायती कुछ मिठास लिये होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के मतानुसार कच्चा आमड़ा खट्टा,वातनाशक, भारी, गरम, रुचिकारी और दस्तावर है। पक्का आमड़ा कसैला, सुस्वादु, शीतल, तृप्तिकारी, कफवर्द्धक, स्निग्ध, वीर्य्यवर्द्धक,पुष्टिकर, भारी, बलकारी तथा वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय और रुधिर-विकार को दूर करने वाला है।

इसके पत्ते स्वादयुक्त, भूख बढ़ाने वाले और संकोचक हैं। इसका कच्चा फल खट्टा, अपच, और वातनाशक होता है, यह रक्तवर्द्धक और गले के रोगों में लाभ पहुँचाने वाला है। इसका पक्का फल तिक्त, मृदु, रसयुक्त व स्वादिष्ट होता है। यह शान्तिदायक, पौष्टिक, कामोद्दीपक और अँतड़ियों को सकोचन करने वाला होता है। वात, पित्त, फोड़े, जलन, क्षय और रक्त सम्बन्धी शिकायतों को यह नष्ट करता है। इसकी छाल सर्पविष-निवारक कई औषधियों का एक अग है तथा यह ज्वर, तृषा व पेचिश में भी उपयोगी पाई गई है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में शीतल व रुक्ष है। पित्त प्रधान रोगों मे यह लाभ पहुँचाता है। नाक के रोग में इसकी छाल पीसकर बकरी के तुरन्त दुहे हुए दूध के साथ पिलाने से लाभ पहुँचाती है।

इनसाइक्लोपीडिया मुडेरिका के मतानुसार मुडा जाति के लोग इसकी छाल को पानी के साथ पीसकर गठिया रोग पर इस्तेमाल करते हैं। यह पैत्तिक सधिवात में उपयोगी है। इसकी करीब १ छटाँक छाल आधा सेर पानी में डालकर उबाली जाती है और उसमे से सत्व निकाल कर अतिसार व रक्तातिसार की बीमारी में दिया जाता है।

इसके पत्तों का रस कान के रोगों को भी लाभदायक बताया जाता है।

डाक्टर चोपडा के मतानुसार यह सकोचक, सुगधित व शान्तिदायक पदार्थ है। इसका उप योग पेचिश की बीमारी में किया जाता है।

उपयोग—

अम्लपित्त—अम्बाड़े के कोमल फलो के रस १ तोले को पाँच तोले खड़ी शक्कर में मिलाकर सात दिन तक दोनों टाईम देने से अम्लपित्त में फायदा होता है।

कर्णशूल—इसके पत्तों का रस कान मे टपकाने से व बाहर भी लगाने से कर्णशूल में लाभ होता है।

विषाक्त घाव—विष में बुझे हुए अस्त्र के घाव पर इसके फल को पीसकर लगाने से तथा सूखे व गीले फल को खिलाने से लाभ होता है।

आमातिसार—इसके पत्तो के चूर्ण तथा इसकी छाल के काढ़े को देने से आमातिसार में लाभ होता है।

अम्बोली

नाम—

बाजारू नाम—प्रियदर्श। कनारीज—अबॉलिगे। मद्रास—कनग अबर। मलायलम—मनकचणि। तामील—पौलक्कुरिंज, सगसारि, टिंडियम्। तैलगू—कनकम्रम्। तुलू—अबॉलिगे। लैटिन—Crossandra Undulaefolia.

उत्पत्तिस्थान—पश्चिमीय प्रायद्वीप, सीलोन, उत्तरीय भारत, बगाल और मलाया।

वानस्पतिक विवरण—इसकी ऊँचाई दो हाथ तक रहती है। इसके पत्ते ४ के भँवरों मे होते हैं। ये कुछ जाड़े, बर्छी आकार, तीखी नाक वाले और चमकीले रहते है। इसमें नसों

की आठ जोड़ होती हैं। इसके बहुत से फूल लगते हैं । ये सब बर्छी के आकार की और बहुत तीखी रहती हैं। इसका पुष्प आभ्यांतर आवरण, नारंगी व पीला रग का होता है । इसके फूल दक्षिण में चोटी बाँधने के काम में आते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

डॉक्टर चोपड़ा के मत के अनुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक है।

अम्बोली का प्रधान उपयोग कफ के नष्ट करने में होता है। औषधि के रूप में इसके पत्तों का रस २० से ३० बूँद तक और इसकी जड़ एक से दो तोला तक दी जाती है। छोटे बच्चों को होने वाली खाँसी, ब्रोकाइटिस (Brochitis) मे इसके पान का रस शहद और पीपर के साथ देने से बड़ा लाभ होता है। इसी प्रकार इसकी जड़ को दूध के साथ आधे तोले से एक तोले तक उबाल कर शक्कर मिलाकर देने से स्त्रियों के श्वेत-प्रदर और रक्त-प्रदर में लाभ होता है।

अयार

नाम—

हिन्दी—अयार, अनियार। पंजाब—ऐलन, ऐरा, अरुड़, अरवान, पीरू, अपूतला। गढ़वाल—अँगयार। नेपाली—अँगियर, जगगछाल। लेटिन—Pieris Ovalifolia।

वर्णन—

यह औषधि हिमालय मे कश्मीर से भूटान और सिकिम तक १०००० से १३००० फीट की ऊँचाई तक तथा खासिया पहाड़, बर्मा व जापान मे पैदा होती है। यह एक छोटे क़द का झाड़ीनुमा बहुवर्षजीवी वृक्ष है । इसका छिलटा लाल बादामी रंग का और फूल सफेद होता है, इसके फलियाँ लगती हैं, जिसमें बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

गैंबल के मतानुसार इसके कोमल पत्ते और कलियाँ बकरों के लिये जहर है। इस औषधि का उपयोग कृमियों को नष्ट करने के लिये किया जाता है। इसका ठडा काढ़ा चर्मरोगों में लाभदाक है।

अरण्डककड़ी

नाम—

संस्कृत—वातकुम्भ। हिन्दी—अंरडखरबूजा,पपैया,अरण्डककड़ी। मराठी—पपैया। गुजराती—पपैयो,राइड काँकड़ी,फाड़चीमड़ी। तैलंगी—पोपड चटेट्ठ। अंग्रेजी—पेपो, Papaw. लैटिन—केरिकपपैया (Caricapapaya)। कर्नाटकी—पप्पलसु। तुर्की—वप्पागाई। तैलंगी भाषा—वोप्पई, मलापप्पायम। तामिली भाषा—पप्पाई।

परिचय—

अरण्डककड़ी या पपैये का वृक्ष नरम व पोली लकडी वाला, बहुत जल्दी बढने वाला तथा थोडे दिनों तक जीने वाला है। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है। इसके फल से सभी लोग परिचित हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका पका हुआ फल सुस्वादु, मधुर, कफकारी, हृदय को हितकारी, उन्मादरोग को हरने वाला, कामोद्दीपक, अंतड़ियों को सकोचन करने वाला, स्निग्ध व पित्त-नाशक है।

यूनानी मत—इसका पका हुआ फल अग्निदीपक, भूख बढाने वाला, पाचक, पेट के आफरे को दूर करने वाला और मूत्रनिस्सारक है। यह पेट की जलन व तिल्ली को दूर करता है। मूत्राशय की बीमारियों को मिटाता है। खास कर पथरी रोग में बहुत लाभ पहुँचाता है। शरीर के मोटेपन को मिटाता है। कफ के साथ खून जाने की बीमारी को दूर करता है। खूनी बवासीर में और पेशाब की नलियों के घावों को दूर करने मे यह फायदेमद है। दाद इत्यादिक चर्मरोगों में यह लाभ पहुँचाता है। इसके कच्चे फल का दूध कृमिरोग को नष्ट करने वाला माना गया है। इसके बीज भी कृमिनाशक हैं और इनका उपयोग ऋतुस्राव के नियमित करने के लिये भी किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इन बीजों में गर्भपात करने की शक्ति भी है। इसलिये गर्भवती स्त्रियों को औषधिरूप में इन्हे नहीं देना चाहिये।

आजकल की आधुनिक शोधों से मालूम हुआ है कि अरडककड़ी का रस बदहजमी, अम्ल-पित्त, खट्टी डकार तथा भोजन के पश्चात् के पेट दर्द में बहुत ही उपयोगी वस्तु है।

डा० जार्ज हरसल ने सन् १८८६ के ब्रिटिश मेडिकल जर्नल के अन्दर इस फल का वर्णन करते हुए लिखा था कि "बदहजमी के बढ़ते हुए लक्षणों पर जैसे कि भोजन के ऊपर अरुचि, निद्रा नाश, सिर दर्द इत्यादि विकारों को अरंडककड़ी का रस दूर करता है, पेट की बाजू में एक प्रकार का चिकना पदार्थ बहुत बड़ी मात्रा में इकट्ठा हो जाता है और वह भोजन को पचाने के अन्दर बहुत बाधा पहुँचाता है, उसको निकाल देने की इस रस के अन्दर अद्भुत शक्ति है। वयस्क मनुष्यों के अजीर्ण में

जिसमें खट्टी डकार, हृदय की जलन, पेट का चढ़ना इत्यादि लक्षण रहते हैं, उनको दूर करने में यह एक बहुत कीमती दवा है।"

गोल्डकॉस्ट, फ्रेञ्चगायना, ब्राम्मील, मध्य व दक्षिण अफ्रीका में इसके बीजों को कृमिनाशक और ऋतुस्राव नियामक तथा इसके दूध को चर्म-रोगनाशक तथा उदर रोगनाशक माना जाता है।

इसके फलों में से पेपीन नामक एक मशहूर सत्व निकलता है जो विलायती दवा वेचने वाले केमिस्टों के यहाँ पर ऊँची कीमत पर मिलता है। शरीर के अन्दर बिगड़े हुये पाचनरस को सुधारने में इसका पेपीन नामक सत्व बहुत उपयोगी इलाज माना जाता है। इस सत्व को निकालने का देशी तरीका इस प्रकार है।

जिस झाड़ के ऊपर अरंडककड़ी के कच्चे फल लगे हुए हों, उन फलों पर एक ऐसे कलईदार अस्त्र से जिसमें चार नोकें हो, हल्के २ चीरें दिलवा देना चाहिये और उन फलों के नीचे एक लकड़ी या सगमरमर का वर्तन रख देना चाहिये। उन फलों में से दूध के समान रस टपक-टपक कर इकट्ठा हो जावेगा, तत्पश्चात् बालू रेत से भरे हुए एक मिट्टी के वर्तन को चूल्हे के ऊपर चढाकर उस रेती के ऊपर इस दूध के बर्तन को रखकर चूल्हे में धीमी २ आग जला देना चाहिये, जब धीरे २ वह रस औटकर खोवे की तरह हो जाय तब उसकी बट्टी बाँधकर निकाल लेना चाहिये, थोड़ी देर पश्चात् यह बट्टी सूख जायगी और अरंडककड़ी का सूखा सत तैयार हो जायगा। इस सत की एक रत्ती की मात्रा शक्कर अथवा दूध के साथ लेने से मन्दाग्नि तथा पेट के समस्त रोगों पर बहुत लाभ पहुँचता है। इसके सेवन से भोजन में रुचि उत्पन्न होती है। खाया हुआ अन्न पचता है। पेट के कृमि नष्ट होकर पेट साफ होता है। बालक व वृद्ध जिनकी पाचनशक्ति बिल्कुल नष्ट हो गई हो, उनके लिये इस फल का सत्व आशीर्वादरूप है। इसी प्रकार अच्छी तन्दुरुस्ती वाले आदमियों की भी इसके सेवन से जठराग्नि प्रबल होती है।

इसके अतिरिक्त कारपेन (Carpain) नामक कटु उपक्षार भी इसी के फल, बीज व पत्तों में से प्राप्त किया जाता है। इसका विशेष अंश पत्तों में पाया जाता है। औषधि-विज्ञान-शास्त्र में इस कारपेन नामक उपक्षार के गुणों का अनुसन्धान चल रहा है। जितना अनुसंधान अभी तक हुआ है, उससे पता चलता है कि अगर स्नायु में इसका इंजेक्शन दिया जाय तो यह शरीर के ब्लड प्रेशियर (Blood Pressure) याने रक्तभार को दूर करता है। इससे हृदय की गति कम होती है। व्हेन्ट्रीकल्स व आरिकल्स उसकी कम गति का प्रदर्शन करती हैं। श्वासक्रिया की गति में इस इजेक्शन से कोई भी धीमापन नहीं आता।

मन्दाग्नि और पेट की बीमारियों को दूर करने के अतिरिक्त चर्मरोगों को नष्ट करने की भी इसके दूध में काफी ताकत है। विदेशी लेखकों का मत है कि कच्ची अरंडककड़ी को काटने से उसमें से जो दूध निकलता है उसको दाद या खुजली पर चुपड़ने से ये बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। इतना

ही नहीं परन्तु यदि बवासीर के ऊपर भी यह रस लगाया जाय तो उनकी जड़ जल जाती है और वे खिर जाते हैं। परन्तु यह रस गरम होने की वजह से इसके लेप से बहुत जलन होती है और कई दफे तो इससे फफोले भी पड़ जाते हैं। इसलिये इसका उपयोग सोच-समझ कर करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त इसके कच्चे फलों का रस बिच्छू के डक के ऊपर भी रामबाण माना गया है। एक रसायनशास्त्री के मतानुसार बिच्छू के जहर को दूर करने का यह एक विश्वसनीय उपाय है। डक की जगह इसके दूध का लेप करने से जहर दूर हो जाता है। इसके बीज भी इसके लिये उपयोगी माने गये हैं।

उपयोग—

तिल्ली—इस के कच्चे फल का दूध ३॥। माशे, शक्कर ३॥। माशे, दोनों को मिलाकर उसके तीन हिस्से कर लें, यह तीनों खुराकें सवेरे, दोपहर और शाम को देने से कुछ दिनों में बढ़ी हुई तिल्ली आराम होती है। इसी प्रकार इसके सूखे फल के चूर्ण में नमक मिलाकर देने से भी लाभ होता है।

कृमिरोग—पेट के कीडे मारने के लिये इसका सवा माशे से पौने चार माशे तक दूध देना चाहिये, इसका असर आँतों के लम्बगोल व चपटे कीड़ों पर अधिक होता है।

अतिसार—इसके कच्चे फल के चूर्ण की फकी देने से पुराना अतिसार मिटता है।

गाँठ—इसके दूध का लेप करने से गाँठ बिखर जाती है।

उपदंश के व्रण—इसका दूध लगाने से उपदंश के घाव, सफेद चट्टे और चमड़े के दूसरे रोग मिटते हैं।

दूध वृद्धि—इसके कच्चे फल का शाक खिलाने से स्तनों के अन्दर दूध की वृद्धि होती है।

मंदाग्नि—अजवायन १५ तोला, सेंधा, सचर, साँभर नमक १-१ तोला, इन सब औषधियों को खट्टे नींबू व अदरख के रस में एक माह तक पड़ा रहने देना चाहिये। उसके पश्चात् इस औषधि की तीन माशे मात्रा में एक रत्ती अरण्डककड़ी का सत अथवा पेपीन डालकर खिलाने से भयङ्कर मन्दाग्नि भी दूर होती है।

अरण्ड

नाम—

संस्कृत—एरंड, व्याघ्रपुच्छ, त्रिपुटीफल, आमण्ड, चित्रः । हिन्दी—अरंड, अरंडी, अंडी । मारवाडी—इरंड । गुजराती—एरंडो । मराठी—एरंड । बंगाली—भरेंडा । फारसी—बेद् अंजीर । अरबी—खिरवा । कर्नाटकी—हरलूगिड़ । द्राविडी—आमणक्क । तैलंगी—आमिरंड्डु । अंग्रेजी—Castor Oil Plant, Palma Christi लैटिन—Ricinus Communis, R. Enermis.

वर्णन—

अरंड का वृक्ष दो प्रकार का होता है । बडी जाति के अरंड को पारस-अरंड कहते हैं । इसके बीज बडे होते हैं और इसका तेल जलाने के काम मे आता है । औषधि प्रयोग के काम में यह अधिक नहीं आता । केवल इसके पत्ते औषधि प्रयोग के काम मे आते है । दूसरी प्रकार का एरंड छोटी जाति का होता है । इस एरंड की जड़ और इसके बीजों का तेल औषधि प्रयोग के काम मे आता है । इन बीजों का तेल पानी के साथ उबालकर या दबाकर या पीलकर निकाला जाता है । उबाल कर निकाला हुआ तेल दाह पैदा करता है, इसलिए दबा करके निकाला हुआ तेल औषधि के प्रयोग में अच्छा होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के एरंड मधुर, गरम, भारी तथा शूल, सूजन, कमर व पेडू के दर्द, मस्तक पीडा, पेट के दर्द, अण्डवृद्धि, श्वास, कफ, आफरा, खाँसी, कुष्ठ और आमवात को नष्ट करने वाले हैं ।

इसके पत्ते वात, कफ, आँतों के कीड़े रतौंधी, कर्णरोग, मूत्रकृच्छ्र और पथरी को नष्ट करने वाले हैं । ये पित्त को बढाते हैं । इसके फूल बदगाँठ, गुदाद्वार और योनिद्वार सम्बन्धी तकलीफ और गुल्म, शूल और ऊर्ध्ववात को दूर करने वाले हैं । इसके फल गरम, भूख बढ़ाने वाले, वात-नाशक व बवासीर, यकृत और तिल्ली में लाभदायक है । इसकी मींगी विरेचक, धातुपरिवर्तक, कृमि-नाशक, कामोद्दीपक और हृदय रोगो मे लाभजनक है । यह जलोदर, सूजन, विषमज्वर, कुष्ट, कटिवात, श्लीपद, आक्षेप इत्यादि रोगों में लाभदायक है । इसकी जड का छिलका विरेचक, धातुपरिवर्तक, चर्म-रोगों में लाभ पहुँचाने वाला व स्तनों के दूध को बढ़ाने वाला है ।

सिर दर्द को दूर करने के लिये इसके पत्तों का सिर पर लेप किया जाता है व फोड़ों पर पुल्टिस के रूप में ये पत्ते लाभदायक सिद्ध हुए हैं ।

कभी २ किसी २ स्त्री के स्तनों में दूध का आना बद हो जाता है और स्तनों की नसें बंधकर

उनमें गाँठें पड़ जाती हैं, ऐसे समय में लोग भूत-प्रेत की शंका करके झाड़ फूंक करने लगते हैं। ऐसे प्रसंग पर आधा सेर अरंड के पत्ते लेकर १० सेर पानी में घंटे भर उबाल कर उस पानी की स्त्री की छाती पर १०-१५ मिनट तक धार देने से तथा उसके पश्चात स्तनों पर अरडी के तेल का मालिश कर उबाले हुए पत्तों को बारीक पीसकर उनका पुल्टिस स्तनों पर बाँध देने से गाँठे बिखर जाती हैं और दूध का प्रवाह पीछा शुरू हो जाता है।

छोटे २ बच्चों के पेट में दूध के चिथड़े जम जाते हैं और वे सडने लगते हैं जिससे दस्त और उल्टी होने लगती है और बुखार आता है, ऐसे अवसर पर इन त्रासदायक दूध की गाँठों को बाहर निकालने के लिये अरडी के तेल के समान दूसरी कोई औषधि नहीं है। यह अँतडियों की श्लेष्म-त्वचा को मुलायम करके मल की गाँठों को ढीली करके आसानी से निकाल देता है और दूसरे उग्र जुलाबों की तरह किसी प्रकार का नुकसान भी नहीं करता है, यह अत्यन्त सौम्य विरेचन है।

एपेंडिसाइटस—मोटी अँतडी की टोंच पर एक अवशिष्ट भाग रहता है, जो कभी २ सूज जाता है और जिसकी वजह से कमर की दाहिनी ओर दुखने लगता है, दस्त साफ नहीं होता, वमन होते हैं, बुखार आता है, नाडी शीघ्रगामी हो जाती है। इस रोग को अँग्रेजी में "एपेंडिसायटस" कहते हैं और यह बिना ऑपरेशन के आराम नहीं होता। इस रोग के प्रारभ में ही अगर एरंडी का तेल दिया जाय और एरडी के तेल के साथ ही हींग मिलाकर उसका एनिमा दिया जाय तो बिना शस्त्र क्रिया के ही यह रोग आराम हो सकता है। इस रोग में पेट का दर्द मिटाने के लिये अफीम नहीं देना चाहिये, बल्कि उसकी जगह खुरासानी अजवायन का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, कफशूल, उदरशूल, आमवात और सन्धियों की सूजन में भी अरडी की जड और सोंठ का काढा देने से लाभ होता है। रक्तातिसार के प्रारंभ में ही अगर अरडी का तेल दे दिया जाय तो आव पड़ने का डर कम हो जाता है। (जगलनी जडी-बूटी)

सुश्रुत और योग-रत्नाकर के मतानुसार यह औषधि सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर लाभकारी मानी गई है, मगर केस और मस्कर का कथन है कि साँप और बिच्छू के विषों पर यह औषधि निरुपयोगी सिद्ध हुई है। इसी प्रकार इसके तेल को कृमिनाशक समझना भी भ्रम पूर्ण है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपरा के मतानुसार अरडी के तेल का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें Tri-ricinolein (ट्रीरिकिनोलिन) थोडी मात्रा में Palmitin (पामिटिन) और Stearin (स्टेरिन) ये तीन द्रव्य पाये जाते हैं। इस तेल में अल्कोहल और एसिटिक एसिड (सिरके का तिजाब) में मिलजाने की अद्भुत शक्ति पाई जाती है। इसके अन्दर Hydroxy Acid (हाइड्रोक्सि एसिड) रहता है, जो इसका खास विरेचक तत्व है। इसका तेल पीने से उसमें जो एसिड रहता है वह पेट में जाकर अपना विरेचक असर दिखलाता है।

इसके बीजों के भीतर तेल के अतिरिक्त एक प्रकार का विष भी रहता है, जिसको (Ricin) रिसीन कहते हैं। यह खून को जमाने का काम करता है व कभी २ अँतड़ियों को सुजा भी देता है। यह पदार्थ रेचक नहीं होता है और अरंडी के तेल में इसका अंश नहीं रहता है, केवल बीजों में रहता है।

उपयोग—

विरेचन—इसका तेल खास तौर से जुलाब के काम मे आता है। इससे निरुपद्रव और तीव्र जुलाब लगता है। ऐसे रोगों में जिनमे कमजोरी की वजह से रोगियों को दूसरे जुलाब नहीं दिये जा सकते, इसका जुलाब दिया जा सकता है।

सूजन—इसके बीज को पीस कर गरम करके लेप करने से छोटी सधियों की और गठिया की सूजन मिटती है। स्त्रियों के स्तनों पर भी इसका लेप फायदेमद होता है।

आँखों की सूजन—इसके पत्तों को जौ के आटे के साथ पुल्टिस बनाकर बांधने से आँखों पर आई हुई पित्त की सूजन मिटती है।

अण्ड वृद्धि—इसकी जड को सिरके मे पीसकर गुन-गुना लेप करने से अण्डकोषों की सूजन उतरती है।

गृध्रसी और वातरोग—इसके तेल को गौ मूत्र मे मिलाकर नित्य थोड़ी २ मात्रा मे एक महीने तक पिलाने से गृध्रसी उरुस्तम्भ आदि रोग मिटते हैं।

चर्मरोग—इसकी जड़ का काढा बनाकर पिलाने से चर्मरोगों मे लाभ होता है। इसी प्रकार बिगडे हुए घाव और फोटों पर इसके पत्तों को पीसकर लगाने से ये अच्छे हो जाते हैं।

कृमिरोग—इसके पत्तों का रस पिलाने से तथा उसको गुदाद्वार पर लगाने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं।

प्लीहोदर—इसके पंचांग को हॉडी में भर कर उस हाँडी का मुँह कपडमिट्टी से बद कर अग्नि में जला कर उसमें तैयार की हुई भस्म को एक तोला की मात्रा में चार तोले गौ-मूत्र मिलाकर पिलाने से प्लीहोदर मिटता है।

संतति निग्रह—ऐसा कहा जाता है कि ऋतुस्नान के पीछे स्त्री को इसकी एक मींगी खिला देने से एक वर्षतक गर्भ नहीं रहता।

कामला रोग—इसकी जड के चूर्ण को शहद में मिला कर चटाने से कामला रोग मे फायदा होता है।

गुर्दे की पीड़ा—इसकी मींगी को पीस और गुन-गुना लेप करने से गुर्दे की वातपीड़ा में लाभ होता है।

नकसीर—इसकी मींगी के छिलके की भस्म को नाक में फूँकने से नाक से बहता हुआ खून बद हो जाता है।

बवासीर—इसके हरे पत्तों को पीसकर गुदा पर बाँधने से और इसका बीज खाने से बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रेंद्रिय की निर्बलता—इसके बीज और मीठा तेल दोनों को बराबर लेकर औटाकर नित्य मूत्रेंद्रिय पर मालिश करने स मूत्रेंद्रिय की कमजोरी मिटती है।

स्तनों की शिथिलता—इसके पत्तों को सिरके मे पीसकर लेप करने से स्तनों का ढीलापन मिटकर वे कठोर हो जाते हैं।

—:०००:—

अरण्यकासनी

नाम—

हिन्दी—अरण्य कासनी। पंजाबी—कानफूल, बरन, दूधल। दक्षिणी—पथरी। सिंधी—बुथुर। लेटिन—Taraxacum Officinale। अंग्रेजी—Deudelion.।

वर्णन—

यह एक प्रकार की स्थायी वनस्पति है। इसका रस दूधिया होता है। इसके पत्ते चौड़ाई में कम और लम्बे आकार के होते हैं। इसके फूल पीले रहते हैं और विशेषरूप से काम में आते हैं। इसकी ताजी जड ६ से १६ इञ्च तक लम्बी होती है। ताजी हालत में यह हलके पीले रंग की और सूखी हुई हालत मे धूसर वर्ण की झुर्रीदार होती है। भीतर मे यह सफेद रंग की और कुछ पीलापन लिये हुए होती है गीली हालत में यह लचीली और सूखने पर हलकी चरचराहट के साथ टूटने वाली होती है। बसंत-ऋतु के प्रारंभ मे इसकी जड मीठे स्वाद को लिये रहती है, मगर गर्मियों में इसका दूध गाढा हो जाने की वजह से यह कड़वी हो जाती है। यह औषधि हिमालय में एक हजार फीट से लेकर अठारह हजार फीट की ऊँचाई तक तथा नीलगिरि पर्वत, तिब्बत, यूरोप और उत्तरी अमेरिका में पैदा होती है। सहारनपुर के सरकारी उद्यान में भी इसकी खेती की जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

प्राचीन आयुर्वेद के अन्दर इस औषधि का उल्लेख नहीं पाया जाता।

इण्डियन मेडिकल प्लाण्ट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी जड़ मूत्रनिस्सारक, पौष्टिक और मृदु-विरेचक है। यह खास करके गुर्दे और यकृत की बीमारियों में काम में ली जाती है। इसकी ताज

जड़ का रस या इसका ठंडा काढा केलम्बा के समान आमाशय को बल देने वाला तथा कोठे को मुलायम करने वाला होता है।

इसका सत्व एलोपेथिक मे एक्स्ट्रेक्टम टेरेक्ससाइ लिक्विडम(Extractum Taraxaci Liquidum.) के नाम से प्रसिद्ध है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह औषधि यकृत के जीर्णरोगों पर फायदेमन्द है। इसके अन्दर एक प्रकार का कडवा सत्व रहता है।

अरण्यतम्बाकू

नाम—

संस्कृत—अरण्य तम्बाकू। हिन्दी—वन तम्बाकू, गीदड़ तम्बाकू, बन तमाल। पंजाबी—वन तम्बाकू, एकबीर, फुँटर, रेवंद चीनी, क्बीस्त्री। अरबी—माही जहरज, अदानद दुब। फारसी—बुसीर, माही जहरह। लेटिन—Verbascum, Thapsus. (व्हरवेसकम थेपसूस) इंग्लिश—Mulein. (मुलियन)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का सीधा खड़ा रहने वाला वृक्ष है। यह वृक्ष भूरे और पीले रंग के कोमल रुएँ से आच्छादित रहता है। इसके फूल पीले रंग के और पत्ते बर्छी के आकार के होते हैं। औषधि-प्रयोग के लिये इसके पुष्पदल ही एकत्रित किये जाते हे। इसके पत्ते पाँच खड युक्त होते हैं। इसके ऊपर का भाग चिकना और नीचे का रुएँदार होता है। इसके नरततु गर्भकेशर की नली से लगे हुए होते हैं। इसका स्वाद लुआबी और कुछ २ कड़वा रहता है। इसके फूल के अन्दर पुष्करमूल के समान बास आती है। इसकी फलियाँ कुछ लम्बी और गोल होती हैं। इसके बीज छोटे और अत्यंत सख्त होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेद के अन्दर इस औषधि का कोई खास उल्लेख नहीं मिलता।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह औषधि तीसरे दर्जे में गर्म और रूक्ष है। इसके पत्ते वेदना को दूर करने वाले, आक्षेप को मिटाने वाले, पेशाब लाने वाले, स्निग्धता पैदा करने वाले, लुआबदार और नींद लाने वाले हैं। छाती के दर्द, आमवात, संधिवात, आमातिसार और कफ के रोगों मे यह औषधि उपयोगी मानी जाती है।

हकीम डिसकोरिडस ने इस औषधि के कई भेदो का वर्णन किया है। वे इसे खाँसी, फेफडे के रोग और अतिसार के अदर लाभदायक बतलाते हैं।

इग्लैण्ड के अन्दर इस के ताजा पत्तों से व दूसरे अगों से शराब के साथ एक प्रकार का टिंचर तयार किया जाता है जोकि मस्तक के शूल में बड़ा ही उपयोगी होता है। इसका तेल (Mulleinoil) जीवाणुनाशक और कान के दर्दों मे आश्चर्य्यजनक लाभ पहुँचाने वाला है। कान के भीतर की जलन और कान की सूजन के पुराने रोगो को मिटाने के लिये एक सुदीर्घकाल से बड़ी सफलतापूर्वक इसका उपयोग किया जा रहा है। यह तेल बच्चों के मूत्रस्राव रोग में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जर्मनी के अन्दर भी यह वस्तु बड़ी उपयोगी मानी जाती है। वहाँ पर इसकी जड़ का काढा आक्षेप, सिरदर्द तथा मस्तकपीड़ा को दूर करने के काम मे लिया जाता है। इसके सूखे पत्ते यदि चिलम और हुक्के मे पिये जायँ तो यह खाँसी, श्वास और क्षयरोग मे लाभ पहुँचाता है।

ब्रिटिश मेडिकल जरनल के सन् १८८३ के २७ वीं जनवरी के अङ्क मे डाक्टर क्वीनलैण्ड ने इस औषधि के सम्बध में जो तथ्य निकाले हैं, वे इस प्रकार है।

"यह औषधि यक्ष्मा की प्रारभिक अवस्था और फेफडे के रोगों में बहुत लाभदायक है। आयरलैण्ड के अन्दर उपरोक्त रोगों के अदर प्रचुर परिमाण मे यह उपयोग मे ली जाती है। यह आतों के ढीलेपन को दूर करती है। यक्ष्मा के रात्रिस्वेद पर इसका कोई प्रबल असर नहीं होता, पर इसमें रोगनिवारक और वजन बढ़ाने की शक्ति है। इससे यह यक्ष्मा और अतिसार को रोक देती है।"

डाक्टर स्टुअर्ट के मतानुसार इसकी जड़ उत्तर भारत में ज्वरनाशक औषधि के रूप में काम में ली जाती है।

डा० वेट के मतानुसार यह यक्ष्मा की मूल्यवान औषधि है। यह खाँसी को कम करने वाली, आँतों की शक्ति को बढाने वाली, और रात्रिस्वेद को रोकने वाली है। इसके ढाई तोले पत्तों को ढाई पाव दूध मे उबालकर दिन मे दो बार देने से यह श्वास रुकने की तकलीफ को दूर करती है।

इंडियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसके दो तोला पत्तो को ढाई पाव दूध में उबाल कर, आधा दूध रहने पर शक्कर मिलाकर रात को सोते समय पीने से खाँसी की वेदना बद होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शातिदायक, मूत्रनिस्सारक, वेदनाहर, शूलनिवारक, धातु-परिवर्तक और आक्षेप निवारक है।

यह मछलियो के लिये एक प्रकार का जहर है, इसमें एक प्रकार का कड़वा सत्व और उड़नशील तेल पाया जाता है।

अरण्यतुलसी

नाम—

संस्कृत—अर्जक, बर्बरी, वनबर्बरी । हिन्दी—बर्बरी, वनतुलसी । बंगाली—बावुइ तुलसी, वनबावुईतुलसी । मराठी—रानतुलस । गुजराती—रानतुलसीभेद । कर्नाटकी—कगोरले, करीयक गोरले । तैलंगी—काण्तुलसी । फारसी—पलग मुश्क । अरबी—फरज मुश्क । लेटिन—Ocimum Gratissimum. ओसिमम ग्रेटिसिमम् ।

परिचय—

इसका वृक्ष सीधा, डालियों वाला और साल भर तक कायम रहने वाला होता है । इसकी छाल राख के रंग की होती है । जब पौधा छोटा होता है, तब चारों तरफ चार शाखाएँ फूटती हैं । इस पौधे की ऊँचाई ४ से ८ फीट तक होती है । इसके पत्ते दोनों बाजुओं पर चिकने होते हैं । इसके पत्तों की लम्बाई २ इंच व ज्यादे से ज्यादा ४ इंच होती है । यह वनस्पति खास करके एशिया व सिन्ध की है । बंगाल,नैपाल, चटगाँव और पूर्वी नैपाल में भी यह पैदा होती है । तुलसी की जितनी जातें हैं, उनमें सबसे अधिक सुगन्ध इसके पत्तों को हाथ पर मलने से आती है । यह काली व सफेद के भेद से दो प्रकार की होती है ।

आयुर्वेदिक मत—राज-निघण्टकार के मतानुसार यह चर्परी, रुचिकारक, गरम तथा वातरोग, कफ, व नेत्ररोग को नाश करने वाली है और सुखपूर्वक प्रसव कराने वाली है ।

यह वनस्पति स्वाद में तिक्त, रूखी, शीतल, चरपरी, दाहजनक, तीक्ष्ण, रुचिकारक, हृदय को हितकारी, दीपन, पचने में हल्की, विषनाशक तथा वमन, मूर्छा, वात, कफ, चर्मरोग, अग्निविसर्प, प्रदाह और पथरीरोग में लाभदायक है ।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाली,कामोद्दीपक,मस्तिष्क की बीमारी,हृदयरोग तथा यकृत और तिल्ली में लाभ पहुँचाने वाली है । यह मुँह की दुर्गन्ध को दूर करने वाली,दाँत के मसूड़ों को मजबूत बनाने वाली तथा आँतों के दर्द व बवासीर में लाभ पहुँचाने वाली है ।

इसको पानी में उबाल कर उसका बफारा देने से गठिया व पक्षाघात के रोगियों को लाभ पहुँचता है । इसके पत्तों का काढ़ा वीर्य-सम्बन्धी रोगों में फायदेमन्द है । यह सुजाक की भी एक उत्तम औषधि है । सिरदर्द व स्नायुशूल में इसके बीजों का उपयोग किया जाता है ।

मेडागास्कर में यह औषधि बहुत प्रचलित इलाज के रूप में काम में ली जाती है । वहाँ पर यह पौष्टिक, छाती के रोग को दूर करने वाली, उल्टी को रोकने वाली और आक्षेप-निवारक समझी जाती है । स्नायुशूल सम्बधी पीड़ा को भी यह दूर करती है । वॅडसिल्यिो लोग इसके पत्तों को दाँतों की पीड़ा

में चूसने के काम में लेते हैं। वे लोग इसके पत्तों के रस को या बीजों के चूर्ण को सिरदर्द की बीमारी में सूंघने के काम में लेते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह पेट के आफरे को उतारने वाली, मूत्रवर्द्धक और शान्तिदायक होती है। यह रक्तस्राव को रोकने वाली है। इसका रासायनिक विश्लेषण करने से मालूम हुआ है कि इसमें एक प्रकार का उड़नशील पदार्थ जिसको ऐसेन्शियल् ऑइल कहते हैं, रहता है। इसके अतिरिक्त थायमल और यूगेनल नामक दो पदार्थ और रहते हैं।

सन्याल व घोष के मतानुसार यह पौधा पेट के आफरे को दूर करने वाला व उत्तेजक माना जाता है। इसके बीज शान्तिदायक व मूत्रनिसारक हैं। इसके बीजो को कुछ समय तक भिगोया जाय तो ये फूल जाते हैं। उनके फूलने से एक प्रकार का चिकना व लसदार पदार्थ बन जाता है। इसमें शक्कर डालकर पीने से यह पेचिश व सुजाक की बीमारी में ठण्डक पहुँचाता है। यह नाक के रोगों में भी उपयोगी है। बंगाल के अन्दर इसका प्रयोग पीनस के रोग पर दीर्घकाल से किया जा रहा है।

इसके पत्तों का काढ़ा वीर्य सम्बन्धी निर्बलता को दूर करता है। इसके बीज सिरदर्द व स्नायु-शूल के काम में लिये जाते हैं। इसका ताजा रस कान में टपकाने से कान का दर्द आराम होता है। मूत्राशय से सबन्ध रखने वाली बीमारी में यह लाभदायक है।

उपयोग—

सुजाक—इसके पत्तों का रस पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

लकवा व गठिया—इसके पंचांग को गरम पानी में उबालकर उसका बफारा देने से लकवा व गठिया की बीमारी में लाभ पहुँचता है।

सिर दर्द—इसके पत्तों के रस को ललाट व कनपटियों पर लेप करने से मस्तिष्क की पीड़ा मिटती है।

स्नायु शूल—इसके बीजों की फंकी देने से स्नायु-शूल मिटता है।

घाव के कीडे—इसके सूखे पत्तों का चूर्ण घाव पर डालने से उसके कीडे निकल जाते हैं।

अतिसार—इसके बीजों के चूर्ण की ३॥ माशे से ७॥ माशे तक फकी देने से जवान आदमी का अतिसार बन्द होता है।

अरनी

नाम—

संस्कृत—अग्निमन्थः, जया, तरकारी, नादेयी । हिन्दी—अरनी । मराठी—टाकली । बंगाली—गनिरी । पंजाबी—अगेथू । तैलगी—तक्किली, चट्टू । द्राविड़ी—वन्निमरम । लैटिन—Premna Integrifolia.

वर्णन—

अरनी के वृक्ष दक्षिण हिन्दुस्तान, सिलोन, बंगाल, बम्बई, अवध, गढ़वाल और राजपूताना आदि बहुत से देशों में पैदा होते हैं ।

अरनी दो प्रकार की होती है, एक छोटी और दूसरी बड़ी, सफेद व काले रंग के फूलों के भेद से भी यह दो प्रकार की होती है । बड़ी अरनी का वृक्ष ३० फीट ऊँचा होता है । इसके पत्ते कटे हुए व कगूरेदार होते हैं । इसकी पुरानी शाखाओं में आमने-सामने मजबूत काँटे लगे हुए होते हैं । इसके कुछ नीली झाँई लिये हुए, सफेद रंग के फूल लगते हैं । फूलों की पखड़ियाँ कुछ मोटी होती हैं । इसकी लकड़ी मजबूत व सफेद रंग की होती है । उसपर बैंगनी रंग की धारियाँ पड़ी हुई होती हैं । चैत्र, वैशाख में इसके फूल लगते हैं और फूलों के गिरने के बाद काले रंग के छोटे २ फूल आते हैं । ऐसा कहा जाता है कि इसकी लकड़ी को परस्पर में रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती है, इसीसे इसका नाम अग्निमन्थः पड़ा है ।

छोटी अरनी का झाड प्रायः दो-तीन गज ऊँचा होता है, इसकी जड़ मोटी, कड़वी व भूरे रंग की होती है । उसमें कुछ २ सुगंध भी आती है । इसके पत्ते १ से २ इंच तक लम्बे होते हैं । इन पत्तों पर सुगंधयुक्त सफेद रंग के फूल लगते हैं । इसके फल काले रंग के होते हैं जिनमें चार २ बीज निकलते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—धन्वन्तरि-निघण्टु के मतानुसार अरनी कड़वी, तीखी, उष्ण तथा वात, कफ, पाण्डुरोग, सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, कब्जियत इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करने वाली है ।

शोढ़ल के मतानुसार अरनी भारी, कड़वी, सारक तथा वायु व सूजन को जीतने वाली है ।

इसकी जड़ विरेचक, अग्निवर्द्धक और यकृत की पीड़ा को दूर करने वाली होती है । इसके पत्तो का काढा मदाग्नि को दूर करने तथा पेट का आफरा उतारने के लिये दिया जाता है । इसकी जड का काढा हृदय को बल देने वाला और पौष्टिक है, इसके पत्तों को कालीमिर्च के साथ पीसकर सर्दी व बुखार में देते हैं । गठिया की बीमारी में इसके पंचाग का क्वाथ लाभदायक है । यह क्वाथ स्नायु-शूल, और स्नायु-पीड़ा में भी उपयोगी है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ को चार औंस (आधा पाव) लेकर एक पिंट (आधा सेर) पानी में १५ मिनट तक उबाल कर दिन में दो बार १ छटाँक से आधा पाव की मात्रा में देने से जठराग्नि प्रबल होती है। यह औषधि पौष्टिक भी है।

हमारे प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इस औषधि का कई स्थानों पर वर्णन आया है, सुप्रसिद्ध दशमूल क्वाथ के अन्दर यह औषधि भी एक प्रधान अंग मानी गई है। इसके अतिरिक्त चरक मे यह औषधि बवासीर के लिये, सुश्रुत में इक्षुप्रमेह के लिये, चक्रदत्त में वसाप्रमेह के लिये, हारीत में वात-व्रण के लिये इत्यादि भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न २ रोगों के लिये उपयोगी बतलाई गई है।

उपयोग—

बवासीर—अरनी के पत्तों का काढा पिलाने से तथा इसके पत्तों की पुल्टिस बनाकर बाँधने से बवासीर की पीड़ा नष्ट होती है।

वायुगोला—छोटी व बड़ी अरनी के जल का काढ़ा पिलाने से वायुगोले में लाभ होता है।

सूजन—इसकी जड़ को सांटे की जड़ के साथ पीसकर लेप करने से शरीर की ढीली पड़ी हुई सूजन उतर जाती है।

गठिया और स्नायु पीड़ा—के अन्दर इसके पचांग का क्वाथ पिलाने से लाभ होता है।

शीत-पित्त—इसकी जड का चूर्ण घी के साथ सात दिन पिलाने से शीत-पित्त मिटती है।

आमाशय का शूल—इसके पत्तों को उबालकर मल, छानकर पिलाने से आमाशय का शूल मिटता है।

हृदय की निर्बलता—इसके पत्तों का धनिये के साथ क्वाथ बनाकर पिलाने से हृदय की निर्बलता मिटती है।

उपदंश—छोटी अरनी के पत्तों का सवा तोला रस कुछ दिनों तक पिलाने से पुरानी गर्मी की पीड़ा मिटती है।

रुधिर विकार—इसके पत्तों के रस में शहद मिलाकर पिलाने से रक्तविकार में लाभ पहुँचता है।

बनावटें—

दशमूल क्वाथ—अरनी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेरी, गोखरू, बेलगिरी, अरलू, खम्बारी, पाढर, इन दसों औषधियों को समान भाग लेकर कूट पीसकर एक तोले की मात्रा में आधा सेर पानी के अन्दर जोश देना चाहिये। जब एक छटाँक पानी शेष रह जाय तब छानकर एक तोला शहद मिलाकर पिलाना चाहिये। अगर उसमें थोड़ा पीपल का चूर्ण भी डाल दिया जाय तो विशेष लाभदायक होता है। यह काढ़ा सूतिकारोग के लिये अमृततुल्य है। अगर प्रसूता स्त्री को दस दिन तक लगातार यह काढा पिलाया जाय तो उसके सब उपद्रव दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त सन्निपात, उदररोग, पसली का दर्द, त्रिदोष इत्यादि रोगों को भी यह क्वाथ दूर करता है।

———:०:———

अरलू

नाम—

संस्कृत—अरलू, श्योनाक, टुंटुकम् । हिन्दी—अरलू, सोनापाठा, टेंटू । बंगाली—सोना, सोनालू । गुजराती—अरडूसो । मराठी—टेटू, मानिम्ध्य, अडूलसा । कर्नाटकी—शोणा, शोडिलमर । तैलंगी—पैद्दामानु । उड़िया—फणफणा । पंजाबी—मुलिन । नैपाली—करुमकन्द । लैटिन—Ailanthus Excelsa. (ऐलेन्थस एक्संलेसा)

पहिचान—

अरलू के झाड़ नीम के बराबर ऊँचे होते हैं। इसके झाड़ व इसकी डालियाँ अक्सर सीधी होती हैं। इसकी छाल का रंग सफेद राख के समान होता है। इसके पत्ते ४ से ८ इंच तक लंबे व दो से तीन इंच तक चौड़े गहरी कटी हुई कोरों के व कंगूरेदार होते हैं। इसकी डालियाँ १ फुट से लेकर तीन फुट तक लम्बी होती है। इसके फूल कुछ पीलास लिये हुए हरे रंग के होते हैं। यह जाड़े के दिनों में आते हैं और इनके ऊपर पित्तपापड़ा की तरह लम्बी फलियें लगती हैं, जो गर्मी की मौसिम तक पक जाती हैं। ये फलियाँ दो २ फुट की लम्बी तलवार के समान होती हैं। फली के भीतर रूई व दाने निकलते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत के अनुसार अरलू, कसैला, कड़वा, चरपरा, जठराग्नि को दीपन करने वाला, मलरोधक, शीतल, वीर्यवर्द्धक, बलदायक तथा वात, पित्त, सन्निपात, ज्वर, कफ, त्रिदोष, अरुचि, आमवात, कृमि, उल्टी, खाँसी, अतिसार, तृषा और कोढ़ का नाश करने वाला है। इसका कच्चा फल कसैला, मधुर, हल्का, हृदय को बलकारी, रुचिकर, पाचक, कण्ठ को हितकारी, अग्नि-प्रदीपक, गरम, कड़वा, खारा तथा गुल्म-वात, कफ, बवासीर और कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

इसकी छाल कड़वी और ज्वर तथा तृषा में शान्ति पहुँचाने वाली, संकोचक, भूख बढ़ाने वाली, कृमिनाशक और ज्वर को नष्ट करने वाली है। यह बच्चों के अतिसार, पेचिश, कान के दर्द, चमड़े के रोग और गुदाद्वार की तकलीफों में लाभ पहुँचाती है। यह औषधि भी दश मूल का अङ्ग है।

बम्बई में इसकी छाल व पत्ते बहुत पौष्टिक माने जाते हैं तथा प्रसूति के पश्चात् की कमजोरी को दूर करने के लिये दिये जाते हैं।

इसकी छाल का रस नारियल के रस के साथ में या शहद के साथ में देने से प्रसूति के बाद होने वाली तकलीफों को दूर करता है।

राज-निघंटु के अन्दर इस औषधि को अतिसार की एक महौषधि माना है। लिखा है—

पुटपाक विधानेन, रसो निष्कास्य भक्षितः।
चिरंतन मतिसारं, नाशयेदिति कीर्त्तितम् ॥

इसकी छाल व पत्तों को बारीक पीसकर,गोला बनाकर, उसके ऊपर बड़ के पत्ते लपेट कर, कपड़-मिट्टी कर भाड़ में डाल देना चाहिये, जब मिट्टी पककर लाल हो जाय, तब उसको निकाल कर ठण्डा होने पर दबा कर निचोड़ लेना चाहिये, इस रस में से दो तोला रस सवेरे-शाम पीने से बहुत दिनों का अतिसार, खूनी दस्त इत्यादि रोग आराम होते हैं। जिस प्रकार विलायती दवा 'सेलोल' के अन्दर अतिसार को नष्ट करने का गुण है, उसी प्रकार इस औषधि में भी यह गुण रहता है।

उपयोग—

प्रसूतिजन्य दुर्बलता—जिन स्त्रियो को प्रसूति हुये के पश्चात् चार-छः दिन तक भयङ्कर पीडा रहती है, उनको इसकी छाल का चार-छः रत्ती चूर्ण लेकर इतनी ही सोठ और इतने ही गुड के साथ मिलाकर उसकी तीन गोलियाँ बनाकर सवेरे-दोपहर और शाम को एक २ गोली दशमूल-क्वाथ के साथ देने से चमत्कारिक ढग से सब पीडाये दूर होती हैं और दस-पद्रन्ह दिन तक लगातार देते रहने से प्रसव के पश्चात् आने वाली कमजोरी दूर होकर सूतिका रोग होने का भय जाता रहता है।

सन्धि वात—इस औषधि में सोडा सेलिसाइलिक नामक विदेशी औषधि की तरह स्नायु-जाल को विकसित करने का गुण भी रहता है। इसलिये इसकी छाल के चूर्ण को एक रत्ती से डेढ रत्ती की मात्रा में नियमित रूप से लेते रहने से तथा इसके पत्तों को गरम करके सन्धियों पर बाँधने से सन्धिवात में बहुत लाभ होता है।

ज्वर-नाशक प्याला—इसकी छाल तथा इसकी लकड़ी में एलोपेथिक दवा "क्वाशिया" की तरह विषमज्वर को नाश करने वाला गुण भी रहता है। क्वाशिया की तरह ही इसकी लकडी का छोटा प्याला बनाकर उस प्याले में रात भर पानी भरा रखकर सवेरे उस पानी को पीने से इकॉतरा, तिजारी, चौथिया इत्यादि सब प्रकार के मलेरिया ज्वर नष्ट होते है। यह प्याला कड़वा, चरपरा, जठराग्नि को बल पहुँचाने वाला, मल को रोकने वाला, शीतल तथा मलेरिया के असर को रोकने वाला है। इस प्याले के अन्दर भरा हुआ पानी पीने से और इसकी छाल का डेढ २ रत्ती चूर्ण सवेरे-शाम खाने से बुखार के अन्दर बहुत लाभ पहुँचाता है। (जगलनी जड़ी-बूटी-भाग ४)

श्वास रोग—इसके चूर्ण को अदरख के रस व शहद के साथ चटाने से श्वास में लाभ होता है।

मन्दाग्नि—इसकी छाल को ठण्डे या गरम पानी में चार पहर भिंगोकर मल, छानकर दिन में दो बार पिलाने से मन्दाग्नि मिटती है।

आक्षेप वायु—इसकी तीन माशे छाल व तीन माशे सोठ को औटाकर पिलाने से बॉवठे और आक्षेप वायु मिटती है।

खाँसी—इसके गोंद के चूर्ण को थोड़ा २ दूध के साथ पिलाने से आमातिसार व खाँसी मिटती है।

कर्ण-शूल—अरलू की जड़ की छाल लाकर बारीक पीसकर उसकी लुग्दी तिलों के तैल के अन्दर रखकर, तैल से दूने वजन का पानी डालकर आग पर जोश देना चाहिये। जब पानी जलकर शुद्ध तैल रह जाय तब उसको छान करके रख लेना चाहिये। इस तैल को कानो के अन्दर टपकाने से त्रिदोष से पैदा हुआ कर्णशूल मिटता है।

उपदंश—अरलू की जड की छाल लाकर बारीक करके सुखा देना चाहिये। इसमें से आधा तोला छाल लेकर चार-पाँच तोले पानी के अन्दर चार घंटे तक भिगोना चाहिये। उसके पश्चात् उस छाल को बारीक पीसकर उसी पानी के अन्दर छानकर उसमें मिश्री मिलाकर पीना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक सवेरे-शाम पीना चाहिये। पथ्य में गेहूँ की रोटी, घी, शक्कर इत्यादि वस्तु खाना चाहिये, भात नहीं खाना चाहिये। सात दिन तक स्नान भी नहीं करना चाहिये, आठवें दिन नीम के पत्तों के औटाये हुए पानी में स्नान करके पथ्य छोडना चाहिये।

बवासीर—अरलू की छाल, चित्रकमूल, इन्द्रजौ, करज की छाल, सेंधा नमक, सोंठ, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर कूट-पीस छान चूर्ण बनाकर डेढ़ से तीन माशे की मात्रा में मट्ठे के साथ लेने से बवासीर नष्ट होता है।

मुँह के छाले—अरलू की छाल का काढ़ा बनाकर उसके कुल्ले करने से मुँह के छाले नष्ट होते हैं।

अरल्वादि क्वाथ—अरलू, अतीस, मोथा, सोंठ, बेलगिरी और अनार दाना, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर जौकुट करके, इसमे से एक तोला औषधि, आधा सेर पानी के अन्दर उबाल कर, जब छटाँक भर पानी रह जाय तब छानकर उसे पिलाने से सब प्रकार के ज्वर व अतिसार नष्ट होते हैं।

अरवी

नाम—

संस्कृत—आलुकी, कच्वी, कचु:। हिन्दी—अरवी, अरुई। मराठी—अरवी, चमकूरा। बंगाली—कचु। पंजाबी—अरवी। द्राविड़ी—शोमकलेक। कर्नाटकी—श्यामेगंडे। अरबी—कलकास। लैटिन—(Colocasia. Eoculonta.)

परिचय—

अरवी के पेड़ भारतवर्ष में सब दूर होते है। इसके पत्ते कमल के पत्तों की तरह, मगर उनसे कुछ छोटे बहुत सुन्दर होते है। इसके पत्ते फूटते ही जमीन के ऊपर फैल जाते हैं। इसके फल जमीन के

अन्दर लगते हैं, जो कुछ काले व रतालू की तरह होते हैं, इन फलों की तरकारी बनाकर भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के लोग खाते हैं। इसकी तरकारी चिकनी होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघट्ट-रत्नाकर के मतानुसार अरवी मलस्तम्भक, स्निग्ध, जड़, बलकारक, कफनाशक और तेल में पकाने से रुचिकर होती है।

यूनानी मत—यह शरीर को मोटा करने वाली, खाँसी को लाभ पहुँचाने वाली, मलरोधक और वीर्य को गाढ़ा करने वाली है, इसका स्वभाव बादी को बढाने वाला है तथा हजम होने में यह बहुत कठिन है। इसके प्रतिनिधि दालचीनी, लौंग व अजवायन हैं तथा इसके दर्प को नष्ट करने वाली भिंडी है।

इसके पत्तों की डंडी का रस रक्तस्राव को बंद करने के लिये लिया जाता है। कभी २ कान के दर्द में भी यह उपयोगी पाया गया है। यह रस एक प्रकार का उत्तेजक पदार्थ है। इसको चमड़े के ऊपर लगाने से चमडा लाल हो जाता है, इसका खास उपयोग जलन वाली गाँठों व फोड़ों में किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसकी गठान का उपयोग करने से सिर की गंज में लाभ पहुँचता है। भवरी इत्यादि जहरीले कीडे काटने पर भी इसका उपयोग किया जाता है। बवासीर की बीमारी में भी यह लाभदायक सिद्ध हुई है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह रक्तस्राव को रोकने वाली और एक प्रकार की चर्मदाहक औषधि है। बिच्छू के डंक पर भी यह लाभकारी मानी गई है। मगर केस व महेस्कर के मतानुसार यह निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

उपयोग—

खून का बहना—इसके कोमल पत्तों में से रस निकाल कर लगाने व पिलाने से रक्तवाहिनी-शिरा में से निकलता हुआ खून बन्द हो जाता है। इस रस को घाव के ऊपर लगाने से घाव भी शीघ्र भर जाता है।

सूजन—काली अरवी के पत्ते व उनकी डडियों का रस निकाल कर उसमें नमक डालकर लेप करने से गाँठों व पेशियों की सूजन बिखर जाती है।

सिर की गज—काली अरवी के कद का रस निकाल कर सिर पर मालिश करने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है व नवीन बाल उगने लगते है।

जहरीले जानवरों का डक—भवरी व अन्य दूसरे जहरीले जानवरों के डक पर इसका रस लगाने से लाभ पहुँचता है।

खूनी बवासीर—काली अरवी का रस पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

अरहर

नाम—

संस्कृत—आढकी, तुवरी, पीतपुष्पा, वृतबीजा। हिन्दी—अरहर, तुअर। मारवाड़ी—तूर, अरेड। गुजराती—तूर। मराठी—तुरी। बंगाली—आपूरी, अडर। पंजाबी—हरहर। अरबी—साज। फारसी—शाकल। लेटिन—Cojanus, Indicus Cytisuscajan

विवरण—

अरहर की दाल प्रायः भारतवर्ष में सब दूर खाई जाती है। इसको प्रायः सब लोग जानते हैं। इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के मतानुसार अरहर मधुर, कसैली, कुछ वातकारक, भारी, रुचिकर, मलरोधक, रूखी, कांति-वर्द्धक, शीतल तथा कफ, पित्त, ज्वर, विष, रुधिरविकार, गोला, वात और बवासीर को दूर करती है। इसके लेप करने से कफ व पित्त का नाश होता है और इसका सेक करने से मेद व कफ दूर होते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह कब्जियत करने वाली, पचने में भारी, आँतों में दर्द पैदा करने वाली, अतिसार व कमजोरी को बढ़ाने वाली, कृमिनाशक और यकृत को दुरुस्त करने वाली है। यह कफ व प्रदाह कम करने वाली तथा बवासीर के लिये फायदेमद है।

इसकी दाल व पत्तों को मिलाकर एक प्रकार का लेप बनाया जाता है। इस लेप को स्तनों के ऊपर लगाने से यह ग्रन्थि रस को रोककर दूध बढ़ता है। इसके बीजों की पुल्टिस जलने वाली सूजन को कम करती है।

चरक के मतानुसार इसकी दाल दूसरी वनस्पतियों के साथ सर्प के जहर में लाभ पहुँचाती है।

डा० चोपड़ा के मतानुसार यह सर्पदंश के काम में आती है। मगर केस और मस्कर के सिद्धान्तानुसार सर्पविष के अन्दर यह निरुपयोगी है।

गायना के अन्दर इसके बीजों का आटा सूजन को नष्ट करने वाला माना जाता है। इसके उबाले हुए पत्ते घाव पर लगाये जाते हैं। इसके पत्तों में से ठंड की मौसम में रस निकाला जाता है। यह रक्तस्राव के अन्दर उपयोगी माना जाता है। इसके फूलों का रस वक्षरोग को नष्ट करता है।

यद्यपि ऊपर अरहर को औषधि की तरह मानकर गुण-दोष लिखे गये हैं। फिर भी यह वस्तु औषधि की अपेक्षा नित्य व्यवहार में आने वाली खाद्य-सामग्री के अन्दर ही काम में आती है।

उपयोग—

मुँह के छाले—इसके पत्तों के रस से या इसकी दाल को पानी में भिंगोकर उस पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले मिटते हैं।

अफीम का जहर—इसके पत्तो का रस पिलाने से अफीम का जहर उतरता है।

आधाशीशी—दूध व अरहर के पत्तों का रस मिलाकर सूँघने से आधाशीशी बन्द होती है।

हिचकी—इसकी भूसी हुक्के में रखकर पीने से हिचकी बन्द हो जाती है।

अरारोट

नाम—

हिन्दी—अरारोट, विलायती तिखुर। बम्बई—तवकिल। मराठी—कुएमउ। कनाड़ी—कुए-हित्। तामील—अरुरूट्-किलगू। तेलगू—पलगुड। अंग्रेजी—West Indian Arrow-root लैटिन—Maranta Arundinacea. (मेरेण्टा एरण्डीनेसिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार का सफेद सत्व है, जो मेरेण्टा एरण्डीनेशिया नामक वृक्ष से प्राप्त होता है। इस वृक्ष का मूल उत्पत्ति-स्थान अमेरिका है, जहाँ पर यह गरमी के दिनों में घास की हरी झोपडियों में और बराण्डों में बोया जाता है। इसकी जड में गाजर के समान एक प्रकार का कन्द होता है और उसी कन्द से यह औषधि तैयार होती है। यह वृक्ष अगस्त के अन्दर फूलने लगता है। इसके फूल सफेद होते हैं। जनवरी, फरवरी में जब यह तैयार हो जाता है तब इसके पत्ते झडने लगते हैं और इसके कद निकाल लिये जाते हैं।

निकालने के पश्चात् इसकी जड़ों को पानी के अन्दर खूब धोकर जल के साथ पीसते हैं और उसे मल छानकर एक ओर रख देते हैं। उस पानी में से इसका सफेद सत्व नितर कर नीचे बैठ जाता है, उसको निकाल लिया जाता है।

भारतवर्ष के अन्दर भी पूर्वीय बगाल, सयुक्त प्रात और मद्रास में इसकी खेती होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इस औषधि की गठानें चरपरी, कसैली और चर्मदाहक होती हैं। ये घाव पूरने के काम में ली जाती हैं। इनमें से उत्तम जाति का अरारोट प्राप्त होता है। इन गठानो का सत्व पौष्टिक और स्नेह-जनक है। इसको प्रायः दूध में पकाकर कमजोर रोगियों, बालकों, आँत के रोगियों और मूत्र सम्बन्धी रोगियों को दिया जाता है।

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और शातिदायक है।

———❀———

अरारोबा

नाम—

लैटिन—Araroba (अरारोबा) अँग्रेजी—Goa Powder (गोआ पाउडर) Crude Chrysarobin. (क्रूड क्राइसारोबीन)

वर्णन—

यह औषधि ब्राझील देश के बहिया नामक स्थान में उत्पन्न होती है। इसके वृक्ष को वहाँ के लोग एञ्जेलीम अमरगोसो (Angelim Amargoso) कहते हैं। इस वृक्ष के छिद्र युक्त तनों के खोखले भागों में से यह प्राप्त होता है। इसको प्राप्त करने के लिए इसके वृक्ष को काटकर, चीरकर खोखली जगहों में से खुरचकर इसे इकठ्ठा किया जाता है। इसका चूर्ण 'गोआपाउडर' के नाम से सारे भारत में दाद की औषधि की तरह प्रसिद्ध है।

अठाहरवीं शताब्दी के पहले तक भारतवासी इस औषधि से परिचित नहीं थे। सबसे पहिले गोआ के रहने वाले ईसाई लोगों ने चर्मरोग और दाद के ऊपर इस औषधि का प्रयोग करना शुरु किया। वे लोग इस योग को अत्यंत गुप्त रखते थे। उसके पश्चात् यह औषधि बम्बई में आकर गोआपाउडर, ब्राझील-पाउडर, रिंगवर्म पाउडर इत्यादि नामों से ३०) पौंड तक बिकने लगी। सन् १८६४ ईसवी में सुप्रसिद्ध डाक्टर केम्प ने इस औषधि की तरफ ध्यान दिया और इसकी उपयोगिता को जाहिर किया, उसके पश्चात् इस विषय पर विशेष खोज होने लगी और अंत में मालूम हुआ कि यह औषधि एक प्रकार के बबूल की जाति के वृक्ष से प्राप्त होती है और ब्राझील देश में बहुत समय से चर्मरोगों में उपयोग की जाती रही है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि चर्मरोगों के अन्दर अपना खास प्रभाव रखती है। चमड़े के ऊपर इसका अत्यंत सशक्त और क्षोभक प्रभाव होता है। दाद, विचर्चिका (Psoriasis) एक्झेमा (Eczema) यौवन पीठिका (Acne) इत्यादि सब रोगों पर इसको वेसलीन के साथ मिलाकर प्रलेप करने से बहुत लाभ होता है। मगर यह ख्याल रखना चाहिये कि इस लेप को दर्द की सीमा तक ही लगाना चाहिये। उसके बाहर स्वस्थ चमड़ी पर स्पर्श भी न होने देना चाहिये।

डाईमाक का कथन है कि विस्फोटक, विचर्चिका (Psoriasis) और दाद इत्यादि चर्मरोगों में शीघ्र और निश्चित रूप से फायदा पहुँचाने वाली जो औषधि मुझे मालूम हुई है, वह गोआपाउडर और नीम्बू का रस या नीम्बू का सिरका है। इस पाउडर को नींबू के रस में गाढ़ा २ मिला कर दर्द की जगह पर लेप करने से दो-तीन दिन में पूर्ण लाभ होता है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि इस औषधि को आँख या आँख के आस-पास हरगिज न लगने देना चाहिये। क्योंकि इसका आँख के ऊपर बहुत खराब असर पड़ता है।

इस औषधि के भीतरी प्रयोग से भी विचर्चिका, एक्झेमा तथा यौवन-पीठिकाओं में लाभ पहुँचता है। मगर इसकी छोटी से छोटी एक चाँवल से कम की मात्रा भी पेट के अन्दर ऐंठन पैदा करके घबराहट, व्यग्रता और वमन पैदा करती है। इसलिये इसका भीतरी प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये।

——:०:०:——

अरिमेद

नाम—

संस्कृत—अरिमेद। हिन्दी—दुर्गंधिखैर, विलायती बबूल। बंगाली—दुर्गन्धखदिर, विट्खयेर। मराठी—शेण्याखैर, गधीहिंबर, घाणेराखैर। गुजराती—इरिमेद, गन्धिलोखेर। लेटिन—(एकेशिया फारनेशियाना) Acacia Farnesiana.

पहिचान—

इसका वृक्ष प्रायः बबूल व कीकर के वृक्ष के समान होता है।

इसकी शाखाएँ पतली व टेढी-मेढ़ी रहती हैं। उनपर भूरे या हल्के बादामी रग के धब्बे रहते हैं। इसके पत्तों के बीच में एक प्रकार की ग्रन्थि रहती है। इन पत्तों के अन्दर मनुष्य की विष्टा की तरह बू आती है। इसलिये इसको विट-गन्धी भी कहते हैं। यह झाड़ प्रायः गरम आब-हवा के स्थानों पर हुआ करता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत-आयुर्वेद के मतानुसार अरिमेद, कसैला, गरम, कडवा, भूत-व्याधिनाशक तथा सूजन, मुखरोग, दन्तरोग, रुधिर-विकार, अतिसार, खाँसी, विष, विसर्प, कृमि, कोढ और जहरीले घाव को दूर करने वाला है।

इसकी छाल तिक्त व गरम होती है। यह जहरनाशक अतिसार-निवारक और कृमिरोग को दूर करने वाली है। मुँह की सूजन, रक्तविकार, खुजली, वायु-नलियों के प्रदाह, धवलरोग तथा व्रण में भी यह लाभ पहुँचाती है। दाँतों की सड़ान और अग्नि-विसर्प रोग में भी यह लाभदायक है। इसका गोंद मीठा, बलवर्द्धक और कामोद्दीपक है। इसकी कोमल पत्तियाँ सुजाक के रोग में लाभ पहुँचाती हैं।

फिलिपाइन द्वीप-समूह के अन्दर इस वृक्ष की छाल का काढ़ा प्रदररोग में लाभदायक समझा जाता है। इसके कोमल पत्ते उबालकर घाव व फोड़ों में लेप के ऊपर लगाये जाते हैं, इस लेप को लगाने के पहले इसके पत्ते के काढ़े से घाव को धो डालना जरूरी है।

सुश्रुत के अन्दर सर्पदंश के उपचार में जो क्षार-गज नामक औषधि बतलाई गई है। उसका यह वनस्पति भी एक अंग है। मगर मस्कर व केस के मतानुसार सर्प व बिच्छू के जहर पर इस औषधि का कोई प्रभाव नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके अन्दर इसेंसियल ऑइल नामक एक उड़नशील पदार्थ रहता है।

उपयोग—

अतिसार—इसकी छाल का काढ़ा बनाकर पीने से अतिसार में फायदा पहुँचता है।

सुजाक—इसकी ७॥ माशे कोमल पत्तियों को पीसकर गोली बनाकर खिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

मुखरोग—इसकी छाल के काढ़े से कुल्ले करने से दन्तरोग और मसूड़ों में से खून आना बन्द होता है।

बनावटें—

अरिमेदादि तेल—१२॥ छटाँक अरिमेद की छाल को लेकर चार सेर पानी में पकावें, जब एक सेर जल रह जाय तब आधा सेर काली तिल्ली का तेल डालकर उसमें एक छटाँक मजीठ की लुग्दी रखकर जोश दें, जब तेल मात्र शेष रह जाय तब छानकर बोतल में भर लें। चक्रदत्त के मतानुसार यह तेल सब प्रकार के मुख रोगों में लाभ पहुँचाता है।

अरीठा

नाम—

संस्कृत—अरिष्टः, फेनिलः, रक्तबीजः, मंगल्यः। मारवाड़ी—अरीठो। गुजराती—अरीठा। मराठी—रीठा। पंजाबी—रेठा। द्राविड़ी—योनान कोट्टे। तैलंगी—कुंकुड चेट्टू। कर्नाटकी—कुकुटेकायि। अरबी—बन्दक। फ़ारसी—रित्ता। लैटिन—Sapındus Trıfolıatus, Sapına dus Mukorossı. अंग्रेजी—Soapnut.

वर्णन—

अरीठे का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक को लैटिन में Sapindus-Trifolıatus. और दूसरे को Sapınadus Mukorossı. कहते हैं। यह वृक्ष प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होता है। इसके पत्ते

गूलर के पत्तों से बड़े होते हैं, इसकी छाल भूरी होती है। इसके फल गुच्छों के रूप में आते हैं। इसके बीजों की गिरी पहले कुछ मीठी और पीछे कड़वी लगती है।

पहली जाति का अरीठा फेन वाला होता है और यह कपड़े धोने, सिर धोने, तथा साबुन के स्थान में काम आता है। दूसरी जाति के अरीठे के बीजों में से जो तैल निकलता है वह औषधि के काम में आता है। इस झाड़ के गोंद भी लगता है।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदाचार्यों के मतानुसार अरीठा पचने में चरपरा, त्रिदोषनाशक, तीक्ष्ण, गरम, भारी, गर्भपातक और वमनकारक है। यह गर्भाशय को निश्चेष्ट करने वाला और विष के असर को नष्ट करने वाला है।

डा० मुडीन शरीफ (Moodeensheriff.) इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"मैं इस औषधि को कई दिनों से प्रयोग में ले रहा हूँ। वमनकारक औषधियों में यह औषधि सबसे सस्ती है। यह औषधि अपना असर बहुत शीघ्र बतलाती है व अन्य वमनकारक औषधियों की तुलना में कम जोशीली और अपेय रहती है। आधाशीशी और श्वास के रोग में यह औषधि बहुत लाभ पहुँचाती है। लेकिन मृगी तथा अपस्मार के रोग में यह औषधि लाभदायक सिद्ध नहीं हुई, इस रोग में यह केवल क्षणिक असर दिखलाती है।"

इसके अन्दर का मगज एक उत्तम कृमिनाशक औषधि है, ऐसा कुछ भारतीय वैद्य मानते हैं, पर मैंने कभी इस औषधि से पेट के कीटाणुओं को बाहर आते नहीं देखा। इसकी मात्रा चार से पाँच ग्रेन या दो से तीन रत्ती तक मानी जाती है, मगर अधिक मात्रा में इस्तेमाल करने पर भी हमने इसे नुकसान करते नहीं देखा। इतना ही हुआ कि वमन के साथ एक-दो पतले दस्त भी आये। इसकी जड़ और जड़ का छिलका बहुत कठोर होता है, जो बड़ी कठिनाई से पीसा जाता है। हमने इस औषधि के हरएक हिस्से को काढ़े के रूप में कम ज्यादा मात्रा में उपयोग करके देखा है और इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि यह एक प्रकार की नरम, कफनिस्सारक और शान्तिदायक औषधि है। उपचार की दृष्टि से यह कमजोर है।"

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक, कफनिस्सारक, वमनकारक, क्षारयुक्त और बिच्छू के डङ्क में उपयोगी है।

परांजपे और रामस्वामी ऐय्यर ने इसका रासायनिक विश्लेषण करके यह सिद्ध किया है, इस औषधि में N-Eicosanic Acid. (इकोसेनिक एसिड) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

केस और महेस्कर के मतानुसार यह औषधि बाह्य-उपचार की दृष्टि से सर्पदंश और बिच्छू के डङ्क में बिल्कुल निरुपयोगी है।

उपरोक्त अवतरणों से यह मालूम होता है कि आयुर्वेदिक औषधियों में अरीठा एक प्रधान वमनकारक औषधि है। वमनकारक होने के ही कारण यह विषनाशक भी मानी गई है। क्योंकि विष को

नष्ट करने में वमन भी एक प्रधान उपाय है। इसके अतिरिक्त बेहोशी को दूर करने का भी इस औषधि में विशेष गुण है।

उपयोग और बनावटें—

हिस्टीरिया और मृगी—अरीठे के फल की गिरी को पानी में घिसकर उसकी दो-चार बूंदें नाक में टपकाने से तथा सलाई के द्वारा थोड़ा सा आँख में आँजने से मृगी हिस्टीरिया तथा और किसी भी कारण से पैदा हुई बेहोशी तुरन्त दूर हो जाती है, आँख में आँजने पर यदि जलन हो तो गाय का घी या मक्खन आँजने से शान्ति होती है।

आधाशीशी—अरीठे के फल को एक-दो कालीमिर्च के साथ पानी में घिसकर नाक में टपकाने से आधाशीशी का रोग तत्काल दूर होता है।

अनन्त वायु—प्रसव के पश्चात् वायु का कोप होने से स्त्रियों का मस्तिष्क शून्य हो जाता है, आँखों के आगे अंधकार छा जाता है, दांतों की बत्तीसी भिड़ जाती है और वायु की तायें आने लगती हैं। ऐसे कठिन समय में अरीठे को पानी में घिसकर फेन पैदाकर आँख में आँजने से तत्काल वायु का कोप दूर होकर जादू के समान असर दिखलाई देता है।

अरीठे की सूंघनी—अरीठे का मगज, नकछिंकनी, कायफल, नौसादर, सफेदमिर्च, अपामार्ग के बीज और बायविडंग, ये सब बराबर लेकर कूट, पीस, छानकर चूर्ण करके रख लेना चाहिये, जब जरूरत पडे तब उसमें से थोड़ा-सा लेकर उसमें सीप का चूना अच्छी तरह से मिलाकर सुंघाने से सर्दी, आधाशीशी, हिस्टीरिया तथा मस्तक में खून का चढ़ जाना आदि रोग दूर होते हैं।

अरीठे का अंजन—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, साँप की काँचली की राख, साबुन, हींगलू, हींग, मैन्सल, रायन के बीज और नीलाथूथा ये सब समान भाग लेकर इनको लहसन के रस में खरल करके फिर तुलसी के रस में खरल करना चाहिये। उसके बाद गोलियाँ बनाकर रख लेना चाहिये। इस गोली को अरीठे के फेन में घिसकर आँख में आँजने से भूत, प्रेत, डाकन वगैरह के दोष, हिस्टीरिया, बेहोशी, अनन्तवायु इत्यादि रोग तत्काल दूर होते हैं।

सन्निपात—अरीठे का मगज, अंकोल के जड़ की छाल, समुद्र फल के बीज, विष्णुकान्ता के बीज, और कड़वी तरोई के बीज—ये सब समान भाग लेकर तुलसी के रस में खरल कर दो-दो रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। रोगी की शक्ति का विचार करके एक से चार गोलियों तक गरम पानी के साथ देने से उल्टी और टट्टी होकर महाभयंकर सन्निपात दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसी औषधि से सर्पदंश, पागल कुत्ते का जहर तथा सखिया, अफीम, बच्छनाग वगैरह विषों के विकार भी वमन होकर नष्ट हो जाते हैं।

बिच्छू का जहर—अरीठे के एक फल की गिरी लेकर उसको पीसकर तीन हिस्से करके गुड में मिला कर उसकी तीन गोलियें बना लेना चाहिये। पॉच २ मिनट में एक २ गोली ठडे पानी के साथ देने से तथा इसी के फल को घिसकर आँख मे आँजने से और डंक पर लगाने से जहर उतरता है। इसी प्रकार अगर इसके फल के चूर्ण को तम्बाकू की तरह पिया जाय तो भी विष नष्ट होता है।

खूनी बवासीर—अरीठे के फल मे से बीज निकाल कर शेष भाग को लोहे की कढाई में डालकर अग्नि पर चढाने से जब वह जल कर कोयला हो जाय तब उसे उतार कर उतनाही पपड़िया कत्था मिलाकर अच्छी तरह से पीसकर कपड़-छन कर लेना चाहिये। इस औषधि में से एक रत्ती औषधि लेकर मक्खन या मलाई के साथ प्रतिदिन सवेरे-शाम लेना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक करना आवश्यक है। जब तक दवा चले तब तक नमक और खटाई नहीं खाना चाहिये। इसके सेवन से कब्जियत, बवासीर की खुजली, बवासीर में से खून का बहना वगैरह फौरन आराम होता है। जगलनी जडी-बूटी नामक ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं कि यह प्रयोग एक महात्मा की तरफ से प्रसादरूप में मिला हुआ है और इससे सौ मे से नब्बे बीमारों को फायदा होता है। लेकिन छः महीने के बाद फिर पीछा रोग शुरू होने का भय रहता रहता है। इसलिये अगर हर छठे महीने यह प्रयोग कर लिया जाय तो हमेशा के लिये आराम हो जाता है।

मासिक धर्म की रुकावट—अरीठे के फलो के मगज को पीसकर उनकी बत्ती बनाकर स्त्री की जननेन्द्रिय में रखने से मासिकधर्म की रुकावट मिटती है। प्रसव के समय भी यह बत्ती रखने से बिना विलब के प्रसव होता है।

केशमजन पाउडर—कपूर काचरी, नागरमोथा, दस-दस तोला और कपूर तथा अरीठे के फल की गिरी चार-चार तोला, शीकाकाई २५ तोला, सूखे हुए आँवले २०० तोला, इन सबका चूर्ण करके इसमें से ५ तोला चूर्ण १॥ पाव उबलते हुए पानी के साथ १५ मिनट तक भिंगोकर रखना चाहिये। बाद में मल, छानकर बालों को उस पानी से मसलना चाहिये। उसके बाद गरम पानी से बालों को खूब धो डालना चाहिये। इससे बाल अत्यंत मुलायम और रेशम के समान सुहावने हो जाते हैं तथा सिर के अन्दर यदि जूँ-लीक होती है तो वह भी मर जाती है।

अर्जुन

नाम—

संस्कृत—अर्ज्जुन, ककुभ । बंगाली—अर्जुन । मराठी—अर्ज्जुन सादड़ा । लेटिन—Terminalia Arjuna (टरमिनेलिया अर्ज्जुन) । अंग्रेजी—Arjuna-Myro Balan.

वर्णन—

अर्जुन वृक्ष के सम्बन्ध में वैद्यों के अंदर, काफी मत-भेद है । शालिग्राम-निघटु के रचयिता ने Stereulia Urcus नामक वृक्ष को अर्जुन वृक्ष माना है । कई वैद्य सादड़ा के वृक्ष को ही अर्जुन वृक्ष मानते हैं । कुछ लोग Terminalia Tomentosa नामक वृक्ष को अर्जुन वृक्ष समझते हैं लेकिन आजकल के अन्वेषणों से मालूम हुआ है कि जिस वृक्ष को लैटिन में Terminalia Arjuna (टरमिनेलिया अर्जुन) कहते हैं, वही वास्तविक अर्जुन है ।

यह वृक्ष हिमालय की तलहटी, बर्मा, बंगाल, मध्यभारत, दक्षिण बिहार, छोटा नागपुर, सीलोन, इत्यादि प्रान्तों में नदी-नालों के किनारे पैदा होता है । पंजाब तथा वायव्य प्रान्तों में यह कुदरती तौर पर पैदा नहीं होता प्रत्युत् बोकरके पैदा किया जाता है ।

स्वरूप—अर्जुन के वृक्ष जंगलों में पैदा होते हैं, ये बहुत बड़े होते हैं । इनकी ऊँचाई ६० से ८० फीट तक और पेड़ की गोलाई १० से २० फीट तक होती है । इसके पत्ते का आकार मनुष्य की जीभ के समान होता है, पत्तों के पीछे डठल पर दो गाँठे होती हैं, जो बाहर से दिखलाई नहीं देतीं । वैशाख और ज्येष्ठ में इसके फूल आते हैं । फूल बहुत छोटे हरी झाई लिये हुए सफेद रंग के होते हैं । इसके फल जाडे की ऋतु में पकते हैं । इसकी छाल हरापन लिये हुए सफेद, खाकी, भूरी, या बैंगनी रंग की और साफ होती है, इस छाल में से खाकी रंग निकलता है । इसकी लकड़ी की राख रंगने के काम में आती है । इस झाड़ के एक प्रकार का साफ, सुनहरी, भूरा और पारदर्शक गोंद लगता है । जो खाने के काम में आता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—राज-निघंटु के कर्त्ता लिखते हैं कि अर्जुन कसैला, गरम, कफनाशक, व्रण शोधक तथा पित्त, श्रम और तृषा निवारक है, यह वात को कुपित करता है तथा क्षत, भग्न, और मूत्रकृच्छ्र रोग में हितकारी है ।

निघटु-रत्नाकर के रचयिता लिखते हैं कि अर्जुन कसैला, उष्ण, मधुर, शीतल, कान्तिजनक, व्रणशोधक, बलकारक, हलका तथा अस्थिभग, अस्थिसंहार, कफ, पित्त, श्रम, तृषा, दाह, प्रमेह, हृदयरोग, पाडुरोग, विषबाधा, क्षतक्षय, मेदवृद्धि, रुधिरविकार, पसीना, श्वास, क्षत और भस्मरोग को नाश करता है ।

सुश्रुत के मतानुसार इस पौधे की राख सर्पदंश के काम में ली जाती है। वाग्भट के मतानुसार बिच्छू के डंक पर इसका छिलका उपयोग में लिया जाता है।

महर्षि चरक इसको सकोचक व मूत्र को साफ करने वाला बतलाते हैं।

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रियों में वाग्भट ही पहिले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस औषधि को हृदयरोग के अन्दर उपयोगी बतलाया है। उनके पश्चात् तो चक्रदत्त, भावमिश्र और आयुर्वेद के अन्य शास्त्रियों ने भी इसको हृदयरोग की महौषधि माना है, इनके पश्चात् के और-और लेखकों ने भी इसे प्रधानतया हृदयरोग की औषधि माना है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसका छिलका कडुआ, कफनिस्सारक, कामोद्दीपक, पौष्टिक और मूत्र को साफ लाने वाला है। यह पित्त में भी उपयोगी है। अस्थिभग और घावों पर इसको बाह्य उपचार की तरह काम में लेते हैं। पुराने प्रमेह में और अत्यधिक मूत्र आने की बीमारी में इसका क्वाथ पिलाने के काम में लिया जाता है।

हड्डी टूटने पर व शस्त्र की जखम में इसका बारीक चूर्ण पिलाने के काम में लिया जाता है। विशेष करके खून बहना जब अधिक हो जाता है तब इसको दूध के साथ पिलाते हैं। इसकी छाल का काढा उपदश के घाव धोने के काम में भी लिया जाता है।

आधुनिक खोज—

पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इस औषधि के विषय में काफी खोज की है। सन् १८२६ में ऐन्सेली (Ainslie) नामक विद्वान ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि यह ज्वरनाशक औषधि है। इसको तेल के साथ पीसकर बच्चों और युवकों के मुख-क्षत की बीमारी पर भी काम में लेते हैं।

डायमॉक नामक विद्वान ने इसकी छाल का वैज्ञानिक विश्लेषण किया था। उनके कथनानुसार इसकी राख में ३४ सैकड़ा केलशियम कारबोनेट (Calcium Carbonate) रहता है। जलीय रस क्रिया के द्वारा मालूम हुआ कि इसमें १६ सैकड़ा टेनिन (Tannin) रहता है। २३ सैकड़ा इसमें द्रव पदार्थ है। टेनिन के अतिरिक्त इसमें रगने का पदार्थ बहुत कम मात्रा में है जो अलकोहल की मदद से निकाला गया है।

सन् १९०९ में घोषाल ने इसकी छाल का विस्तृत रासायनिक विश्लेषण किया। उनके मतानुसार इसमें शक्कर, टेनिन और एक प्रकार का रंगने का पदार्थ पाया गया और एक विशेष पदार्थ जिसको ग्लुकोसाइड (Glucoside) कहते हैं, वह भी पाया गया। इसमें Calcium Garbonate. (केलशम कारबोनेट) सोडियम और कुछ क्लोराइड भी है। इस औषधि को मेंढक, खरगोश, और मनुष्यों पर भी अजमाया गया। उससे वे इस नतीजे पर आये कि हृदय रोगों पर जिनमें पौष्टिक और उत्तेजक पदार्थ देने की आवश्यकता हो, यह एक अमूल्य औषधि है।

सन् १६१६ और १६२० में कोमान (Koman) ने इस औषधि की परीक्षा की और कई रोगियों पर इस औषधि को अजमाया, मगर उनके मत से यह वनस्पति बिल्कुल निरुपयोगी सिद्ध हुई।

सन् १६२३ में कर्नल चोपड़ा ने लिखा कि डाक्टर। एस० घोष ने लगातार कई महीने तक घोर परिश्रम करके अर्जुन वृक्ष से एक प्रकार का ग्लुकोसाइड नामक पदार्थ निकाला है जिसको कि यदि व्हेन मे इजेक्शन लगाकर खून मे पहुँचाया जाय तो ब्लडप्रेशर को बढ़ाता है। सन् १६२४ में उन्होंने यह देखा कि इसके अन्दर का मद्यसार हृदयरोगों में लाभ पहुँचाता है। सन् १६२५ में भी उन्होंने इस बात की पुष्टि की, किन्तु उसके एक साल पश्चात् ही इस विषय की आशा-वादिता कम हो गई। अन्त में सन् १६२६ में चोपड़ा और घोष ने उनके अन्वेषणों का परिणाम इस प्रकार प्रगट किया—

(१) इसमें करीब १२ सैकड़ा टेनिन रहता है, उसमें भी खासकर पायराकेटेकल (Pyrocatechol) टेनिन रहता है।

(२) कुछ रंगदार पदार्थ भी इसमें होते हैं।

(३) ऑरगेनिक एसिड प्राणी-वर्ग से सबंध रखने वाला एक अम्ल व फायटास्ट्राल (Phytosterol)

(४) एक प्रकार का ऑरगेनिक ईथर भी रहता है, जोकि तेजाब की मदद से क्षाररूप में विच्छेदन किया जा सकता है।

(५) केलशियम साल्टस् इसमें अधिक परिमाण में रहते हैं व एल्यूमिनम और मेगनेशियम कम तादाद में पाये जाते हैं।

(६) शक्कर का तत्व भी इसमें रहता है।

उपरोक्त अन्वेषक अंततः इस परिणाम पर आये कि अर्जुन वृक्ष की छाल में अलकोलाइड (Alkaloid) ग्लुकोसाइड तथा इसेंशिअल ऑइल की मात्रा नहीं है। इसमें केलशियम्साल्ट, टेनिन, ऑर्गेनिक एसिड, आर्गेनिक ईथर और शक्कर के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं पाई जाती।

(७) भिन्न-भिन्न पदार्थ, जो इसके छिलके में पाये गये हैं, जैसे पेट्रोलियम ईथर, अलकोहॉलिक व अन्य सत्व उपचार की दृष्टि से विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुये।

(८) इसके छिलके के द्वारा निकाला हुआ एलकोहॉलिक कई हृदयरोग के बीमारो पर अजमाया गया, मगर विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ।

महेस्कर और केस के सिद्धान्त के अनुसार सर्पदंश और बिच्छू के डंक पर भी यह औषधि निरुपयोगी सिद्ध हुई है।

केस (Caius) महेस्कर तथा आयजक नामक विद्वानों ने भी इस औषधि का परीक्षण किया और इसके भिन्न-भिन्न पन्द्रह प्रकार के भेदों का उल्लेख किया है। उक्त विद्वानों ने इनकी

शुष्क-निर्मल छालों को उष्णफांट, क्वाथ एवम् एलकोहॉलिक एक्स्ट्रैक्ट के रूप में प्रयोग कर इनके प्रभाव का पृथक् २ अध्ययन किया और परिणाम यह रहा कि इन्होंने इनको उत्तम, सबल हृदयोत्तेजक, मूत्रल इत्यादि गुणों से युक्त पाया, परन्तु अभी तक कोई प्रभावात्मक द्रव्य इसमें से पृथक् नहीं किया गया।

उपरोक्त रासायनिक विश्लेषणों से जिस तथ्य पर वैज्ञानिक पहुँचते हैं, उससे मालूम होता है कि इसमें कोई ऐसा प्रभावशाली तत्व जो हृदय को बलकारक सिद्ध हो, नहीं पाया गया।

मगर प्राचीन वाग्भट्टादिक ऋषियों ने इसको हृदय को बल देने वाला लिखा है और उसीका समर्थन करते हुए कलकत्ते के एक प्रसिद्ध डॉक्टर मि० प्यारीशंकरदास गुप्ता अपना निजी अनुभव प्रगट करते हुए प्रेक्टिकल मेडिसन नामक पेपर में लिखते हैं—

"मेरा एक मरीज जोकि भयंकर हृदयरोग से ग्रसित था और जिसे मेरी दवा से लाभ नहीं हुआ, वह कविराज ईश्वरचंद्रसेन के पास गया। उन्होंने अर्जुन वृक्ष की छाल से निर्मित की हुई औषधि उसे दी, जिससे उसे आराम हुआ, उसके पश्चात् मैंने भी इसकी छाल में से टिंचर बनाया और Cardiacand Vascular बीमारियों में उसका उपयोग किया, जिससे अद्भुतगुण दृष्टिगोचर हुए। उसके पश्चात् अभी तक इस प्रकार की बीमारियों से कष्ट पाते हुए लोगों को मैं अर्जुन वृक्ष का टिंचर देता हूँ और उससे बहुत ही संतोषजनक परिणाम दृष्टिगोचर होता है। इसलिये मैं अपने डाक्टर मित्रों को हार्टडिसीज में इस औषधि का उपयोग करने की निःशंकरूप से सूचना देता हूँ।"

कविराज हरलाल गुप्ता का मत है कि अर्जुन वृक्ष की छाल हृदयरोग की महौषधि है, इसके अतिरिक्त खराब व्रणों को इसके क्वाथ से धोने से वे जल्दी भरकर सूख जाते हैं। हड्डी टूटने की दशा में भी इसकी छाल का क्वाथ या चूर्ण देने से लाभ होता है।

उपयोग—

हृदयरोग को दूर करने के अतिरिक्त इस वृक्ष कीछाल के अंदर और भी कई बीमारियों को दूर करने की प्रबल-क्षमता है जिसका संक्षिप्त-विवरण इस प्रकार है—

रक्तपित्त—अर्जुन की छाल,को रात भर जल मे भिगोकर रखे, सवेरे उसको मलकर, छानकर या उसको औटाकर उसका क्वाथ पीने से रक्त-पित्त में लाभ पहुँचता है। (चरक)

शुक्रमेह—शुक्रमेह के रोगी को अर्जुन की छाल या श्वेत चंदन का क्वाथ पिलाने से लाभ पहुँचता है। (सुश्रुत)

रक्तातिसार—अर्जुन की छाल को बकरी के दूध में पीसकर उसमें दूध और शहद मिलाकर पीने से रक्तातिसार दूर होता है। (चक्रदत्त)

क्षय-कास—अर्जुन की छाल के चूर्ण में अडूसे के पत्ते के स्वरस की सात भावना देकर शहद, मिश्री या गो-घृत के साथ चटाने से क्षय की खाँसी का—जिसमें कफ में खून जाता हो—नाश होता है। (भाव-प्रकाश)

मूत्राघात—मूत्रा-घात रोग मे अर्जुन की अतरछाल का क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये।

हृदयरोग—गेहूँ और अर्जुन वृत्त की अतरछाल को बकरी के दूध और गाय के घी मे पकाकर उसमें मिश्री और मधु मिलाकर चटाने से अतिउग्र हृदयरोग मिटता है। (अनुभूत चिकित्सा-सागर)

बनावटें और प्रयोग—

अर्जुनारिष्ट—अर्जुन वृत्त की अतरछाल ४०० तोला, मुनक्का २०० तोला, महुए के फूल १०० तोला लेकर सवा मन पानी के अंदर औटाना चाहिये। जब साढ़े बारह सेर पानी रह जाय तब उतार कर छान लेना चाहिये, उसके पश्चात् इस पानी मे पाँच सेर गुड़ और एक सेर धावड़ी के फूलों का चूर्ण डालकर, मिट्टी के बर्तन मे भरकर मुह बद कर एक महीने तक पड़ा रहने देना चाहिये, पश्चात् उसको छानकर उपयोग में लेना चाहिये। इस औषधि में से प्रतिदिन दोनों टाइम एक से लेकर चार तोले तक औषधि उतने ही पानी के साथ पीने से हार्टडिसीज और फेफड़े की व्याधियाँ दूर होती है।

अरुणि

नाम—

हिन्दी—सुरसरनि, अरुणि। कनाडी—गन्दुपचचेरि। तेलगू—बेलारि। लेटिन—Breynia Rhamnoides. (ब्रेनिया रहेमुनाइडिस)

वर्णन—

यह एक प्रकार की छोटी जाति का पौधा होता है। इसकी शाखाएँ फैली हुई रहती हैं। उन शाखाओ पर बहुत से पत्ते रहते हैं और वे पतले होते हैं। इसकी छाल पीली रहती है। इसके नीचे का भाग कुछ सफेदी लिये हुए रहता है। इसके फूल छोटे होते हैं। नरजाति के फूल गुच्छों में लगे हुए रहते हैं और नारीजाति के अकेले रहते है। इसका फल गोल, फिसलना और मट-मैले रग का होता है। यह वनस्पति भारतवर्ष के तमाम उष्ण कटिबंध में और सीलोन, मलाया, चीन और फिलिपाइन में होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी छाल सकोचक है। इसके सूखे पत्ते तम्बाखू की तरह पीने से टॉसिल की (गले का कौवा) सूजन में तथा तालूपार्श्वग्रन्थि की सूजन में लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि कृमिनाशक और संकोचक है।

—:o*o:—

अलर्क

नाम—

संस्कृत—अचूडा, अलर्क । कनाडी—अम्बुसो देवलि, काकमुंज । तामील—कुदुलम् । तैलगू—मुन्दलमुस्त, उचितं । लैटिन—Solanum Trilobatum)

यह औषधि विशेष कर गुजरात, दक्षिण, कर्नाटक, सीलोन और मलाया प्रायद्वीप में उत्पन्न होती है । इसका पौधा बहुत छोटी जाति का होता है । इसका फूल बड़ा और दिखने में सुन्दर होता है । इसका फल गोल होता है और पकने पर लाल रग का हो जाता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इस औषधि की जड़ छोटी कटेरी की प्रतिनिधिरूप में काम में आती है, इसकी जड़ और पत्ते स्वाद में कड़वे होते हैं । इसका अवलेह, चूर्ण और काढ़ा क्षयरोगी के लिए लाभदायक माने जाते हैं । इसके पञ्चाङ्ग का क्वाथ तीक्ष्ण एव पुरातन वायु-नलियों के प्रदाह में तथा सब प्रकार की खाँसी में लाभदायक सिद्ध हुआ है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि हृदय को बल देने वाली पेट के आफरे को दूर करने वाली तथा श्वास. जीर्णज्वर और प्रसव-कष्ट में उपयोगी है ।

अल्ल

नाम—

हिंदी—अल्ल, बिछुआ, आवा, चीचड । मराठी—मोतीखजानी । आसाम—होरूसूरत । पजाब—अजन, थाबर । नैपाल—उलो । लैटिन—Girardinia Zeylanica.

वर्णन—

यह एक प्रकार का ऊँचा और फैला हुआ झाड़ होता है । इसकी डालियों पर एक प्रकार का चुभने वाला रुआँ रहता है । इसके पत्ते काफी चौड़े और आगे से कटे हुए रहते हैं । इसके फूल नर और नारी दो प्रकार के होते है । इसके फल के दोनों तरफ रुआँ रहता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते सिर दर्द के उपचार के काम में लिये जाते हैं । इसके पत्तों को पीसकर जोड़ों के सूजन में भी काम में लेते हैं । ज्वर की बीमारी में भी इसका काढ़ा काम में लिया जात है ।

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह सिरदर्द और जोड़ों की सूजन में मुफीद है । इसका काढ़ा ज्वर में फायदेमन्द है ।

अलसी

नाम

संस्कृत—अतसी, पिच्छला, उमा, क्षुमा। हिन्दी—अलसी, तीसी, मसीना। बङ्गाली—मसीना, तिसी। मराठी—जवस, अलशी। गुजराती—अलशी। कर्नाटकी—अगसे। तैलंगी—नल्लपगसिचेट्टु। फारसी—तुख्मेकत्तान। अरबी—बजरुलकत्तान। अंग्रेजी—Lin Seed लैटिन—Lini Semina linam Qusitai ssimum.

पहिचान—

अलसी की फसल सारे भारतवर्ष में बहुतायत से होती है। इसका तेल सर्वत्र उपयोग में आता है। प्रायः सभी लोग इससे परिचित हैं, इसलिये इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है। कलकत्ते आदि स्थानों में लाल, सफेद और धूसर रंग के भेद से अलसी तीन प्रकार की होती है, इसके अतिरिक्त Linum Catharticum नामक एक प्रकार की अलसी यूरोप में होती है जो विरेचन के काम में आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से अलसी मदगन्धयुक्त, मधुर, बलकारक, किञ्चित् कफ वातकारक, पित्तनाशक, स्निग्ध, पचने में भारी, गरम, पौष्टिक, कामोद्दीपक, पीठ के दर्द और सूजन को मिटाने वाली है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र की बीमारी और कुष्ठ को नष्ट करती है। नेत्र की ज्योति को हानि पहुँचाती है। किसी-किसी के मत से यह वीर्य को नष्ट करने वाली, दृष्टिनाशक और वात-रक्त-विनाशक है।

चरक के मतानुसार अलसी फोड़ा पकाने की एक प्रसिद्ध औषधि है। इसको जल में पीसकर उसमें थोड़ा-सा जौ का सत्तू मिलाकर, खट्टे दही के साथ फोड़े पर लेप करने से फोड़ा पक जाता है। वात-प्रधान फोड़े में अगर जलन और वेदना हो तो तिल और अलसी को भूनकर गाय के दूध में उबाले, ठण्डा होने पर उसी दूध में उन्हे पीसकर फोडे पर लेप करने से लाभ होता है।

सुश्रुत के के अन्दर वात-प्रधान वात-रक्त मे वेदना को दूर करने के लिये अलसी को दूध में पीसकर लेप करने का आदेश किया गया है। सुजाक के अन्दर भी सुश्रुत इसे लाभकारी बतलाते हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में गर्म और तीसरे दर्जे में रूक्ष है। किसी-किसीके मत से दूसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है। इसके बीज चिकने होते हैं। ये मूत्रनिस्सारक, कामोद्दीपक, दूध बढ़ाने वाले और ऋतुस्राव नियामक होते हैं। खाँसी और गुर्दे की तकलीफ में ये लाभदायक हैं। इसकी छाल और पत्ते सुजाक के लिये उत्तम है। इसकी छाल को जलाकर यदि घाव पर लगाया जाय तो यह रक्तस्राव को रोक कर घाव को पूर देती है। इसके फूल मस्तिष्क और हृदय को पुष्ट करने वाले हैं। इसके बीज पित्तनाशक, रक्तशोधक, घावों को भरने वाले तथा दाद के लिये लाभकारी हैं। इसके भूँजे हुए बीज संकोचक माने जाते हैं। इनका सेक वायु-गोले पर लाभकारी है।

इमरसन के मतानुसार इसके बीजों का उपयोग सुजाक की बीमारी में पिलाने के काम मे लिया जाता है। मूत्राशय की अन्य तकलीफों मे भी ये लाभदायक हैं। इसके तेल की पुल्टिस गठिया की सूजन पर लगाई जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार अलसी की पुल्टिस नासूर, फोडे, वायु-नलियों के प्रदाह इत्यादि व्याधियो पर लाभ पहुँचाती है। भीतरी उपचार में (पिलाने के काम मे) यद्यपि इसका उपयोग कम लिया जाता है, फिर भी लीनीमेंट वगैरह बनाने में इसका उपयोग होता है। अलसी की चाय भी बनाई जाती है। करीब आधा सेर पानी में आधी छटाँक अलसी का बीज डालकर दस मिनट तक उबालकर इसे छान लेते हैं। यह रक्तातिसार और मूत्र सम्बन्धी शिकायतों को दूर करने के काम में ली जाती है।

सन्याल और घोष के मतानुसार सब प्रकार के प्रदाहकारी फोड़ो पर इसकी पुल्टिस बनाकर लगाना मुफीद है। अलसी की पुल्टिस गठियारोग की सूजन पर भी लगायी जाती है। इसके बीजों को पानी में गलाकर मसलने से एक प्रकार का लसदार स्निग्ध पदार्थ तैयार होता है। उसे आँखों की बीमारी (नेत्र शुक्ररोग) में आँखो में डाला जाता है। अलसी के तेल में समान भाग चूने का पानी मिलाने से केरान (Carron) नामक मिश्रण तैयार होता है। यह आग से जले हुए या दाहकारक स्थान पर लगाने के लिए बहुत बढ़िया उपचार है।

अलसी की चाय, सूखी खाँसी पर जोकि गल-नाली की सूजन व फेफड़े के कुछ हिस्से की सूजन से पैदा होती है, लाभदायक है। आमाशय की जलन व सूजन पर तथा मूत्राशय और मूत्रनाली के प्रदाह या सुजाक इत्यादि रोगो पर भी यह लाभदायक है।

डायमॉक का कथन है कि सन् १७६७ में 'गॅलस्की' ने अलसी के तैल को मस्तकशूल पर बहुत मुफीद बतलाया था। उन्होंने इसे अँतड़ियों की पीड़ा पर भी बहुत लाभदायक बतलाया है। इसके तैल की खुराक आधे औंस से एक औंस तक है। यह प्रातःकाल और सायंकाल मृदुविरेचक के तौर पर बवासीर में दी जाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

इसके बीजों में ३० से लेकर ३५ सैकड़ा तक तैल रहता है। इसका रग ललाई लिये हुए गहरा पीला रहता है। हवा में रखने से यह तैल सूखता है और स्वच्छ वारनिश के रंग का हो जाता है। इसका उपयोग वारनिश बनाने के काम में लिया जाता है। अलसी में दस से लेकर पन्द्रह प्रतिशत तक खनिजतत्व रहते हैं। खास कर इसमें फासफेट ऑफ पोटेशियम, मेगनेशियम, केलाशियम, और पच्चीस प्रति सैकड़ा प्रोटीन तत्व होते हैं। इसके छोटे झाड़ में एक प्रकार का साइनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड व फेसिओल्डनेटिन नामक पदार्थ रहते हैं।

उपयोग—

क्षयरोग—एक औंस अलसी के बीजों को पीसकर रातभर ठण्डे जल में भिगो रक्खें। प्रातःकाल इस जल को मल, छानकर कुछ गर्म कर इसमें नीम्बू का रस मिलाकर पीना चाहिये। क्षयरोगी के लिए यह अत्युत्तम पेय है।

फोड़े—सोलह भाग अलसी में एक भाग राई मिलाकर उसका पुल्टिस बाँधने से फोड़े जल्दी पक जाते हैं।

सुजाक—अलसी के बीजों के चूर्ण में मिश्री मिलाकर फंकी देने से तथा इसके तेल की पाँच बूद मूत्रेन्द्रिय के छेद में डालने से सुजाक में लाभ होता है।

पीठ का दर्द—इसके तेल में सोंठ का चूर्ण डालकर गर्मकर मालिश करने से पीठ का शूल मिटता है।

खाँसी—इसके बीजों को सेक कर, चूर्ण कर, शहद के साथ चटाने से खाँसी मिटती है।

कान की सूजन—अलसी को प्याज के रस में पका कर उसे कान में टपकाने से कान की सूजन मिटती है।

गुदा का घाव—अलसी की राख को गुदा के घाव पर भुर-भुराने से घाव भर जाता है।
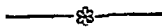
अलियार

नाम—

हिन्दी—अलियार, सोनलता, विलायती महंडी। मध्यप्रान्त—बन्देरु, खराटा। सिलोन—विराली। कनाड़ी—बन्देरा। तैलगू—बन्देरु। पंजाबी—वनमेंहु। लैटिन—Dodonaea viscosa.

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाड़ीदार पौधा है। इसकी ऊँचाई बहुत कम और पत्ते छोटे होते हैं। झाड़ के नीचे से ही डालियाँ फूट जाती हैं। इसके पत्ते चमकीले व नीचे की तरफ झुके हुए रहते हैं। फूल कुछ हरा रंग लिये रहते है तथा बीज काले होते हैं, यह सारे भारतवर्ष के गरम प्रदेशों में पैदा होता है।

विश्वास है
जड़ कृमि-

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत-आयुर्वेदिक निघंटों तथा यूनानी ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कुछ उल्लेख नहीं पाया जाता। पाश्चात्य ढग से खोज करने वाले लेखकों ने अपने ग्रन्थों में इसका वर्णन किया है।

इण्डियन मेडिकल प्लान्ट्स नामक ग्रन्थ के अन्दर इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

इसके पत्ते तूरे और कुछ कड़वे होते हैं। लिनडे के मतानुसार ये पत्ते स्नान व बफारा देने के काम में लिये जाते हैं।

'यह विश्वास किया जाता है कि अगर इसके पीसे हुए पत्ते घाव पर लगाये जायँ तो ये बगैर किसी प्रकार का सफेद निशान करते हुए घाव को पूर देंगे, इसका चूर्ण उत्तापन,जीर्णदाह व अन्य दहन में भी काम में लिया जाता है।

इसका पत्ता गठिया में उपयोगी है। इसमें ज्वरघ्न गुण भी है।

पंजाब में सर्पदंश में यह काम में लिया जाता है। इसके पत्ते पीसकर काटे हुए हिस्से पर लगाये जाते हैं। इसके पत्तों का रस सर्पदंश में पिलाने के काम में भी लिये जाता है।

इब्जमूलर के मतानुसार आरेमोराह में कोरस नाम के स्थान पर इसके रस को सूजन वगैरह में धोने के काम में लेते हैं। मुलापारू में इसे पोल्टिस बाँधने के काम में लेते हैं।

दक्षिणी अफ्रीका में यह वृक्ष बहुत रोगों के काम में लिया जाता है। इसका खास उपयोग पेट की तकलीफों में होता है।

उपयोग—

मेडागास्कर में इसके पत्तों का उपयोग ज्वरघ्न औषधि के रूप में लिया जाता है व इसकी लकड़ी का काढा स्नान करने के काम में व सेक के काम में लिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में यह अपना सकोचक गुण बतलाता है।

लारियूनियन में इसके पत्तों का उपयोग किया जाता है। यह एक उत्तम प्रकार की पसीना लाने वाली औषधि मानी गई है। यह एक महौषधि है। यह सर्व-व्याधिनाशक समझी जाती है।

पेरू में इसके पत्ते चूसे जाते हैं व उत्तेजक माने जाते हैं।

महेस्कर व केस के मतानुसार इसके पत्ते सर्व-विषनिवारक नहीं माने गये हैं और न ये सर्पदश के लाक्षणिक उपचार में उपयोगी माने गये है।

डा० चोपडा के मतानुसार यह ज्वरघ्न व पसीना लाने वाली औषधि है। यह गठियारोग मे उपयोगी है।

खान ७०८९

प्रति सैक

फेसिक्र

अलिश

नाम—

पंजाबी—अखि, अलिश, चंच, कंच, शालिदग अंच । लैटिन—Rubus Fruticasus. (रूबस फ्रूटिकेसस)

वर्णन—

यह एक झाडीनुमा वृक्ष है, जिसका प्रकाण्ड कुछ सीधा रहता है । इसके काँटे सभी ओर फैले रहते हैं । इसके पत्ते तीन २ और पाँच २ के गुच्छों में रहते हैं । इनका आकार गोलाई लिये हुए रहता है । इन पत्तों पर नरम रुआँ रहता है । इनके नीचे का रंग भूरा रहता है । पत्तो के नीचे की धारियाँ साफ देखी जाती हैं । इसके फूल हलके गुलाबी रंग के होते हैं । इन फूलों का बाहरी आवरण मखमली होता है । इसका फल काला और मुलायम होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

भारतीय चिकित्सा-शास्त्रों में इस औषधि का वर्णन नहीं देखा जाता ।

इंडियन मेडिकल प्लाण्ट्स के रचयिताओं का मत है कि यूरोप के अन्दर इस औषधि के फल का शराब (Black Berry Wine) और इसके फल का मुरब्बा गले के रोगों में काम में लिया जाता है । इसके पत्तों का सत्व अतिसार के खून को व दूसरे रक्तस्राव को बन्द करता है । इसकी जड का काढा कुकुर-खाँसी में बहुत लाभदायक है । ब्लेक बेरी का शराब आँतों के ढीलेपन के लिये एक विश्वस्त संकोचक औषधि है । यह हृदय को भी सिकोड़ता है ।

अल्लीपल्ली

नाम—
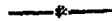
हिंदी—अल्लीपल्ली । पंजाब—अल्लीपल्ली । लेटिन—Asparagus Filicinus.

वर्णन—

इस वृक्ष का तना फिसलने वाला होता है । इसकी शाखाएँ बहुत फैली हुई रहती हैं । उपयोग में विशेष कर इसकी जड़ आती है । यह वस्तु हिमालय के समशीतोष्ण भागों में काश्मीर से भूटान तक तथा आसाम, बर्मा, और चीन मे पैदा होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इस की जड़ बलवर्द्धक और संकोचक समझी जाती है । कनावार के लोगों का ऐसा विश्वास है कि इसकी डाली को शीतला के रोगी के हाथ में देने से वह जल्दी रोग मुक्त हो जाता है । इसकी जड़ कृमि-

नाशक, मूत्रनिस्सारक और हैजे की बीमारी में लाभदायक है। गठिया की बीमारी में भी यह औषधि फायदा पहुँचाती है। (इंडियन मेडिकल प्लाट्स)

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और सकोचक है ।

अलेथी

नाम—

पंजाब—अलेठी। सिंध—अलेठी,पुतलानी,चिरल। लैटिन—Zygophyllum Simplex. (झिगोफिलम सिंप्लेक्स)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का बहुशाखी वृक्ष है। इसकी शाखाएँ बहुत नाजुक होती हैं। इसके पत्ते छोटे और दलदार होते हैं। इसके फूल छोटे और बीज बारीक, मुलायम, फिसलने और नुकीदार होते हैं। यह औषधि राजपूताने के रेगिस्तान, कच्छ, सिंध, अरब इत्यादि स्थानों पर मिलती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

अरबी लोग इसके पत्ते और बीजों को पानी के साथ पीसकर इसके शीत निर्यास को आँखों के रोगों पर लगाने के काम में लेते हैं। वे इसके बीजों को कृमिनाशक मानते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते आँखों की बीमारियों पर काम में लिये जाते हैं ।

अवचिरेता

नाम—

हिन्दी—अवचिरेता, तीताखाना। बंगाली—कुचुरी, सभाल,ओरखफूल। तैलगू—कँटोकँटो। लैटिन—Exacumtetra Gonum.

पहिचान—

इसका वृक्ष सीधा होता है। शाखाएँ चारों ओर फूटती हैं। पत्ते आमने सामने तथा नुकीदार होते हैं। इसके फूल नीले होते हैं। यह औषधि विशेष कर हिमालय प्रांत में, शिमला और भूटान में,पाँच हजार फीट की ऊँचाई तक होती है। यह उत्तरी गंगा की तलहटी में, बंगाल, छोटा नागपुर, मध्य-प्रान्त और खसिया पहाड़ी में भी होती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि स्वाद में कड़वी, पौष्टिक और अग्निवर्द्धक होती है।

———:o:———

अशोक

नाम—

संस्कृत—अशोकः, मधुपुष्पः, अपशोकः, मजरी । मारवाड़ी—आसापाली । गुजराती—आसोपालव । मराठी—अशोक । लैटिन—Jonesia Asoca (जोनेशिया अशोका) Saraca Indica (सराका इडिका) ।

वर्णन—

अशोक का वृक्ष आम के वृक्ष के बराबर होता है । इसकी कई जातियाँ होती हैं । एक जाति के पत्ते रामफल के समान और फूल नारंगी रग के होते हैं जो वसतऋतु में खिलते हैं । इसीको लैटिन में 'जोनेसिया अशोक' कहते हैं और यही असली अशोक है । दूसरी जाति के अशोक के पत्ते आम के पत्तों की तरह होते हैं और फूल कुछ पीली झाँई लिये हुए सफेद रग के होते हैं । इन पर चौमासे के प्रारभ में फल आते हैं । कच्चे फलों का रग हरा और पकने पर ललाई लिये हुए काला हो जाता है । यह अशोक असली नहीं होता, फिर भी लोग औषधि-कार्य मे इसका उपयोग करते है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघटु-रत्नाकर के मतानुसार अशोक मधुर, शीतल, हड्डी को जोड़ने वाला, प्रिय, सुगन्धित कृमिनाशक, कसैला, गरम, कड़ुआ, देह की कान्ति को बढ़ाने वाला, स्त्रियों के शोक को दूर करने वाला, मलरोधक तथा पित्त, दाह, श्रम, गुल्म, उदररोग, शूल, विष, बवासीर, व्रण, तृषा, सूजन, अपच और रुधिररोग को दूर करने वाला है ।

शोढ़ल के मतानुसार अशोक की छाल रक्त-प्रदर रोग को नष्ट करने वाली है । चक्रदत्त भी इसको रक्त-प्रदरनाशक मानते हैं । लेकिन चरक, सुश्रुत, राज-निघट्ठ आदि ग्रन्थों के प्राचीन आचार्यों ने रक्त-प्रदर की चिकित्सा में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है । पर आजकल के वैद्यों ने रक्त-प्रदर के अदर इस औषधि का उपयोग करके लाभ उठाया है ।

मेजर वसु और डाक्टर कीर्तिकर Indin Medical Plants नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि अशोक की छाल कटु-तिक्त, ज्वर व तृषानाशक, घाव को भरने वाली, अँतड़ियों को सिकोड़ने वाली, कृमिनाशक, अपच की बीमारी को दूर करने वाली, प्यास, जलन, रक्तविकार, थकावट, शूल, बवासीर इत्यादि रोगों में लाभदायक है । इसके अतिरिक्त पेट बढ़ने की बीमारी, अत्यधिक रजस्राव, गर्भाशय से खून बहना, अस्थिभग व मूत्रकृच्छ्र की बीमारी में भी यह उपयोगी है ।

इसकी छाल का स्वरस बहुत तेज और संकोचक है । अत्यधिक रजस्राव के ऊपर इसे काम में लिया गया और यह पूर्णरूप से उपयोगी सिद्ध हुआ ।

सुश्रुत के मतानुसार इसकी छाल, फूल व फल साँप, बिच्छू के जहर में उपयोगी है, किन्तु महेस्कर और केस के मतानुसार इस औषधि मे कोई भी विषनाशक गुण नहीं है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा ने इसकी सूखी जड़ के चूर्ण का रासायनिक विश्लेषण किया, जिसका परिणाम इस प्रकार निकला—

Petrolium Ether Extract (पेट्रोलियम ईथर एक्स्ट्रेक्ट)—0.307 प्रतिशत।

Ether Extract (ईथर एक्स्ट्रेक्ट)— 235 प्रतिशत।

Absolute Alkoholic Extract (ऍबसोल्यूट ऐलकोहॉलिक एक्स्ट्रेक्ट) 14 2 प्रतिशत।

इसके अन्दर का एलकोहॉलिक एक्स्ट्रेक्ट गरम पानी के अन्दर घुलने वाला है। उसमें टेनिन की मात्रा काफी पाई गई है और एक इस प्रकार का प्राणीवर्ग से सम्बन्ध रखने वाला पदार्थ पाया गया जिसमें लोहे की मात्रा काफी थी। इसमें एलकेलाइड (Alkaloid) और इसेनशिअल ऑइल Essential Oil की मात्रा बिलकुल नहीं पाई गई।

बहुत से लोग इसकी छाल को गर्भाशय की बीमारी में और खास करके अत्यधिक ऋतुस्राव में अक्सीर मानते हैं पर कर्नल चोपड़ा के मतानुसार उपरोक्त बीमारियों में इसका कोई खास असर नहीं है।

डाक्टर वेट, डाक्टर डीमक, डाक्टर एन्सली वगैरह विदेशी विद्वानों ने इसपर अपना मत जाहिर करते हुए लिखा है कि अशोक की छाल बहुत सख्त ग्राही है। क्योंकि उसमें टेनिन एसिड रहता है। देशी वैद्यों की तरफ से यह औषधि गर्भाशय के रोग और खास कर के रक्त-प्रदर के लिये काफी मात्रा में व्यवहृत होती है।

उपयोग—

उपरोक्त अवतरणों से मालूम होता है कि देशी वैद्य अशोक की छाल को रक्त-प्रदर के लिये रामबाण औषधि मानते हैं, इसके क्वाथ को देने का साधारण तरीका इस प्रकार है।

रक्त-प्रदर—अशोक की छाल ८ तोला लेकर उसे ६४ तोला पानी में उबालना चाहिये, जब तीन चौथाई पानी जलजाय तब उसमें ८ तोला गाय का दूध डालकर फिर उबालना चाहिये। जब सब पानी जलकर दूध मात्र शेष रह जाय तब उतारकर मल, छानकर रोगी को पिलाना चाहिये, इससे रक्त-प्रदर में बहुत लाभ होता है।

बनावटें—

अशोकादि घृत—अशोक की अन्तर्छाल दो सेर लेकर, उसे जौकुट कर, उसे सोलह सेर पानी में उबालकर, जब चार सेर पानी बाकी रहे, तब उतारकर छान लेना चाहिए, उसके पश्चात् चाँवलों का धोवन चार सेर, बकरी का दूध चार सेर, गाय का घी चार सेर और जल भाँगरे का रस चार सेर, लेकर एक लोहे की कढ़ाई में इन सब चीजों को डाल देना चाहिये। पश्चात् विदारीकन्द आठ तोला,

शतावरी आठ तोला, असगन्ध आठ तोला, मुलेठी आठ तोला, फालसा आठ तोला, अंजीर आठ तोला, रसौत चार तोला, अशोक की अन्तर्छाल चार तोला, मुनक्का चार तोला, चौलाई की जड़ चार तोला, इन सब औषधियों को पानी के साथ पीसकर लुग्दी का गोला बनाकर उपरोक्त औषधियों के बीच में लोहे की कढ़ाई में रखना चाहिये। उसके पश्चात् कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ाकर धीमी आँच से पकाना चाहिये। जब अशोक का काढ़ा, दूध तथा और सब अंश जलकर केवल घी मात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेना चाहिये। यह घृत तीन माशे से एक तोला तक की मात्रा में रोगी की प्रकृति के अनुसार गरम दूध के साथ देने से रक्त-प्रदर में तो आश्चर्य्यजनक लाभ होता ही है, पर इसके अलावा श्वेतप्रदर, हरा, पीला, काला, योनि-स्राव वगैरह सब रोग भी इससे आराम होते हैं। अनेक प्रकार की औषधियों से निराश व्यक्ति भी इससे लाभ उठाते देखे गये हैं।

अशोकारिष्ट—असली अशोक की छाल दो-सौ चालीस तोला लेकर, छत्तीस सेर पानी में औटाना चाहिए, जब १२ सेर पानी बाकी रहे तब उसे उतारकर, छानकर उसमें आठ सेर गुड़ मिला देना चाहिए। इसके बाद हरड़, बहेड़ा, आँवला, लोध, डाभ के फूल, विदारीकंद, नागकेशर, गुलबनफशा, असगन्ध, गुलाब के फूल, अडूसा, कमल के फूल, जीरा, मजीठ, शतावरी, पीपर ये सब चीजें एक २ तोला और धावड़ी के फूल दस तोला, इन सबका चूर्ण कर उसमें मिला देना चाहिये। फिर इस औषधि को बरनियों में भरकर, इनमें १ सेर शराब मिलाकर एक सप्ताह तक पड़ी रहने देना चाहिये। फिर छानकर छः माशे से एक तोले तक की मात्रा में इसका उपयोग करना चाहिये। यह औषधि सब प्रकार के प्रदररोग, सोमरोग, दुष्टार्त्तव, गर्भपात इत्यादि रोगों में अत्यन्त चमत्कारिक असर दिखलाती है।

असगंध

नाम—

संस्कृत—अश्वगंधा, तुरगी, पिवरी, पुष्टिदा। हिन्दी—असगंध। गुजराती—आसंध। कर्नाटकी—हिरिमद्दू। लैटिन—Withania Somnifera (वाईथेनिया सोमनिफेरा)

वर्णन—

असगंध के झाड़ वर्षाऋतु के अन्दर पैदा होते हैं। कई स्थानों पर यह बारहों मास पाये जाते हैं। इसके पौधे दो से तीन फीट तक ऊँचे होते हैं। और इसके रींगणी की तरह कई शाखाएँ निकलती

हैं। इसके चनोटी के समान लाल रंग के फल लगते हैं। जो बरसात के अन्त में या जाडे के प्रारम्भ में दिखाई देते हैं। इसकी जड़ एक फुट लम्बी, मजबूत, चेपदार और कड़वी होती है।

बाजार के अन्दर गंधियों के यहाँ जो असगंध वेचा जाता है, वह इस वनस्पति की जड़ नहीं है। बल्कि यह Conuolvulus Asgandha. (कानवोलव्हलस असगध) नाम की नसोतर वर्ग की लता की जड़ें हैं। इसलिये उसके गुण और इस वनस्पति के गुण में बहुत अन्तर है। बाजारू असगध की जड़ें जहरी नहीं होती, मगर इस असगध की जड़ें जहरी होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

राज-निघंटु के मतानुसार असगंध चरपरी, गरम, कड़वी, मदगधियुक्त, बलकारक, वातनाशक, तथा खाँसी, श्वास, क्षय और व्रण को नष्ट करने वाली है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार असगध वात, कफ, सूजन, श्वेत कुष्ट और कफ-रोगनाशक तथा बलकारक, रसायन, कडवी, कसैली, गरम और अत्यन्त वीर्यवर्द्धक है।

शोढल के मतानुसार असगंध के पत्तों का लेप गाँठ, गलगाँठ तथा अरुचि नामक ग्रन्थि को दूर करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसकी गठान कुछ कडवी, पुष्ट करने वाली श्वास में लाभदायक तथा नलियों के प्रदाह को मिटाने वाली है। यह ऋतुस्राव को नियमन करने वाली, गर्भाधान में सहायता पहुँचाने वाली तथा कटिवात और सधि प्रदाह में लाभकारी है।

इसकी जड़ पौष्टिक, धातु-परिवर्तक और कामोद्दीपक है। क्षयरोग, बुढ़ापे की दुर्बलता तथा गठिया में भी यह लाभजनक है। इसमें निद्रा लाने वाले और मूत्र बढाने वाले पदार्थ भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

आज से करीब पैंतीस वर्ष पूर्व सन् १६०३ में इस औषधि के सम्बन्ध में एक नवीन खोज हुई, जो पोरबन्दर स्टेट के फारेस्ट डिपार्टमेन्ट के भूतकालीन क्यूरेटर जैकृष्ण इन्द्रजी के द्वारा उसी स्टेट के सन् १६०३ की फरवरी मास के १६ वी तारीख के गजट में प्रकाशित हुई थी। उसका आशय इस प्रकार है—

"करीब सात वर्ष के पहले एक जैन साधु ने एक जडी का करीब दो इञ्च लम्बा और डेढ इञ्च मोटा एक टुकड़ा पोरबन्दर की पीजरापोल के तत्कालीन मैनेजर सेठ जयचन्द साबडिया को दिया था और उन साधु ने यह कहा था कि चाहे जैसी गठान के ऊपर उसको चुपड़ने से वह गाँठ फूट-कर आराम हो जाती है। इन साधु के गये के कुछ ही महीनो के पश्चात् सवत् १६५४ में पोर बन्दर के अन्दर प्लेग की भयङ्कर बीमारी चली, उस समय प्लेग की गाँठ के ऊपर इस जड़ी का उपयोग किया, जिससे चार-पाँच आदमियों की गाँठे फूट कर उन्हें आराम हो गया। उसके पश्चात्

उस जडी का केवल आधा इञ्च टुकडा बाकी रह गया तब उन्होंने उस टुकडे को वहाँ के चीफ मेडिकल आफिसर डाक्टर हरि श्रीकृष्ण देव को यह टुकड़ा दिखलाया और इसके गुण के सम्बन्ध में बात की, तब उक्त डाक्टर साहब ने सेठ जयचन्द को मेरे पास इस जड़ी की परीक्षा करने के लिये भेजा। इस जड़ी को सूँघते ही मुझे असगन्ध का सन्देह हुआ और मैंने तत्काल संस्थान के बाग़ में से असगन्ध की जड़ निकलवा मँगाई। इस जड़ के टुकडे के साथ उसका मिलान करने से उसकी गन्ध, स्वाद, सूरत वगैरह सब बातें मिल गई, तब उस जड़ का एक बड़ा टुकड़ा इसी प्रकार उपयोग करने के लिये जयचन्द सेठ को दिया गया तथा डाक्टर देव और कम्पौन्डर मि० नरोत्तम तथा डा० मणिशंकर ने भी इसको प्लेग की गाँठ के ऊपर अजमाया, जिससे उनको प्लेग के ऊपर यह औषधि बहुत असरकारक मालूम हुई। उन्होंने पन्द्रह खारवा,चार भुई, दो सिन्धि, चार ब्राह्मण तथा दस लुहाणा वैश्यों को प्लेग की बीमारी सेआराम किया। इसी प्रकार सम्वत् १६५६ में तथा १६५८ में दूसरी और तीसरी बार जब प्लेग चला तब भी इस असगन्ध की जड़ से कई लोगों की जानें बचीं।"

सन् १६०२ के दिसम्बर महीने में अहमदाबाद मे वैद्यक प्रदर्शनी हुई और उस प्रदर्शनी में भी इन जड़ों को रखा गया। वहाँ से बड़ोदा के कला-भवन के रसायनशास्त्री मि० मोतीलाल छोटेलाल त्रिवेदी भी इस जड़ को ले गये और उन्होंने प्लेग के रोगियों पर इस जड़ का अनुभव किया। उसके परिणाम में उन्होंने लिखा कि इस जड़ को पानी में घिसकर लेप करने से प्लेग के दस रोगी मैंने आराम किये है।

उसके बाद बम्बई समाचार वगैरह कितने ही पत्रों मे इस औषधि का विज्ञापन छपाया गया तथा उसके परिणाम-स्वरूप काठियावाड़, कच्छ, सिन्ध, गुजरात, मारवाड़ और दक्षिण तथा उत्तर हिन्दुस्तान में कई स्थानों पर इस संस्थान की तरफ से धर्मार्थ यह औषधि भेजी गई और सब स्थानों पर इसका परिणाम बहुत ही सन्तोष-जनक हुआ।

उपयोग करने की रीति—

इसकी ताजी जड़ को पानी में घिसकर चन्दन की तरह गाँठ के ऊपर लेप करना चाहिये, आस-पास जहाँ तक सूजन या जगह लाल हो रही हो वहाँ तक उसको लगा देना चाहिये, सूखने के पश्चात् यह लेप खिंचाता है जिसकी वजह से आस-पास की तमाम सूजन एक मध्य बिंदु में इकट्ठी हो जाती है। ज्यों-ज्यों गाँठ ऊपर आती हैं त्यों-त्यों रोगी बेहोशी से निकलकर होश में आता चला जाता है। अन्त में गाँठ पककर फूट जाती है। गाँठ के फूट जाने के पश्चात् उसके आस-पास इस की जड़ का लेप करने से और गाँठ के मुँह पर गेहूँ के आटे की पुल्टिस बाँधने से सारा पीप खिंचकर निकल जाता है और अन्त में सादे मलहम की पट्टी चढाने से गाँठ भर जाती है, जिस समय इस दवा का लेप चालू हो, उस समय पीने के लिये नीचे लिखा मिक्श्चर दिया जाय तो विशेष लाभ होता है।

एमोनिया एरोमेटिक ६० बूंद, एड्रीन-लिन-क्लोराइड लिक्वीड २० बूंद, स्प्रिट इथर ३० बूंद, ऐका पिपर मेंट १६० बूंद, टि- डिजिटेलिस ३० बूंद, फास्फोरिक एसिड १ बूंद, स्प्रिट केम्फर १२० बूंद,

इन सारी औषधियों को मिलाकर एक शीशी में भरकरके मजबूत काक लगाकर रख देना चाहिये। इसमें से ३० बूंद की खुराक दिन में तीन बार १ औंस पानी में मिलाकर लेना चाहिये। एड्रिन-लिन-क्लोराइड का लिक्विड १००० बूंद पानी में १ बूंद एड्रिन-लिन-क्लोराइड डालने से तैयार होता है।

इसके अतिरिक्त असगध के अन्दर और भी कई-एक गुण हैं, वातनाशक तथा शुक्र-वृद्धिकर औषधियों में यह औषधि अपना प्रधान स्थान रखती है। शुक्र-वृद्धिकारक होने के कारण इसको शुक्ला भी कहते हैं, चरक सुश्रुत वाग्भट्ट चक्रदत्त इत्यादि प्राचीन आयुर्वेद-ग्रन्थकारों ने वात-व्याधिनाशक औषधियों में इसको प्रधान स्थान दिया है।

रासायनिक विश्लेषण—

रासायनिक विश्लेषण करने से इसके अन्दर सोमनिफेरिन (Somniferin) और एक क्षार तत्व पाया जाता है तथा राल, मज्जा और रंजकपदार्थ भी पाये जाते हैं।

प्रयोग— ❀

बल-वर्द्धन—सफेद मूसली, विधारा इत्यादि धातुवर्द्धक औषधियों के साथ इसकी फंकी लेकर ऊपर से दूध पीने से बल बढता है।

गठिया—इसके पचाग का २॥ से ५ तोले तक रस पीने से गठिया में लाभ पहुँचता है।

क्षयरोग—अडूसे के क्वाथ के साथ इसके चूर्ण की फंकी लेने से क्षयरोग में लाभ पहुँचता है।

वन्ध्यत्व—इसके चूर्ण की तीन माशे से छः माशे तक की फकी रजोधर्म के प्रारंभ में देने से स्त्री को गर्भ रहता है।

इस टाइम में दूध और चॉवल का भोजन कराना चाहिये। * इसके क्वाथ से शुद्ध किया हुआ घी पिलाने से भी मासिकधर्म से शुद्ध हुई स्त्री गर्भ-धारण करती है।

कटिशूल (कमर का दर्द)—असगंध के चूर्ण को शक्कर और घी में मिलाकर चटाने से कटि-शूल मिटता है।

नारू—असगध को छाछ या तेल में पीसकर लेप करने से नारू में लाभ पहुँचता है।

वातरक्त—असगंध और चोपचीनी के रस का काढा पिलाने से वात-रक्त में लाभ पहुँचता है।

❀ ये प्रयोग सम्भवतः बाजारू असगन्ध के हैं।

* क्वाथेन हयगन्धायाः, साधितं सघृत पयः।
ऋतुस्नाताऽबला पीत्वा, धत्ते गर्भं न सशयः॥
(योनिव्याधि-चिकित्सा)

बनावटें—

अश्वगंधादि चूर्ण—असगन्ध और विधारा समान भाग लेकर दोनों को बराबर मिलाकर बोतल में भरकर रख देना चाहिये। इसमें से १ तोला चूर्ण सवेरे १ तोला शाम को दूध के साथ धैर्यपूर्वक लेने से बहुत पुरुषार्थ बढ़ता है। वात-व्याधि नष्ट होकर बुढापा मिटता है, सफेद बाल काले हो जाते हैं, इत्यादि अनेक गुण इस चूर्ण में है।

अश्वगन्धादि घृत—असगन्ध की जड ४०० तोला लेकर १०२४ तोला जल मे इसका काढ़ा बनाना चाहिये। जब चौथाई जल शेप रह जावे, तब वस्त्र से छानकर उसमें गाय का घी ६४ तोला, गाय का दूध २५६ तोला तथा काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋपभक, कौंचबीज, अड़ूसा, मुलेठी, मुनक्का, धमासा, पीपल, जायपत्री, खिरेटी, विदारीकद, शतावरी—इन औपधियों को दो-दो तोला लेकर पानी के साथ पीसकर लुग्दी बना दूध और घी के बीच मे रखकर हलकी आँच से पकावें, जब दूध और काढा जलकर केवल घी मात्र शेप रह जावे, तब उतारकर छान ले।

इस घी के सेवन से क्षय, दुर्बलता, बालो का सफेद होना, हृदयरोग, उरक्षत, नपुसकता, खाँसी, श्वास, वात व्याधि, स्त्रियों का वन्ध्यापन आदि अनेक व्याधियाँ दूर होती हैं।

असगन्ध पाक—नागोरी असगन्ध १ सेर, सट्ठआसोंठ १ सेर, छोटी पीपल पावभर, कालीमिर्च आधा पाव, इन सबको पीसकर कपड-छन कर लेना चाहिये, फिर सोलह सेर दूध को औटाकर, जब वह आधा रह जाय तब उसमे ऊपर का चूर्ण डालकर उसका खोवा कर लेना चाहिये। जब खोवा हो जावे तब कढ़ाई में दो सेर घी डालकर खोवे को भून लेना चाहिये, जब खोवा लाल होजावे तब उसे उतार कर उसमें तज, तेजपात, नागकेशर, इलायची, लौंग, पीपलामूल, जायफल, नेत्रवाला, सफेद चन्दन का बुरादा, नागरमोथा, सूखे आँवले, वशलोचन, खैरसार, चित्रक की छाल और शतावर सबको एक २ तोले लेकर पीस, कूटकर छान लेना चाहिये। उसके पश्चात् चार सेर मिश्री की चासनी बनाकर उसमें ऊपर का भुना हुआ खोवा और चूर्ण अच्छी तरह मिलाकर आधी २ छटाँक के लड्डू बाँध लेना चाहिये।

जिन लोगों की प्रकृति सर्द और बादी की है, उन लोगों को जाडे के दिनों में १ लड्डू खाकर ऊपर से दूध पी लेना चाहिये। यह पाक वातव्याधि, बुढ़ापा, कमर और जोड़ों का दर्द तथा श्वास और खाँसी को दूर करता है। ख्याल रखना चाहिये कि यह पाक बहुत गर्म है। इसलिये यह पाक गर्म मिजाज वाले आदमियो को नहीं खाना चाहिये। वृद्ध आदमियों के लिये यह पाक वास्तव में अमृत है।

धातु-वर्द्धक सुधा—असगध आधापाव, शतावर पावभर, सफेद मुसली डेढ़पाव, तालमखाना आधासेर, मखाने अढाई पाव, सेमर का मूसला तीन पाव, चीनी एक सेर, सब दवाइयो को कूट, पीस, छानकर चीनी मिला देना चाहिये और हाँडी में रखकर उस का मुँह बाँधकर रख देना चाहिये। सवेरे-शाम आधा सेर गेहूँ के आटे की रोटी बनाकर उसे चूर कर, उसमें आधा पाव चीनी और हाँडी

की तीन तोले दवा मिलाकर जौ की भूसी के साथ गाय को खिला देना चाहिए। यह खुराक चालीस दिन तक गाय को खिलाओ और खिलाने के १० दिन बाद गाय का धारोष्ण दूध मिश्री मिलाकर सबेरे-शाम पीओ। अगर ऐसा दूध चालीस दिन पी लिया जाय तो अत्यंत बलवृद्धि होगी।

चिकित्सा चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदासजी का कथन है कि हमने कलकत्ते के एक धनी मारवाड़ी को यह दूध सेवन कराया, परिणाम यह हुआ कि उसकी हड्डियाँ हृष्ट-पुष्ट होगई। महाकुरूप चेहरा गुलाब का फूल बन गया। मतलब यह है कि इसके सेवन से क्षय, क्षीणता, प्रमेह, दिल-दिमाग की कमजोरी और सिर के रोग में बहुत लाभ होता है, जिनको वीर्य की कमी से नामर्दी और क्षय हो उनके लिये तो यह अमृत ही है।

असन

नाम—

संस्कृत—असन्, बीजक, पीतशाल, महाकुटज, बन्धुकपुष्प, प्रियक। हिन्दी—आसन, विजयसार, विजयसार का गोंद। बंगाली—पियाशाल। मराठी—असाणा, बिबला। गुजराती—बीयाँ, हीरादखन। कर्नाटकी—केपिन्नहोने। तेलगी—पेदगी, मद्दी। तामील—कुरिंजी। बम्बई—असन। पंजाबी—विजयसार। फारसी—कमरकस। उर्दू—एमुलक्वेन। अंग्रेजी—Indian Kinotree. लेटिन—Pterocarpus Mrrsupium (टेराकारपस मारसुपीएम)।

वर्णन—

यह एक बडे किस्म का सालवृक्ष की तरह वृक्ष होता है। इसकी छाल मोटी और भूरे रंग की, कुछ पीलापन लिये हुए होती है। इसके पत्ते पीपल के पत्तों से कुछ २ छोटे होते हैं जोकि पाँच २ सात २ के गुच्छों में लगते हैं। इन पत्तों के दोनों ओर बारीक रुएँ होते हैं। इसके डेढ-दो इञ्च लम्बी नोकदार फलियाँ लगती हैं। इसके फल पीले आँवले के समान होते हैं। इसकी लकडी कालापन लिये हुए होती हैं। इसके एक प्रकार का लाल गोंद लगता है। यही गोंद विशेष करके औषधि के काम में आता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वृक्ष और इसका गोंद गरम, कडुआ और तीखे स्वाद वाला होता है। यह विरेचक, कृमिनाशक, गलरोग-निवारक, रक्त-मण्डल-नाशक तथा कोढ़, विसर्प, चित्र-कुष्ठ, प्रमेह, गुदा के रोग और रक्त-पित्त को नष्ट करने वाला है। यह त्वचा और केशों को लाभ पहुँचाने वाला और रसायन है। इसके फूल पचने में मधुर, कड़वे, पाचक और वातवर्द्धक हैं।

रक्त-विकार, शरीर के फोड़े, मूत्ररोग, और श्लीपद रोग में भी यह औषधि मुफीद है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका गोंद कडुआ और बदजायके होता है। यह रक्तस्राव को रोकने वाला, जखम को पूरने वाला, यकृत के लिये पौष्टिक, कृमिनाशक और ज्वर में लाभ पहुँचाने वाला है, चक्षुरोग, फोडे, मूत्रविकार, पुरातन प्रमेह और आँतों के दर्द मे भी यह औषधि मुफीद है।

गोआ में इस वृक्ष का छिलटा सकोचक औषधि के काम मे लिया जाता है। कारोमण्डल के किनारे के ऊपर, दाँत के रोगों मे इसका उपयोग किया जाता है।

रक्तातिसार, अतिसार, दिल की घबराहट और मुँह से पानी छूटने के रोगो मे यह एक उत्तम सकोचक औषधि है।

मटेरिया मेडिका ऑफ इन्डिया के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार असन की छाल, अतिसार, ग्रहणी और श्वेत-प्रदर मे उपयोगी है।

डा० ई० रास के मतानुसार मुखपाक के अन्दर इसके चूर्ण को तेल में मिलाकर उपयोग करना चाहिये।

वङ्गसेन के मतानुसार खैर की लकडी और असनसार का काढा, शुद्ध गूगल और त्रिफला के चूर्ण के साथ सेवन कराने से उपदश में लाभ होता है।

रमफीयस के मतानुसार इसके पिसे हुए पत्ते फोड़ों पर, अर्बुद पर व अन्य चर्मरोगों पर काम में लिये जाते है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह एक उत्तम सकोचक औषधि है।

उपयोग—

रक्त-प्रदर—इसका गोंद रुधिर सम्बन्धी रोगों को जैसे रक्त-प्रदर, रक्तातिसार इत्यादि मिटाने के लिये बहुत उपयोगी है।

दतपीड़ा—इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से मुखपाक और दंतपीड़ा मिटती है।

चोट—इसकी लकड़ी को पानी में घिसकर लेप करने से चोट की पीड़ा मिटती है।

कुष्ट—इसकी लकड़ी को जौकुट कर पानी में भिगोकर, मल, छानकर पिलाने से कुष्ठ और रक्त-विकार में लाभ होता है।

असपर्क

नाम—

हिन्दी—असपर्क। उर्दू—असपर्क। बंगाली—बऊपिरिंग। परशियन—अक्लिलउलमलक। लैटिन—Melilotus Officinalis (मेलीलोटस आफिसिनेलीस)

वर्णन—

यह वनस्पति नुब्रा से लदक तक १० हजार से १३ हजार फीट की ऊँचाई तक पूर्वीय प्रदेश में और योरप में पैदा होती है। यह एक प्रकार की सीधे प्रकाण्ड वाली वनस्पति है। इसके पत्ते गोल रहते हैं। इसका फूल मध्यम आकार का रहता है, रंग पीला होता है। यह कुछ सफेदी लिये हुए रहता है। इसके फूल की कटोरी छोटी होती है। इसके पापड़े गोलाकार, चपटे और रुएँदार होते हैं। इसके बीज फिसलने होते हैं।

गुणदोष और प्रभाव—

इसका छोटा फल शान्तिदायक, पौष्टिक, पेट के आफरे को दूर करने वाला व कामोद्दीपक होता है। यह धवलरोग में उपयोगी है। इस वनस्पति मे रक्तस्राव रोधकगुण है। यह रगड़न के काम में ली जाती है। यह वनस्पति सुगन्धित, स्निग्धकारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। यह मनुष्य को बद्धकोष्टता से मुक्त करती है। अंगों के दर्द पर सेक करने मे और पुल्टिस बाँधने में इसका बाह्यउपयोग किया जाता है। इसका काढा स्निग्धकारक है। इसे लोशन और एनिमा के रूप मे काम में लेते हैं।

डाक्टर चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक है। यह सूजन की व आँतों की शिकायतों की उत्तम औषधि है। यह पेट के आफरे को दूर करने वाली है। इसमें ग्लुकोसाइड नाम का एक पदार्थ रहता है।

असाबइलफतियात

नाम—

अरेबिक—असाब इलफतियात। लैटिन—Calamintha Clinopodium. (केलेमिंथा क्लिनोपोडियम)

वर्णन—

यह औषधि हिमालय पर्वत में काश्मीर से कुमाऊँ तक ४००० फीट की ऊँचाई से १२००० फीट की ऊँचाई तक और यूरोप, उत्तरी आफ्रीका और कनाडा में पैदा होती है। इसका प्रकाण्ड सीधा, पत्ते गोलाकार और फूल बडे गुच्छेदार होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि संकोचक, पेट के आफरे को दूर करने वाली और हृदय को बल देने वाली है।

असालू

नाम—

संस्कृत—चन्द्रशूरं, वासपुष्पा, रक्तराजी, कालमेषा। हिन्दी—हालो। मारवाड़ी—असालू। गुजराती—असालियों। बंगाली—हालिम। पंजाबी—हालू। मराठी—अहालील। तैलगू—आदित्यालू। उर्दू—हालिम। अरबी—हरफुलबज, हर्फजरजीर। फारसी—तराहतेजक। लैटिन—Lepidum Sativum,

विवरण—

असालू प्राय: सारे भारतवर्ष में बोई जाती है। इसका पौधा सरसो के पौधे की तरह होता है। इसके पत्ते कटे हुए से रहते हैं। इसके फूल नीले रंग के होते हैं। इसमे फलियाँ आती हैं, उन फलियों पर कुछ रुआँ-सा रहता है। इसके बीजों में बहुत चेप होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मतानुसार यह औषधि गरम, कड़वी, पौष्टिक, दूध बढ़ाने वाली, बाजीकरण और कामोद्दीपक है। यह वात, कफ, अतिसार और त्वचा के रोगों को नष्ट करने वाली है। दुग्ध-युक्त असालू, अभिघातरोग, चर्मरोग, वातरोग, नेत्ररोग और रुधिर-विकार को दूर करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार इसके बीज और पत्ते गरम, शुष्क, मूत्रनिस्सारक, विरेचक, और कामोद्दीपक हैं। यकृत के रोग, वायु-नलियों के प्रदाह, छाती के दर्द, गठिया और आमाशय की तकलीफों में ये लाभजनक है। ये मस्तिष्क-शक्ति को बढ़ाने वाले और बुद्धिवर्द्धक हैं।

होनिक बर्गर के मतानुसार यह पौधा पंजाब के अन्दर श्वास की बीमारियो में काम में लिया जाता है। इसकी जड़ उपदश की बीमारी में भी लाभदायक मानी जाती है। खूनी बवासीर और अँतड़ियों में होने वाले आक्षेप-युक्त मरोड़ों में भी यह उपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक और धातु-परिवर्त्तक है। इसमे एक प्रकार का उडनशील तैल रहता है।

वेलू के मतानुसार इसके बीज पंजाब में स्तनों में दूध बढ़ाने वाले माने जाते हैं। इनको दूध के साथ मिलाकर पिलाया जाता है। इस विधि से पिलाने से ये गर्भस्रावक औषधि का काम करते हैं। इसलिए गर्भवती स्त्रियों को इन्हें नहीं पिलाना चाहिये।

उपयोग—

रुधिर-विकार—हिचकी, अतिसार और रुधिर-विकार के रोग में यह औषधि बहुत उपकारी है। इसके सेवन से तिल्ली आदि बढ़े हुए यंत्र अपनी स्वाभाविक स्थिति मे आ जाते हैं।

आमाशय की पीड़ा—इसका काढा पिलाने से आमाशय की पीडा मिटती है और वह कुछ उत्तेजित हो जाता है।

सूजन—इसके बीजों को कूटकर नीम्बू के रस में मिलाकर लेप करने से सूजन बिखर जाती है।

श्वास और खांसी—इसकी डालियों को औटाकर पिलाने से श्वास और सूखी खाँसी मिटती है।

खूनी बवासीर—इसका शर्बत बनाकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

उपदंश—इसका काढा बनाकर पिलाने से सारे शरीर में फैला हुआ उपदंश का विष शान्त होता है।

अतिसार—इसकी जड़ के चूर्ण की फकी देने से बार २ दस्त की शङ्का होना तथा अतिसार मिटता है।

खुजली और दाह—दाह और खुजली पैदा करने वाले पदार्थों के विष को उतारने के लिए इसके बीजों का मेंप निकाल कर पिलाना चाहिये।

काढ़ा बनाने की रीति—इसका काढा बनाने के लिए इसके दो तोले अधकचरे बीज और पौने-चार माशे कुटी हुई मुलेठी लेकर तीन पाव पानी में डालकर बन्द बर्तन में दस मिनट तक औटाना चाहिए, फिर उसे मसल, छानकर उपयोग में लेना चाहिए।

अस्थिसंहार

नाम—

संस्कृत—अस्थिसंहार, क्रोष्टुघटिका, वज्रकंद, वज्रवल्ली। हिन्दी—हाड़जोड़, हरजोरा। गुजराती-वेदारी। मराठी—कदवेल। बगाली—हारभग। बम्बई—हाडजोड़। तैलगू—वज्रवल्ली। उर्दू-हारजोर लैटिन—Vitis Quadrangularis (व्हाइटिस काड्रानग्यूलेरिस)।

वर्णन—

इसकी बेल थूअर की जाति की होती है। इसकी शाखाएँ और डालियाँ चोकौर होती हैं। फूल गुलाबी, पियाजी और सफेद होते हैं। इस बेल में चार-छः अगुल पर गाँठे होती हैं। इसके छोटे मटर के बराबर लाल रग के फल लगते हैं। उसमें एक बीज होता है। इसकी डालिएँ पुरानी होने से खट्टी पड़ जाती हैं। यह औषधि प्रायः सारे भारतवर्ष, मलाया द्वीप समूह, सीलोन और पूर्वी अफ्रीका में पाई जाती है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि वात कफनाशक, टूटी हुई हड्डी को जोड़ने वाली, गरम, कृमिनाशक, पाचक, अग्निवर्द्धक, पौष्टिक, नेत्ररोग-नाशक, स्वादिष्ट, कामोद्दीपक और पित्तकारक है। यह बवासीर, मृगी, अर्बुद, क्षुधा नष्ट होने की बीमारी, तिल्ली, हड्डी का टूटना और जलोदर में लाभ पहुँचाती है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका डठल कड़वा होता है। इसको टूटी हुई हड्डी पर लगाने से लाभ होता है। पीठ के दर्द की शिकायत और मेरुदण्ड की पीड़ा में भी यह मुफीद है।

इसके पत्ते व छोटे वृक्ष धातु-परिवर्तक हैं। इनको सुखाकर, चूर्ण कर, अपच के द्वारा हुई आँतों की शिकायत में देने से लाभ होता है।

इसकी डाल का रस अनियमित मासिक स्राव और बालकों के उकुश रोग (Scurvy) में दिया जाता है। नाक से खून बहने और कर्णस्राव की बीमारियों में भी यह रस लाभ पहुँचाता है।

इस बेल के तने (प्रकाण्ड) को पीसकर दमे की बीमारी पर भी देते हैं।

डा० मुहिउद्दीन शरीफ का कथन है कि इस औषधि के काण्ड की लकड़ी के मुरब्बे को दो से चार ड्राम तक की मात्रा में चौबीस घण्टे में दो या तीन बार देने से,ट्रिपलिकेन में एक आदमी जोकि चिरकाल से हठीले अजीर्ण से पीडित था,चालीस दिन तक सेवन करने से बिल्कुल रोग मुक्त हो गया। इस मुरब्बे को बनाने की तरकीब इस प्रकार है। इसकी बेल के नवीन और कोमल प्रकाण्ड के छोटे २ टुकड़े करके उनको आँवले की तरह कोंचनी से छेद डालें। फिर उनको पानी में डालकर मुलायम होने तक उबालें। उसके पश्चात् उनको कारबोनेट ऑफ सोडा मिश्रित पानी में फिर उबालें। जब वे बिल्कुल मुलायम और चरपराहट से बिल्कुल शून्य हो जायँ, तब उनको स्वच्छ, गरम जल से धोकर शक्कर की चासनी में डाल दे। एक सप्ताह के पश्चात् इसको उपयोग में लें। (मटेरिया मेडिका—डाक्टर मोहि उद्दीन शरीफ)।

मटेरिया मेडिका आफ इण्डिया के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार यह औषधि रसायन और उत्तेजक है। अजीर्ण, मन्दाग्नि और स्कर्व्ही रोग में यह लाभदायक है। हड्डी टूटने पर इसकी गीली डालों को पीसकर उसका लेप करते हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह धातु-परिवर्तक और अग्नि-प्रवर्द्धक है। यह अनियमित रजस्राव में दिया जाता है। इसकी जड़ अस्थिभग के काम में ली जाती हैं। मद्रास के अन्दर इस वनस्पति की छोटी डालियाँ और छोटे पौधे एक बर्तन में बद करके जला लिये जाते हैं॥ इनकी राख को अपच और अग्निमाद्य की बीमारी में देते हैं। इसकी लकड़ी का रस कर्णस्राव और नक्सीर में मुफीद माना गया है।

उपयोग—

वात व्याधि—भाव-प्रकाश का कथन है कि हड़संहारी की लकड़ी का एक टुकड़ा लेकर उसकी छाल को छीलकर उसका चूर्ण कर लें और उस चूर्ण में भींगी हुई उड़द की छिलके रहित दाल चूर्ण से आधी मिलावें। फिर दोनों को सिलपर महीन पीसकर तिल के तेल में पकोड़ी बनालें। यह पकोड़ी भक्षकर वात का नाश करती है।

अतिसार—इसके पत्ते और कोपलों के चूर्ण की फंकी देने से अतिसार में लाभ होता है।

कर्णपीड़ा—कर्णपीड़ा में इसकी शाखा का रस कान में डालने से आराम होता है।

मसूड़ों की सूजन—मसूडों की सूजन और बिना समय मासिकधर्म होने के रोग में भी यह वनस्पति बहुत फायदेमंद साबित हुई है। इसके पचाग को गर्म कर उसके दो तोले रस में, दो तोला घी, एक तोला गोपीचन्दन और एक तोला शक्कर मिलाकर रोगी को चटा देना चाहिये।

पेट की पीड़ा—पेट की पीड़ा में इस वनस्पति की शाखा को चूने के पानी में उबाल कर पिलाने से पेट की पीड़ा मिटती है।

बलवर्द्धक—इसकी फंकी लेने से बल बढता है।

मन्दाग्नि—मंदाग्नि में इसके चूर्ण को सोंठ के साथ देने से फायदा होता है।

उदर रोग—इसकी नरम कोपलों को थोडी-सी सेक कर चटनी बनाना चाहिये। फिर उस चटनी को खिलाने से पेट के रोग मिटते हैं तथा भूख लगती है।

अजीर्ण—इसकी कोपलों के टुकड़ों को एक मिट्टी के बर्त्तन में बद कर जलाकर उस भस्म की फंकी देने से अजीर्ण और मदाग्नि मिटती है।

रीढ़ की हड्डी की पीड़ा—इसकी कोमल शाखाओं का बिछौना कर, उस पर सोने से रीढ की हड्डी की पीड़ा मिटती है।

उपदंश—इस औषधि की नरम लकड़ी को कूट, पीसकर उसका रस निकालना चाहिये। इस रस को दो तोले की मात्रा में उतना ही गाय का घी मिलाकर दिन में दो बार लेना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक करने से गर्मी के चट्टे, घाव आदि उपद्रव दूर होते हैं। दवा लेते समय नमक को बिल्कुल उपयोग में नहीं लेना चाहिये।

आंकड़ा

नाम—

संस्कृत—अर्क, राजार्क, क्षीरदल, शुकफल,विभावसु । हिन्दी--आक,मदार । बङ्गाली-आकद । मराठी—रुई, पांढरी रुई । तैलंगी—नलिजिल्ले डेघोली, तेलाजिल्लीडे । फारसी—खरक, दूध । अरबी--ऊशर । अंग्रेजी—Gigantic Swallow Wort. (जायजेन्टिक स्वेलोवर्ट) लैटिन—Calotropis Gigantica. (केलोट्रोपिस जायगेन्टिका) Calotropis Procera. (के० प्रोसीरा) ।

वर्णन—

आक के झाड़ सब स्थानो पर मिलते हैं और सब लोग उनको जानते हैं । इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं । इसकी लाल और सफेद, इस प्रकार दो जातियाँ होती हैं । लाल जाति को लैटिन मे Calotropis Gigantica. (के० जायगेंटिका) और सफेद जाति को Calo. Procera. (के० प्रोसेरा) कहते हैं । लाल जाति का आक सब स्थानो पर सुलभता से मिलता है मगर सफेद जाति का आक बहुत दुष्प्राप्य रहता है । सफेद जाति के आक की तलाश मे कीमियागर लोग बहुत रहते हैं ।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से दोनों प्रकार के आक रेचक तथा वात, कोढ, कण्डु, विष, व्रण, प्लीहा, गुल्म, बवासीर, श्लेष्मा, उदर, यकृत और कृमिरोग को नष्ट करने वाले हैं ।

आक का दूध तिक्त, उष्ण, स्निग्ध, लवण-रसयुक्त, हलका तथा कोढ, गुल्म और उदररोग को नष्ट करने वाला है । यह एक श्रेष्ठ विरेचन है ।

इसकी जड की छाल पसीना लाने वाली, श्वास को दूर करने वाली, गरम, वमनकारक और उपदश को नष्ट करने वाली है ।

इसका फूल मधुर, तिक्त,ग्राही तथा कुष्ठ, कृमि, चूहे का जहर, रक्त-पित्त, गुल्म और सूजन को दूर करने वाला है ।

इसकी जड़ की छाल कड़वी, तीखी, गरम, दीपन, पाचन, पित्त का स्राव करने वाली, रस-ग्रंथि और त्वचा को उत्तेजन देने वाली,धातुपरिवर्तक,उत्तेजक,बलदायक और रसायन है । छोटी मात्रा में यह आमाशय को उत्तेजन देकर रस-क्रिया का बराबर सचालन करती है । लेकिन अधिक मात्रा में यह आमाशय में दाह उत्पन्न करके वमन पैदा करती है । इसके उपयोग से बहुत पसीना होता है । इससे इसका स्वेद-जनन-धर्म भी बहुत उत्तम माना गया है । इसका रसायनधर्म भी पारे के समान उत्तम है । क्योंकि इसके सेवन से यकृत की क्रिया सुधरती है और पित्त का स्राव भलीभाँति होता है शरीर की जुदी २ ग्रंथियों को यह उत्तेजन देती है, जिससे सारे शरीर की रस-क्रिया और क्रिया भलीभाँति होने लगती है । फलस्वरूप शरीर पुष्ट होता है और बल बढ़ता है ।

यकृत-वृद्धि, प्लीहा-वृद्धि, आँतों की व्याधियाँ इत्यादि रोगों पर यह अपना प्रभावशाली असर बतलाती है।

औषधि के रूप में इसकी जड़ की छाल, पत्ते, फूल और दूध काम में आते हैं। इस वनस्पति में अनेक उत्तम गुण होने से आयुर्वेद के अन्दर यह एक दिव्य औषधि मानी गई है। जितना लाभ इस पौधे से वैद्यों और भारतीय-रसायन-शास्त्रियों ने उठाया, उतना किसी दूसरी औषधि से नहीं उठाया। आज तक भी इस पौधे का यहाँ पर प्रचुररूप से उपयोग होता है। किसी २ ने तो इसीलिये इसको 'वानस्पतिक पारद' भी कह डाला है।

यूनानी मत—यूनानी हकीमों के अन्दर इस औषधि का उल्लेख करीब एक हजार वर्षों से पाया जाता है। सबसे पहिले अबूहनीफा ने अपनी पुस्तक नबातात में इस औषधि का उल्लेख किया है। कानूनशेखू रईस, तजकिरा, दाउद अन्ताकि इत्यादि ग्रंथों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। उसके पश्चात् पीछे के ग्रथों में तो इसका विस्तृत-वर्णन मिलता है।

मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमहम्मद हुसेन और मुहीत आजम के लेखक महम्मद आजमखाँ ने आक की तीन जातियों का उल्लेख किया है।

(१) पहली जाति के झाड़ बहुत बडे, पत्ते भी बहुत बडे और फूल सफेद होते हैं। इसमे बहुत ज्यादा दूध होता है। यह जाति सर्वोत्तम है।

(२) दूसरी जाति के पौधे और पत्ते, अपेक्षाकृत छोटे और फल बाहर से सफेद, भीतर से बैंगनी या गहरे नीले रंग के होते हैं।

(३) तीसरी जाति सबसे छोटी जाति है, जिसके फूल सफेदी लिये हुए पिश्ताई रंग के होते हैं। इस के पौधे मरुभूमि में उगते हैं। किसी २ के मत से यह तीसरी जाति बहुत विषैली होती है।

यूनानी मत से आक गर्म और रुक्ष है। इसका दूध चौथे दर्जे में गरम और रुक्ष तथा इसके शेष हिस्से तीसरे दर्जे में गरम और रुक्ष है। किसी २ के मत से आक का दूध तीसरे दर्जे में गरम और चौथे दर्जे में रुक्ष है तथा इसके फूल दूसरे दर्जे में गरम और रुक्ष हैं। यह यकृत और फेफडे को नुकसान पहुँचाता है। इसके प्रतिनिधि इपीकोना तथा अन्तमूल हैं और इसके दर्प को नाश करने वाले दूध और घी हैं। इसके दूध की मात्रा दो रत्ती से चार रत्ती तक और इसकी छाल, फूल और पत्ती की मात्रा छः रत्ती तक दी जा सकती है, काढा बनाने के अन्दर इसकी छाल और पत्ती की मात्रा ६ माशे तक ली जा सकती है।

मख्जनूल अदविया के लेखक मीरमहम्मद हुसेन के मतानुसार आक का दूध दाहक, कफ को रेचन करने वाला और चमड़ी पर फफोला पैदा करने वाला है। सभी प्रकार के दूधों में यह सबसे अधिक तीक्ष्ण माना जाता है।

शारद गाजरुनी के मतानुसार इसका पत्ता सूजन को कम करने वाला और सर्दी को दूर करने वाला है। इसलिये गठिया के दर्द और दूसरे प्रकार के दर्दों मे इनको गरमकर बाँधने से वेदना-शात होती है और सूजन उतर जाती है। पीले पड़े हुए आँकड़े के पत्तो का रस नाक में सुंघाने से आधाशीशी में लाभ होता है। कफ-निस्सारक होने से यह खाँसी और दमे को दूर करता है। इसके पत्तों को सुखाकर उनको कूट, छानकर खराब जख्मों पर भुर-भुराने से दूषित मास दूर होकर स्वस्थ मास पैदा होता है।

आक की शक्कर—फारस और अरब मे पैदा होने वाले आक में एक प्रकार का गोद पैदा होता है, जिसको शकरमदार, शक्कर ऊशर इत्यादि नामों से सम्बोधित करते हैं। यह शक्कर प्रकृति को मृदु करने वाली, खाँसी और श्वास कष्ट, फेफड़े के व्रण तथा छाती, जिगर और मेदे की तकलीफों में लाभदायक होती है। आँख मे आँजने से आँख की फूली को दूर करके दृष्टि-शक्ति को बढ़ाती है। ऊँटनी के दूध के साथ देने से यह जलोदर रोग में लाभ पहुँचाती है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड की छाल में दो विशेष प्रकार के तत्व पाये जाते है, जिनके नाम वार्डन (Warden) और वाडेल (Waddel) ने मदार एलबन (Mudar Alban) और मदार फ्लुव्हिल (Mudar Fluevil) दिया है। ये दोनों पदार्थ गटापारचा मे मिलने वाले अलबन और फ्लुव्हिल से मिलते-जुलते है। इसमें से मदार एलबन एक प्रकार का रवादार सत्व है, जो अत्यत प्रभावशाली है। यह ईथर तथा अलकोहल मे घुलनशील तथा शीतल जल और जैतून के तैल में अघुलनशील रहता है। गर्मी से जम जाने और सर्दी में खुले रखने पर पिघल जाने का इसमें अद्भुत गुण है। इसके अतिरिक्त इसमे एक प्रकार की कड़वी, चरपरी और पीले रंग की राल भी पाई पाई जाती है, जो इसका प्रभावशाली अ श है।

कर्नल चोपड़ा का कथन है कि इस औषधि की उपयोगिता के विषय मे बहुत मत-भिन्नता है। आधुनिक खोजों ने यह बतला दिया है कि जितने गुण इसमे बतलाये जाते हैं, उतने इसमें नहीं हैं।

इसका दूध तेज जुलाब माना जाता है। यह प्रायः थूहर के दूध के साथ मे उपयोग मे लिया जाता है। गर्भपात के कार्य्यों में भी इसका उपयोग करते है। इसके फूल पाचक, अग्निप्रवर्द्धक व पौष्टिक हैं। कफ और जुकाम में भी ये उपयोगी हैं, इसकी जड़ के छिलके का लेप बनाकर चाँवल के सिरके के साथ मिलाकर टाँगों के श्लीपद पर लगाया जाता है। इसकी जड़ का चूर्ण ३ ग्रेन से १० ग्रेन तक की मात्रा मे धातु-परिवर्त्तक होता है। ३० से ६० ग्रेन तक की मात्रा में यह वमनकारी होता है।

आँकड़े की जड़ की छाल प्राप्त करने की रीति—

डाक्टर मोहिउद्दीन शरीफ का कथन है कि औषधि के लिये आक का वृक्ष जितना ही पुराना

होगा, उतनी ही उसकी जडे गुणकारी होगीं। क्योंकि उसमें कडवी राल की मात्रा अधिक होती है। इसलिये इस वृक्ष की जड़ ग्रहण करने के लिये अप्रैल या मई महीने के दिनों में तपती हुई मरुभूमि में उगे हुए आक के झाड़ की जड़े खोदकर लाना चाहिये और उन जड़ों के ऊपर की रेती को पोंछकर हलके हाथ पानी में धोकर छाया में सुखा देना चाहिये। चौबीस घटे के पश्चात् उसके ऊपर की मिट्टी और निर्जीव छाल को निकालकर अतछाल को छाया में सुखा देना चाहिये। जब वह बराबर सूख जाय तब उसको पीसकर कपडे में छानकर मजबूत काग वाली बोतल मे भर कर रख देना चाहिये। बढिया छाल मे से बने हुए चूर्ण का रग चाँवल के आटे के रग के समान होता है।

इसकी जड के ऊपर बतलाई हुई रीति से तैयार किये हुए चूर्ण में खूनी अतिसार को मिटाने की अद्भुत-शक्ति है। इसी प्रकार श्वास-नलियों की बीमारियों पर भी इसका बहुत उत्तम असर होता है। श्वास-नलिका की सूजन की प्रथम अवस्था मे प्रति घण्टा एक रत्ती की मात्रा में यह औषधि देने से गले के अन्दर गीलापन आता है, पसीना होता है, दस्त साफ होता है, कफ छूटने लगता है और सूजन कम हो जाती है। सूजन की दूसरी अवस्था मे देने से कफ पतला होकर जल्दी गिरने लगता है।

अन्तर-त्वचा, बाह्य-त्वचा और त्वचा के नीचे के प्रस्तरों की व्याधियों में इसके उपयोग से बहुत लाभ होता है। सभी जाति के व्रण और फोडे, फिर चाहे वे सादी रीति से हुए हों, चाहे रक्त-दोष से हुए हों, चाहे उपदश से हुए हों, चाहे और किसी कारण से हुए हों, उन सब में इस चूर्ण को खाने से और बाहर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

उपदंश की दूसरी अवस्था मे जब चमड़ी पर चट्टे पैदा हो जाते हैं, इसके उपयोग से बडा लाभ होता है।

आक के फूल दीपक, पाचक, और कफघ्न हैं। इसकी जड की छाल की अपेक्षा फूलों में यह गुण विशेष होने से ये अतिरिक्त कफ का शमन करते हैं और सूखी खाँसी, रक्तपित्त, उरक्षत, तथा क्षय की खाँसी में अच्छा फायदा दिखलाते है।

इडियन मेडिकल प्लांटस् के रचयिताओं के अनुसार सफेद आक, मूत्रकृच्छ्र और पथरी में लाभ पहुँचाने वाला और व्रण ठीक करने वाला है। इसकी राख कफनाशक है। इसके पत्ते गरम करके पेट पर बाँधने से पेट में लाभ पहुँचता है। इसके फूल पुष्टिकारक, क्षुधावर्द्धक, अग्निप्रवर्द्धक तथा बवासीर व श्वास में लाभ पहुँचाने वाले हैं। पठान लोग इसकी जड़ के ताजा दतून को दंतपीड़ा-नाशक समझते हैं। इसके फूलों में विरेचक गुण भी हैं। ये हैजे की बीमारी में भी दिये जाते हैं।

इसका ताजा दूध अधिक मात्रा मे बहुत जहरीला है। इसका एक ड्राम ताजा रस १५ मिनट में अच्छे बड़े कुत्ते को मार सकता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार आक का दूध प्रबल-विरेचक और गरम है। कीड़े से खाये हुए दाँत में और कान के दर्द में थूअर के दूध के

साथ इसका प्रयोग करने से बड़ा लाभ होता है। इसका योनि के अन्दर प्रयोग करने से गर्भस्राव होता है। गर्मी की बीमारी में यह बहुत लाभदायक हैं। इसी लिये इसको व्हिजीटेबल मरक्यूरी (वानस्पतिक पारा) कहते हैं। दारूहल्दी के चूर्ण और सेहूँड के दूध के साथ आक के दूध की बत्ती बनाकर गुदा स्थान में रखने से वारम्बार मल-त्याग करने की चेष्टा निवृत्त होती है। बिच्छू, भिड़, ततैया इत्यादि जहरीले जानवरों के डङ्क पर इसका लेप करने से जलन मिट जाती है। भगन्दर व नासूर का मुँह बंद हो जाने पर उसे खोलने के लिये दूसरी औषधियों के साथ आक के दूध का उपयोग किया जाता है। आक का दूध अधिक मात्रा में सेवन करने से अत्यन्त वामक और विरेचक होकर जहर के तुल्य हो जाता है।

उपयोग—

बवासीर—

(१) तीन बूंद आक के दूध को रूई पर डालकर और उस पर थोड़ा कुटा हुआ जवाखार बुरक कर उसे बताशे में रखकर निगल जायें। इस प्रयोग से बवासीर बहुत जल्दी नष्ट हो जाती है।

(२) आधापाव आक का दूध लेकर उसको इतना खरल करे कि खरल में चिपक जाय। दूसरे दिन फिर उसी खरल मे आधापाव आक का दूध डालकर खरल करना चाहिये। इस प्रकार आठ दिन में एक सेर आक का दूध उस खरल में सुखा लेना चाहिये। फिर उसको खुरचकर उसके दो भाग करले। मिट्टी के एक बड़े प्याले में नीचे एक भाग बिछाकर उसपर एक तोला सुहागा रखे और उसपर दूसरा भाग बिछा दे, इस औषधि के ऊपर एक छोटा प्याला जिसके बीच मे छेद हो, रख दें तथा उसके बाद बड़े प्याले के ऊपर एक और बड़ा प्याला रखकर कपड-मिट्टी कर दे। फिर उसके बाद उन प्यालों को चूल्हे पर रखकर चिराग की तरह हल्की आँच दे। जब ऊपर वाला प्याला गरम होने लगे तब उसपर चार तह कपड़ा पानी में तर करके रख दे, चार प्रहर की आँच होने के बाद उसको उतार कर खोलने पर तीनो प्यालो मे तीन प्रकार की चीजें प्राप्त होती हैं। सबसे ऊपर वाले प्याले मे इसका जौहर रहेगा। बीच के प्याले में पीले रग की सलाखे रहेगी तथा तीसरे प्याले में औषधि का बचा हुआ भाग रहेगा।

मिफ्ताउल खजाइन नामक हकीमी ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि इसमें से नीचे के प्याले वाली चीज वजउल् मुफासिल अर्थात् गठिया रोग के लिये एक रत्ती की मात्रा मे रोजाना बताशे में रख कर खिलाना चाहिये। इसके तीन रोज सेवन कराने से गठिया की बीमारी मे बहुत लाभ होता है। शेष दो प्यालो की औषधियाँ बवासीर वालों के लिए बहुत लाभदायक हैं। इनका उपयोग इस प्रकार किया जाता है। पहले बीच के प्याले वाली दवा को एक रत्ती की मात्रा में मक्खन में मिलाकर दो दिन तक खिलावे और खाने के लिए रोगी को केवल मिश्री मिला हुआ दूध देवें। दो दिन के बाद रात को रोगी के पेट में दर्द मालूम होगा, परन्तु इससे डरने की जरूरत नहीं है। तीसरे दिन

बड़े सवेरे ऊपर के प्याले वाला जौहर एक रत्ती की मात्रा मे मक्खन मे मिलाकर खिलाना चाहिये और रोगी को लिटा देना चाहिये। एक प्रहर के बाद काँच निकाल कर मस्से गिर जायेंगे। उन्हे स्वच्छ वस्त्र से धीरे से अलग कर देना चाहिये। फिर एक तोला फिटकरी का बारीक चूर्ण कपडे पर रख कर काँच पर रख देना चाहिये और लंगोट बाँध देना चाहिये। उसी वक्त अगर रोगी मांसाहारी हो तो उसे मुर्गी का शोरबा पिलाना चाहिये और दो घण्टे तक रोगी को दोनो पाँवों पर बिठाये रखना चाहिये। इसके पश्चात् रोगी को नरम खाना देना चाहिये। मिफ्ताउल खजाइन के ग्रन्थकार इस योग को अपना परीक्षित योग बतलाकर इसकी सिफारिश करते है।

खाँसी और दमा—

(१) आक के फूल की मगज १॥ माशा, सेंधा नमक १॥ माशा, अफीम ३ रत्ती और अजवायन ६ माशा, इन सब चीजों को कूट, पीस, मिलाकर चने की दाल के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। तीन घण्टे के अन्तर पर इसमें से एक २ गोली देने से खाँसी और दमे में बहुत लाभ होता है।

(२) अजवायन ८ तोला, हरड़ का चूर्ण, बीड़ नमक, खेरसार, सेंधा नमक, हल्दी, उपलेट, भारंगी की जड़, इलायची, सुहागा, कायफल, अड़ूसा, अपामार्ग की जड़, जवाखार और सज्जीखार, ये सब चार-चार तोला, आक के फूलों की सूखी मगज १६ तोला, इन सबों का चूर्ण करके घीग्वार के रस में घोटना चाहिये। फिर उसकी टिकड़िएँ बनाकर सुखाकर एक हाँडी में रखकर सरावले से हाँडी का मुँह बंद कर कपड़-मिट्टी कर लेना चाहिये। इस हाँडी को आग पर चढ़ा कर सब दवाइयों को जला लेना चाहिये। जब सब दवाइयाँ जल जायँ तब उस हाँडी को उतारकर उस राख को निकाल लेना चाहिये। इस राख को डेढ़ माशे से तीन माशे तक की खुराक में शहद के साथ चटाने से खाँसी और श्वास में बहुत लाभ होता है।

(३) आक की बंद मुँह की कली २ तोला, अजवायन १ तोला, और कन्द स्याह ५ तोला, इन तीनों औषधियों को कूट,पीस कर एक दिल कर ले, फिर मदार के सात पत्तों को ऊपर-नीचे रखकर उनमें इन दवाइयों को रख, सी-कर कपड़-मिट्टी करलें। फिर इसको गरम भूभर में दो प्रहर तक गाड़ दें। उसके बाद निकाल कर दवाओं को बारीक पीसकर भर लें। इसमें से एक माशे की खुराक मक्खन के साथ देने से श्वास, दमा और पुरानी खाँसी मे बहुत लाभ होता है।

(४) आँकड़े के फूल की मगज और कालीमिर्च समान भाग लेकर खरल करके एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लेना चाहिये। इनमें से एक-एक गोली दिन में चार बार देने से दमा, खाँसी, हिस्टीरिया, वायु और कनव्हलशन की बीमारियों में बड़ा लाभ होता है।

(५) आक के कोमल पत्तों का काढ़ा करके उस काढ़े की जौ की धानी को सात भावना देकर सुखा लेना चाहिये। फिर उसका चूर्ण करके छः माशे को मात्रा मे शहद के साथ चटाने से श्वास रोगों में लाभ होता है।

उदर रोग—

(१) मदार की कली ६ तोला, कालीमिर्च ३ तोला, सेंधा नमक ३ तोला, लौंग कुलाहादार ६ माशा, कली का चूना ३ माशा, शुद्ध अफीम १॥ माशा, इन सब औषधियों को एक भावना अदरख के रस की, एक भावना नीम्बू के रस की देकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ सब प्रकार के पेट दर्द, आमाशय की खराबी और अजीर्ण मे लाभकारी है। हैजे के अन्दर भी ये गुलाबजल के साथ देने से शर्तिया लाभ पहुँचाती है।

(२) आक के पीले पत्ते १००, करज के पत्ते १००, बायवर्णा की छाल ४० तोला, थूहर के डोडे १०० तोला, भोरीगणी के डोड़े १००, घीग्वार ८ तोला, गूगल २ तोला, लहसन २० तोला, काञ्च की छाल २० तोला, संचर-नमक १२ तोला, सोंठ ७ तोला, कालीमिर्च ७ तोला, पीपर ७ तोला, समुद्र नमक ४० तोला, वीड नमक ४ तोला, अजवायन २ तोला, अजमोद २ तोला, हींग ४ तोला, जीरा ४ तोला, स्याहजीरा ४ तोला, राई १६ तोला, चित्रक की जड़ ३२ तोला, इन सब औषधियों को कूट कर इनमें ३२ तोला आक का दूध और १६ तोला सरसों का तेल डाल कर एक हाँडी में भरना चाहिये। उसके बाद उस हडी का मुँह सरावले से बंद करके कपड़-मिट्टी कर आग पर चढ़ा देना चाहिये। जब सब चीजे जल कर राख हो जायँ, तब हाँडी को उतार कर उस राख को निकाल कर बोतल मे भर देना चाहिये। इस औषधि को आधे तोले की मात्रा में मट्ठे के साथ लेना चाहिये। यह औषधि प्राचीन अजीर्ण और मदाग्नि के लिये बहुत ही उपयोगी है। आमाशय के अन्दर रहे हुए अपच्य पदार्थों को पचाने में तथा विदग्ध पदार्थों को दस्त के द्वारा बाहर निकाल देने में यह बहुत उत्तम कार्य करती है। इसलिये वायुगोला, उदरशूल, अजीर्ण इत्यादि बीमारियों में यह औषधि बड़ा लाभ पहुँचाती हैं।

(३) सज्जीखार ५ तोला, नौसादर ५ तोला, सेंधा नमक २॥ तोला, सचर-नमक २॥ तोला, इन सब चीजों को ४० तोला आंकडे के दूध में तथा ४० तोला थूहर के दूध में घोटकर एक हाँडी में भरकर कपड़-मिट्टी कर गजपुट में फूक देना चाहिये। शीतल होने पर इसकी राख निकाल कर जितना उसका वजन हो, उसका पाँचवा हिस्सा चित्रक की जड़, पाँचवा हिस्सा हरड़, पाँचवा हिस्सा बहेड़ा, पाँचवा हिस्सा आँवला और पाँचवा हिस्सा निसोत की जड़ की छाल लेकर उन सबका चूर्ण कर इसमें मिला देना चाहिये। इस औषधि को तीन माशे से छः माशे की मात्रा में थोड़ी-सी शखभस्म मिलाकर सेवन करने से लीवर और कलेजे की वृद्धि को दूर करने में बहुत असर बतलाती है। पत्थर के समान सख्त पेट को यह धीरे २ मुलायम कर ठीक स्थिति में ला देती है। इसी प्रकार आफरा और कब्जियत के लिये भी यह रामबाण औषधि है। कुमारी-आसव के साथ देने से यह बड़ी लाभप्रद सिद्ध हुई है।

(४) आक के फूल का मगज १ तोला, लाहोरी नमक १ तोला, पीपर १ तोला, इन तीनों चीजों को कूट, पीसकर कालीमिर्च के बराबर गोलियाँ बना लें। रात में सोते वक्त बालकों को एक

गोली, और वयस्क पुरुषों को दो गोली देने से सब तरह की खाँसी और दमे में लाभ होता है। ये गोलियाँ उदरशूल, हैजा, अजीर्ण तथा सोते समय मुँह में से लार बहने के रोग में भी यह अक्सीर है।

(५) सूखे हुए आक के फूल लेकर उनको महीन पीसकर उसको तीन दिन तक आक के पत्तों के रस में खरल करके चने बराबर गोलियाँ बना ले। इनमें से दो गोली गरम पानी के साथ निगलने से कठिन से कठिन पेट का दर्द तुरन्त आराम होता है।

(६) आक के हरे फूलों को कूटकर दो सेर रस तैयार कर ले। इस रस में पावभर आक का दूध और १। सवा सेर गाय का घी मिलाकर कलईदार कढ़ाई में आगपर चढ़ा दें, जब सब चीजें जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब आग पर से उतार कर घी को छानकर सुरक्षित रख ले। यह घृत आँतों के अन्दर पडे हुए कीड़ों को नष्ट करने में मूल्यवान औषधि है। आँतों के कृमियों की वजह से जिनकी पाचन-शक्ति खराब होगई हो या जिनको बवासीर हो उसे इस घी में से ३ माशे से ६ माशे तक घी, गाय के आधपाव दूध के साथ देने से बडा लाभ होता है।

विशूचिका या हैजा—

(१) आक के फूलो के भीतर से उनकी लौंग निकालकर १ तोला वजन में लें। इसमें १ तोला कालीमिर्च और १॥ तोला अदरख मिलाकर घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बना ले। इनमें से हैजे के रोगी को १ गोली देने से तत्काल असर होता है।

(२) मखजनूल अक्सीर के लेखक का कथन है कि आक की जड की छाल और कालीमिर्च समान भाग लेकर खरल मे खूब बारीक पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बनाना चाहिये, इसमें से एक या २ गोली अर्क सौंफ या अर्क सिकजबीन के साथ देने से कठिन हैजे के आसन्नमृत्यु रोगी को भी तत्काल लाभ होता है।

(३) आक की जड़ की छाल १ तोला, कालीमिर्च ३ माशे, संचर-नमक ३ माशे, इन तीनों चीजों को बारीक पीसकर चने के बराबर गोलियाँ बना ले। ६ माशे घी के साथ एक २ गोली सुबह-शाम देने से हैजे की मायूसी अवस्था में भी लाभ होता है।

नासर और रक्त विकार—

(१) सरसों का तेल १६ तोला, गाय का घी ८ तोला और आक के पत्तों का रस ६६ तोला, इन तीनो चीजों को मिलाकर, कलईदार कढाई में धीमी आच से पकाना चाहिये। जब केवल घी और तेल शेष रह जाय, तब उसको उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल में आक के सूखे पत्तों का कपड़-छन चूर्ण ४ तोला, गन्धक और पारे की खूब घुटी हुई कजली १ तोला, सिंदूर आधा तोला, हरताल आधा तोला, मेन्सिल आधा तोला, हल्दी आधा तोला, सोनागेरू आधा तोला, ये सब चीजे बारीक पीसकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिये। इस मलहम को लगाने से पुराने घाव और नासूर जोकि कभी नहीं भरते हैं और शस्त्र-क्रिया के बिना आराम होने की सभावना नही होती वे भी इस मलहम के भरने से आराम होते हुए देखे गये हैं।

(२) पीपर, हल्दी, शख की भस्म, सज्जीखार, काकच के बीज, सेंधा नमक, निर्गण्डी के पत्ते, चनगोटी के बीज, केशर, शराब का कचरा, मूली, नीला-थूथा, नागकेशर, मुर्गे का विष्ठा, धतूरे के बीज और अजवायन, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर कपडछन चूर्ण करके, एक भावना थूहर के दूध की, एक भावना आक के दूध की और एक भावना गाय के दूध की, देकर खरल में घोंटकर, बरनी में भर लेना चाहिये। यह सुप्रसिद्ध आचार्य वगसेन का 'सिद्ध लेप' नाम का सुप्रसिद्ध लेप है। इसका लेप करने से हर तरह का नासूर, कंठमाला, बबासीर और नहीं फूटने वाली गाँठ भी आराम होती है।

(३) आक की जड की छाल ४ सेर लेकर एक मिट्टी के बर्तन मे डाल दे और फिर पावभर गेहूँ, एक सफेद कपड़े मे बाँधकर उसी बर्तन मे डाल दे, फिर उस बर्तन को तिहाई पानी से भर दें। फिर इस बर्तन का मुँह बन्द करके २१ दिन तक घोडे की लीद में गाड़ दे। उसके पश्चात् उस बर्तन को निकाल कर, अगर उसमें कुछ पानी शेष हो तो आग पर रख कर उस पानी को सुखा ले। फिर उस हाँडी में से गेहूँ की पोटली को निकाल ले। इन गेहूँ को पीसकर इनकी ६१ गोलियाँ बना लें। इसमें से १ गोली प्रतिदिन खाने से तथा पथ्य में नमक छोडकर केवल गेहूँ की रोटी और घी खाने से कुष्ठरोग में लाभ होता है।

दाद की अमोघ औषधि-

(१) हल्दी ५ रुपये भर, लेकर पानी के साथ पीसकर, चटनी के समान बना लेना चाहिये। फिर आक के पत्तों का रस ४ सेर, पीली सरसों का तेल आधा सेर, लेकर उसमे यह हल्दी की लुग्दी डालकर मदाग्नि से पकाना चाहिये। जब रस का भाग जलकर तेल मात्र शेष रह जाय, तब उसे उतार कर छान लेना चाहिये। इस तेल में १० रुपये भर मोम डालकर फिर मदाग्नि पर चढ़ाकर, जब मोम तेल में मिल जाय, तब उतार लेना चाहिये। फिर इसमें गधक, फुलाया हुआ सुहागा, सफेद कत्था, रेवन्द चीनी, कपीला, कालीमिर्च, राल, मुर्दासिंगी, फुलाया हुआ नीला-थूथा और फुलाई हुई फिटकडी, ये सब चीजें ढाई २ रुपये भर लेकर उनको बारीक चूर्ण करके उसमें मिला दें। साथ ही ४ रुपये भर गधक और पारे की घुटी हुई कजली मिला दे। इन सब चीजों को अच्छी तरह से मिलाकर बरनी में भर ले।

दाद के लिये यह एक अव्यर्थ महौषधि है। भयकर से भयकर दाद भी इसके व्यवहार से नष्ट हो जाते हैं। जो लोग सैकड़ों प्रकार की पेटेंट औषधियों से निराश हो चुके हों, उन्हें भी इस औषधि से लाभ उठाना चाहिये। दाद के सिवाय खाज, खुजली में भी यह लाभ पहुँचाती है।

लकवा, फालिज, गठिया और अन्य वात व्याधियाँ—

(१) आक के हरे पत्ते, धतूरे के हरे पत्ते, अरड के हरे पत्ते, सेहुंड के पत्ते, बकायन के पत्ते, सहँजन के पत्ते, भाँगरे के पत्ते और भाँग के पत्ते, इन सबको समान भाग लेकर इनका स्वरस निकाल लें।

जितना स्वरस हो, उतने ही वज़न का कालीतिल्ली का तेल डालकर आग पर चढ़ाकर पकावें। जब केवल तेल मात्र शेष रह जाय, तब उतार कर छान लें। इस तेल से मालिश करते समय पीपर और कालीमिर्च का थोड़ा महीन चूर्ण मिला लेना चाहिये। इस तेल की मालिश से लकवा, फालिज और संधिवात में बहुत लाभ होता है।

(२) मिफ्ताहुल-खजाइन के लेखक ने शरीर के नीचे के हिस्से के फालिज के लिये एक परीक्षित प्रयोग दिया है जिसको यहाँ पर उद्धृत किया जाता है।

एक गड्ढा इतना गहरा खोदा जाय, जिसमें आदमी अच्छी तरह से बैठ सके, उस गड्ढे में जंगली कंडे भरकर जला दें, जिससे उसकी दीवारें लाल हो जायँ। फिर उसको साफ करके उसमें ताजे आक के पत्ते भर दे, जब वे पत्ते गरम होंगे, तब उनमें से भाप निकलेगी, ऐसे समय में रोगी को पशमीने की चादर में लपेट कर उस गड्ढे पर बिठाये। उसका मुँह खुला रखे, जिसमें वह भाफ इत्यादि से सुरक्षित रहे। यह क्रिया मकान के भीतर एकांत-स्थान में होनी चाहिये। इस क्रिया से रोगी पसीने से सराबोर हो जायगा। दूसरे दिन रोगी को ६ माशे अरंडी का मगज, बादाम के तेल में भूनकर शहद के साथ चटावे, इससे उसको कै और दस्त होंगे। इसके उपरान्त उसे फिर उसी प्रकार गड्ढे पर बिठाकर बफारा दें। इसी भाँति तीन दिन तक करने से गयागुजरा रोगी भी आराम हो जाता है। इस प्रयोग से शरीर पर छोटी २ फुंसियाँ निकल आती हैं पर वे दूसरे-तीसरे दिन स्वयं लुप्त हो जाती हैं। एक रोज बुखार भी आता है, मगर उससे डरने की कोई जरूरत नहीं।।

(३) आक के पत्ते ७, भिलावें नग ७, इन दोनों चीजों को तिल के तेल में डालकर आग पर चढ़ा दें। जब ये दोनों अच्छी तरह से जल जायँ, तब तेल को छानकर शीशी में भर ले। इस तेल को धूप में बैठकर मालिश करने से हर प्रकार की वात-व्याधि में लाभ पहुँचाता है।

(४) गूगल ५ माशे, मेंहदी सुर्ख २ माशे, सनाय मक्की २ माशे, कतीरा १ माशा, इन सबको आक के दूध में खूब घोटकर चने के बराबर गोलियाँ बना ले। इनमें से प्रतिदिन एक गोली गर्म पानी के साथ खाने से गठिया, सन्धिवात, गृध्रसी तथा दूसरी वात-व्याधियों में लाभ होता है।

(५) मदार का बिना खिला फूल, सोंठ, कालीमिर्च और बाँस की पत्ती समान भाग लेकर चने के बराबर गोलियाँ बना ले। सवेरे-शाम दो गोली पानी के साथ खाने से गठिया में बड़ा लाभ होता है।

(६) आक की जड़ को काँजी के साथ पीसकर लेप करने से हाथी-पाँव और अण्डवृद्धि-रोग में बड़ा लाभ होता है।

साँप, बिच्छू और पागल कुत्ते का जहर—

(१) आक की जड़ की छाल का चूर्ण १। रुपये भर, धतूरे के पत्तों का चूर्ण २ माशे और मिश्री १। रुपये भर लेकर सबों को पानी के साथ घोटकर एक २ रत्ती की गोलियाँ बना लेनी चाहिये। रोगी को पहिले अरंडी के तेल का जुलाब देकर, इन गोलियों का सेवन कराना चाहिये। पाँच वर्ष की उमर वाले

को एक २ गोली, १० वर्ष की उमर वालों को दो २ गोली तथा १५ वर्ष से ऊपर उमर वालो को तीन २ गोली, सवेरे-शाम देना चाहिये। दवा खाने के बाद २-३ घंटे तक पानी नहीं पीना चाहिये और एक-दो मुट्ठी भुने हुए चने खाना चाहिये, जिससे उल्टी न होकर दवा पच जायगी। दवा लेने के तीन घंटे बाद खुराक पानी लेना चाहिये।

इस प्रकार इस औषधि को ४० दिन तक सेवन करने से तथा बीच २ में आठवें दिन अरंडी के तेल का जुलाब लेते रहने से, जिन लोगों को पागल कुत्ते ने या पागल स्यार ने काटा होगा, उनको हडकाव (पागलपन) पैदा होने का भय जाता रहेगा। 'जंगलनी जड़ी-बूटी' के लेखक का कथन है कि यह एक अनुभवसिद्ध-योग है। हड़काव के सिवाय धनुर्वात, ताप, खासी, कफ, दमा, हिचकी, उपदंश-रोग, त्वचारोग, कोढ़, नारू इत्यादि रोगों मे भी यह औषधि अच्छा असर दिखाती है। इन गोलियों के सेवन करने पर भी अगर किसी को हडकाव पैदा हो जाय तो उसे आक के पत्ते का रस एक तोला, धतूरे का रस १॥ माशा और तिल का तेल २॥ रुपये भर, मिलाकर पिलाना चाहिये। दूसरे और तीसरे दिन इससे आधी खुराक पिलाना चाहिये, जिससे पैदा हुई व्याधि दूर हो जायगी।

सर्प-विष का योग—

(१) हलजून कला (मोटा शख) अफीम, नीलाथूथा, कालब्रोल, सफेद फिटकरी, शुद्ध कतरा हुआ कुचला, नौसादर और हुक्के का मैल, इन आठ औषधियो को समान भाग ले चूर्ण कर लें। फिर इस चूर्ण को तीन भावनाएँ आक के दूध की देकर छाह मे सुखा ले और फिर पीस कर शीशी में भर लें।

मखजनुल अकसीर नामक ग्रन्थ के ग्रन्थकार का कथन है कि कैसे ही जहरीले साप ने काटा हो, उसपर इस औषधि के प्रयोग से लाभ होता है। काटे हुए स्थान पर थोड़ा-सा चीरा लगाकर एक रत्ती दवा उस पर मसल देना चाहिए। यदि जहर चढ चुका हो तो, एक रत्ती दवा पानी में घोलकर पिलाना चाहिये जिससे वमन होकर जहर निकल जायगा। अगर रोगी बेहोश हो तो थोड़ी-सी दवा पोली नली के जरिये नाक मे फूकने से वह होश मे आ जायगा।

(२) आक की जड़ को कपास की जड़ के साथ पीसकर थोड़ा जल मिलाकर पीने से साप के जहर में लाभ होता है।

(३) बिच्छू के डङ्क पर पहले गूगल की धूनी देकर फिर आक के पत्तों को पीसकर लेप करने से वेदना शान्त होती है।

(४) बिच्छू के डङ्क पर आक का दूध मसलने से भी लाभ होता है।

(५) आक के सम्पूर्ण पञ्चाङ्ग (फल, फूल, पत्ते, डाली और जड़) को जलाकर राख कर लें। उस राख को पानी मे घोलकर तीन दिन तक पड़ी रहने दें। उसके बाद उसपर के साफ पानी को नितार कर आग पर चढ़ा दे। जब रबड़ी के समान हो जाय, तब उतार कर सुखा ले। यह आक का क्षार है।

जिस आदमी को बिच्छू ने काटा हो, उसको दो रत्ती यह क्षार लेकर हथेली में थोड़े नमक और पारे के साथ थूक में मिलाकर डङ्क पर लगाने से तत्काल वेदना का शमन होता है।

मस्तकरोग, नजला और आधाशीशी—

(१) जङ्गली कण्डों की राख को आक के दूध मे तर करके छाया में सुखाकर शीशी में भर लेना चाहिये, इसमें से एक रत्ती भस्म सुँघाने से छींकें आकर सिर का दर्द, आधाशीशी, जुकाम, बेहोशी इत्यादि रोग आराम होते हैं। यह औषधि बहुत तीव्र है। इसलिये इसे गर्भवती स्त्री और बालकों को नहीं सुँघाना चाहिये। अगर इसकी छींकें बन्द न हों तो थोड़ा गाय का घी गरम करके सुँघाने से शान्ति हो जाती है।

(२) सफेद चाँवल, नीलाथूथा, कपूर दो-दो तोला, सोंठ एक तोला, इन सब चीजों को बारीक पीस कर आँकडे के दूध मे तर करके सुखा लेना चाहिये। फिर इस चूर्ण को थोड़ा आग पर भूनकर पीस लें। इस चूर्ण को थोड़ी मात्रा मे बादाम के तेल मे या बकरी के दूध में मिलाकर नाक मे टपकाने से सिर-दर्द, आधाशीशी, समलवायु, पुराना नजला इत्यादि रोग दूर होते हैं।

(३) अनार की छाल चार तोला खूब महीन पीस कर आक के दूध मे आटे की तरह गूँध कर उसकी रोटी बना, मन्दी आँच से पकालें, फिर इसे सुखाकर बारीक पीस लें और ३ माशे जटामासी, ३ माशे छड़ीला, १॥ माशे इलायची और १॥ माशे कायफल, इन सबका चूर्ण बनाकर रख लें। इसकादल इतिब्बा के लेखक लिखते हैं कि इस दवा को सुँघाने से सख्त छींकें आकर नजला, जुकाम, बेहोशी इत्यादि रोग दूर होते है।

मृगी और अपस्मार—

(१) इसके ताजे फूल और कालीमिर्च दोनो को बराबर लेकर ढाई २ रत्ती की गोलियाँ बना कर दिन मे तीन-चार बार देने से मृगी, श्वास, वाइटे, रुधिर विकार और स्नायुरोग मिटते हैं।

(२) इसकी जड की छाल को बकरी के दूध मे पीसकर नाक मे टपकाने से मृगी का वेग रुकता है।

(३) एक यूनानी लेखक का कथन है कि जब चार घड़ी दिन शेष रहे, तब मृगी के रोगी के पैर के तलवों पर आक का दूध लगाकर उस पर कालीमिर्च का बारीक चूर्ण भुर-भुरा दे। फिर पाँव के तलवे पर मदार का पत्ता बाँध कर मौजा पहन ले। चालीस दिनतक बिना पैर धोए, यह योग करते रहने से मृगी का नाश हो जाता है।

नेत्ररोग—

(१) बगसेन का कथन है कि १ तोला आक की जड की छाल को कूटकर, पावभर पानी में घंटे भर तक भिगोकर उस पानी को छान लें, इस पानी को बूंद २ आंख में डालने से आंख की लाली, मागेरन और आंख की खुजली दूर होती है।

(२) सफेद आक की जड़ को मक्खन के साथ पीसकर सुरमे की तरह आख में आंजने से आंख की रोशनी तेज होती है।

(३) पुरानी रूई को तीन बार आकडे के दूध में भिंगोकर सुखा देना चाहिये, फिर उसको तेल में तर करके सीपी में जला लेना चाहिए। इस राख को आँख में आजने से आँख की फूली कट जाती है, ऐसा एक यूनानी हकीम का कहना है।

(४) पुरानी ईंट का महीन चूर्ण एक तोला लेकर आक के दूध में तर करके सुखा लें और ६ दाने लौंग के मिलाकर उसे बारीक कर ले, इसमें से थोड़ा-सा चूर्ण नाक के जरिये सूंघने से मोतियाविन्द में लाभ होता।

कर्णरोग—

(१) आक के पीले पत्तों को पोंछ कर उन पर कुछ घी लगाकर अग्नि पर तपाना चाहिये, जब वे सिमटने लगे तब हाथ मे उनको मसल कर कान में निचोने से कान का दर्द मिटता है।

(२) आक का बिना छेद का पीला पत्ता लेकर अग्नि पर उसे तपा कर उसका रस कान में निचोने से बहरेपन में लाभ होता है।

(३) आक के फूल और कोमल पत्तों को काजी में पीसकर थोड़ा तिल का तेल और सेंधा नमक मिलाकर थूहर के डण्डे को पोला कर उसमें भर देना चाहिये, फिर उस डण्डे के चारों ओर आक का पत्ता लपेट कर धागे से बाँधकर कपड़-मिट्टी कर आग में पकाना चाहिये, जब ऊपर की मिट्टी लाल हो जाय, तब उसे निकाल कर, उसका गरम २ रस कान में टपकाना चाहिए। सुश्रुताचार्य का कथन है कि इससे सब प्रकार के कान के दर्द दूर होते है।

(४) बृहन्निघंटु-रत्नाकर का मत है कि पोकरमूल, दालचीनी, चीता, गुड़, दन्तीबीज, कूट और कसीस को आक के दूध मे पीसकर लेप करने से कर्णशूल नष्ट होता है।

दंतरोग—

(१) आक के दूध में रूई भिगोकर उसे घी मे तलकर डाढ में रखने से डाढ का दर्द मिटता है।

(२) आक की जड़ की छाल को पानी मे घिसकर दात में रखने से दात का कीड़ा मर जाता है।

(३) वाग्भट्ट का कथन है कि कीड़े से खाए हुये दात की कोचर में आक का दूध और सतीवन का चूर्ण करके भर दे और रोगी को थूँक निगलने से रोक दे। इससे दंत-शूल दूर हो जाता है।

पथरी—

(१) बृहन्निघटु-रत्नाकर का कथन है कि आक (मदार) के फूल को गाय के दूध में पीसकर तीन दिन तक रोज प्रातःकाल लेने से जलनयुक्त पथरी रोग नाश होता है।

(२) छाया में सुखाए हुए आक के फूल, जवाखार, कलमीशोरा और कुसुमबीज, इन सब औषधियों को समान भाग लेकर हरी दूब के रस मे खरल कर सुखा लेना चाहिये। इसमें से ३ माशा चूर्ण बकरी के दूध के साथ लेने से बस्ती और गुर्दे की पथरी तथा मूत्रावरोध का नाश होता है।

वाजीकरण—

(१) एक सेर गाय का घी कढ़ाई में डालकर उसमें साफ किया हुआ एक २ आक का नवीन पत्ता डालकर जलाते जायँ, जब सौ पत्ते जल जायँ, तब उस घी को छानकर बोतल मे भर लें। इस घी में से २ तोला घी, दूध या रोटी के साथ सेवन करने से कफप्रकृति के लोगों में अत्यन्त मैथुनशक्ति जाग्रत होती है। इसके अतिरिक्त यह घी कफज-व्याधि और पेट में पड़े हुए केंचुओं को भी नष्ट करता है।

(२) गंधक, मस्तगी, हीरा कसीस प्रत्येक ६ तोला, फिटकिरी और सिंगरफ हर एक तीन २ तोला लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को रोहू मछली के पित्ते की सौ भावना दे। फिर आक के बीज जो उसके रूई के बीच में काले रग के होते हैं, उनको इकट्ठे करकोल्हू में पेर कर उनका तेल निकलवायें। इस तेल को एक पाव लेकर ऊपर लिखी दवाइयों का चूर्ण इसमें खरल करके एक दिल करलें। उसके बाद आक की रूई की कुछ मोटी बत्तियाँ बनाकर इस खरल की हुई औषधि में तर करलें, फिर इन बत्तियों को लोहे की छड पर लपेट कर उनमे आग लगा दें और उन छड़ों के नीचे एक चीनी का साफ बर्तन रखें। जिससे उन बत्तियों में से जो तेल टपके वह उसके अन्दर इकट्ठा हो जाय। इस तेल को छान कर शीशी में भरकर रख लेवें।

मखजनूल अक्सीर के लेखक का कथन है कि यह एक अक्सीर तेल है, जो जवानी को हमेशा कायम रखता है और बालों को काला करता है। इसकी सेवन विधि इस प्रकार है—लगभग एक खस के बराबर यह तेल रोटी के ग्रास में रखकर निगल जाना चाहिए और एक खस रोटी के कवल में रख, रात के समय एक तरफ के दातों के बीच में रक्खें। दूसरे दिन दूसरी तरफ के दांतों में रक्खें। इस प्रकार दस रात्रि तकप्रयोग करें। इस प्रयोग से बुड्ढा फिर नौजवान हो जाता है। बाल सफेद नहीं होते। गिरे हुए दाँत फिर पैदा होते हैं। काम-शक्ति को पूरी ताकत मिलती है और मुख-मडल खिल जाता है।

(३) आक के दूध को १२ पहर तक गाय के घी में खरल करना चाहिये। इसमें से एक रत्ती घृत प्रतिदिन मूत्रेंद्रिय पर मालिश करने से हस्तमैथुन द्वारा पैदा हुई नपुसकता मिटती है।

आक का दूध निकालने की विधि—

कई औषधियों को तैयार करने और धातुओं को फूकने के लिये वैद्यों को आक के दूध की दिन रात आवश्यकता हुआ करती है, मगर इस दूध को निकालना बड़ा कठिन काम है। इसलिये इसकी एक सरल विधि मिफ्ताहुल खजाइन के ग्रन्थकार ने लिखी है जो इस प्रकार है—

“ आक का एक पुराना झाड़ जड़ सहित उखाड कर जड़ की मिट्टी को भली प्रकार से साफ कर लें, फिर उसकी जड़ मे ऊपर का छिलका इस तरह छील डालें, जैसे मूली गाजर इत्यादि को छीला

जाता है। जड की छाल छुडा कर सम्पूर्ण झाड़ को किसी बडे बर्तन में रख दे। उस बर्तन में सारे झाड़ का दूध अपने आप जड़ की राह से इकट्ठा हो जायगा। इस विधि से बिना कष्ट के सेरों दूध इकट्ठा हो जाता है।

आग के द्वारा धातुओं का फूकना—

अभ्रक भस्म—शुद्ध धान्याभ्रक ॐ को लेकर आँकडे के दूध में एक दिन तक अच्छी तरह से घोटकर उसकी दो २ रुपये भर की टिकड़ियाँ बना लेना चाहिये। इन टिकड़ियों को धूप में सुखाकर, सराव-सपुट में रखकर, जगली कडों की आँच में गजपुट मे रखकर, फूकना चाहिये। इस प्रकार ५० बार इन टिकड़ियो को आक के दूध मे घोट २ कर गजपुट मे फूकना चाहिये। उसके पश्चात् भस्म को हथेली में घिसकर धूप में रखकर देखना चाहिये। अगर उसमें जरा भी चमक नजर आवे तो दस-पाँच पुट और देना चाहिये। जब भस्म बिल्कुल निश्चंद्र अर्थात चमक रहित हो जाय, तब उसे बड़ की अन्तरछाल के काढ़े में घोट २ कर तीन पुट और देना चाहिये। इस प्रकार उत्तम भस्म तैयार हो जायगी।

इस भस्म को १॥ रत्ती से ३ रत्ती तक की मात्रा मे शहद के साथ लेने से सब प्रकार की कमजोरी, क्षीणता, धातुक्षय, खाँसी, क्षय, कफ, श्वास इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। पान के रस के साथ लेने से सर्दी के विकार, निमोनियाँ खाँसी और श्वास में लाभ होता है।

साँभर के सींग की भस्म—साँभर के सींग को लेकर उसके चार २ इच के लम्बे और उँगली के बराबर मोटे टुकडे कर, उन्हे २४ घटे तक आक के दूध में भिगोकर रखना चाहिये। फिर जंगली कंडों की भरी हुई सिगडी में उन्हें रखकर जलाना चाहिये। यह जलाने की क्रिया खुले स्थान पर करना चाहिये, क्योंकि इसमें से बहुत दुर्गन्ध निकलती है। जब धुआ बद हो जाय और वे टुकडे जल जायँ, तब उन्हे निकाल कर ठडे करके पीस लेना चाहिये। इस चूर्ण को आकड़े के दूध में खरल करके दो २ तोले की टिकड़ियाँ बनाकर सुखा लेना चाहिये। सूखने पर इन टिकडियों को मिट्टी की हाडी में रखकर उस पर ऐसी ढँकनी लगाना चाहिये, जिसके बीच में उँगली के बराबर छेद हो। फिर इस हाडी को गजपुट में रखकर फूक देना चाहिये। ठडा होने पर निकालने से इसमें सफेद रंग की उत्तम भस्म प्राप्त होगी। अगर इसका रंग बराबर सफेद नहीं हुआ हो तो इसी प्रकार एक पुट और देना चाहिये।

इस भस्म को ३ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से पसली का दर्द, खासी, निमोनिया, डिब्बा, इनफ्ल्यूएन्झा, सर्दी और सास लेने के कष्ट में बड़ा लाभ होता है।

शखभस्म—अच्छे बड़े शख को लाकर उसको आग में गरम कर के दो-तीन दफे नीम्बू के रस में बुझा लेना चाहिये। इससे वह शुद्ध होकर उसका चूर्ण हो जायगा। शंख के इस चूर्ण को आँकड़े के दूध में घोटकर टिकड़ी बना लेना चाहिये। इस टिकड़ी को आँकड़े के फूलों की लुग्दी में रखकर, सराव-सपुट में रख, कपड़-मिट्टी कर, गजपुट में फूंक देना चाहिये। इस प्रकार २१ बार उसे आँकड़े के दूध में घोट २ कर गजपुट में फूकना चाहिये, जिसमे अति उत्तम प्रभावशाली शंखभस्म तैयार

ॐ नोट—धान्याभ्रक बनाने की विधि पहले इसी ग्रन्थ में अभ्रक के प्रकरण में दी जा चुकी है।

होगी। इस भस्म को ३ से ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ देने से पेट के तमाम दर्द, वायुगोला, अतिसार, अजीर्ण, आफरा और खाँसी, कफ, श्वास, मन्दाग्नि और यकृत की दुर्बलताओं का नाश होता है।

नागभस्म—शुद्ध किये हुए सीसे को लोहे की कढ़ाई में डालकर उसको आग पर चढ़ाकर, जब वह पिघल जाय, तब उसमें आंकड़े के हरे फूल थोडे २ डालते हुए लोहे की चमची से हिलाते जाना चाहिये। ८ घटे तक इस प्रकार करने से जब उसकी भस्म हो जाय, तब उसे उतार कर ठंडा करके कपडे से छान लेना चाहिये। इसमें जो सीसे का कच्चा भाग निकले उसे फिर आग पर चढ़ाकर आँकडे के फूलों के साथ जलाना चाहिये। फिर इस सब भस्म को इकट्ठी कर उसका जितना वजन हो उससे बारहवाँ भाग शुद्ध मैंसल डालकर उसे अडूसे के पत्तों के रस में या गवांरपाठे के रस में घोट-कर टिकडी बनाकर हलके गजपुट में फूकना चाहिये। इस प्रकार दस-बारह बार उसे घोट २ कर गज-पुट में फूकना चाहिये जिससे उत्तम पीले रग की भस्म तैयार हो जायगी।

इस भस्म की एक से दो रत्ती की मात्रा में शहद के साथ लेने से प्रमेह, प्रदर, वीर्य की कमजोरी श्वास गुल्म वगैरह रोग दूर होते हैं।

इसके सिवाय और भी अनेकों भस्में आँकडे के दूध के संयोग से तैयार होती है, जिनका वर्णन यथा स्थान किया जायगा। शायद ही कोई भस्म की विधि ऐसी होगी, जिसमें आँकड़े के दूध को योजित न किया गया हो। इसी बात को लक्ष्य में रखकर शायद शार्ङ्गधर-सहिता में यह श्लोक कहा गया है—

श्लोक—"शिला गधार्क दुग्धाक्ताः, स्वर्णाद्याः सर्वधातवः।
म्रियते द्वादश पुटैः, सत्य गुरु वचो यथा॥"

शिलागन्ध (गन्धक) और आक (मन्दार) के दूध में भिगोकर सुवर्ण से लेकर सब प्रकार की धातुएँ मारी (भस्म) जाती हैं, बशर्ते कि उनको इसी प्रकार बारह वार भावनाएँ दी जाएँ। यह बात गुरु के कहे हुये वचन के प्रमाण के अनुसार सत्य है।

उपरोक्त सारे अवतरणों से यह मालूम होता है कि प्राचीन आयुर्वेदाचार्यों ने और यूनानी हकीमों ने इस औषधि के अनेकों प्रभावशाली और दिव्य गुणों का अनुभव किया था। आज भी यह औषधि उसी प्रभाव के साथ आयुर्वेद में अपना काम कर रही है।

आकाहूली

वर्णन तथा गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी ग्रंथों के अन्दर यह एक प्रसिद्ध बूटी मानी गई है, जो खास तौर से बवासीर में लाभदायक है। यह पहले दर्जे में गरम और खुश्क मानी गई है। पुट्ठों और जोड़ों को यह हानि पहुँचाती है। इसका प्रतिनिधि खुरपे का शाक है तथा इसके दर्प को नष्ट करने वाले शहद और अदरख हैं।

मुहीत आजम के मतानुसार यह औषधि पेट के कीडे, कफ तथा पित्त के विकार और प्रमेह को दूर करती है। इसको ७ माशे की मात्रा में, ७ कालीमिर्च के साथ ठंडाई की तरह पीसकर आधपाव पानी के साथ छानकर रोजाना पीने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

बुस्तानुल-मुफरीदात के मतानुसार यह सूजन को उतारने वाली और मिचलाहट (मतली) तथा पित्त की दस्तों में लाभ पहुँचाती है।

आगनाद

नाम—

संस्कृत—अम्बष्टपाठा, वनतिक्तिका । हिन्दी—आगनाद । बंगाली—अकनदी । नेपाली—तम्बार्कि । उड़िया—ओकनुमिंडी । लेटिन—Stephania Hernandifolia. (स्टेफनिया हरनॅडीफोलिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार का पराश्रयी झाड़ीनुमा वृक्ष है। इसकी शाखाएँ बड़ी नाजुक होती हैं। इसके पत्ते ऊपर कुछ चिकने और नीचे की तरफ कुछ हलके हरे रंग के रहते हैं। इसके फूल नर और नारी दो तरह के होते हैं। यह पौधा पूर्वीय बगाल, आसाम तथा पश्चिमीय और पूर्वीय सामुद्रिक किनारों पर होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि प्रायः पाठा (Cissampelos Poreira) के स्थान पर काम में ली जाती है। यह कड़वी, संकोचक, सरलता से पचने लायक तथा ज्वर, अतिसार, मूत्र सम्बन्धी बीमारियाँ और मंदाग्नि में बडी लाभदायक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार वन-तिक्तिका, मंदाग्नि, रक्तातिसार और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में बड़ी उपयोगी है। इसमें सेपॉनिन नामक एक पदार्थ निकलता है।

आड़ू

नाम—

संस्कृत—आरुक। हिन्दी—आड़ू। बंगाली—पीच। अरबी—खुज, परसिक। पंजाब—आरु। फारसी—शफ्तालू। उर्दू—अदूद। अंग्रेजी—Peach (पीच)। लेटिन—Prunus Persica. (प्रूनस परसिका)

वर्णन—

वास्तव में यह वृक्ष चीन का है। योरप और पश्चिमी एशिया में भी यह बोया जाता है। भारतवर्ष में हिमालय पहाड़, मनीपुर और उत्तरी वर्मा में यह वृक्ष होता है। यह एक छोटे कद का झाड़ होता है। इसके फूल हलके गुलाबी रंग के और फल खट-मीठे और गुठलीदार होता है। इसकी गुठली पर रेखाएँ होती हैं। इसके एक प्रकार का गोंद लगता है। इसकी जड की छाल रंगत के काम में आती है। इसकी गिरी में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। जो कड़वे बादाम के तेल की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आडू हृदय को बल देने वाला तथा प्रमेह, बवासीर, गुल्म और रक्तदोष को नष्ट करने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में सर्द और तर है। यह वात एवं कफ प्रकृति के लोगों को हानि पहुँचाने वाला और ज्वर पैदा करने वाला है। इसका प्रतिनिधि अमरूद और इसके दर्प को नाश करने वाले शहद और सोंठ हैं।

इसके पत्ते कृमिनाशक और घाव को भरने वाले होते हैं। ये धवलरोग और बवासीर में भी उपयोग में लिये जाते हैं। इसके फूल दूध बढ़ाने वाले होते हैं। इसके फल कामोद्दीपक, मस्तिष्क को बल देने वाले और खून को बढ़ाने वाले होते हैं। ये मुँह और कफ की दुर्गन्धि को दूर करते हैं। इसके बीजों का तेल गर्भ-स्रावक है। यह बवासीर, बहरापन, पेट की तकलीफ और कान के दर्द को मिटाता है। पंजाब के निवासी इस फल को कृमिनाशक वस्तु की तरह उपयोग में लेते हैं।

इंडो-चायना में इसकी छाल जलोदर रोग में लाभदायक समझी जाती है। इसके बीज कृमिनाशक और दुग्धवर्द्धक माने जाते हैं।

यूरोप में इसकी छाल और पत्ते शान्तिदायक, मूत्रल और कफ-निस्सारक माने जाते हैं। अँतड़ियों जलन की और पाकस्थली के दर्द पर भी यह बहुत मुफीद माना गया है। खांसी, कुक्कुर खांसी और वायु-नलियों के प्रदाह में भी यह दिया जाता है।

ट्रांसवाल में इसके पत्तो का शीतल क्वाथ उन लड़कियों को देते है, जिनको बहुत समय तक मासिक स्राव नहीं होता।

कर्नल चोपडा के मतानुसार इसके फूल विरेचक हैं और इसका फल अग्निवर्द्धक और शान्ति-दायक है। इसमें [ ]सिक एसिड नामक एक तत्व पाया जाता है।

वेलफोर के मतानुसार इसका फल स्कर्व्हीरोग में लाभ पहुँचाने वाला, आमाशय को बल देने वाला और पाचक है।

इडियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसका पका हुआ फल कोठे को मुलायम करने वाला और लघुपाकी है। इसकी पत्तियो का काढ़ा पेट के कृमियों को नष्ट करने वाला और अवसादक है।

एक अन्य यूनानी ग्रथकार के मतानुसार इसके पत्तों का स्वरस १ छटाक की मात्रा में पीने से तथा पेडू पर पत्तों का लेप करने से पेट के कीड़े और केचुए निकल जाते है। इसके फूल और गुठली बवासीर में लाभदायक है।

उपयोग—

विरेचन—इसके फूलों का क्वाथ पिलाने से हल्का विरेचन होता है।

आमाशय का शूल—इसके फल के रस में अजवायन का चूर्ण मिलाकर पिलाने से आमाशय का शूल मिटता है।

आँतों के कीड़े—इसके फल के रस मे थोड़ी-सी सेकी हुई हींग मिलाकर पिलाने से आँतों के कीड़े मरते हैं।

बच्चों के पेट के कृमि—इसके पत्तों का रस पिलाने से बच्चों के पेट में पड़ने वाले कृमि (चुरने) नष्ट होते है।

कर्णशूल—इसके बीजो का तेल कान मे डालने से कान के दर्द और बहरेपन में लाभ होता है।

चर्म-रोग—इसके बीजों के तेल की मालिश करने से चमड़े पर होने वाली पीली फुंसियाँ मिटती है।

इसका उपयोग करने के लिये प्रायः इसका ठडा काढ़ा (हिम) और इसका शर्बत ही उपयोग में लिया जाता है।

आतजौ

नाम—

फारसी—जौगन्दुम, जौविरहन । अरबी—सुल्त, सिल्त । यूनानी—तरागीश ।

वर्णन—

यह एक प्रकार की छोटी जाति का जौ है, जो कि अरब और फारस में विशेष पैदा होता है । कोई २ इसे खन्दरूस भी कहते हैं । किसी २ ने इसको काल-मेध और यव-तिक्ता भी लिखा है । मगर वास्तव में यह एक दूसरी वस्तु है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह पहिले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में तर है । इसका स्वाद कुछ मिठास लिये हुए फीका होता है । यह आमाशय को हानि पहुँचाता है । इसके दर्प को नष्ट करने वाली चीजें सौंफ, शक्कर और गाय का दूध है ।

मुहीतआजम के मतानुसार यह मूत्रवर्द्धक और गुर्दे तथा बस्ती के मल को शुद्ध करने वाला है । इसका लेप सूजन और बढ़ी हुई तिल्ली को नाश करता है । इसके काढ़े में बैठने से बवासीर का दर्द शान्त होता है । इस काढ़े से मुँह धोने से मुँह की कांति निखर जाती है । इसकी अध-पकी रोटी को गरम-गरम सिर पर रखने से प्रलाप में लाभ होता है । यह औषधि खांसी और सीने की बीमारी में भी लाभदायक है ।

आतरीलाल

नाम—

हिन्दी और यूनानी—आतरीलाल, इतरीलाल । फारसी—तुख्म खिलाले खलील । लैटिन—Anthriscus Cerefolium. (एंथ्रिसकस सेरीफोलियम)

वर्णन—

यह एक प्रकार की बूटी है, जो योरप तथा मिश्र में होती है । इसके बीज जंगली अजमोद की तरह होते हैं । यह वस्तु भारतीय बाजारों में करीब २ दुष्प्राप्य है । कोई २ औषधि विक्रेता इसके स्थान पर काकजंघा और बकुची के बीज देते हैं, मगर वह असली आतरीलाल नहीं है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यह औषधि तीसरे और चौथे दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे के अंत में रूक्ष है। विशेष तौर से इस औषधि का उपयोग श्वित्र (सफेद दाग) और व्रणरोग में किया जाता है। इसका उपयोग करने की कई रीतियाँ हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार है—

(१) पहले वमन-विरेचन से शरीर को शुद्ध करके उसके बाद ३॥ माशे आतरीलाल, ७ रत्ती अकरकरे के साथ पीसकर शहद में मिलाकर चटाना चाहिये और थोडी सिरके में पीसकर सफेद दाग के स्थानपर लेप करना चाहिये। उसके पश्चात् घंटा-दो-घंटा धूप में बैठना चाहिये। इसके परिणाम स्वरूप उस स्थान पर एक फोला पैदा होगा और उसके जरिये सफेद रंग का पानी बिना किसी तकलीफ के बाहर निकल जायगा। फिर उस स्थान पर दवा लगाना बंद करदें, जिससे खुरंट जमकर रोगी आराम हो जायगा।

(२) आतरीलाल ३॥ माशे, सुदाब की पत्ती १॥। माशे और साँप की काँचली १॥। माशे, इन सबको कूट, छानकर एक सप्ताह तक १० तोला अंगूरी शराब के साथ पिलावें। इससे बहुत शीघ्र रोगी श्वित्र के रोग से मुक्त होता है।

इसके अतिरिक्त यह औषधि मूत्रनिस्सारक, रजस्राव-प्रवर्तक, कृमिघ्न और गर्भघातक है। आमाशय और यकृत के रोगों में यह लाभकारी है। इसका लेप घाव को सुखाने वाला है तथा इसका शर्बत श्वासोच्छ्वास की नलियों को साफ करता है। इसके बीजों को पीसकर गर्भिणी के नाक में फूकने से गर्भपात हो जाता है, इसलिये गर्भिणी स्त्री को इसका कोई प्रयोग नहीं करना चाहिये।

ग्राइनी के मतानुसार यह औषधि अत्यन्त सम्भोग से आई हुई शरीर क्षीणता को दूर करती है, और वृद्धावस्था की शक्तिहीनता में उत्तेजक प्रभाव पैदा करती है।

हकीम डिसकोरीडस के मतानुसार यह मूत्रनिस्सारक, आमाशय-बलप्रद और रोधोद्घाटक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वस्तु मूत्रलव अग्निप्रवर्द्धक है। यह कुछ आक्षेपनाशक भी मानी जाती है, इसमें इसेंशिअल ऑइल व ग्लुकोसाइड पाया जाता है।

इंडियन मेडिकल प्लाट्स के रचयिताओं ने आतरीलाल का लेटिन नाम Peristrobhe Bicalyeulata लिखकर उसका वर्णन किया है। मगर वास्तव में यह नाम काली अंधीझरिया का है, जिसका वर्णन यथास्थान पर किया जायगा।

आनिसुननफस

वर्णन तथा गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि मिस्र और शाम मे अधिकतर पैदा होती है। यूनानी-चिकित्सा ग्रन्थों में इस औषधि का उल्लेख पाया जाता है। उनके मतानुसार यह पहिले दर्जे में गर्म और रुक्ष है। इसका रस मस्तिष्क और अंत.करण को बल देने वाला और आल्हादकारक है। इसके स्वरस का प्रयोग करने से आँख की फूली में लाभ होता है। इसके स्वरस से बनाई हुई शराब मादक और स्मरणशक्ति को बढ़ाने वाली है। इसके बीज कामोद्दीपक, सौंदर्यवर्द्धक तथा दूध, आर्त्तव, स्वेद, और मूत्रप्रवर्तक हैं। (आयुर्वेदीय-कोष)

आबनूस

नाम—

फारसी—आबनूस। लैटिन—Diospyros Ebinaster.

वर्णन—

यह एक तिंदु की जाति का हमेशा हरा रहने वाला पेड़ हैं। इसकी पत्ती सनोवर की पत्ती से कुछ बड़ी व फूल और बीज मेंहदी के बीज व फूलो की तरह होते हैं। इसका पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसके सार की लकडी बहुत काली और वजनी हो जाती है। यह काली लकड़ी आबनूस के नाम से मशहूर है। यह पानी में डालने से डूब जाती है और इसे आग पर डालने से सुगन्ध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—मखजनूल अदविया के मतानुसार आबनूस की लकड़ी का सार मूत्रनिस्सारक, पथरी को नष्ट करने वाला और नकसीर में लाभ पहुँचाने वाला है। इसके सार को बहुत महीन पीसकर आख में आजने से आख की हल्की फूली, ऑख की खुजली और रतोंधी में लाभ पहुँचता है, इसको शराब में मिलाकर लगाने से कठमाला में लाभ होता है। इसके सूखे फलों का चूर्ण श्वेत-प्रदर और अतिसार में लाभ पहुँचाता है।

आम्बीहलदी

नाम—

संस्कृत—आम्रहरिद्रा, कर्पुरहरिद्रा, आम्रगन्धहरिद्रा, वनहरिद्रा। हिन्दी—आबाहलदी, आमा-हलदी। मराठी—आंबेहलद, रानहलद। गुजराती—आबहलद, बनहल्दर। तामील—कस्तूरीमंजल। तेलगू—कस्तूरीपसुपु। बङ्गाली-बनहलद। अरबी—जद्वार। लैटिन—Curcuma Aromatica. (करक्यूमा एरोमेटिका)।

वर्णन—

यह औषधि खास करके बंगाल और पश्चिमी प्रायद्वीप में होती है। इसकी जड़ें लम्बी और बहुत दूर तक फैली हुई होती हैं। उनमें कुछ गन्ध भी होती है। इसके पत्ते बड़े और हरे रंग के होते हैं। ऊपर से उनका अनेक प्रकार का रंग नजर आता है। पत्ते निकलने के बाद ही इसके फूल निकलने लगते हैं, जो सुगन्धित होते हैं। इसका कन्द, हलदी या शलगम की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से आंबी हलदी शीतल, वात-रक्त और विष को नष्ट करने वाली, वीर्यवर्द्धक, सन्निपातनाशक, रुचिदायक, हलकी, अग्नि को दीपन करने वाली, सारक तथा कफ, उग्रव्रण, खांसी, श्वास, हिचकी, ज्वर और चोट से उत्पन्न हुई सूजन को नष्ट करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे में उष्ण और रुक्ष, स्वाद में कड़वी और बदजायका होती है। यह हृदय को नुकसान पहुँचाती है। इसके प्रतिनिधि बकुची और हलदी हैं।

यह वातरोग को नष्ट करने वाली, पथरी को निकालने वाली और मूत्रावरोध, खुजली और चोट पर लाभ पहुँचाने वाली है।

डायमाक के मतानुसार जगली हलदी के गुण, धर्म विशेष कर सादी हल्दी के समान है। चोट तथा मोंच इत्यादि में हिन्दुस्तानी लोग दूसरी औषधि के साथ लेपद्रव्यों में इसका उपयोग करते हैं। मोतीज्वर वगैरह के दबे हुए दानों को उभाड़ने के लिये भी कड़वी और सुगन्धित औषधियों के साथ इसका उपयोग होता है।

एन्सली के मतानुसार दक्षिणी भारत के मुसलमान इसे सर्पदंश में एक मूल्यवान औषधि समझते हैं। वे इसे थोड़ी २ मात्रा में हरताल और अजवायन के साथ काम में लेते हैं। मगर महेस्कर और केस के मतानुसार सर्पदंश मे यह औषधि बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि पेट के आफरे को दूर करने वाली होती है। यह सर्पदंश में भी उपयोगी मानी जाती है। इसमें .६ इसेंशियल ऑईल पाया जाता है।

उपयोग—

सर्पविष—तबकिया हरताल, कूट और अजवायन के साथ में इसकी गोली बनाकर देने से सर्प के विष में लाभ होता है।

मस्तक पीड़ा—लोबान के साथ इसको पीसकर गरम कर ललाट पर लेप करने से स्नायु सम्बन्धी मस्तक पीड़ा मिटती है।

उदर *पीड़ा*—इसका धुआँ पीने से पेट का दर्द शान्त होता है।

—:o:—

आम

नाम—

संस्कृत—आम्र, फलश्रेष्ठ, कामशर, कामवल्लभ, वसतदूत इत्यादि। हिन्दी—आम। बंगाल—आम। मराठी—आँबा। गुजराती—आँबो। कर्नाटकी—माविनफल। तेलंगी—माविडी। इग्लिश—Mango.। फारसी—आँबा। अरबी—अंबज। लेटिन—Mangifera Indica. (मेंगिफेरा इंडिका)।

वर्णन—

आम का वृक्ष भारतवर्ष की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है और जो सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस देश में शायद ही ऐसा कोई भाग्यहीन मनुष्य होगा, जिसने इस अमृतफल का रसास्वादन नहीं किया हो। इसलिये इस फल के विशेष परिचय की यहाँ पर आवश्यकता नहीं। आम की कई जातियाँ होती हैं। जो आम जंगलों में अपने आप पैदा होते हैं, उन्हे रानी आम कहते हैं। जो आम खेतों और बाग-बगीचों में गुटली बोकर पैदा किये जाते हैं, उन्हे देशी आम कहते हैं और जो आम ऊंची जाति के आमों पर से कलम बाँधकर तैयार किये जाते हैं, वे कलमी आम कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त आकार, रूप, रंग, स्वाद, गुण इत्यादि के फरक से इनकी सैकड़ों तरह की जातियाँ जैसे—हाफुस, पायरी, सफेदा, लगडा, नीलम, तोतापरी, राजभोग, कृष्णभोग, मोहनभोग, गुलाबखास इत्यादि होती हैं। फिर भी कलमी और देशी आमों में एक महत्व का भेद होता है और वह यह है कि देशी आम में रेशा होने से उसका रस पतला होता है, जो चूसकर खाने में आ सकता है, मगर कलमी आम में रेशा नहीं होने से वे केवल काट कर खाने में आते हैं औषधि कार्य में कलमी आम की अपेक्षा चूसने के लायक देशी आम ज्यादा गुणकारी होते हैं। क्योंकि वे आसानी से पचजाते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आम के वृक्ष का छिलके से लेकर फल तक प्रत्येक अग-प्रत्यंग औषधि के कार्य मे आता है। इसलिये उन सबका एक साथ उल्लेख करने की अपेक्षा अलग २ उल्लेख करना ज्यादा उपयुक्त होगा।

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से आम का कच्चा फल कसैला, खट्टा, रुचिकारक तथा वात-पित्त को पैदा करने वाला है। यह आँतों को सिकोड़ने वाला, गले की तकलीफों को दूर करने-वाला तथा अतिसार, मूत्रव्याधि और योनिरोग में लाभ पहुँचाने वाला है। कच्चे आम की अमचूर खट्टी, स्वादिष्ट, कसैली, भेदक और कफ, वात को हरने वाली है।

पका हुआ आम—मधुर, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, सुखदायक, भारी, वातविनाशक, कांतिवर्द्धक, शीतल, प्रमेहनाशक तथा व्रण, श्लेष्म और रुधिर के रोगों को दूर करने वाला है।

आम का मोर—शीतल, वातकारक, मलरोधक, अग्निदीपक, रुचिवर्द्धक तथा कफ, पित्त, प्रमेह, प्रदर और अतिसार को नष्ट करने वाला है।

आम की अंतर्छाल—आम की अन्तर्छाल कसैली, मलरोधक, दाहकारक तथा पित्त, प्रमेह और कफ को नाश करने वाली है।

आम की जड़—आम की जड़ कसैली, मलरोधक, शीतल, रुचिदायक, सुगंधित तथा कफ और वात को नाश करने वाली है।

आम के पत्ते—आम के कोमल पत्ते कसैले, मलरोधक, रुचिकारक तथा वात, पित्त और कफ को हरने वाले हैं।

आम की गुठली—आम की गुठली मीठी, तुरी और कुछ कसैली होती है। यह वमन, अतिसार और हृदय के आस-पास की पीडा को दूर करती है। इसके बीज का तेल कसैला, स्वादिष्ट, रूखा, कडवा तथा मुखरोग, कफ व वात को दुरुस्त करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से आम की छाल सकोचक रक्तस्राव को बंद करने वाली तथा वमन और अतिसार को नष्ट करने वाली है। इसके पत्ते बवासीर में लाभ पहुँचाते हैं। इसके पत्तों का धूम्र-पान, कुक्कुर खाँसी को नष्ट करता है।

इसके फूल कफनाशक और रक्तवर्द्धक हैं। इसका फल सुगंधित, मृदु, सुस्वादु और पौष्टिक है। यह यकृत और तिल्ली के लिये लाभदायक है। मुँह की बदबू को दूर करता है, मस्तिष्क को साफ करता है। आलस्य और शरीर की जलन को हटाता है। सौंदर्यवर्द्धक है तथा कफ, बवासीर और यकृत की पीड़ा में उपयोगी है। इसका बीज आँतों के लिये संकोचक है। यह जीर्ण अतिसार मे उपयोगी है, ठंडा और कामोद्दीपक है।

इंडियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसकी छाल और इसका गूदा संकोचक माना जाता है और रक्तस्राव, रक्तातिसार तथा अन्य पीड़ाओं में काम में लिया जाता है। इसके गूदे का काढा, अदरख और बेल की जड के साथ रक्तातिसार में दिया जाता है। इसकी गिरी का रस नकसीर को बन्द करता है। इसके जलते हुए पत्तों का धूम्रपान गले की तकलीफ में मुफीद माना जाता है। इसकी छाल का रस गरमी की बीमारी में काम में आता है। पश्चिमी आफ्रिका के कुछ हिस्सो में आम की अन्तर्छाल बवासीर को ठीक करने में दी जाती है। मेडागास्कर मे इसकी छाल सकोचक मानी जाती है और इसके फल ज्वरनिवारक समझे जाते हैं। इसके बीज संकोचक और कृमिनाशक माने जाते हैं। अमेरिका के अन्दर श्लेष्मिक झिल्लियों को बल देने के लिये इनका अर्क मुफीद माना जाता है। डिफ्थीरिया तथा गले के दूसरे रोगों में भी यह अपना अच्छा असर दिखलाता है।

सुश्रुत और शार्ङ्गधर ने इसकी जड की छाल और पत्तों को सर्प के विष को नष्ट करने वाला माना है, मगर केस और महेस्कर के मतानुसार सॉंप के जहर में इसके सभी अवयव निरुपयोगी सिद्ध हुए हैं।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार आम का फल किंचित कोठे को मृदु करने वाला, मूत्रल, पौष्टिक और रसायन है। इसका कच्चा फल आमाशय को बल देने वाला और स्कर्व्ही रोग को नष्ट करने वाला है। भुने हुए कच्चे आम के गूदे मे शक्कर मिलाकर तैयार किया हुआ, अवलेह हैजे व प्लेग के दिनो में सेवन करने से बड़ा लाभप्रद होता है। इसके फल और फल के छिलके से पैदा किया हुआ अर्क डिफ्थीरिया और कठमाला के रोगों में लाभदायक होता है।

शरीर पर लू लगने की बीमारी में कच्चे आम को भून कर, उसका रस निकाल कर शक्कर मिला कर पिलाने से बड़ा लाभ होता है।

डाक्टर मोहिउद्दीन शरीफ के मतानुसार कलमी आम का गूदा बहुत पोषक होता है। इसका प्रभाव आँतों पर बहुत अच्छा होता है।

डाक्टर आर० एन० खोरी के मतानुसार कच्चा आम स्कर्व्ही रोग में बडा लाभदायक है और पक्का आम रसायन, तृप्तिदायक, पौष्टिक और किंचित मृदुरेचक है।

डाक्टर चोपरा के मतानुसार इसका फल विरेचक, मूत्रल और सकोचक है। इसका छिलटा गर्भाशय के रक्त बहाव में, मुँह से बलगम के साथ खून जाने में एवम् रक्तमय काले दस्त पर काम में लिया जाता है, इसके पत्ते बिच्छू के काटने पर भी लाभदायक है।

आम का रस और मानव शरीर की भीषण व्याधियाँ—

गुजरात के अन्दर कई प्रसिद्ध वैद्यों ने मनुष्य शरीर में होने वाले महान रोगों पर जैसे—क्षय, संग्रहणी, श्वास, रक्त-विकार, वीर्य की कमजोरी इत्यादि रोगों पर केवल आम के रस और दूध पर मनुष्यों को रखकर बड़ी सफलता प्राप्त की है। उनका कथन है कि उत्तम

जाति के पके हुए आमों में मनुष्य शरीर को पोषण करने वाले प्रायः सभी तत्व विद्यमान रहते हैं। इसके मीठे रस में विटामिन (A) "ए" और विटामिन (C) "सी" दोनों प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इन मे से व्हिटामिन "ए" रोगी को बाहर के विषों और कीटाणुओं के प्रभाव से बचाता है, और व्हिटामिन "सी" चर्मरोगो को नष्ट करता है। पके हुए फलों का रस अत्यत पौष्टिक और बलवर्द्धक माना जाता है और यदि उसे दूध के साथ खाया जाय तो उसके गुणों मे और भी वृद्धि हो जाती है। कई एक बीमारियो मे जिनमे रोगी को केवल दूध के पथ्य पर रखने की आवश्यकता होती है, उनमे कई रोगियों को दूध अनुकूल नहीं पडने से विवश होकर छोड़ देना पड़ता है, ऐसे समय में अगर आम के रस के साथ मे दूध का उपयोग किया जाय तो दोनों का सम्मिलित प्रयोग बड़ा लाभदायक सिद्ध होता है। इस रस में मृदुरेचक गुण होने से यह दस्त को साफ लाता है। इस कारण जिन लोगों को कब्जियत रहती है, उन लोगो के लिये यह पथ्यरूप सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त आमाशय और शोष सम्बन्धी रोगों में भी यह बहुत फायदा दिखलाता है। इसलिये इसका प्रयोग करने से संग्रहणी, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, आतों की व्याधियाँ, यकृतवृद्धि इत्यादि रोगों में बड़ा लाभ होता है। क्षय के रोग में भी यह रक्त, मास, वीर्य, ओज व शक्ति को बढ़ाने के लिये बडा उत्तम माना जाता है, इसकी प्रयोग विधि इस प्रकार है—

प्रयोग विधि—

आम के रस का जिस समय प्रयोग जारी किया जाय, उस समय आम के रस और दूध को छोड़कर बाकी सब भोजन बंद कर देना चाहिये। आम रस के साथ गाय का दूध ही विशेष उत्तम होता है। पर यदि क्षयरोग को मिटाने के लिये इसका उपयोग करना हो तो बकरी का दूध भी श्रेष्ठ है। दूध तुरंत का निकाला हुआ धारोष्ण मिल जाय तो बहुत ही अच्छा। अगर न मिल सके तो उसे साधारण तौर से गरम करके पीछा ठडा करके उपयोग में लेना चाहिये। आम उत्तम जाति का देशी लेना चाहिये। खट्टे अथवा अधिक पके हुए आम का कभी उपयोग नहीं करना चाहिये। आम का उपयोग करने के पहले उसे पानी मे ठडा कर देना चाहिये, जिससे उसकी गरमी शात हो जाय। उसके बाद उसको अच्छी तरह से धोकर साफ करके उसका बींट अलग कर देना चाहिये और बींट के पास का थोड़ा-सा रस निकाल कर फेंक देना चाहिये। फिर उस आम को धीरे २ चूसना चाहिये। कई लोग उसको चूसने के बदले उसका रस निकाल कर उपयोग करते हैं, मगर बाहर का निकाला हुआ रस वातजनक और पचने मे भारी हो जाता है। इसलिये उसको चूसकर खाना ही उत्तम है। जिस समय रस का उपयोग किया जा रहा हो, उस समय अगर वायु और कफ का कुछ जोर दिखलाई दे तो अदरक को कतर के उसमें थोड़ा-सा सेंधा नमक मिलाकर खाना चाहिये। साधारण तौर से साधारण प्रकृति के व्यक्ति को दिन भर में एकबार आम का रस और एकबार दूध का सेवन करना चाहिये। पर यदि पाचन-क्रिया आज्ञा दे, तो दो बार आम का रस और दो बार दूध का सेवन भी किया जा सकता है। पहले दूध का उपयोग करके उसके बाद आम के रस का उपयोग करना चाहिये।

इस प्रकार एक महीने से दो महीने तक केवल आम के रस के ऊपर रहने से पाचन-क्रिया शुद्ध होकर लम्बे समय की कब्जियत, मदाग्नि, क्षय, दमा और हृदयरोग के रोगियों को बहुत लाभ होता है, शरीर में नव-जीवन मालूम होता है, खून बढ़ता है, शक्ति आती है और चेहरा सुर्ख हो जाता है।

शोष क्षय के लिये आम का रस—एक पत्थर या चीनी मिट्टी के बर्तन मे उत्तम पके हुए आमों का रस पन्द्रह से बीस तोला डालकर, उसमे शुद्ध मधुमक्खियों की शहद ५ तोला, मिलाकर सवेरे सेवन करना चाहिये। इसी प्रकार इतनी ही मात्रा मे शाम को भी सेवन करना चाहिये। इसके सिवाय इसके बीच के टाइम में दो तीन दफे गाय अथवा बकरी का धारोष्ण दूध पीना चाहिये। पानी जहाँ तक बने बिल्कुल नहीं पीना चाहिये न दूसरी कोई वस्तु ही खाना चाहिये। अगर पानी के बिना बिल्कुल ही न चले तो बहुत ही थोड़ी मात्रा में थोडा-सा अदरख का रस मिलाकर पीना चाहिये।

इस प्रकार एक महीने से दो महीने तक यह प्रयोग जारी रखने से जीर्णज्वर, शरीर का सूखना, खाँसी इत्यादि उपद्रव दूर हो कर बल, वीर्य, रक्त, मास और ओज की वृद्धि होती है।

संग्रहणी और उदर रोगों के लिये आम—प्रातःकाल दो उत्तम जाति के पके हुए आमों को लेकर, उनको छीलकर उनको चाकू से कतर लेना चाहिये। फिर एक चीनी मिट्टी के या कलई के बर्तन में उन्हे डालकर, उनके ऊपर औटा कर ठण्डा किया हुआ दूध इतना डालना चाहिये कि वे टुकडे उसमें डूब जायें। कुछ समय के बाद उन टुकड़ों को चमची से निकाल कर अच्छी तरह चबा कर खा जाना चाहिये और उसके ऊपर वही दूध पी लेना चाहिये। उसके पश्चात् दिन भर में तीन २ घटे के अन्तर से पाव २ भर दूध पीते रहना चाहिये। इस प्रकार दूध और आम के सिवाय और कोई भी वस्तु खाने-पीने के उपयोग में नहीं लेना चाहिये। ऐसा करते २ जब दस्तों की संख्या घटने लगे तब दोपहर के टाइम में भी दो पके हुए आम की चीरें दूध के साथ देना प्रारभ कर देना चाहिये।

इस प्रकार रोग के अनुसार तीन-चार सप्ताह तक यह प्रयोग चालू रखने से भयंकर संग्रहणी रोग को काबू मे लिया जा सकता है। ऐसे भयकर रोगों के लिये दो-तीन महीने तक यह प्रयोग करने से अत्यत लाभदायक सिद्ध होता है। पर यदि इतना समय न मिल सके तो कम से कम एक महीने तक तो अवश्य इस प्रयोग का उपयोग करना चाहिये।

उपयोग और बनावटें—

श्वेत प्रदर—डाक्टर नॉडकर्नी का मत है कि श्वेत-प्रदर, खूनी बवासीर और फेंफड़े के द्वारा रक्तस्राव होने की दशा मे तथा कृमिरोग में आम की छाल का रस या इसका ठडा काढ़ा ४ तोला और चूने का नितरा हुआ पानी १ तोला, मिलाकर सात दिन तक लेने से बहुत लाभ होता है। आम के पेड़ की छाल और फल के छिलके का रस एक चाय के चम्मच की मात्रा मे एक छटाक जल में

मिलाकर दो २ घटे के अंतर से देने से फेंफड़ा, जरायु और आँतो के द्वारा होने वाला रक्तस्राव बद होता है।

सुजाक—आम के वृक्ष की छाल २ तोला ४ माशा, लेकर जौकुट करके पावभर जल में भिगो दें। सबेरे उसे मल, छानकर पीएँ। इस प्रकार सात दिन तक पीने से सुजाक में लाभ होता है।

गले के रोग—आम के सूखे पत्तों को चिलम मे रखकर पीने से गले के रोग मिटते हैं।

अतिसार-(१) आम की गुठली, बेलगिरी और मिश्री तीनों के समान भाग चूर्ण को तीन माशे से छः माशे तक की मात्रा में देने से अतिसार मिटता है।

(२) इसकी गुठली की गिरी का लपटा करके देने से कष्ट-साध्य अतिसार भी मिट जाता है।

रक्त-प्रदर—इसकी गुठली की गिरी का १०-१५ रत्ती चूर्ण खिलाने से रक्त-प्रदर, खूनी बवासीर और आँतों के कीड़ो का नाश होता है।

हिचकी—आम के पत्तों को चिलम में रखकर पीने से हिचकी मिटती है।

लू लगना—कच्ची केरी को भूमल मे भूनकर उसका रस निकाल कर उसमें मिश्री मिलाकर पीने से लू का असर मिटता है।

आग का जलना—इसकी गुठली की गिरी को पानी में भिगोकर पीसकर आग के जले हुए स्थान पर लगाने से फौरन ठडाई हो जाती है।

आमातिसार—आम की गुठली की गिरी, गोंद और इन्द्रजौ समान भाग ले पीसकर चूर्ण कर एक माशे की मात्रा में दिन में दो-तीन बार देने से जवान मनुष्य का अतिसार मिटता है।

खूनी बवासीर—इसकी कोमल कोंपलों को पानी के साथ पीसकर, थोड़ी-सी शक्कर मिलाकर पिलाने से खूनी बवासीर बन्द हो जाता है।

दाद—इसके फल को तोड़ते समय उसके बींठ में से जो चेप निकलता है, उसको लगाने से दाद मिटता है।

मकड़ी का विष—आमचूर को पीसकर उसका लेप करने से मकड़ी का विष नष्ट होता है।

कर्ण पीड़ा—इसके पत्तों के रस को गुन-गुना करके कान में डालने से कर्णशूल मिटता है।

बवासीर—इसके और जामुन के पत्तों के सवा २ तोले स्वरस को और यदि स्वरस न निकल सके तो पानी के साथ निकाले हुए रस में पावभर दूध मिलाकर थोड़ी मिश्री डालकर ८ दिन तक पीने से खूनी और बादी के बवासीर मिटते हैं।

नेत्र पीड़ा—केरी को पीसकर आँख पर बाँधने से नेत्र-पीड़ा मिटती है।

नक्सीर—इसकी गुठली की गिरी को पीसकर सूँघने से नक्सीर में फायदा होता है।

रक्त-स्राव—बवासीर, प्रदर, अतिसार या और भी किसी कारण से होने वाला रक्तस्राव, आम की अन्तर्छाल का रस २ से ४ तोला दिन में दो बार पीने से बन्द होता है।

बनावटें—

आम्रपाक—पके हुए आमों का रस ४ सेर, मिश्री १ सेर, घी १ पाव, सोंठ का चूर्ण आधापाव, कालीमिर्च का चूर्ण १ छटाक, पीपर का चूर्ण आधी छटांक और पानी १ सेर, इन सबको मिलाकर कलईदार कढ़ाई या मिट्टी की कढाई में मन्दाग्नि से पकाओ और आम की लकड़ी से चलाते रहो। जब रस गाढ़ा हो जावे, तब नीचे उतार लो।

उतारकर धनिया, सफेद जीरा, चीते की छाल, तेजपात, नागरमोथा, दालचीनी, स्याहजीरा, पीपरामूल, नागकेशर, छोटीइलायची, लौंग और जावित्री का महीन पिसा-छना चूर्ण एक २ तोला मिला दें। जब एक दम शीतल हो जावे, तब आधपाव शहद मिला दो।

इसकी मात्रा एक तोले से चार तोले तक की है। इसे भोजन से पहले खाना चाहिये और ऊपर से मिश्री मिलाकर दूध पीना चाहिये। यह आम्रपाक बलवीर्य पैदा करने वाला और रतिशक्ति बढ़ाने वाला है। इसके सिवाय सग्रहणी, क्षय, दमा, अम्लपित्त, रक्तपित्त और पीलिया वगैरह अनेक रोगों में इससे आराम होता है। इसको सदा खाने वाला रोग रहित, पुष्ट और महाबलवान हो जाता है। वीर्य की कमी से जो नपुसक हो गये है, उनके लिये यह बड़ा लाभदायक है।

स्वर शोधक वटी—आम के सूखे मौर ३ तोला, मुलेठी का सत ३ तोला, आँवला ३ तोला, चनकबाब १ तोला, छोटी इलायची के बीज १ तोला, बरियारी १ तोला, मिश्री ४ तोला, इन सब चीजों का कपड़-छन चूर्ण करके, उस चूर्ण को बीज निकाली हुई काली दाखों मे अच्छी तरह से घोटना चाहिये। फिर उसकी चने के बराबर गोलियाँ बना लेना चाहिये। इन गोलियों मे मे एक २ गोली दो २ घण्टे के अन्तर से मुँह में रखने से खाँसी मिटती है, कंठ साफ होता है और स्वर सुरीला हो जाता है। (जगलनी जड़ी-बूटी)।

आम्बगुल

नाम—

बंगाल—गुअरा । बंबई—नागरी, नरगी, आम्बगुल । बर्मा—मिंगु । कनाड़ी—हालिगेबलि, हेजला, हसिबालि, केराहुलि । गढवाल—लोहारू । कुमायूँ—घिवेन, मिजहोला । हिन्दी—घिवेन, आम्बगुल । तामील—कुलंगि,कुलारि । लैटिन-Elaeagnus Lotifolia (इलेगिनस लोटिफोलिया)

वर्णन—

यह एक प्रकार की बहुशाखी झाडी है यह अक्सर ऊँचे वृक्षों पर चढ़ती है । इसकी छाल फिसलनी होती है । इसके पत्ते वर्छी के आकार के और फिसलने होते हैं । इनके ऊपर छोटा व सफेद रुआँ रहता है । इसके फूल बडे २ गुच्छो मे लगते हैं । इसका फल हलके गुलाबी रग का होता है और उसमें आठ मजबूत धारियाँ रहती है, यह वनस्पति विशेष कर भारतवर्ष और सीलोन के पहाड़ी भागों में तथा चीन और मलायाद्वीप समूह में होती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपडा के मतानुसार इसके फूल हृदय को बल देने वाले और संकोचक माने जाते हैं ।

ग्रिफिथ के मतानुसार इसका फल काश्मीर मे सकोचक औषधि के रूप में काम में लिया जाता है ।

आमपीच

वर्णन—

यह एक बडा फलदार वृक्ष होता है जो ऊँचाई में नासपाती के पेड़ के बराबर या उससे भी ऊँचा होता है । इसके पत्ते आम के पत्तो से छोटे और फल बेर के बराबर होते हैं । इसका फल कोई खट्टा, कोई मीठा, कोई बेस्वाद होता है । इन फलों पर खस २ के दानों की तरह सफेद २ दाग होते हैं । इसके फल का छिलका पतला, गुदा सफेद और भीतर काले रंग का घुंगची के बराबर बीज होता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी प्रकृति शीतल और रुक्ष है । इसका फल खाने से कारबकल (Carbuncle.) नामक साघातिक फोड़ों में बहुत लाभ होता है । यह रक्तोत्पादक भी है । यह फल गुदे को नुकसान पहुँचाने वाला है और इसके दर्प को नाश करने वाली शहद है ।

आम्रगंधक

नाम—

संस्कृत—अम्बुज, आम्रगंधक । हिन्दी—कुत्र । बंगाली—कर्पूर । मलायलम—मगानरी । मराठी—अम्बुली । तेलगू—इनाटा । लेटिन—Limnophila Gratioloides. (लिम्नोफिला-ग्रेटिओलॉइड्स)।

वर्णन—

यह एक छोटी जाति का पौधा होता है, जिसमें तारपीन के समान तेज गंध आती है। अक्सर करके यह पौधा प्रारंभ से ही बहुशाखी होता है। इसकी जड़ें नीचे की ओर ज्यादा फैलती हैं। यह पौधा भारतवर्ष के शीत-प्रान्तों में तथा बिलोचिस्तान, सीलोन और चीन में पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह औषधि सडान को रोकने वाली और कृमिनाशक मानी जाती है। साघातिक ज्वरों में शरीर पर मालिश करने के लिये इसका रस काम में लिया जाता है। सोंठ और जीरे के साथ इस औषधि को लेने से अतिसार और प्रवाहिका में लाभ होता है। इसके पौधे का नारियल के तेल के साथ मलहम बनाकर लगाने से हाथी पाँव (श्लीपद) में लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि सड़ान को रोकने वाली है। साघातिक ज्वर में इसकी मालिश और हाथी पाँव (श्लीपद) में इसके मलहम का लेप लाभदायक होता है। इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल पाया जाता है।

इसकी एक जाति और है जिसे लेटिन में Limnophila Gratissima (लिम्नोफिला ग्रेटिसिमा) कहते हैं। इसके गुण दोष भी प्रायः उपरोक्त औषधि की ही तरह हैं, इसके अतिरिक्त यह औषधि ज्वर में ठंडी दवा के बतौर दी जाती है।

आयदुआरीद

नाम—

फारसी—आयदुआरीद।

वर्णन—

यह एक पौधा होता है, जिसकी पत्तियाँ आमचरी के समान होती हैं। यह दूसरे दर्जे मे ठडा और रुक्ष है। इसके खाने मे जीभ स्तम्भित हो जाती है। इसकी जड प्रत्येक अग से होने वाले रक्तस्राव को फिर वह चाहे जिस समय में हो, रोकती है। इसीसे इसका प्रयोग खूनी अतिसार, खूनी बवासीर और खूनी प्रदर इत्यादि रोगों में किया जाता है। जरायु से होने वाले रक्तस्राव को भी यह बद करता है।

———:०:———

आयापान

नाम—

संस्कृत—विशल्यकर्णी। बंगाली—विशल्यकर्णी, आयापान, आयापानी। लेटिन—Eupatorium Ayapan. (यूपेटोरियम आयापान) or Etriplinarve.

वर्णन—

यह वनस्पति बगाल की एक प्रसिद्ध वनस्पति है। इसके वृक्ष मझोले कद के होते है। इसके पौधे बगाल के बाग बगीचों मे चारों तरफ रोपे जाते हैं। इसके पत्ते बडे होते हैं और पत्तों के डठल और उनकी नसें लाल रग की होती हैं। बगीचो के सिवाय बगाल के जंगलो में भी यह वनस्पति पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

ऐसा कहा जाता है कि जब लक्ष्मण को मेघनाद की ब्रह्मशक्ति लगी थी और वे मूर्छित हो गये थे, तब हनुमान गंधमादन-पर्वत के ऊपर से इस औषधि को लाये थे और इसी के द्वारा सुषेण वैद्य ने उन्हें जीवित किया था। इस कथानक मे सत्य का कितना अंश है, यह तो नहीं कहा जा सकता, मगर इसके घाव पूरक और रक्तस्राव-रोधक महान गुण के लिये कलकत्ते के प्रतिष्ठित कविराज हरलाल गुप्ता लिखते हैं कि "रक्तस्राव बद करने के लिये यह एक अमोघ औषधि है। रक्तातिसार, रक्तप्रदर, खूनी बवासीर इत्यादि शरीर के किसी भी भाग से गिरने वाले खून के लिये इसके पत्तों का रस पीने से अत्यन्त लाभ होता है।

कविराज श्रीद्वारकानाथ विद्या-रत्न का कथन है "कि जिस मनुष्य को शस्त्र का गहरा घाव लगा हो, उस मनुष्य को आयापान के पत्तों का रस पिलाने से और इसी रस को घाव की जगह पर लगाने से खून का बहना बंद हो जाता है। इसी प्रकार इसका रस पीने से आमाशय में से गिरने वाला खून भी बंद हो जाता है।

इण्डियन मेडिकल प्लांट्स के रचयिता इस औषधि के सम्बन्ध में लिखते हैं " कि यह एक उत्तेजक औषधि है। कम मात्रा में पौष्टिक और अधिक मात्रा में विरेचक है। इसका गरम काढ़ा वमनकारक और ज्वरनिवारक है। यह मलेरिया के अन्दर भी दिया जाता है ।

"इंडोचायना और गायना में इसके पत्तों का सत्व ज्वरनिवारक और पसीना लाने वाली औषधि के रूप में दिया जाता है। गायना, ब्राम्झील, फिलिपाइन और हिन्दुस्तान में यह औषधि सर्पविष को दूर करने के काम में ली जाती है। इसके लिये इसके सर्वांग का काढ़ा और पत्तों का रस पिलाया जाता है और काटे हुए स्थान पर लगाया जाता है।"

मगर केस और महेस्कर का मत है कि सर्प-विष के इलाज में यह पौधा बिलकुल निरुपयोगी है। इसके पत्ते चाहे पिलाये जायँ, चाहे लगाये जायँ, दोनों ही रूप में कुछ असर नहीं दिखाते हैं।

आरार

नाम—

संस्कृत—ह्लीहहंत्री, मत्स्यगधा, विपघ्नि, अश्वत्थ फल। हिन्दी—हाउवेर, आरार, होवेर। मराठी—होश। पंजाबी—पेत्थरी। दक्षिणी—अभल। अरबी—अभल। उर्दू—अबहल। फारसी—ओरस। लैटिन—Juniperus Communis.

वर्णन—

यह ६-७ फुट ऊँचा वृक्ष होता है। इसके पेदड़ की गोलाई डेढ़-दो फीट की होती है। यूरोप में यह ३०-४० फीट ऊँचा होता है। उसके पेदड़ की गोलाई ४-५ फुट की होती है। इसकी छाल कुछ सफेद भूरे रंग की होती है। इसकी छोटी शाखा सुगन्धयुक्त होती है। इसका फल मीठा और सुगन्धयुक्त होता है। इसके पत्ते कुछ भूरे हरे रंग के होते हैं। इसके छोटे २ फल लगते हैं। उनमें बहुधा तीन २ बीज निकलते हैं। जब इसके फल पूरे बड़े हो जाते हैं और नहीं पकते हैं, तबतक उनमें बहुत तेल रहता है, जब वे पक जाते हैं तो उस तेल का राल जैसा पदार्थ बन जाता है, जो बहुत हलके पीले रंग का होता है और उसमें फूल जैसी बहुत तीव्र गंध होती है।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से यह वनस्पति चरपरी, कड़वी, भारी, गरम, दीपन, क्षुधा-वर्द्धक, पेट के आफरे को दूर करने वाली, कृमिनाशक, विषनिवारक और विरेचक है। यह रक्तातिसार, उदरपीड़ा, पथरी, यकृत और पेट की पीडा, जलोदर, अर्बुद, बच्चों की खाँसी, वायु-नलियो के प्रदाह, कब्जियत तथा योनिरोगों में लाभकारी है।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पौधा खराब गंध वाला, खट्टा, मीठा, और तीखे स्वाद वाला होता है। यह आँतों के लिये हल्का और सकोचक है। यह ज्वरनिवारक और पौष्टिक है। इसकी लकड़ी कड़वी, विरेचक,कृमिनाशक,रक्तस्राव को रोकने वाली,घाव को भरने वाली,मूत्रल और ऋतुस्राव नियामक है। यह कामोद्दीपक, पौष्टिक और रक्तवर्द्धक है। सीने (छाती) की तकलीफों में,वायु नलियों के प्रदाह में, आधाशीशी में, यकृत की बीमारियो मे, बवासीर में तथा अधिक परिश्रम के कारण उत्पन्न हुई तकलीफों में यह लाभकारी है।

इसके फल का तेल ऋतुस्राव-नियामक, गर्भस्रावक और पौष्टिक है। यह कृमिनाशक तथा कर्णशूल, दतशूल और बवासीर में मुफीद है। यह तेल भिन्न २ प्रकार के जलोदर रोगों में उपयोग में लिया जाता है। इसे स्वतंत्ररूप से या दूसरी औषधियों के साथ भी काम में लेते हैं। पुरातन प्रमेह, सुजाक, और श्वेत-प्रदर मे भी इसकी उपयोगिता मानी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह मूत्रनिस्सारक और पेट के आफरे को दूर करने वाली है। इसमें एक प्रकार का उड़नशील तेल रहता है तथा इसके फलों में ऑक्फेलिक एसिड पाया जाता है।

आरकज्वार

नाम—

संथाल—आरक ज्वार। लेटिन—Utricularia Bifida. यूट्रीक्यूलेरिया बिफीडा।

वर्णन—

यह औषधि प्रायः एशिया के गरम प्रांतों में पैदा होती है। इसका वृक्ष बहुशाखी होता है। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं। इसकी फलियाँ बहुत छोटी होती हैं। इसके बीज गोल होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि मूत्र सम्बंधी बीमारियों को दूर करने के लिये उपयोगी मानी जाती है।

आरामशाली

नाम—

हिंदी—रामशीतला, आराम शीतला, गधाढ्या, महानंदा ।

वर्णन—

यह एक प्रकार की सुगंधित तरकारी है जो महाराष्ट्र प्रात में विशेष उपयोग में ली जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह ठडी, कडवी, पित्तनाशक, जलन को मिटाने वाली, सूजन को कम करने वाली तथा अर्श और सांघातिक फोड़ों में लाभ पहुँचाने वाली है ।

आरी

नाम—

संस्कृत—आरि, संदानिका, उद्दाला, खदिरपत्रिका । हिन्दी—आरी, खैरबेल । मराठी—अराटी, वेल्याखेर । कर्नाटकी—खिगूरी । गुजराती—खेरवेल्य । लैटिन—Acacia Penata (एकेशिया पिनेटा) बंगाली—कचुरी । तामील—इन्दु, कटिन्दु । तेलगू—मुल्लुकोरिंदा, गीदूकोरिन्दा ।

वर्णन—

आरी की बेल कांटेदार होती है। इसके पत्ते छोटे खैर के समान और फूल कुछ हलका पीलापन लिये हुए सफेद रग के होते है । इसकी फलियाँ चपटे नीले रग की और फूल तंतुयुक्त कीकर के फूल के समान होते है । इसके बीज गहरे बदामी रंग के होते हैं, यह वनस्पति खासकर के मध्य और पूर्वी हिमालय, बिहार, सीलोन तथा मलायाद्वीप मे पाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह कसैली, चरपरी, कड़वी, गरम और रुधिरविकार, पित्त, त्रिदोष, वात तथा खाँसी को दूर करती है ।

मसूड़ों से खून निकलने की बीमारी में और बच्चो के दूध के अजीर्ण में भी इस औषधि का उपयोग होता है ।

किसी २ के मत से इसके वृक्ष की छाल दूसरी औषधियों के साथ सर्प-विष के उपयोग में ली जाती है । मगर महेस्कर और केस का कथन है कि इसकी छाल सर्पदंश में बिलकुल निरुपयोगी है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके पत्ते बदहजमी और मसूड़ों में खून बहने की बीमारी में काम में आते हैं। सर्पविष में भी यह औषधि उपयोगी मानी जाती है ।

आर्थोसिफन स्टेमिनियस

नाम—

इंग्लिश—Java tea, जावाटी। लेटिन—Orthosiphon Stamineus. (आर्थोसिफन स्टेमीनियस।

वर्णन—

इस वनस्पति का पौधा झाड़ीनुमा होता है। यह बहुत नाजुक रहता है। इसके पत्ते गोल, नुकीदार और कटे हुए किनारों के होते हैं। इनका फल कुछ गोल, दबा हुआ और चपटा रहता है। यह औषधि आसाम, बर्मा, निकोबार द्वीप, फिलिपाइन द्वीप, दक्षिण भारत और आस्ट्रेलिया में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह औषधि जावा के अन्दर गुर्दे और बस्ती की बीमारियो के ऊपर बहुत समय से उपयोग में ली जा रही है। पथरी की अत्यन्त वेदनापूर्ण अवस्था मे भी यह औषधि बहुत उपयोगी सिद्ध हो चुकी है। जावा के अन्दर इसके पत्तों को चाय की तरह तैयार करके उपरोक्त रोगों पर, इसका इस्तेमाल करते हैं। पेशाब को स्वच्छ करने, गुर्दे के शूल को मिटाने और पथरी को तोड़ने के लिये यह औषधि काफी नाम पा चुकी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इस औषधि का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें ग्लुकोसाइड, (Glucoside) आर्थोसिफानिन (Orthosiphonin) और एसेन्शियल आइल (Essential Oil) नामक तीन पदार्थ पाये गये। उनके मतानुसार इस औषधि के पत्ते मूत्राशय की बीमारी में दिये जाते हैं।

आल

नाम—

संस्कृत—आच्छुकः, अच्छुकः, रंजनद्रुः। मराठी—आल, बारतोंडी, बारतुंडी, नागकुड, सुरगी। गुजराती—आल, सरोजी। हिंदी—आल। बम्बई—आल, अब्र, बारतुंडी, नागकुद्र। बर्मा—मानबिन। लेटिन—Morinda Citrifolia. (मोरिंडा साइट्रीफोलिया)

वर्णन—

जिस समय आधुनिक ढंग के रंगों का प्रचार नहीं हुआ था, उस समय भारतवर्ष में रंग के लिये बहुत बड़े पैमाने पर आल की खेती की जाती थी। मगर अब दूसरे रंगों का प्रचार हो जाने से

इसकी खेती बहुत कम हो गई है। आल की दो जातियाँ होती हैं। एक बड़ी जिसको लेटिन में Morinda Tinctoria (मोरिन्डा टिन्क्टोरिया) कहते हैं और दूसरी छोटी, जिसको मोरिंडा साइट्री-फोलिया कहते हैं।

बड़ी आल का झाड़ मझले कद का होता है। इसकी छाल भूरे और पीले रग की होती है तथा इसमें दरारें रहती हैं। इस छाल पर छोटी २ गठाने होती हैं और इसके फूल खुशबूदार होते हैं। यह पौधा अपर, लोअर बर्मा, बगाल, बिहार, मध्यप्रात, कर्नाटक, ट्रावनकोर और दक्षिण में पैदा होता है।

छोटी आल का छोटा पौधा होता है और इसकी छाल मुलायम, पीली और सफेद रहती है। इसके पत्ते गोल तीखी नोकवाले, चमकीले, नुकीले और गहरे हरे रग के रहते हैं। इसके फूल सफेद होते हैं। इसके फल का आकार और रग अंडे के समान होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

छोटी आल—कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पौष्टिक,ज्वरनिवारक और मासिकधर्म को व्यवस्थित करने वाली है। यह रक्तातिसार और पेचिश की बीमारी में लाभदायक है। रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें ग्लुकोसाइड और मोरिण्डिन नामक (Morindin) दो प्रकार के तत्व पाये जाते हैं।

इसकी जड़ विरेचक वस्तु के तौर पर काम में ली जाती है। इसके पत्तों का काढ़ा सरसों के साथ में मिलाकर बच्चों के रक्तातिसार में दिया जाता है। गठियारोग पर इसके पत्तों की मालिश करने से लाभ होता हुआ देखा गया है। बम्बई में इसके पत्ते घाव पूरक औषधि के रूप में काम में लिये जाते हैं। ज्वर को दूर करने के लिये तथा पौष्टिक औषधि के बतौर इसके पत्तों का अंतःप्रयोग किया जाता है। मसूड़ों की सूजन को दूर करने के लिये इसके कच्चे फल को नमक के साथ पीसकर लगाते हैं। इन्डोचायना में इसका भूंजा हुआ फल पेचिश और श्वास की बीमारी को दूर करने के लिये दिया जाता है।

बड़ी आल यूनानी मत—यूनानी मत से बड़ी आल की जड़ रक्तस्राव को रोकने वाली और आँतों को सिकोड़ने वाली होती है। यह फोड़ों को सुखाने के काम में आती है और विषनाशक भी मानी जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी जड़ सकोचक है।

उपयोग—

घाव और चट्टे—इसके पत्तों को पीसकर घाव पर लेप करने से घाव सूख जाता है।

ज्वर—इसके पत्तों का काढा पिलाने से ज्वर में लाभ होता है।

बच्चों का अतिसार—इसके पत्तों को जलावें और फिर उन्हें औटाकर तथा छानकर,उस पर राई भुरका कर पिलाने से बच्चों का अतिसार मिटता है।

दंत रोग—इसके कच्चे फलों को जलाकर उनके साथ नमक को पीसकर मंजन करने से दात के मसूडे मजबूत होते हैं।

घाव—इसके फल का चूर्ण घाव में भर देने से खून आना बन्द हो जाता है।

सधिवात—इसके पत्तो के रस की मालिश करने से संधिवात में लाभ होता है।

आलू

नाम—

संस्कृत—आलू, आलुक, वीरसेन। हिन्दी—आलू। गुजराती—बटाटा। बंगाली—आलू। पंजाबी—आलू। तैलंगी—उर्लगड्डु। द्राविड़ी—वल्लेरकिंडंग। कर्नाटकी—बटाटेआलू। फारसी—आलूएफिरंग, सेवेजमीं। अरबी—तुफाहुलअर्ज। तामील—उर्लकलंगे। अंग्रेजी—Potato.। लैटिन—Solanum Tuberosum. (सोलेनम ट्यूबरोसम)।

वर्णन—

आलू का मूल उत्पत्ति-स्थान अमेरिका है, मगर अब यह भारतवर्ष के गाँव-गाँव में बोये जाने लगे हैं और इनसे देश का प्रत्येक आदमी भलीभाँति परिचित है। आलू की खेती के सम्बन्ध में कई अच्छे ग्रथ निकल चुके हैं। इसकी खेती की मिकदार दिन २ बढ़ती चली जा रही है। अतः इसके विशेष परिचय की यहाँ पर आवश्यकता नहीं।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से आलू शीतल, मधुर, रुक्ष, पचने में भारी, मल को गाढ़ा करने वाला और शरीर में आलस्य पैदा करने वाला है। यह बलकारक, रक्त-पित्तनाशक, मल-मूत्र-निस्सारक और दुग्धवर्द्धक है।

रक्तालू अर्थात् लाल आलू शीतल, मधुर, अम्ल, श्रमनाशक, पित्तनाशक, दाहनिवारक, वृष्य, बलकारक, पौष्टिक और भारी है। इनको अधिक खाने से आफरा चढ़ता है, इसलिये मंदाग्नि वालों को इनका सेवन नहीं करना चाहिये।

यूनानी मत—यूनानी मत से ये पहिले दर्जे में रुक्ष और शीतल हैं। ये शुक्रवर्द्धक और कामोद्दीपक हैं। यह मेदे को नुकसान पहुँचाने वाला और आफरा पैदा करने वाला है। इसका प्रतिनिधि अरवी और दर्प को नष्ट करने वाला गरममसाला और अदरख है। इसके द्वारा बनाया हुआ सुरमा आँखों को शक्ति देता है और जाले काटता है। यह मृदुरेचक, मूत्रनिस्सारक और स्कर्व्ही रोग में लाभ पहुँचाने वाला है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार इसके पत्ते आक्षेपयुक्त खाँसी में लाभ पहुँचाते हैं। इस रोग में इन पत्तों का प्रभाव अफीम के समान होता है। आग से जले हुए स्थान पर इसका प्लास्टर रखने से बड़ा लाभ होता है।

एक यूनानी लेखक के मत से आलू खून बिगाड़ने वाला और खुजली को पैदा करने वाला है।

आलूचा

नाम—

हिन्दी—भोटिया बादाम, गर्दालू, शनालू। फारसी—आलुएदमिश्क, आलुएफरांसिसी। लेटिन—Prunus Domestica. P. Aloocha। अंग्रेजी—Comman Plum.।

वर्णन—

यह आलूबुखारे की जाति का एक वृक्ष है, जो पश्चिम हिमालय पर, गढ़वाल से काश्मीर तक पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत से इसका कच्चा फल पहले दर्जे मे शीतल और पका फल दूसरे दर्जे में शीतल होता है। यह प्रकृति को मुलायम करने वाला, प्यास को हरने वाला, शांतिदायक तथा वमन को दूर करने वाला है। पके हुए आलूचे का रस खाँसी के लिये उपकारी और क्षयरोगी को बड़ा लाभदायक है। इसके पत्तों का रस पेट के कृमियों को निकालने वाला है। यह मेदे को नुकसान पहुँचाने वाला और आफरा पैदा करने वाला है। इसके फल का गूदा मृदुरेचक और पौष्टिक है। इसका प्रतिनिधि आलूबुखारा और दर्प को नाश करने वाला गुलाब का गुलकंद है।

इंडियन मेडिकल प्लाट्स के रचयिताओं के मतानुसार यह फल विरेचक और ज्वरनाशक है। पेट का आफरा उतारने के लिये भी इसका प्रयोग किया जाता है। धवलरोग में, अनियमित मासिक-धर्म में और गर्भपात के बाद की अव्यवस्था को दूर करने के लिये भी इसको काम में लेते हैं।

आलूबालू

नाम—

उर्दू—आलूबालू । पंजाब—गिलास, ओलची । सीमांत—आलूबालू । फारसी—आलूबालू, आलूबुआली । यूनानी—करूसियून, करासुस । अरबी—फरासिया, जेरासायान, करासया । लैटिन—Prunus Carasus.

वर्णन—

यह एक प्रकार की झाड़ीदार वनस्पति होती है । इसकी शाखाएँ और जड़ें बहुत फैली हुई रहती हैं । इसकी शाखाएँ लाल रंग लिये हुए होती हैं । इसके पत्ते चौड़े, कटे हुए किनारों के होते हैं, इसके फूल बहुत आते हैं, वे सफेद रंग के होते हैं । इसके फल का रंग कुछ कालापन लिये हुए लाल होता है । फल का बीज चने के समान छोटा, छिलका कड़ा और गुदा सफेद होता है । फल का स्वाद खट-मीठा होता है । यह वनस्पति विशेष करके पश्चिमी एशिया में पैदा होती है । पर यह उत्तरी,पश्चिमी हिमालय प्रान्तों में।भी बोई जाती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानीमत से इसका मीठा फल दूसरे दर्जे में गरम और तर है । इसका कच्चा फल पहिले दर्जे में शीतल और रूक्ष है । इसका प्रतिनिधि आलूबुखारा और इसका दर्पनाशक शिकंजवीन है ।

इंडियन मेडिकल प्लाट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसका फल खट्टा व मीठा होता है। यह अग्निवर्द्धक, विरेचक और मस्तिष्क को बल देने वाला होता है । गले और फेफड़े के रोगों में तथा प्यास, वमन और पित्त में भी यह उपयोगी है । इसके बीज मूत्रनिस्सारक, मृदुविरेचक, मासिकधर्म को नियमित करने वाले, ज्वरनाशक और घाव को भरने वाले होते हैं । इनका उपयोग सुजाक, पथरी और वायु-नलियों के जीर्णप्रदाह में किया जाता है । गले की तकलीफ और यकृत सम्बधी रोगों को भी यह रोकने वाला है ।

इसकी छाल कड़वी और ज्वर को नाश करने वाली है । इसके फल का गुदा स्नायु-मंडल को बल देने वाला होता है । इसका उपयोग हाइड्रोसायनिक एसिड के स्थान पर किया जाता है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसकी छाल कड़वी, सकोचक और ज्वरनिवारक होती है । और इसके फल का गुदा स्नायु-मंडल को बल देने वाला होता है ।

मखजनूल अदविया के मतानुसार इसका मीठा और ताजा फल फेंफडे और गले की कर्कशता को दूर करता है । इसका खट-मीठा फल प्यास को दूर करने वाला, रक्त और पित्त की गर्मी को नष्ट करने वाला और पित्त की मूर्च्छा को दूर करने वाला होता है । इसके बीजों को थोड़ी सौंफ के साथ पीसकर

पिलाने से यह पथरी को तोड़कर बाहर निकाल देता है और मूत्रनली के घावों को दुरुस्त कर मूत्र-प्रणाली को ठीक कर देता है। इसके गोंद को २ माशे की मात्रा में ठंडे पानी के साथ देने से यह पुरानी खाँसी को दूर करता है। इसके द्वारा तैयार किया हुआ सुरमा आँखों की खुजली को दूरकर दृष्टि को बढ़ाता है। भोजन के बाद लेने से यह बदहजमी करके आमाशय को दुर्बल करता है।

इसका एक भेद और होता है, जिसको लेटिन में Prunus Verginiana. और देशी भाषाओं में विलायती आलूबालू कहते हैं। इसकी छाल जिसको Pruni Virgineanae Cortax. (प्रूनी व्हरजीनियेनि कॉरटेक्स) कहते हैं, औषधि प्रयोग के काम में आती है। इसकी मिलावट से एलोपेथी में टिंचर और शर्बत तैयार किये जाते हैं, जो सूखी खाँसी में लाभदायक होते हैं। इसका फल गुर्दे के रोगों में बड़ी मूल्यवान औषधि है।

आलूबुखारा

नाम—

संस्कृत—आलुकम, आलुकम, मल्लुकम, रक्तफलम। हिन्दी—आलूबुखारा। गुजराती और मराठी—आलूबुखार। बंगाली—आलूबोखार। तैलंगी—आलूबोकारा। अरबी—इजास। फारसी-आलू। लेटिन—Prunus Insititia. (प्रूनस इन्सिटिशिया)

वर्णन—

यह वृक्ष मझोले कद का होता है। इसकी शाखाएँ सीधी होती हैं, इसके पत्ते नीचे से नरम रहते हैं। इसकी डडियाँ एक साथ दो २ निकलती हैं। इसके फल आँवले के बराबर कुछ ललाई और पीलास लिये हुए चमकदार होते हैं। कच्चे फल खट्टे और पके हुए फल खट-मीठे और रसदार होते हैं। इसके पत्ते सेव के पत्तों की तरह होते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं,जिनमें एक को बागी और दूसरे को जङ्गली कहते हैं। इसके अतिरिक्त सफेद, पीले और लाल इत्यादि भेदों से इसकी पाँच जातियाँ मानी गई हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—निघण्टु-रत्नाकर के मतानुसार आलूबुखारा मलरोधक, कसैला, हृदय को बल देने वाला, शीतल, भारी, मलस्तंभक, ग्राही, दस्तावर, गरम, कफ-पित्तनाशक, पाचक, मधुर, मुख-प्रिय, मुख को स्वच्छ करने वाला तथा प्रमेह, गुल्म, बवासीर और रक्तवात का नाश करने वाला है।

पका हुआ आलूबुखारा मधुर, भारी, कफकारक, पित्तजनक, गरम, रुचिकारक, धातुवर्द्धक तथा बवासीर, ज्वर और वात को हरने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे मे शीतल और तर है। इसके पत्ते पहिले दर्जे में शीतल और रुक्ष हैं। यह मस्तिष्क और आमाशय को नुकसान पहुँचाता है। इसका प्रतिनिधि इमली और इसके दर्प को नाश करने वाला गुलकद है, इसके पत्ते खून को साफ करते हैं, नकसीर को बंद करते हैं तथा तालू के प्रदाह को दूर करते हैं। इसका फल खट्टा-मीठा, मृदुविरेचक और ज्वर को नाश करने वाला होता है। यह फोड़ों को दुरुस्त कर खुजली को मिटाता है। मीठा आलूबुखारा आमाशय में शिथिलता पैदा करता है, सिरके के साथ मिलाकर इसके गोंद को लगाने से यह दाद को नष्ट करता है। इसके पत्तों का लेप पेड़ू पर करने से यह आँत के कीड़ों को निकाल देता है। सूखा आलूबुखारा रेचक होता है।

आलूबुखारे का गोंद, दोषों को छेदन करने वाला, खाँसी को मिटाने वाला, फेंफड़े और छाती के दर्द में लाभ पहुँचाने वाला तथा गुर्दे और बस्ती की पथरी को तोड़कर निकाल देने वाला होता है। इस गोंद का बारीक चूर्ण घाव पर भुर-भुराने से या इसके पानी से घाव को धोने से घाव सूख जाता है। इस गोंद को सिरके में मिलाकर दाद, खाज और सिर की गंज पर लगाने से बड़ा लाभ होता है।

उपयोग—

पित्तज्वर—इसके फल को गरम पानी में भिगोकर, छानकर पिलाने से पित्तज्वर में शान्ति होती है।

पित्त के विकार—भोजन करने से पहिले आलूबुखारे को खाने से पित्त के विकार मिटते हैं।

प्यास—आलूबुखारे को मुंह में रखने से प्यास कम होती है।

आलूसन

नाम—

अरबी—हरजूश्शयातीन, रजूलुलतुराब। यूनानी—आलूसन।

वर्णन—

यह वनस्पति श्याम इत्यादि प्रदेशों में विशेष पैदा होती है। इसका पौधा एक गज के करीब ऊँचा होता है। इसके पत्ते उँगली के बराबर लम्बे, कुछ गोलाकार, रुएँदार और काँटे वाले होते हैं। फूल लाल अथवा काला होता है। इसके बीज फलियो में लगते हैं। इनमें सोये की सी सुगंध और अजवायन सा स्वाद होता है। इसकी जड़ शलगम के आकार की होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदीय-विश्वकोष के रचयिताओं के मतानुसार यह औषधि सिरदर्द, जुकाम, दमा, गुर्दे की बीमारी इत्यादि रोगों के लिये गुणकारी है। इसके बीजों को पीसकर, शहद में मिलाकर लगाने से सिर में होने वाली पीली फुन्सियाँ आराम हो जाती हैं। साढ़े-तीन माशे की मात्रा में इसके बीजों के चूर्ण को लेने से गुर्दे की पथरी का नाश होता है। इससे पेट के कीड़े भी निकल जाते हैं। इन बीजों का काढ़ा पीने से श्वास-कष्ट आराम होता है। ये अत्यन्त कामोद्दीपक हैं।

इस औषधि का दूसरा और महत्वपूर्ण गुण, पागल कुत्ते के विष को नष्ट करने का है। आयुर्वेदीयकोष के रचयिता लिखते हैं कि इस विष के लिये यह औषधि रामबाण सिद्ध हुई है। वे इसको देने की तीन विधियों का उल्लेख करते है जो इस प्रकार है—

(१) रोगी के खाने में इसके बीज पीसकर मिलाते है। ये बीज अपने प्रभाव से रोगी के जल-त्रास को निवारण करते हैं।

(२) गर्मी के दिनों में आलूसन के पत्तो को सुखाकर रख लेते हैं, जरूरत के समय इन पत्तों को कूट, छानकर ४॥ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में ६। तोला मधु-वारि (शहद और पानी) के साथ दिन में कई बार खिला देते हैं। फिर एक दिन का बीच में अन्तर देकर उसी प्रकार खिलाते हैं। इससे पागल कुत्ते के जहर में बड़ा लाभ होता है।

(३) इसकी ताजी जड़ को कुचल कर उसका रस निकाल कर ताजे दूध के साथ पागल कुत्ते के काटे हुए को पिलाते हैं। यदि ताजी जड़ न मिले तो सूखी जड़ को ही पीसकर रोगी के बल के अनुसार साढेतीन माशे तक की मात्रा में देते हैं।

विष का प्रभाव चाहे कितनाही जोरदार क्यों न होगया हो, उपरोक्त प्रयोगों से उसमें बड़ा लाभ होता है।

आँवला

नाम—

संस्कृत—आमलकी, पंचरसा, शिवा, धातृकी, अमृता, वयस्था, अमृतफला, शिव, श्रीफल इत्यादि। हिन्दी—आँवला। गुजराती—आँवला। कर्नाटकी—नेल्लि। तेलगू—उसरकाय। फारसी—आम्लक्म्। अरबी—अम्लज्। इंग्लिश—Emblic Myrobalan. लेटिन—Phyllanthus Embelica. (फिलेन्थस इम्बेलिका)

वर्णन—

आँवले के वृक्ष भारतवर्ष के जंगलों में कुदरती तौर से बहुत पैदा होते है तथा बाग-बगीचों में भी बो कर लगाये जाते हैं। ये झाड़ बीस से पच्चीस फीट तक ऊँचे रहते हैं, इनका तना बाँका-टेढ़ा

और इनकी छाल राख के रंग की होती है। इनके पत्ते इमली के पत्तों से मिलते-जुलते मगर कुछ बड़े होते हैं। इनकी डालियों पर पीले रंग के छोटे २ फूल आते हैं और उन पर फलों के गुच्छे लगते हैं। ये फल गोल, चमकते हुए, पीले और पकने पर सेव की तरह सुर्ख हो जाते हैं। बनारस का आँवला भारतवर्ष मे सबसे अच्छा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेद के अन्दर जितनी प्रभावशाली और रसायन औषधियों का उल्लेख हुआ है, उनमें हरीतिकी (हरड़) और आँवला, ये दो औषधियाँ सर्वोत्कृष्ट मानी गई है। इनमें हरीतिकी उष्णवीर्य और आँवला शीतवीर्य है। इसलिये आँवले का महत्व और भी बढ़ जाता है। महर्षि-चरक का कथन है कि संसार के अन्दर अवस्था-स्थापक जितने द्रव्य हैं, उनमें आँवला सबसे प्रधान है और रोगनिवारक जितने द्रव्य हैं, उनमें हरीतिकी सबसे प्रधान है। इससे पता चल जाता है कि आयुर्वेद के अन्दर आँवला कितनी महत्वपूर्ण औषधि के रूप मे माना गया है। इसके बढ़िया फल ग्राही, मूत्रल, रक्तशोधक और रुचिकारक होने से ये अतिसार, प्रमेह, दाह, कामला, अम्लपित्त, विस्फोटक, पाण्डु, रक्त-पित्त, वात-रक्त, अर्श, बद्धकोष्ट, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, खाँसी इत्यादि रोगों को नष्ट करते हैं, दृष्टि को तेज करते हैं, वीर्य को दृढ़ करते हैं और आयु की वृद्धि करते हैं।

हमारे आयुर्वेदाचार्य्यों के उपरोक्त कथन के साथ जब हम आधुनिक रसायन-शास्त्रियो के कथन की तुलना करते हैं तो उनमें अद्भुत साम्य नजर आता है। आधुनिक यूरोप, अमेरिका वगैरह सुधरे हुए देशों के रसायन-शास्त्रियों का मत है कि रक्त ही प्राणि-मात्र का जीवन है। जब तक यह रक्त पोषण करने लायक शुद्ध स्थिति में रहता है, तब तक मानव-शरीर में किसी प्रकार की व्याधि खड़ी नहीं होती और न वृद्धावस्था का ही प्रवेश हो सकता है। पर विपरीत आहार-विहार से जब खून में क्षार, अम्ल, कृमि इत्यादि विजातीय तत्व कम-ज्यादा मात्रा में संचित हो जाते हैं, तब रक्त-शरीर की पोषण-क्रिया को बराबर संचालित नहीं कर सकता, जिससे शरीर में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं और शक्ति घट कर वृद्धावस्था का प्रारंभ हो जाता है।

अगर मनुष्य खून में एकत्रित हुए विजातीय तत्वों को किसी उपाय से दूर करने में समर्थ हो जाय तो सब व्याधियों और वृद्धावस्था पर विजय प्राप्त करके नव-यौवन को प्राप्त कर सकता है। इन विजातीय तत्वों को दूर करने के लिये रसायनशास्त्रियों ने वर्षों की ढूंढ-खोज के पश्चात् तीन चीजों का आविष्कार किया है। उन्होने प्रगट किया है कि यह गुण केवल सफरजन, ओलिव के फल, और आँवला, इन तीन वस्तुओं में ही पाये जाते हैं। सफरजन और ओलिव ये दो वस्तुएँ भारतवर्ष में पैदा नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में हमारे महर्षियों के द्वारा आँवले के अन्दर इन गुणो की घोषणा करना बिलकुल विज्ञान-संगत था।

इन्हीं कारणों से आँवले के प्रति हमारे धार्मिक ग्रन्थों में भी अत्यत पूज्यभाव प्रदर्शित किये गये हैं। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों के अन्दर एक बड़ी सुन्दर आख्यायिका है। वह इस प्रकार है—

"किसी पुण्य दिन के अन्तर्गत भगवती पार्वती और लक्ष्मी प्रभासतीर्थ को गई थीं। पार्वती ने लक्ष्मी से कहा कि देवी! आज हम स्वकल्पित किसी नूतन द्रव्य से हरि का पूजन करना चाहती हैं। लक्ष्मी ने कहा कि हम भी किसी नूतन द्रव्य से शिव का पूजन करना चाहती हैं। उस समय उन दोनों की आँखों से भूमि पर आनन्दाश्रु गिरे और उन्हीं आँसुओं से माघ शुक्ला एकादशी के दिन 'आमलकी वृक्ष' की उत्पत्ति हुई, जिसको देखकर देवता और ऋषि आनंद से पुलकित हो उठे।"

ये सब बातें इस औषधि के अमूल्य गुणों को सूचित करने वाली हैं। इन्हीं अमूल्य गुणों की वजह से प्राचीन निघण्टुकारों ने इस औषधि को शिवा अर्थात् कल्याण करने वाली, वयस्था अर्थात् अवस्था को कायम रखने वाली और धात्री अर्थात् माता के समान रक्षा करने वाली आदि पवित्र नामों से सम्बोधित किया है और रसायन औषधियों मे इसको सर्वोच्च स्थान दिया है। आयुर्वेद का शायद ही कोई ऐसा प्रकरण होगा जिसमें आँवले का उपयोग न आया हो।

रसायन औषधियों का वर्णन करते हुए प्राचीन महर्षि कहते हैं कि दीर्घायु, स्मरणशक्ति, बुद्धि, तन्दुरुस्ती, नवयौवन, तेज, कांति, ज्वर, उदारता, शरीर, इन्द्रियों का बल, वाणी की सिद्धि और वीर्य की पुष्टता ये सब गुण रसायन के सेवन से प्राप्त होते हैं। ऐसे रसायन द्रव्यों में आँवला शीत-वीर्य्य होने से सर्व प्रधान है।

आँवले के फलों के सिवाय इसके दूसरे अङ्ग भी औषधि के लिये काफी उपयोग में आते हैं। इसके पत्तों को पानी के साथ उबाल कर उस पानी से कुल्ले करने से मुँह के छाले और क्षत नष्ट होते हैं, क्योंकि इन पत्तों में टेनिन एसिड का काफी भाग रहता है। इसके बीज की मगज को कूटकर गरम पानी में उबाल कर उस पानी से आँखें धोने से बहुत दिनो की दुखती हुई आँखें आराम होती हैं। इसके कोमल पत्तों को छाछ (मट्ठा) के साथ देने से अजीर्ण और अतिसार में लाभ होता है। इसके सूखे फलों में गेलिक एसिड की काफी मात्रा रहती है, इस कारण यह खूनी अतिसार, मरोड़ी के दस्त, बवासीर और रक्त-पित्त की बीमारियों में खास तौर से उपयोगी है। लोह भस्म के साथ इसको लेने से पाण्डु, कामला और अजीर्ण में काफी लाभ होता है। इसके फूल ठण्डे और मृदु-विरेचक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह दूसरे दर्जे मे शीतल तथा रूक्ष है। यह आमाशय, मस्तिष्क, एवम् हृदय को बल देने वाला तथा पित्तशामक, शीतल, शोधक और सारक है। यह प्लीहा को हानि पहुँचाने वाला है। इसके प्रतिनिधि काबुली हड़ और दर्प को नाश करने वाली शहद है। अपने शीत गुण के कारण यह रक्त की गरमी और पित्त की तेजी को कम करता है। अपने रूखे गुण की वजह से यह रक्त को शुद्ध करके उसको बदलता है। ग्राही होने की वजह से यह आमाशय, नेत्र

और गर्भाशय को शक्ति-प्रदान करता है। मस्तिष्क के लिये यह अत्यन्त बलदायक है। क्योंकि यह मस्तिष्क के बाष्पारोहण को रोकता है। इसीसे यह बुद्धि को तीव्र करने वाला माना जाता है। यह मसूड़ों और जबान को शुद्ध करके उन्हे बल देता है। मतलब यह कि यह शरीर के तमाम अवयवों पर अनुकूल असर डालता है।

आँवले के रसायन और उनकी सेवन विधि—

महर्षि चरक, वाग्भट्ट इत्यादि आचार्यों ने मनुष्य के धातु-परिवर्तन और पुनर्यौवन की प्राप्ति के लिये कई दिव्य रसायनों का उल्लेख किया है, उन रसायनों में आँवलों के द्वारा तैयार किये हुए रसायन उत्कृष्ट माने गये हैं। रसायनों की सेवन विधि भी बडी कठिन और इनका फल भी बहुत दिव्य बतलाया गया है। महर्षि चरक अपने चिकित्सा स्थान में इन रसायनों के सेवन की दो प्रकार की विधियों का निर्देश करते हैं। इनमें से पहिली का नाम 'कुटिप्रावेशिक विधि' और दूसरी का नाम "वाततापिक विधि" है। इनमें से कुटिप्रावेशिक विधि उत्तम और वाततापिक विधि मध्यम फल रखती है।

कुटिप्रावेशिक विधि—कुटिप्रावेशिक विधि से जिसको रसायन का सेवन करना होता है, उसे एकान्त स्थान में सुन्दर भूमि पर उत्तर या पूर्व दिशा में ऐसी कुटि बनानी चाहिये, जो पर्याप्त लम्बी, चौड़ी हो और जिसमें एक के अन्दर दूसरा और दूसरे के अन्दर तीसरा कमरा हो। जिसमें छोटी २ खिड़कियाँ और रौशनदान हों, जो प्रत्येक ऋतु में सुखकारक हो, प्रकाशयुक्त हो, स्त्री रहित हो। जिसमें सब प्रकार की सामग्री पहिले से ही सचित करके रक्खी गई हो। मकान में प्रवेश करने के पहिले जिसको लीप-पोत कर साफ कर रखा हो, ऐसी कुटि में जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो, जिसने अपनी इद्रियों को वश में कर रक्खा हो, जो सहज उपद्रव से घबराने वाला न हो, ऐसे धैर्यशाली मनुष्य को वमन, विरेचन, स्वेदन इत्यादि पच कर्मों से शुद्ध होकर एक उत्तम वैद्य के साथ, उस कुटि में प्रवेश करना चाहिये और नीचे लिखे रसायनों में से वैद्य की सलाह और अपनी प्रकृति के अनुकूल किसी भी रसायन का सेवन करना चाहिये और भोजन में अन्न-जल को छोडकर केवल दूध पर निर्वाह करना चाहिये। इस प्रकार ६ महीने तक इनमें से किसी रसायन का सेवन करने से तमाम रोग दूर होते हैं और बालों की सफेदी, चमडे की झुर्रियाँ, इद्रियों की क्षीणता और दाँतो का हिलना सब बन्द होकर, हृष्ट-पुष्ट पुनर्यौवन प्राप्त होता है।

वाततापिकविधि—जो लोग कुटिप्रावेशिक विधि के समान कठिन विधियों से रसायन सेवन में असमर्थ हैं, उनके लिये यह दूसरी विधि आसान है। इस विधि से रसायन सेवन में विशेष कठिनता नहीं है। प्रतिदिन सवेरे-शाम उचित मात्रा में औषधि लेकर उस पर गरम दूध पीना, हलका और सात्विक भोजन करना, जीवन-सग्राम से जहाँ तक बने वहाँ तक तटस्थ रहना और शान्तिमय जीवन व्यतीत करना यही इस विधि की खास २ बाते हैं। इस विधि से एक-दो वर्ष तक ये रसायन सेवन करने से जीवनप्रद तत्वों का देह के अन्दर सचय होता है, जिसकी वजह से रस, रक्त, वीर्य इत्यादि में रही हुई तमाम विकृति दूर होकर जठराग्नि प्रबल होती है। मलमूत्र की प्रवृत्ति उचित ढग से होती है, स्मरणशक्ति बढ़ती है,

देह की कांति और रंग निखर जाता है, शरीर और इन्द्रियों का बल बढ़ता है, वीर्य शुद्ध और काफी परिमाण में पैदा होता है और स्वर गम्भीर बनता है। इस प्रकार मनुष्य अपने खोए हुए यौवन को पुनः प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्म रसायन—

शालपर्णि, पृष्ठपर्णि, बृहती, छोटी कटेरी, गोखरू, बेल, अरनी, अरलू, गम्भारि, पाढ़ल, पुनर्नवा, मुग्दपर्णि, माषपर्णि, बला, एरंड, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावरी, सरकंडा, ईख, डाब, काश और शाल की जड़ ये सब औषधियाँ एक २ सेर, हरड़ १२॥ सेर और ताजे बढ़िया आँवले ३७॥ सेर, इन सब औषधियों को एकत्र करके सबके वजन से दसगुना जल डालकर आग पर उबा लें। जब जल का १० वाँ भाग शेष रह जाय, तब उसे नीचे उतारकर निर्मल-वस्त्र से छान लें। अब हरड और आँवलों को अलग कर उनकी गुठलियाँ निकाल दे और उन्हें कुचल कर औजार से उनके सब रेशों को निकाल दें। फिर उन्हें अच्छी तरह से एक जीव करके उस क्वाथ मे डाल दें और उसमें मण्डूकपर्णी, पीपर, शंखाहूली, मोथा, केवटी मोथा, बायविडंग, लालचंदन, अगर, मुलेठी, हल्दी, वच, नागकेशर, छोटी इलायची, दालचीनी, प्रत्येक का चूर्ण ३२ तोले, कपड़छन करके मिला दें। फिर मिश्री १ मन ३० सेर, तिल का तेल २५॥ सेर और घी ३८॥ सेर भी उसमें डाल दें। फिर इन सब औषधियों को कलई किये हुए तांबे के बड़े बर्तन में आग पर धीरे २ पकावे। जब अवलेह सरीखा हो जाय, तब उसे उतार लें और ठण्डा होने पर उसमें ३२ सेर शुद्ध शहद मिलादे और अच्छी तरह से एक रस करके घी के खाली घड़ों में भर कर रख दे।

अपने बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में यह रसायन साधारणतया एक तोला सवेरे और एक तोला शाम को खाकर गरम दूध पीना चाहिये। भोजन में दूध के साथ साठी का भात खाना चाहिये।

महर्षि चरक लिखते हैं कि वैखानस, बालखिल्य तथा अन्य तपस्वी लोग इस रसायन को सेवन कर दीर्घायु को पा चुके हैं। उन्होंने अपने जीर्ण शरीर को छोड़कर श्रेष्ठ पुनर्यौवन को प्राप्त किया था। इसके सेवन से पुरुष निरोग, दीर्घायु, महाबलशाली और अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है।

दूसरा ब्राह्म रसायन—

उत्तम पके हुए १ हजार आँवले लेकर एक ऐसी हाँडी या घड़े में जिसके पेंदे में बारीक २ कई छेद हों उसमें भर दें। फिर एक दूसरी हाँडी में दूध भरकर नीचे उसको और उसके ऊपर आँवले की हाँडी को रखकर दोनों की संधियाँ आटे से बंद कर दें। दूध की हाँडी में दूध इतना ही डालना चाहिये, जो उबलने पर ऊपर की हाँडी में न जा सके। यदि उफान आता हुआ दिखलाई दे, तो नीचे की हाँडी पर जल से भिगोया हुआ कपड़ा रख दें। इन हाँडियों को मंदी आँच पर चढ़ा दें। इससे दूध में से जो भाफ निकलेगी, उससे ऊपर के आँवले बफ जायँगे। जब सब आँवले बफ जायँ, तब उनको उतार कर उनकी गुठली निकाल कर फेंक दें और शेष हिस्से को छाया में सुखा लें। अच्छी तरह सूख जाने पर

रक्त पित्त—च्यवनप्राश ६ माशा, वासावलेह ६ माशा और लोहभस्म २ रत्ती, इन तीनों वस्तुओं को मिलाकर दिन में दो बार लेने से रक्त-पित्त का कष्ट-साध्य रोग आराम होता है।

प्रदर और प्रमेह—इन रोगों मे चन्द्रप्रभा बटी के साथ च्यवनप्राश लेने से बड़ा लाभ होता है।

आमलाक्य रसायन—ताजे सूखे हुए आँवलों का कपडछन चूर्ण लेकर उसमे ताजे हरे आँवलों के रस की भावना देकर सुखाना चाहिये। इस प्रकार उस चूर्ण को हरे आवलों के रस में २१ बार तर करके सुखाकर रख लेना चाहिये। इस चूर्ण को तीन माशे से छ. माशे की मात्रा मे दिन में दो बार गाय के दूध के साथ सेवन करने से वीर्य पुष्ट होता है, काति बढती है और पित्त की शाति होती है।

आम्लक घृत—वढ़िया भूमि में उत्पन्न उत्तम आँवलों का स्वरस ८ आढक (५१ सेर १६ तोला) और पूनर्नवा की लुग्दी आधा आढक (३ सेर १६ तोला) लेकर उसमे दो आढ़क घी डालकर मदी आँच पर पकावें। जब रस जलकर घी मात्र शेष रह जाय, तब उसको छान लें। इस प्रकार इस घी को सौ बार आँवलो के रस मे और पुनर्नवा की लुग्दी में तथा १०० बार बिदारीकद के स्वरस में और जीवन्ती की लुग्दी मे तथा सौ बार अतिवला के काढ़े मे और शतावर की लुग्दी में पकावे। इस प्रकार सिद्ध हो जाने पर उस घी को छानकर उस में १२८ तोला शहद और १२८ तोला शक्कर मिला दे। फिर उस घी को घी से तृप्त शुद्ध मिट्टी के घडो मे भर दे। इस घी का कुटिप्रावेशिक विधि से अग्नि वल के अनुसार सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तक जरा रहित होकर जीता है, श्रुतधर होता है। उसका रूप अत्यत ही सुन्दर और तेजस्वी होता है, उसकी स्त्री सहवास की शक्ति बहुत बढ़ जाती है, और उसकी सतान भी बहुत दृढ़ होती है।

आमलकी अवलेह—तरुण खाँखरे (पलास) के झाड़ को जलाकर उसका खार निकाले। उस खार को छः गुने जल में घोल लें। उस खार के जल में १००० आँवले और १००० पीपर डाल दें। ये दोनों चीजे उस क्षार जल में डूबी हुई रहनी चाहिये। जब यह देखे कि क्षार जल उनके अदर अच्छी तरह पहुँच गया है, तब उन्हे निकाल कर, आँवलों की गुठलियाँ निकाल कर, उन्हे फेंक दे तथा उन्हे छाया में सुखा ले। सूखने पर उन्हे और पीपर को कूटकर चूर्ण कर ले। इस चूर्ण के वजन से चौगुने वजन की शहद और घी क्रमशः उस चूर्ण में मिला दें। फिर उस चूर्ण के वजन से चौथाई बढ़िया शक्कर भी मिला दें। फिर इस सब औषधि को घी से भावित मिट्टी के घड़े में रख कर, उस घड़े का मुँह बन्द करके छः महीने तक जमीन में गाड़ दें। उसके बाद उसे निकाल कर आधे तोले से एक तोले तक की मात्रा में दूध के साथ सेवन करें और सात्विक भोजन करे। इस अवलेह का गुण भी उपरोक्त रसायन के गुण के बराबर होता है।

धात्रीलोह—अच्छे ताजे सूखे हुए आवलों का चूर्ण ८ तोला, लोहभस्म ४ तोला, मुलेठी २ तोला, इन तीनों चीजों का बारीक चूर्ण करके इस चूर्ण को ७ भावना हरे आंवलो के रस की और ७ भावना नीमगिलोय के रस की देना चाहिये। इस चूर्ण को एक माशे से दो माशे तक की मात्रा

में लेने से पाण्डु, कामला, अजीर्ण और अम्लपित्त आदि रोग दूर होते हैं। भोजन के पहिले इस चूर्ण को तीन माशे घी और ६ माशे शहद के साथ लेने से पित्त और वायु की व्याधियां दूर होती हैं। भोजन के अन्त में लेने से खट्टी डकारें, हृदय की जलन, परिणामशूल और पेट के दर्द दूर होते हैं।

महातिक्त घृत—अतीस, अमलतास, कुटकी, कालीपाढ, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की अन्तर्छाल, धमासा, रक्तचदन, पीपर, गजपीपर, पद्माक, हल्दी, दारूहल्दी, बच, इन्द्रायण, शतावरी, गोरीसर, कालीसर, इन्द्रजौ, अड़ूसा, गिलोय, चिरायता, मुलेठी, त्रायमाण, ये सब चीजें एक २ तोला लेकर पानी के साथ पीसकर चटनी जैसी बना लेना चाहिये। फिर उस लुगदी को लोहे की कढाई में रखकर, उसमें १२८ तोला पानी, २५६ तोला ताजे आवले का रस और १२८ तोला घी डालकर, मन्दाग्नि से उबालना चाहिये। जब सब चीजे जलकर केवल घी मात्र शेष रह जाय, तब उतारकर, छानकर रख लेना चाहिये। इस घी को एक तोले से २ तोले तक की मात्रा में दिन में दो बार लेने से और ऊपर से थोडा ठण्डा पानी पीने से कोढ, वात-रक्त, रक्त पित्त, खूनी बवासीर, अम्लपित्त, विस्फोटक, खुजली, पाण्डु, कामला, कंठमाल, भगन्दर इत्यादि कष्ट-साध्य स्थिति में पहुँचे हुए रोग भी नष्ट होते हैं। गरम प्रकृति के लोगों को खून या पित्त के विकार में जब दूसरी कोई भी औषधिया अनुकूल नहीं पडतीं, उस समय यह औषधि आश्चर्यजनक ढङ्ग से लाभ पहुँचाती है। बशर्ते कि धैर्य के साथ इसका सेवन किया जाय।

बृहद्धात्री घृत—आँवले का रस, बिदारीकद का रस, शतावरी का रस, गाय का दूध और घी, ये सब चीजें चौंसठ २ तोला, कास, डाभ, काला गन्ना, मूंज और खस, इन सबकी जड़ें सोलह २ तोले लेकर जौकुट करके ८ सेर पानी में उबालना चाहिये। जब ६४ तोला पानी शेष रह जाय, तब उसको छानकर, उपरोक्त रसो में डालकर मदाग्नि से पकाना चाहिये। जब सब चीजें जलकर केवल घी मात्र शेष रह जाय, तब उसको उतारकर, छानकर उसमें मुलेठी, निशोथ, यवक्षार और बिधारा, इन सब चीजों का चूर्ण चार २ तोला और शक्कर तथा शहद ३२ तोला डालकर मिला लेना चाहिये। इस घी में से प्रतिदिन एक से दो तोला तक की मात्रा में घी लेकर ऊपर से अशोक, गिलोय, अडूसे की जड़ की छाल, दारुहल्दी, नागरमोथा और लालचन्दन, इन सब चीजों के चूर्ण का बनाया हुआ काढ़ा पीने से स्त्रियों को होने वाले सब प्रकार के प्रदर नष्ट होते हैं और उनका शरीर पुष्ट होता है।

बवासीर नाशक महौषधि—गाय का मक्खन पावभर लेकर लोहे की कढाई में मन्दाग्नि पर चढाना चाहिये। जब उसमें से फेन का भाग जल जाय, तब उसमें गुठली निकाले हुए सूखे आँवलों का चूर्ण दो तोला डालकर हिलाना चाहिये। जब वह थोड़ा सिक जाय, तब उसमें बड़ के कोमल पत्तों की पीसी हुई लुगदी २ तोला डालकर फिर हिलाना चाहिये। जब दोनों चीजें अच्छी तरह सिक जाय, तब उस कढाई को उतारकर २४ घण्टे तक पड़ी रहने देना चाहिये। उसके बाद उसे नीम के हरे डण्डे से अच्छी तरह से घोट कर रख लेना चाहिये। इस औषधि को प्रतिदिन सबेरे-शाम

६ माशे से १ तोले तक की मात्रा में लेने से और भोजन में केवल दूध और भात लेने से कुछ दिनों में बवासीर मे होने वाली पीड़ा और गिरने वाला खून बन्द हो जाता है। इतनाही नहीं कुछ दिनों तक लगातार सेवन करते रहने से धीरे २ बवासीर निर्जीव होकर खिर जाता है। जगलनी जड़ी-बूटी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता का कथन है कि यह औषधि अनेक रोगियों पर आजमाई हुई है।

आँवले का तेल—आँवले का स्वरस ४ सेर, शैवाल का स्वरस ४ सेर, मॉगरे का स्वरस ४ सेर, शुद्ध तिल का तेल ३ सेर, इन सब औषधियों को पीतल के कलई किये हुए बर्तन में भर दें। फिर इसमें बालछड़ १ तोला, छोटी इलायची १ तोला, सफेद चदन का बुरादा १० तोला, खस १० तोला, गुलाब के फूल १० तोला, कपूरकचरी १ तोला, लौंग १ तोला, दालचीनी १ तोला, तेजपात १ तोला, जटामासी १ तोला, इन सब चीजों को पानी के साथ बारीक पीसकर इनकी लुग्दी को उस बर्तन के बीच में रख दें, इसके साथ ही नागरमोथा २ तोला, मुलेठी २ तोला, कमल के फूल २ तोला, गिलोय २ तोला, मजीठ २ तोला, हलदी २ तोला, केवड़े की जड़ २ तोला और त्रिफला २ तोला, इन सब चीजों को जौकुट कर ८ सेर पानी में इनका काढ़ा बनाकर, २ सेर पानी रहने पर, छानकर वह भी उस बर्तन में डाल दें और उस बर्तन को मदाग्नि पर चढ़ा दें। जब सब चीजे जलकर तेल मात्र शेष रह जाय तब उतार-कर तेल को छान ले और उसमें बेंजील डालकर दिन-रात पड़ा रहने दे। फिर उसे छानकर उसमें रूह गुलाब ६ माशे, रूह केवड़ा ६ माशा, रूह हिना ६ माशे, रूह मोतिया ६ माशे, इत्र मौलसरी ६ माशे, रूहसन्दल ६ माशे, रूहखस १ तोला, रूह मदनमस्त १ तोला, सतपोदीना १ तोला और कपूर १ तोला, ये सब चीजें भलीभाति मिलाकर बोतलो में भर कर रख लें।

यह योग आयुर्वेदीय-कोष का है। इस ग्रथ के रचयिताओं का कथन है कि इस तेल को सर में डालने से बाल अत्यन्त मुलायम रहते हैं। एक दिन लगाने से इसकी भीनी २ खुशबू कई दिनों तक बनी रहती है। इससे बाल काले और लबे हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह तेल हर प्रकार के सिरदर्द, चक्कर आना, बाल टूटना, मूर्छा आना इत्यादि मस्तक से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों की अनुपम औषधि है।

आँवले के अन्य उपयोग—

अतिसार—आँवलों को जल मे पीसकर रोगी की नाभि के आस-पास उनकी पाल बाँध दें और उस पाल में अदरक का रस भर दें। इस प्रयोग से अत्यन्त भयकर नदी के वेग के समान दुर्जय अतिसार का भी नाश होता है। (भाव-प्रकाश)

हिचकी—आवला, कैंथ का रस और पीपर का चूर्ण शहद के साथ रोगी को सेवन कराने से हिचकी में लाभ होता है।

बवासीर—आँवलों को भलीभॉति पीसकर उस पीठी का एक मिट्टी के बर्तन में लेप कर देना चाहिये। फिर उस बर्तन में छाछ भरकर उस छाछ को रोगी को पिलाने से बवासीर में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र—आँवलों के २ तोला स्वरस में इलायची का चूर्ण भुरभुरा कर पीने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है।

सोमरोग—आँवले का स्वरस, पका केला, शहद और मिश्री को एक साथ मिलाकर चटाने से सोमरोग मिटता है।

श्वेत प्रदर—आवलों के बीजों को पानी के साथ पीसकर, उस पानी को छानकर, उसमें शहद और मिश्री मिलाकर पिलाने से श्वेत-प्रदर में लाभ होता है।

नेत्ररोग—आँवलों को जौकुट कर दो घण्टे तक पानी में औटाकर, उस जल को छानकर, दिन में तीन बार आखों में डालने से नेत्ररोगों मे बहुत लाभ होता है।

गठिया—२ तोले सूखे आवले और दो तोले गुड़ को डेढ़ पाव पानी में औटाकर,आधपाव पानी रहने पर मल,छानकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है। मगर इस औषधि को सेवन करते समय नमक छोड़ देना चाहिये।

पित्तज्वर और पित्त की घबराहट—पके हुए आवलों का रस निकालकर उसको खरल में डाल कर घोटना चाहिये, जब गाढा हो जाय तब उसमें और रस डालकर घोटना चाहिये। इस प्रकार घोटते २ सबको गाढा करके उसका गोला बनाकर चूर्ण कर लेना चाहिये। यह चूर्ण अत्यन्त पित्त-शामक है। इसको सेवन करने से चित्त की घबराहट, प्यास और पित्त का ज्वर दूर होता है।

रक्त-पित्त—दही के साथ आवले का सेवन करने से रक्त-पित्त में लाभ होता है।

योनिदाह—योनि की जलन मे आवले के रस में शक्कर और शहद मिलाकर पिलाने से योनिदाह में फायदा होता है।

पाण्डुरोग—लोह-भस्म के साथ आंवले का सेवन करने से कामला, पाण्डु और रक्ताल्पता के रोगों में अत्यन्त लाभ होता है।

सुजाक—आवले का चूर्ण जल में मिलाकर पिलाने से और उसी जल की मूत्रेन्द्रिय में पिचकारी देने से सुजाक की जलन शान्त होती है और धीरे-धीरे घाव भर कर पीव आना बन्द हो जाता है।

नक्सीर—आवले के पत्तों को कपूर के साथ पानी मे पीसकर सिर पर लेप करने से नक्सीर का आना तत्काल बन्द होता है।

आँख की फूली—सात माशे आवले को जौकुट कर ठण्डे पानी में तर कर दें। दो-तीन घण्टे बाद उन आवलों को निचोड़ कर फेंक दें और उस जल में फिर दूसरे आवले भिगो दें। दो-तीन घण्टे बाद उनको भी निचोकर फेंक दें। इस प्रकार तीन-चार बार करके उस पानी को आंखों में डालना चाहिये। कई दिनों तक इस प्रयोग के करने से आखों की फूली में लाभ होता है।

मूत्ररोग—आवले को घोट छानकर शक्कर मिलाकर पीने से मूत्र के साथ रुधिर आना बन्द होता है।

आशफल

नाम—

वंगाल—आशफल । वम्बई—उम्व । कनाडी—मलेहकूट । !मराठी—उम्ब, बुम्ब । लेटिन—Nephelium Longana (नेफीलियम लोगाना)

वर्णन—

यह वनस्पति कोकण से दक्षिण के हरे जगलों में, खासिया पहाड़ी पर और बर्मा में पैदा होती है। इसकी छाल फिसलनी होती है, पत्ते दो से लगाकर पाच २ तक के जोड में आते हैं, फूल छोटा और सफेद रहता है। फल जब छोटा रहता है, तब खाने के लायक रहता है। इस फल में एक काले रग का चमकीला बीज रहता है।

गुण दोप और प्रभाव—

कर्नल चोपडा के मतानुसार यह औषधि अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक और पौष्टिक है। इसमें सेपानिन नामक एक पदार्थ होता है।

आस

नाम—

अरबी—हब्बुलआस। फारसी—आस, असबिरी, मउरिद । हिन्दी—मुराद, विलायती मेंहदी उर्दू—हब्बुलआस । लेटिन—Myrtus Communis (मायर्टस कम्युनिस)

वर्णन—

यह औषधि भूमध्य प्रदेश से उत्तर, पश्चिम हिमालय तक पैदा होती है। भारतवर्ष के बगीचों में भी यह बोई जाती है।

इसके बागी और जगली ऐसे दो भेद होते हैं। बागी का वृक्ष अनार के वृक्ष की तरह और पत्ते अनार के पत्तो से कुछ छोटे होते हैं, ये स्वाद में कुछ मीठे होते हैं। इसके फूल सफेद सुगधित स्वाद में किंचित, तिक्त और फीके होते हैं। फल काले और उसके बीज सफेद होते हैं। जंगली आस का वृक्ष बागी आस से किसो कदर छोटा होता है। इसका फल पकने पर लाल रंग का और पत्ते पीले होते हैं। दोनों प्रकार के वृक्ष सदा बहार होते हैं। इस वृक्ष के तने पर एक खास चीज पैदा होती है, जिसको बुंख-आस कहते हैं । यह वस्तु उसके दूसरे सब अगों से अधिक प्रभावशाली होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी-चिकित्सा के अन्दर आस को बहुत प्राचीन समय से बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त है। हिपॉक्रेटस, डिसकोरिडस, प्लाइनी, गेलन तथा दूसरे अरबियन लेखकों ने अपने २ ग्रन्थों में इस औषधि की बडी तारीफ की है। इस औषधि में एक सबसे बड़ी विशेषता जो शायद दूसरी औषधियों में नहीं पाई जाती, यह है कि इसमें परस्पर विरुद्ध गुणों का समावेश पाया जाता है। इस एक ही औषधि मे शीतल और गरम, संकोचक और उत्तेजक इत्यादि अनेक विरुद्ध गुणों का सम्मेलन पाया जाता है। पहले गुण इसके पत्तों में हैं और दूसरे गुण इसके फलों में पाये जाते हैं।

यूनानी मतानुसार बागी-आस पहले दर्जे में शीतल और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। यह अतिसार और प्रवाहिका रोग में लाभ पहुँचाता है। इसके अधिक सूँघने से खराब स्वप्न दीखने का रोग हो जाता है। आँतों को भी यह हानि पहुँचाता है, इसका फल गर्मी की खासी में लाभ पहुँचाता है, दस्तों को बन्द करता है, मूत्रनिस्सारक है, पथरी को तोडता है, हृदय को बल देता है, पेचिश में लाभकारी है, रक्तस्राव को बन्द करता है। इसके तेल से बनी हुई मरहम को आग से जले हुए स्थान पर लगाने से फोला नहीं होता। बिच्छू के जहर में भी यह फायदा पहुँचाता है। यह आमाशय को बल देने वाला, प्यास, कै और मतली को निवारण करने वाला और हिचकी को दूर करने वाला है। इसके तेल को बालों पर लगाने से बालों का गिरना बन्द होकर नये बालों का आना प्रारम्भ हो जाता है।

इसके पत्ते दिमाग की तकलीफों में बडे मुफीद माने जाते हैं। खास करके मृगी के रोग में ये बड़े उपयोगी हैं, ये अग्निमांद्य, पेट और यकृत की बीमारियों को दूर करते हैं। इसके पत्तों के पानी से मुँह साफ करने से लार की बाहुल्यता रुकती है।

इसके पत्तों का तेल फ्रांस में बहुत काम में लिया जाता है। वहाँ पर यह संक्रमण को दूर करनेवाला माना जाता है। यह एक प्रकार की रोगाणुनाशक औषधि है। पेरिस के अस्पतालों में श्वासक्रिया और मूत्राशय की तकलीफों में तथा फेफड़े के कतिपय विकारों में इसका उपयोग किया जाता है। आमवात की बीमारी में भी इसकी मालिश करने से बड़ा लाभ होता है।

इसके फूलों के तेल को बालों में लगाने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। उनमें शक्ति आती है, उनका चमकीलापन तथा कालापन वृद्धि पाता है। बालों के लिये यह एक अत्यंत पौष्टिक खुराक है। आग से जले हुए स्थान पर भी इसका लगाना बड़ा लाभदायक है। यह गरमी की सूजन को मिटाने वाला, घावों को भरने वाला तथा सिर की गंज में लाभ पहुँचाने वाला है। इस तेल को कान में टपकाने से कान का दर्द मिटाता है। नौ माशे की खुराक में पिलाने से सिर का दर्द मिटता है, श्वासरोग में भी यह लाभदायक है।

डाक्टर नॉडकर्नी के मतानुसार आस का पौधा उत्तेजक और संकोचक है। आमवात के विकारों में इसके पत्तों से निकाला हुआ तेल मालिश करने के काम में लिया जाता है। इसके बीजों से बनाये

हुए तेल के उपयोग से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं । इसका फल अफरे को नष्ट करने वाला है, अतिसार और प्रवाहिका रोग में इसकी फाण्ट पिलाने से और श्वेत-प्रदर में इसकी बस्ती देने से बड़ा लाभ होता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह सकोचक, उत्तेजक, रोगाणुनाशक, और चर्मदाहक औषधि है। यह बिच्छू के जहर में उपयोग में ली जाती है। इसमें एक प्रकार का इसेन्शियल ऑइल पाया-पाया जाता है । देस और महेस्कर के मत के अनुसार यह औषधि बिच्छू के डंक में निरुपयोगी है।

उपयोग—

बवासीर—इसके पचाग की धूनी देने से अर्शरोग में लाभ होता है ।

सिरदर्द—आस के पत्तों को शराब में उबाल कर लेप करने से कठिन सिरदर्द भी आराम हो जाता है।

अण्डवृद्धि—इसके पत्तों का लेप करने से अण्डवृद्धि में लाभ होता है।

सधिवात—आस के पत्तों को पानी में उबालकर उस पानी की धार देने से सधिवात में लाभ होता है।

कुष्टरोग—इसकी ताजी लकड़ी से दातुन करने से कुष्टरोग में कुछ शान्ति मिलती है।

नेत्ररोग—यदि गरमी से आखे दुखती हो या वायु से वे फूल जायें तो इसके पत्तों का स्वरस टपकाने से बड़ा लाभ होता है।

सग्रहणी—इसके पत्तों का स्वरस पीने से अतिसार, सग्रहणी बवासीर और कामलारोग में लाभ होता है।

पथरी—इसके फल और पत्तों का मद्य के साथ उपयोग करने से बस्तीगत पथरी में लाभ होता है तथा पेशाब साफ आने लगता है।

दंतशूल—इसके सूखे पत्तों के चूर्ण से मंजन करने से दांतों की जड़ें मजबूत होती हैं तथा इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले करने से गरमी से होने वाला दात का शूल आराम हो जाता है।

आस्से ओड़ा

वर्णन—

यह एक छोटा वृक्ष है जो पल्लीग्राम के जङ्गलों में होता है। लोग इसकी डाल की दतुन करते हैं। इसके फल की चुरट बनाकर पीने से गले के घाव और डिफ्थीरिया रोग में बडा लाभ होता है।

चुरट बनाने की तरकीब यह है। आस्से ओडा के पके फल १६ और कालीमिर्च १६, इन दोनों चीजों को अच्छी तरह पीस लें। फिर एक पतले कागज पर गाय का घी लगा कर सुखा लें, सूख जाने पर उपरोक्त पिसी हुई चीज का उस कागज पर लेप करके उसे फिर सुखालें। फिर उस कागज को लपेट कर चुरट तैयार कर लें।

इक्लीलुल् मलिक

नाम—

अरबी—असाबउल मलिक, इक्लीलुल् मलिक। हिंदी—नाखुना। फारसी—नाखुना, ग्याह-कैसर। लेटिन—Trigonella Uncata.(ट्रिगोनेला अंकेटा) और Meli Lotus Alba (मेली-लोट्स एल्बा)

वर्णन—

यह एक प्रकार की मुलायम वनस्पति है। इसके पत्ते तीन २ के गुच्छे में रहते हैं, ये गोल रहते हैं। इसके फूल सफेद और लम्बे रहते हैं। इसकी फली लम्बगोल होती है। इसमें एक-दो बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह सूजन को उतारने वाला, दोषों को पचाने वाला और कठिन सूजन को मुलायम करने वाला है। आमाशय, यकृत और प्लीहा के दर्दों में भी यह विशेष उपयोगी है। अफसंतीन रूमी के साथ इसको मिलाकर लेप करने से यकृत और प्लीहा की सूजन घट जाती है।

मध्य यूरोप के अन्दर यह औषधि अस्पर्क (Melilotus Officinalis) के बदले में उपयोग की जाती है।

इसका काढ़ा लकवा, धनुष्टंकार, आक्षेप और स्नायु-जाल की अन्य बीमारियों में भी लाभ पहुँचाता है। श्वास और दमे में भी यह लाभदायक है। इसके प्रयोग से पथरी भी कट कर निकल जाती है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह संकोचक और निद्रा लाने वाली औषधि है। इसमें कोमेरिन (Coumarin) नामक पदार्थ पाया जाता है। यह हृदय की क्रिया को धीमी करता है।

उपयोग—

सूजन—कठोर और दृढ़ सूजन के लिये इस औषधि को बनफशा, अलसी और मेथी के साथ उपयोग करना चाहिये।

सिर की गंज—इसको सिरके में पीसकर सिर की गंज पर लेप करने से लाभ होता है।

कान का दर्द—इसके काढ़े को कान में टपकाने से कान का दर्द आराम होता है।

सिर दर्द—सिरका और गुलरोगन के साथ इसका सिर पर लेप करने से गरमी का सिरदर्द मिटता है।

इन्द्रजौ

नाम—

संस्कृत—कुटजबीज, यव, इन्द्रयव, कालिंग, भद्रयव इत्यादि। हिन्दी—इन्द्रजौ। गुजराती—इन्दरजव। बंगाली—इन्द्रयव। मराठी—कुड़याँ चे बीज। कर्नाटकी—कोड़ा सिगय बीज। फारसी—जवान कुंचिस्क। अरबी—लेसानुत् असाफीर। लैटिन—Holarrhena Antidysenterica.

वर्णन—

इन्द्रजौ का पौधा जिसको कुड़े का झाड़ कहते हैं भारतवर्ष की एक अत्यन्त प्रसिद्ध वनस्पति है। इसके झाड़ ४ से १० फीट तक ऊँचे होते हैं। इसकी छाल आध इंच मोटी और कुछ मोटी तथा भूरे रंग की होती है। इसकी शाखाओं पर चार से आठ इंच लम्बे और तीन-चार इंच चौडे पत्ते आमने-सामने आते हैं, इसके फूल गुच्छेदार और सफेद रंग के होते हैं। इसकी फलियें एक से दो फीट तक लम्बी, पाव इञ्च मोटी और दो २ एक साथ जुड़ी हुई होती हैं, ये फलियाँ लाल रंग की होती हैं। इनके भीतर के बीज जो इन्द्रजौ के नाम से मशहूर हैं, कच्ची हालत में हरे और पक्की हालत में गेहूँ के रंग के होते हैं।

कूडे का वृक्ष दो प्रकार का होता है। एक सफेद और दूसरा काला। सफेद कूड़े के बीज मीठे इन्द्रजौ के नाम से और काले कूड़े के बीज कडवे इन्द्रजौ के नाम से मशहूर हैं। कड़वे इन्द्रजौ को लैटिन में Antidysenterica. और मीठे इन्द्रजौ को Wrightia Tinetorica. कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—कूड़े के झाड़ की छाल और उसके बीज अर्थात् इन्द्रजौ बहुत प्राचीन समय से इस देश में औषधि के रूप में व्यवहृत होते आ रहे हैं। इसकी छाल कड़वी, शुष्क, गरम, कसैली और कृमिनाशक होती है। अतिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, आमातिसार इत्यादि रोगों पर यह वनस्पति बहुत ही उत्तम कार्य करती है। मरोड़ी के दस्तों में जब कि भयङ्कर रीति से दस्तों में खून गिरता है, उस समय कूड़े की छाल आशीर्वाद की तरह लाभ पहुँचाती है। चाहे जैसा खूनी अतिसार हो और चाहे जैसी मरोड़ी आती हो, उसको भी यह औषधि मिटा देती है। आयुर्वेद के अन्दर रक्तातिसार में कूड़े की छाल की बराबरी करने वाली दूसरी कोई भी औषधि नहीं है। यह एलोपेथी की सुप्रसिद्ध दवा इपीकोना का मुकाबला करती है। बवासीर और रक्त-पित्त के रोगों में भी यह औषधि बड़ा लाभ पहुँचाती है। इससे बवासीर के अन्दर से पड़ने वाला खून बंद हो जाता है। शरीर में ताकत आती है। चेहरे का पीलापन मिटता है और आखों में जीवन आता है। मलेरिया ज्वर, इकातरा तथा मियादी बुखारो में भी यह औषधि बड़ा काम करती है। जिस समय अकेली क्विनाइन किसी बुखार

को तोड़ने में नाकामयाब होती है, उस समय क्विनाइन के साथ कूड़े की छाल का सत्व मिलाकर देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। इसकी छाल का स्वरस शहद के साथ लेने से प्रमेह और कामला में लाभ होता है। लोहभस्म के साथ इसके चूर्ण का सेवन करने से प्रदर में बड़ा जबर-दस्त लाभ होता है।

इसके बीज अर्थात् इन्द्रजौ ग्राही और शीतल है। बालकों के अतिसार, रक्तातिसार और आंतों की व्याधियों में जब गुदाद्वार से खून गिरता है और साथ में बुखार भी रहता है, तब यह औषधि छाछ के साथ देने से बड़ा लाभ पहुँचाती है। दूसरी ग्राही औषधियो मे जहा केवल स्तम्भन का गुण रहता है। वहा कूडे की छाल और इन्द्रजौ में स्तम्भन के साथ पाचन का गुण भी रहता है। इससे जहा यह एक तरफ दस्तों को बद करती है,वहा दूसरी ओर आम का पाचन भी करती है। इन्ही दिव्य गुणों के कारण चिरकाल से यह औषधि आयुर्वेद की प्रियपात्र रहती आई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से कूडे की छाल कडवी, जख्म भरने वाली और रक्तस्राव-रोधक है। यह सिरदर्द को मिटाने वाली और मसूडों को मजबूत करने वाली है। इसका धुआँ बवासीर के लिये लाभकारक है। इसके पत्ते सकोचक और स्तनों के दूध को बढ़ाने वाले है, ये पौष्टिक और कामोद्दीपक है। कटिवात और पुरातन वायु-नलियों के प्रदाह मे भी यह मुफीद है। मूत्र-नाली सम्बन्धी रोगों में भी ये अपना असर दिखाते हैं तथा ऋतुस्राव की क्रिया को नियमित रूप में ला देते हैं। इनका खास उपयोग प्रसूति काल के बाद माता और बच्चे को बफारा देने के लिये किया जाता है।

इसके बीज पेट के आफरे को दूर करने वाले, संकोचक,कामोद्दीपक और पौष्टिक हैं,ये सीने के दर्द में, श्वास में, पेट के शूल में और मूत्रकृच्छ्र रोग में उपयोगी होते हैं। इसके सिवाय ज्वर में, पेचिश में, रक्तातिसार में व अँतडियों के कृमिरोगों को नष्ट करने मे मुफीद हैं।

चरक,सुश्रुत, भाव-प्रकाश व योग-रत्नाकर के मतानुसार इस वनस्पति की छाल और बीज, साँप और बिच्छू के जहर में बहुत उपयोगी हैं। मगर केस और महेस्कर का कथन है कि सर्प और बिच्छू के जहर में इस वनस्पति का प्रत्येक अग निरुपयोगी है। उनके मतानुसार न तो यह वृक्ष विषनिवारक है, न कृमिनाशक है, न उत्तेजक है, न रक्तस्राव-रोधक है और न सकोचक है। यह कड़वी है, जिससे क्षुधा को उत्तेजना मिलती है और पाचनशक्ति बढ़ती है। यह पेचिश को दूर करने वाली और रक्काति-सार को मिटाने वाली है। इसका अतिसार-निवारक गुण किसी रासायनिक उपादान के ऊपर निर्भर नहीं है। फिर भी अतिसार सम्बन्धी तकलीफों में यह वनस्पति सस्ता, सुरक्षित और विश्वस्त गुण बतलाती है। दमा और अतिसार रोग में इसको ६० से १२० ग्रेन तक की मात्रा में दिन में तीन या चार बार एक निश्चित औषधि के रूप में उपयोग में ले सकते हैं।

कर्नल चोपरा—कर्नल चोपरा इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि पुरानी कथाओं के आधार पर इस वृक्ष की उत्पत्ति अमृत की उन बूँदों से हुई है, जोकि रामचन्द्र की सेना के बन्दरों

को जीवित करने के लिये इन्द्र ने ऊपर से गिराया था। कई लोग Holarrhena Anti dysenterica (कड़वा इन्द्रजौ) "होलेरिना एन्टिडिसेन्ट्रिका" के पौधे को तथा Wrightia Tinctoria (मीठा इन्द्रजौ) "राइटियाटिंक्टोरिया" के पौधे को एक समझ कर गड़-बड़ा जाते हैं। एक के बजाय दूसरे को काम में ले लेते हैं। इसलिये यह ख्याल रखना चाहिये कि मीठे इन्द्र जौ के फूलों में एक प्रकार की खुशबू होती है, जो जूही या चमेली के फूलों से मिलती-जुलती होती है, लेकिन कड़वे इन्द्रजौ के फूलों में किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। इसके अतिरिक्त मीठे इन्द्रजौ की छाल का रग बादामी और कुछ ललाई लिये हुए होता है और हाथ लगाने से वह कुछ चिकनी मालूम होती है। मगर कड़वे इन्द्रजौ की छाल मोटी, कड़वी और मटमैले रग की होती है। इसकी फली के अन्त में एक बालों का गुच्छा रहता है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थो में इसकी छाल पेचिश को दूर करने वाली और इसके बीज ज्वर, अतिसार और कृमियों को नष्ट करने वाले माने गये हैं।

अरेबियन चिकित्साशास्त्रों में भी इसकी उपयोगिता बहुत बतलाई गई है। उनके मतानुसार यह पेट के आफरे को दूर करने वाला, सकोचक और फेफड़े के दर्दों में बहुत उपयोगी माना गया है। यह पौष्टिक, पथरीनाशक और कामोद्दीपक होता है। यदि इसको शहद और केशर के साथ मिलाकर, उसकी "पेसरी" (Pessaries) बनाकर योनिमार्ग में रक्खी जाय तो गर्भाधान में बहुत मदद मिलती है।

रासायनिक विश्लेषण—

कूड़े के वृक्ष के रासायनिक तत्वों के सम्बन्ध मे बहुत कुछ अन्वेषण हो चुके हैं। यूरोपियन लोगों ने खास तौर से "होलेरिना कागोलेसिस' के सम्बन्ध में और भारतीय लोगों ने "होलेरिना डिसेण्ट्रिका" के सम्बन्ध में अनुसन्धान करके अपनी २ खोजे जाहिर की हैं। केस और महेस्कर ने सन् १९२७ में इसका रासायनिक विश्लेषण करके यह तत्व निकाला कि इसके बीजों में ०२५ प्रति सैकड़ा अलकेलाइडल और छाल में २२ परसेन्ट अलकेलाइडल पाया जाता है। सन १९२८ में घोष और बोस, ने इसका नवीन विश्लेषण करके यह सिद्धान्त निकाला कि इसके सारे पौधे में अलकालॉइडल (Alkaloidal) की मात्रा, जैसा कि अभी तक कहा जाता है, उससे अधिक पाई जाती है। अर्थात् १.२ प्रति सैकड़ा से भी इसकी मात्रा अधिक पाई जाती है। इसका यह बढ़ा हुआ अङ्क यह बतलाता है कि व्यवसायिक स्केल पर अगर इससे उपक्षार तैयार किये जायें, तो वे लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

सन् १८५८ में सबसे पहले 'हेन्स' ने इसमें से कोनेसिन (Conessine) नामक एक उपक्षार निकाला, रामचद्रदत्त ने इसके सभी उपक्षारों को निकाला और उन्होंने उनका नाम कुर्चिसिन (Kurchicine) रक्खा। सन् १८८६ में "वार्नेक" (Warnecke) ने और १९२५ मे ऐय्यर और सियोनसेन ने इसके बीजों से शुद्ध "कोनेसिन" निकाला। सन् १९१९ मे "पायमेन" ने इसकी छाल से एक नया "अलको-

लॉइड" निकाला जिसका नाम उन्होंने Holarrhenine. (होलेरीनाइन) रक्खा । सन् १९२८ मे घोष और बोस ने यह बताया कि कोनेसिन के अतिरिक्त इसमें अन्य उपक्षार भी है, जिनके नाम "कुर्चिसिन" और "कुर्चाइन" है। "कुर्चाइन" नामक क्षार इसकी छाल मे अधिक मात्रा मे रहता है।

सन् १९३२ में घोष और बोस ने कलकत्ते के "स्कूल ऑफ ट्रोपिकल मेडिसिन" में "करचाइन" और "कर्चेसाइन" नाम के दोनों उपक्षार बिलकुल शुद्ध मात्रा में प्राप्त किये और इसके रासायनिक तत्वों का और मुख्य २ क्षारों का पूरा २ अध्ययन किया।

आगे चलकर कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इसके बीज पेचिश, अतिसार, ज्वर और पित्त सम्बन्धी तकलीफों में बहुत ही लाभकारी हैं। खूनी बवासीर के उपचार में इसके बीजों का काढ़ा दूध के साथ तैयार करके उपयोग में लिया जाता है और यह बड़ा लाभ करता है। इन्द्रजौ को पीसकर या गरम पानी में उसका सत्व निकाल करके कृमियुक्त पेचिश रोग में देने से बड़ा लाभ होता है।

बीजों की अपेक्षा इसकी छाल की बहुत ही तारीफ की गई है और सुश्रुत, भाव-प्रकाश तथा निघण्टुकारों ने रक्तातिसार-नाशक औषधि की हैसियत से इसे बहुत ही ऊँचा स्थान दिया है। भारतीय और यूरोपियन दोनों ही प्रकार के चिकित्सक इसको पेचिश की एक उत्तम दवा मानते हैं। सन् १८८१ में डाक्टर आर० सी० दत्त ने जीर्ण और भयङ्कर पेचिश के रोगियों को इसकी छाल के सत्व से आराम करने में सफलता पाई। टुलवाल्श (Tullwalsh) ने भी सन् १८९१ में इसकी छाल के प्रति अपना पूर्ण संतोष प्रगट किया। कनाईलाल दे को तो इस छाल की उपयोगिता पर इतना विश्वास हो गया कि उन्होंने ब्रिटिश फरमाकोपिया मे इस औषधि को सम्मिलित करने की सिफारिश की।

इण्डिजेनस ड्रग कमेटी ने पेचिश की बीमारी में कुडे की छाल की इतनी उपयोगिता देखकर इसकी जाँच करना चाहा और इसके सत्व को निकालकर कई गवर्नमेंट अस्पतालों में भेजा और उनसे इस बात की रिपोर्ट मागी कि आँतों सम्बन्धी शिकायतों में इसकी उपयोगिता कहाँ तक सिद्ध होती है।

इसके परिणाम स्वरुप समय २ पर जो रिपोर्टें प्राप्त हुई वे अत्यत उत्साह वर्द्धक थीं और उन्होंने उस कमेटी के मेम्बरों के हृदय पर यह छाप जमा दी कि रक्तातिसार को नष्ट करने के लिये यह एक बहुत उत्तम औषधि है। वॉरिंग (Waring) का कथन है कि यह सभी प्रकार के जीर्ण पेचिश के रोगों में एक उत्तम दवा है। चाहे वह पेचिश अन्य रोगों के अथवा ज्वर के साथ हो, चाहे वह उग्ररूप में हो, अगर इस औषधि का इस्तेमाल किया जाय तो उसमें अवश्य लाभ होगा। मद्रास के डाक्टर कोमान का कथन है कि बच्चों और युवकों की पेचिश की बीमारियों में इस वृक्ष की छाल का सत्व अत्यन्त सन्तोषजनक लाभ पहुँचाता है।

पेचिश की बीमारी के अन्दर इस औषधि की पूरी तरह से आजमाइश हो चुकी है, इस वस्तु का उपयोग सबसे पहिले इसकी जड़ की छाल के सत्व से प्रारम्भ किया गया। यह स्वाद में बिलकुल कड़वा

और अग्राह्य है। ब्यूरो वेलकम एड को० (Burroughs Wellcome & Coy.) ने इसकी छाल के सत्व से तैयार की हुई गोलियाँ बाजार में वेचना शुरू कीं, जिसमें थोड़ी २ मात्रा में दूसरे पदार्थों को भी सम्मिलित किया। ये गोलियाँ सरलता से ली जा सकती हैं और लाभप्रद भी हैं।

सन् १६२७ में केस और महेस्कर ने भी इसकी छाल के चूर्ण को इस्तेमाल किया और वे भी अत्यन्त सतोषजनक परिणाम पर पहुँचे। सन् १६२८ मे नॉबेल्स और दूसरे लोगों ने करीब सोलह बीमारों को इसकी छाल का सेवन कराया, जिसमें से १० को तो इसका अर्क दिया गया और ६ को इसके सत्व से तैयार की हुई गोलियाँ दी गई, इसके परिणाम मे आराम होने वाले रोगियों की संख्या का अनुपात बहुत ऊँचा रहा और विशेषता यह पाई गई कि बिना इन्जेक्शन लगाये ही रोगी में किसी प्रकार के टॉक्सिक या विषैले लक्षण पैदा नहीं होने पाते। गोलियाँ देने से, बिना किसी प्रकार की असुविधा के ६० ग्रेन की मात्रा रोगी के शरीर में पहुँच जाती है और इसमें रोगी को किसी भी प्रकार की दूसरी शिकायत पैदा नहीं होती है।

कर्नल चोपड़ा ने इस दवा को २ ड्राम की मात्रा में दिन में तीन बार ४ सप्ताह से लगाकर पांच सप्ताह तक अकेले ही या ईसबगोल के साथ में जीर्ण ऑतो की पेचिश की बीमारी में काम में लिया और उसका परिणाम बहुत सतोषजनक रहा। किसी भी प्रकार के असन्तोषजनक चिन्ह या विषैले पदार्थों का एकत्रित होना नहीं पाया गया। यहाँ तक कि उन बीमारों को भी जो अँतडियों के सिवाय दूसरे कारणों से भी पेचिश के रोग से ग्रसित थे, इससे लाभ पहुँचा।

पेचिश निवारक शक्ति के अतिरिक्त यू० पी० के अन्दर यह भी विश्वास किया जाता है कि इस औषधि में मलेरिया के कीटाणुओं की दमन करने की शक्ति भी है। मगर प्रयोगों से मालूम हुआ है कि इस विश्वास को कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है। मलेरिया में यह औषधि किसी प्रकार का प्रभाव नहीं बतलाती।

मतलब यह है इसमें जितने उपक्षार पाये गये है उनको रसायनशाला और अस्पतालों में आजमाइश करके देखा गया तो मालूम हुआ कि अँतडियों के कीटाणुओं से उत्पन्न हुई पेचिश की बीमारी में ये प्रशंसनीय फायदा पहुँचाते हैं। ये उपक्षार अधिक मात्रा में दिये जाने पर भी किसी प्रकार के खराब चिन्ह पैदा नही करते। यदि इसका इट्रामसक्यूलर (Intramus Cular) इजेक्शन दिया जाय और उसमें उपक्षार १ ग्रेन की मात्रा में हो तो यह इजेक्शन एमेबिक डिसेंट्री में इमेटाइन के मुकाबले ही तुरन्त फायदा पहुँचाते हैं। इतना जरूर है कि इजेक्शन देने के स्थान पर २४ घण्टे से लगाकर ४८ घण्टे तक सूजन की तकलीफ रहती है। पुरानी बीमारियो में यदि १० ग्रेन की मात्रा में दिन में दो बार ये उपक्षार १० दिन तक दिये जायें तो सक्रामक कीटाणुओं को नष्ट कर देते हैं। कई हठीले मामलों में १५-२० दिन तक भी इनका उपयोग किया जाता है।

इंडियन मेडिकल गजट मे सन् १६३० में कर्नल चोपड़ा ने यह मत प्रगट किया कि इन सब उपक्षारों को जाँचने से हमें यह अनुभव हुआ है कि स्नायु में एक ग्रेन की मात्रा में अगर इसका इंजे-

क्शन दिया जाय तो अंतड़ियों की कार्यशक्ति मे यह तुरन्त ही अपना असर दिखलाता है। सर्व प्रथम इसका असर वमन से शुरू होता है । हम आशा करते थे कि ये उपचार, यकृत सम्बन्धी पीड़ाओं में भी उतने ही गुणकारी सिद्ध होंगे, लेकिन यकृत-प्रदाह में इन उपचारों की उपयोगिता सिद्ध नहीं हुई।

फरीदपुर के सिव्हिल सर्जन टी-वसु का कथन है कि जेल अस्पताल में लगातार रक्तातिसार के १४ केसों के अन्दर इसकी छाल का काढा देने से बहुत ही फतहमन्द असर देखने में आया। इसी प्रकार और भी अनेक प्रसिद्ध डाक्टरों, सर्जनों, रसायन-शास्त्रियों और वैद्यों के अभिप्रायों से मालूम होता है कि सब प्रकार के अतिसारों पर यह एक रामबाण औषधि है।

इन्द्रजौ का अद्भुत चमत्कार—सन् १९२२ के जून मास के 'वैद्य' कल्पतरु में इन्द्रजौ के सम्बन्ध में उपयोगी एक नोट प्रकाशित हुआ था, वह इस प्रकार है-सेठ इस्माइल इब्राहीम नामक एक बीमार को ६५ वर्ष से रक्तातिसार, ज्वर इत्यादि की तकलीफ थी। उन्हे किसी इलाज से लाभ नहीं हुआ। वे एक दिन अनायास ही शास्त्री प्रभुलाल भाई से मिलने आये और उनसे सारा हाल कहा। तब शास्त्री जी ने उन्हे सिर्फ दो आने की एक शीशी इन्द्रजौ की दी, उसको चालू करने पर पहले ही दिन दस्त में से खून गिरना बन्द हो गया, दूसरे दिन दस्तों की संख्या कम हो गई और सात दिन खाने के बाद एक दिन अचानक पेशाब में जोर पडकर चने के बराबर पथरी बाहर निकल पडी। उस दिन से फिर उन्हें कोई तकलीफ न रही।

प्रयोग और बनावटें—

कुटजाष्टक अवलेह—कुटज की जड़ की ताजी छाल ५ सेर लेकर उसका १६ सेर जल में काढा करें। जब दो सेर रह जाय तब उसे छानकर फिर आग पर चढा दें। जब पानी पकते २ गाढा हो जाय, तब उसमें पाढ, सेमर का गोंद, धाय के फूल, नागरमोथा, अतीस, लाजवंती और नरम बेल गिरी, इन सब चीजों का चार चार तोला पिसा, छना चूर्ण उसमें डालकर उसका अवलेह बना लें। इस अवलेह को ३ माशे से एक तोला तक की मात्रा में चाँवलों के माँड या बकरी के दूध या छाछ या शहद के साथ देने से अतिसार, संग्रहणी, रक्त-प्रदर, रक्त पित्त और खूनी बवासीर इत्यादि रोग आराम होते है। चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास वैद्य इस योग को अपना परिचित योग बताते हैं।

कुटज पुटपाक—कीड़ों से न खाई हुई कुटज की आधापाव ताजी छाल लेकर उसे सिल पर रख चाँवलों के धोवन में चटनी के समान पीसकर उसका गोला बना लें। उस गोले पर जामुन के पत्ते लपेट कर उन पत्तों को डोरे से बाँध दें। उसके बाद गेहूँ का सना हुआ आटा उसके चारों ओर लपेट कर उस आटे पर गीली मिट्टी की दो अंगुल तह चढा दे, फिर उसे सुखाकर जङ्गली कंडों की आग में डाल दे। जब पक कर गोला कुछ सुर्ख हो जाय (अधिक लाल न होना चाहिये) तब उसे निकाल कर ठंडा कर उसकी मिट्टी और आटा दूर करके मोटे गजी के कपडे में उसको रखकर जोर से उसे निचोड लेना चाहिये। इस रस को छः माशे से दो तोले तक की खुराक में जवान आदमी को देने

से सब तरह के अतिसार शर्तिया आराम होते हैं। बाबू हरिदास वैद्य लिखते हैं कि यह पुटपाक हमारी अनेकों बार की आजमाई हुई है। यह कभी व्यर्थ नहीं जाती। यह अतिसार के सौ में से नब्बे रोगियों को आराम करती है।

कुटजादि घृत—इन्द्रजौ, कूडे की छाल, नागकेशर, नीलकमल, लोद और धाय के फूल, इन सब चीजों को दो २ रुपये भर लेकर सबको सिल पर पानी के साथ महीन पीसकर गोला बनाकर उस गोले को एक कढ़ाई में रखकर उसमें पाव भर घी और १ सेर कूडे की छाल का औटाया हुआ जल डालकर मन्दाग्नि पर चढा दो। जब काढा जलकर घी मात्र शेष रह जाय तब उतार कर छान लो। इस घी को बलाबल के अनुसार छः माशे से दो तोले तक की मात्रा में लेने से खूनी बवासीर मे बड़ा लाभ होता है।

कुटजारिष्ट—कूडे की अन्तर्छाल ४०० तोला, द्राक्ष २०० तोला, महुए ४० तोला, गम्भारी की छाल ४० तोला, लेकर उनको जौकुट करके १ मन ११ सेर पानी में औटाना चाहिये। जब १२॥। सेर पानी शेष रह जाय तब उतार कर, छानकर उसमें ५ सेर गुड और १ सेर धावडी के फूलों का चूर्ण डालकर अच्छी तरह से मिलाकर एक चिनाई मिट्टी की बरनी में भरकर उसका मुंह बद करके उसको पड़ी रखना चाहिये। उसके बाद उसको छानकर उपयोग में लेना चाहिये।

प्रतिदिन सवेरे, दोपहर और शाम को एक २ रुपये भर यह आसव चार २ रुपये भर पानी के साथ मिलाकर लेने से पुरानी सग्रहणी, अतिसार, मंदाग्नि, जीर्णज्वर और रक्तातिसार में बहुत लाभ होता है।

इंद्रजौ मीठा

नाम—

संस्कृत—श्वेतकुटज, मधुइन्द्रयव। हिन्दी—मीठा इन्द्रजौ। मराठी—गोदा इन्द्रजौ, कालाकुद्दी। गुजराती—कालीकरी। अरबी—लसनुलाखाफिर। फारसी—अहरेशिरिन, इन्द्रजौ। तेलगू—अमकुदु, पल्लुमिली। तामिल—नीलपलाई, वेपाली। लेटिन—Wrightia Tinctoria (राइटिया टिंक्टोरिया)।

वर्णन—

इसका वानसपतिक वर्णन कड़वे इन्द्रजौ से मिलता-जुलता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेद के मत से इसकी छाल और बीज बवासीर, चर्मरोग और पित्त में उपयोगी हैं। ये पौष्टिक तथा कामोद्दीपक औषधि के रूप में उपयोग में लिये जाते हैं। इसके शेष गुण कडवे इन्द्रजौ से ही मिलते-जुलते हैं।

केस और महेस्कर के मतानुसार इसकी छाल और इसके बीज दोनों ही रक्तातिसार में निरुपयोगी हैं।

इंद्रायन

नाम—

संस्कृत—आत्मरक्षा, बृहद्वारुणि, बृहद्फल, चित्रल, चित्रफल, चित्रावली, देवि, दीर्घवल्ली, हस्तिदात, कपिलाक्षी, कटुरस, काया, कुम्भासि, महाफल, महेन्द्रवारुणी इत्यादि। गुजराती—इन्द्रवारुणी,इन्द्रानन, इन्द्रक। मराठी—इन्द्रावण,इन्द्रफल,इन्द्रायण। हिन्दी—इन्द्रायण, मकल, घोरम्ब। बंगाली—इन्द्रायन, माखल। उर्दू—इन्द्रायण। अरबी—हब्जल, हमूजक, दुमजिल। फारसी—काविश्तेतल्ख। तामील—पेयकुमुटि। तेलगु—वेरिपुत्त। कनारी—तुमतिकाइ। लेटिन—Citrullus Colocynthis. (सायट्रूलस कोलोसिंथस)

वर्णन—

इन्द्रायन के सम्बन्ध में वैद्य लोगों में तथा प्राचीन ग्रंथों में कुछ मतांतर सा दिखलाई पड़ता है। कई लोग Cucumis Trigonus. (क्यूक्यूमिस ट्रिगोनस) नामक वनस्पति को जिसे हिंदी में विषलोम्बी या जगली इद्रायण कहते हैं, उसीको बडी इंद्रायण समझकर काम में लेते हैं। काठियावाड़ के भी कई वैद्य महाफला की जगह छोटे फल वाली इन्द्रायण को काम मे लेते है। मगर वास्तव में इन्द्रायण की बेल उससे लम्बी होती है और उसमें तरबूज के पत्तों के समान पत्ते लगते हैं। इस बेल पर नर और मादा दो प्रकार के फूल लगते हैं। इसके फल गोलाई में दो से तीन इञ्च तक व्यास में होते हैं और उनका रग पहले हरा और फिर पीला तथा सफेद रग की धारियों वाला होता है। इसके बीज भूरे, चिकने, चमकदार, लम्बे, गोल और चपटे होते हैं। इस बेल का पञ्चाग ही कड़वा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इन्द्रायण कड़वी, चरपरी, [illegible] रेचक तथा गुल्म, पित्त उदररोग, कफ, कृमि, कोढ़ और ज्वर को हरने वाली है। यह अर्बुद (सान्तानिक फोड़ा) जलोदर,

कफ, धवलरोग, व्रण, श्वास, खाँसी, मूत्र सम्बन्धी व्याधियाँ, पीलिया, तिल्ली, क्षयरोग जन्य कण्ठमाला, मंदाग्नि, कब्जियत, रक्ताल्पता और श्लीपद में लाभदायक है। इसकी जड़ सीने की जलन और जोड़ो के दर्द में मुफीद है। चक्षुरोग और गर्भाशय के रोगों मे भी यह लाभ पहुँचाती है तथा गर्भस्थ बालक को असमय में बाहर आने से रोकती है।

यूनानी मत—यूनानी मत के अनुसार यह तीसरे दर्जे में गर्म और दूसरे दर्जे में रुक्ष है। इसके बीज और छिलके ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये अत्यन्त मरोड़ी पैदा करके मृत्यु के कारण होते हैं। अधिक मात्रा में यह आमाशय को हानि पहुँचाने वाला और मरोड़ तथा पेचिश उत्पन्न करने वाला है। इसके पत्ते आँतो को हानिकारक हैं। इसके दर्प को नाश करने वाला बबूल का गोंद है। इस औषधि की मात्रा १॥ माशे से ३ माशे तक की है।

इन्द्रायण का गुदा सूजन को उतारने वाला, वायु को नष्ट करने वाला और स्नायु-मण्डल सबंधी बीमारियो में, जैसे लकवा, फालिज, आधाशीशी, मृगी, विस्मृति इत्यादि रोगों के लिये उपयोगी है। यह मस्तिष्क के विकारों को शुद्ध करता है। इससे सिद्ध किया हुआ तेल कान में टपकाने से कर्णशूल नष्ट होता है।

कर्नल चोपरा का इस औषधि के सम्बन्ध मे कथन है कि "आयुर्वेद में यह पुरानी औषधि है। इसका फल विरेचक गुणवाला बतलाया गया है। यह पित्त,कब्जियत, ज्वर और अँतड़ियों के कीड़ों में लाभकारी है। इसकी जड़ जलोदर, पीलिया, मूत्र की बीमारी और आमवात में उपयोगी है। यूनानी हकीम इस वस्तु को जलोदर, पीलिया, नष्टार्तव और गर्भाशय की तकलीफों मे बहुत ज्यादा उपयोग में लेते हैं।

रासायनिक विश्लेषण—

"भारत और यूरोप की दोनों वनस्पतियों के रासायनिक तत्वों में कुछ भी अंतर नहीं पाया जाता है। इन दोनो में अलकालॉइड (उपक्षार) और कोलोसिन्थिन (Colocynthine) नामक कटु पदार्थ पाये जाते है। इसके अन्दर उपक्षार बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं और वे शुद्ध हालत में अलग निकाले भी नहीं जा सकते। ट्रापिकल मेडिसिन स्कूल, कलकत्ता के रासायनिक विभागों में भारत के अन्दर पैदा हुए इन्द्रायण की जाच की गई और परिणाम इस प्रकार प्राप्त हुआ। पेट्रोलियम ईथर एक्सट्रेक्ट इसके गूदा में .६१ प्रतिशत और सारे सूखे हुए फल मे १.३६ पाया गया। सलफ्यूरिक ईथर एक्सट्रेक्ट गूदा में ३.१७ प्रतिशत और सूखे हुए फल में २.०४ प्रतिशत पाया गया और एलकोहेलिक एक्सट्रेक्ट गूदा में १०.६० प्रतिशत और सारे सूखे फल में १२.१५ पाया गया।

यह औषधि तेज विरेचक के रूप में काम में ली जाती है और बहुत-सी विरेचक गोलियाँ इसके सम्मेलन से बनाई जाती हैं।

के० एल० दे के मतानुसार इसमें पाया जाने वाला प्रधान तत्व कोलोसिंथिन नामक ग्लुको-साइड है। इसका स्वाद कड़वा है, थोड़ी मात्रा मे यह कटु-पौष्टिक है। साधारण मात्रा मे यह अंतड़ियों की ग्रंथियों को उत्तेजना देता है और पतले दस्त लाता है। अधिक मात्रा में यह तेज विरेचक का काम करता है और आँतों में दर्द पैदा करता है। गर्भवती स्त्री को यदि दिया जाय तो गर्भपात का डर रहता है।

मटेरिया मेडिका ऑफ वेस्टर्न इंडिया के लेखक डाक्टर डायमाक का कथन है कि स्नायु-मण्डल की कमजोरी से होनेवाली कब्जियत,जलोदर,पीलिया,कृमि,उदरशूल व श्लीपद में इस औषधि का उपयोग होता है। मखजन के लेखक ने इसके उपयोग करने की एक विचित्र विधि बतलाई है। वह इस प्रकार है। इन्द्रायन का एक फल लेकर एक तरफ से उसकी डिग्री निकालकर उसमें कालीमिर्च भरकर पीछी बंद करके कपड़-मिट्टी करके कुछ दिनों तक चूल्हे के पास की गरम राख में पड़ा रहने देना चाहिये। उसके बाद। उन मिर्चों को निकाल कर, सुखाकर, उनका चूर्ण करके देने से दीपन, पाचन और रेचन होता है।

ब्रिटिश मटेरिया मेडिका के मतानुसार इन्द्रायण अतिशय रेचक, प्रवाही, मल लाने वाली तथा शीघ्र जुलाब है। इसलिये यह हमेशा रहने वाली सख्त कब्जियत में, बुखार में, जलोदर में, ऋतु-स्राव और गर्भस्राव के दर्द में तथा पेट और कामले की बीमारियों में बहुत उत्तम असर बतलाती है।

इस औषधि का विरेचन उन मनुष्यों के लिये अधिक उपयोगी है, जिन की प्रकृति सुदृढ और सबल हो, जिनका शरीर स्थूल हो। गर्भवती स्त्रियों, कमजोर मनुष्यों, बालकों तथा अतिसार, प्रवाहिका के रोगियों को इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसके सिवाय इस औषधि को अकेली भी सेवन नहीं करना चाहिये। बल्कि बबूल के गोंद, कतीरा इत्यादि इसके दर्प को नाश करने वाली औषधियो के साथ इस औषधि का सेवन करना चाहिये। इसका बहुत महीन चूर्ण बनाकर उपयोग करना चाहिये। चूर्ण दरदरा रहने से यह मरोड़ और पेचिश पैदाकर आँतों को काट डालता है।

मटेरिया मेडिका ऑफ थेरोप्यूटिक्स के लेखक डाक्टर विलियम व्हिटला लिखते हैं कि कोलो-सिंथ (इन्द्रायण) एक उत्कृष्ट तेज विरेचन और पतले दस्त लाने वाली औषधि है पर इससे मरोड़ पैदा होती है। इसलिये इसका अकेले कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये। बल्कि एलुआ (Aloes) और पारे (Mercury) के साथ मिश्रित कर देने से यकृत की विकृति और पुरानी कब्जियत में बहुत लाभ होता है। इससे पानी की तरह दस्त आते हैं। इसलिये कभी २ जलोदर उदरशोथ और मस्तिष्क के अन्दर रक्त सञ्चय होने की बीमारी (Crebral Congestion) में इसका प्रयोग किया जाता है। मगर इन बीमारियों में Scammony और Elaterium इसकी अपेक्षा अधिक प्रभावशाली औष-धियाँ हैं। खुरासानी अजवायन का सत्व और बेलेडोना कोलोसिंथ के द्वारा पैदा हुई मरोड़ी और शूल को बिना उसके विरेचक गुण को हानि पहुँचाये शांत करता है। इसलिये पुरानी कब्जियत में आवश्यकता

पड़ने पर इन तीनों औषधियों की सम्मिलित गोली (Compound Pill) देने से निरुपद्रव विरेचन होता है।

उपयोग—

स्तन शोथ—इसकी जड़ का लेप करने से या उसकी पुल्टिस बाँधने से स्त्रियों का स्तनपाक दूर होता है।

मूत्ररोग—जब गुर्दे के अन्दर मूत्र का बनना बन्द हो जाता है अथवा मूत्र रुक जाता है, तब इन्द्रायण के गूदे में रेवद चीनी मिलाकर देने से लाभ होता है।

डिब्बा रोग—इसकी जड़ के एक माशे चूर्ण में दो रत्ती सेंधा नमक मिलाकर गरम जल के साथ देने से बच्चों के डिब्बा रोग में लाभ होता है।

आफरा—इन्द्रायण की गिरी और एलवे को पीसकर गरम पानी के साथ लेने से आफरा मिटता है।

प्रसव कष्ट—इसकी जड़ को पीसकर गाय के घी में मिलाकर योनि पर लेप करने से बच्चा तुरन्त सुख से पैदा हो जाता है।

उपदंश—इसकी जड़ के टुकडे को पाँच गुने पानी में औटाकर, जब तीन भाग पानी रह जाय, तब उसको छानकर, उसमें बूरा डालकर, फिर चढ़ा कर शर्बत बना लेना चाहिये। इस शर्बत को बलाबल के अनुसार उचित मात्रा मे देने से उपदश और वात-पीड़ा में लाभ होता है।

सूजन—इसकी जड़ को सिरके में पीसकर सूजन पर लेप करने से सूजन मिटती है।

दाँतों के कीड़े—इसके पके हुए फल की धूनी देने से दाँतों के कीड़े मर जाते हैं।

संधिवात—इन्द्रायण की जड़ १ एक तोला, पीपर १ तोला और गुड़ ४ तोला, इन सब को मिलाकर छः माशे से एक २ तोला की मात्रा में रोज लेने से सधिवात में लाभ होता है।

योनि शूल—इन्द्रायण की जड़ को योनि के अन्दर रखने से योनिशूल और पुष्पावरोध मिटता है।

बालों की सफेदी—इसकी जड़ को गाय के दूध के साथ कई दिनों तक सेवन करने से और इसके बीजों का तेल सर में लगाने से बाल काले हो जाते हैं।

कंठमाल—कठमाल में इसकी जड़ का गौ मूत्र के साथ उपयोग करने से लाभ होता है।

आँख का रोयाँ—आँखों की पलक के भीतरी बाजू में एक ऐसा बाल उत्पन्न होता है जो आख के अन्दर तकलीफ पहुँचाता रहता है,इससे आख से हमेशा आँसू बहा करते हैं। इस दर्द को मिटाने के लिए इन्द्रायन एक अद्भुत औषधि है, इसका उपयोग करने की विधि इस प्रकार है—इन्द्रायन का एक

फल लेकर एक डिगरी लगाकर उसमें २ तोला काले सुरमे का टुकडा रखकर डिगरी को फिर पीछे बन्द करके धूप में रख देना चाहिये, जब वह फल सूख जाय, तब उस सुरमें को निकाल कर दूसरे फल मे रखकर उसे भी सुखा लेना चाहिये। इस प्रकार तीन फलों में उस सुरमें को रख २ कर सुखाने के पश्चात् फिर उसे निकाल कर बारीक पीसकर पलको के भीतरी रोयें को निकलवाकर, उस सुरमें को आजना प्रारम्भ करना चाहिये। इससे वह बाल फिर पैदा नहीं होगा। (जगलनी जड़ी-बूटी)

इन्द्रायनादि चूर्ण—अजवायन १० तोला, मीठे आवले के पत्ते ८ तोला, निसोथ की जड़ की छाल २ तोला, हरड १ तोला, आवला १ तोला, बहेड़ा १ तोला, सूंठ १ तोला, मिर्च १ तोला, पीपर १ तोला, रेवन्द चीनी का सत १ तोला, एलुवा १ तोला, चित्रक की जड़ १ तोला, अकलकरा १ तोला, मेदा लकड़ी १ तोला, आम्रीहल्दी १ तोला, सज्जीखार १ तोला, फुलाई हुई फिटकरी १ तोला, लवंग १ तोला, जायफल १ तोला, सचर नमक १ तोला, सेंधा नमक १ तोला, बीड़ नमक १ तोला, साम्भर नमक १ तोला, भोरिंगणी की जड़ १ तोला, पीपलामूल १ तोला, कालीजीरी १ तोला, राई १ तोला, स्याह जीरा १ तोला, सुहागा १ तोला, मोथा १ तोला, इन सब औषधियों को लेकर चूर्ण कर लेना चाहिये। फिर इन्द्रायन के १०-१२ फल लेकर उनमें डिगरियाँ लगाकर उन फलों में उस चूर्ण को भर कर पीछी डिगरियें बन्दकर कपड़-मिट्टी करके उपले-कडों की आग में डाल देना चाहिये। जब फलों के ऊपर की मिट्टी पक कर लाल होजाय तब उनको निकाल कर उनकी कपड-मिट्टी दूरकर फलों के अन्दर भरे हुए चूर्ण को और फलों के गर्भ को छाया मे सुखा कर पीस लेना चाहिये। इस चूर्ण को प्रतिदिन सवेरे-शाम ३ माशे से ६ माशे की खुराक में १ तोला अरडी के तेल के साथ मिलाकर आधापाव गाय के दूध में डालकर पीने से अंडवृद्धि का रोग दूर होता है। इसी मात्रा में इस चूर्ण को ५ तोला गौ-मूत्र के साथ पीने से जलोदर के रोग में लाभ होता है। इसी चूर्ण को २ तोला घीग्वार के गूदे के साथ मिलाकर खाने से कलेजे की गाठ, तिल्ली और कामला रोग दूर होते हैं। तथा बेर की जड़ के काढ़े के साथ लेने से वायुगोला दूर होता है। इसी प्रकार भिन्न २ अनुपानों के साथ यह औषधि भिन्न २ रोगों मे काम करती है।

इन्द्रायन छोटी

यह इन्द्रायन की एक छोटी जाति होती है, जिसको लेटिन में Cucumis Trigonus (क्यूक्यूमिस ट्रिगोनस) हिन्दी में विसलोम्भि तथा जगली इन्द्रायन और सस्कृत में बहुफल, चित्रफल, इत्यादि नाम है ।

इसका हरा फल कडवा और कुछ तूरा होता है । यह अग्निप्रवर्द्धक स्वाद को सुधारने वाली और कफ-पित्त को ठीक करने वाली है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह सर्पदंश में उपयोगी है । इसमें कोलोसिन्थ से मिलते-जुलते कटु तत्व रहते हैं ।

केस और महेस्कर के मतानुसार इसके पत्ते और इसकी जड सर्पदश में निरुपयोगी है ।

इंद्रायन लाल

नाम—

संस्कृत—श्वेतपुष्पी, मृगाक्षी, महाकाल, इत्यादि । हिन्दी—लालइन्द्रायन, इन्द्रायण, महाकाल । गुजराती—लालइन्द्रवारुणी । बगाली—माकाल । तेलगु—अवदुत । तामील—कोर्टइ । अरबी—हजले अहमर । फारसी—हजले सुर्ख । उर्दू—इन्द्रायन । लेटिन—Trichosanthes Palmata (ट्रिकोसेंथस पेलमेटा)।

वर्णन—

लाल इन्द्रायन की बेलें बहुत लम्बी बढती हैं । ये बडे ऊँचे २ झाड़ों पर चढ जाती हैं । इनके पत्ते २ से ६ इञ्च व्यास के और त्रिकोण से सप्तकोण तक होते हैं । इसके फूल सफेद रंग के तथा नर और मादा दो तरह के होते हैं । इसके फल गोल नारंगी के समान होते हैं और पकने पर लाल हो जाते हैं । इन फलों पर नारगी रग की १० धारियाँ होती हैं । इसका गूदा कालापन लिये हुए हरे रग का होता है और उसमें बहुत से बीज रहते हैं । इसकी जड़ जमीन में बहुत गहरी बैठती है और उसमें एक के नीचे एक ऐसे कई गाँठे होती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से इसका फल श्वास, कर्णरोग और पीनस में उपयोगी है। यह कंठरोग, अपच, श्वास, कास, प्लीहा, उदररोग, और मूढ़गर्भ को निवारण करने वाला और कुष्ट एवम् दुष्टव्रण को जीतने वाला है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल कड़वा, पेट के आफरे को दूर करने वाला, विरेचक और गर्भ-स्रावक है। आधाशीशी, मस्तिष्क की गरमी, नेत्ररोग, कुष्टरोग, मृगी और आमवात में भी यह मुफीद है। इसके कुल्ले करने से दाँत की पीड़ा में लाभ होता है। इसके बीज वमनकारक और विरेचक हैं।

बम्बई में इसके फल का धुवाँ श्वास के रोगियो को पिलाया जाता है। इसकी जड़ और बड़ी इन्द्रायण की जड़ को बराबर की मात्रा में लेकर एक लेप तैयार किया जाता है, जो सांघातिक फोड़ों (दुष्ट विद्रधि) पर लगाने के काम में आता है। त्रिफला और हलदी के साथ तयार किया हुआ इसका शीतल क्वाथ सुजाक में मुफीद माना जाता है।

कोमान के मतानुसार इस वनस्पति का फल बहुत तेज विरेचक है। इसको नारियल के तेल के साथ उबालकर एक तेल तैयार किया जाता। यह तेल आधाशीशी, पीनस, कर्णशूल और अर्धाङ्गशूल में लाभजनक होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि श्वास और फुफ्फुस के रोगों में मुफीद है। इसमें "ट्रिको-सेन्थीन" नामक एक कटु तत्व पाया जाता है, जो "कोलोसिंथ" के तुल्य ही होता है।

"इण्डियन प्लाट्स एन्ड ड्रग्स" के रचयिता का कथन है कि इसके फलों के रस या जड़ की छाल के काढे के साथ तेल को पकाकर उस तेल को छानकर उपयोग में लेने से आधाशीशी और शिरःशूल के प्राचीन रोग नष्ट होते हैं। कान में इसकी बूंदे टपकाने से कर्णस्राव भी बन्द होता है।

प्लेग और लाल इन्द्रायण—प्लेग के ऊपर भी इसकी जड़ के नीचे निकलने वाली गाँठ बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका उपयोग करने की रीति इस प्रकार है। इसकी जड़ के नीचे, एक के नीचे एक, ऐसी कई गाँठें निकलती हैं। उन गाँठों में सबसे नीचे वाली, या सातवें नम्बर की गाँठ को लाकर उसे ठण्डे पानी में घिसकर, प्लेग की गाँठ पर दिन में दो-चार बार लगाना चाहिये और डेढ़ माशे से तीन माशे तक की खुराक में उसे पिलाना भी चाहिये। इस प्रयोग से गाँठ एकदम बैठने लगती है, बुखार भी हलका पड़ने लगता है। और दस्त की राह से प्लेग का जहर निकल जाता है तथा बीमार को चैतन्य आने लगता है।

जंगलनी जड़ी-बूटी नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता वैद्य-शास्त्री शामलदास लिखते हैं कि हमारे एक परिचित सद्गृहस्थ जो लोगों की जिन्दगी प्लेग से बचाने के लिए डाक्टरों को हजारों रुपये दिला देने पर भी निष्फल हुए थे, उन्हें अचानक एक जंगली मनुष्य से यह योग हाथ लग गया और इसी योग से वे सैकड़ों मनुष्यों को प्लेग के पंजे से मुक्त करने में समर्थ हुए हैं।

उपरोक्त लेखक यह भी लिखते हैं कि अकेली लाल इन्द्रायन की गाँठ का लेप करने के बदले अगर इस गाँठ के साथ सखिया, जहरी कुचले की जड़, कालीजीरी, लोध और हरड़, ये वस्तुएँ समान भाग में मिलाकर गौ-मूत्र में पीसकर प्लेग की गाँठ पर लेप किया जाय तो विशेष हितकर होता है।

अन्य उपयोग—

कान का दुष्ट व्रण—इसके फल को पीसकर नारियल के तेल के साथ गरम करके कान के भीतर लगाने से कान का दुष्ट व्रण साफ होकर भर जाता है।

नाक का फोड़ा—सर्दी, गर्मी से नाक में फोडे होते हैं और जिनमें से सड़ा हुआ पीब निकलता है, उनमें भी यह तेल लगाने से लाभ होता है ।

मूत्र कृच्छ्र—लाल इन्द्रायण की जड़, हलदी, हरड की छाल, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक बराबर लेकर जौकुट कर इनका काढा बनाकर शहद के साथ पीने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

दमा—इसके फल को चिलम मे रखकर पीने से दमे मे लाभ होता है।

इपिकेकोना

नाम—

लेटिन—Psychotria Ipecacuanha.

वर्णन—

इपिकेकोना एक मशहूर वनस्पति है जोकि संसार के कई देशों में चिकित्सा-प्रणाली के अन्तर्गत उपयोग मे ली जाती है। यह साइकोट्रिया इपिकेकोना नामक वृक्ष की जड है। यह वृक्ष दक्षिण आफ्रिका के ब्राझील में पैदा होता है। रिओडिझेनेरियो नामक बंदरगाह से सारे संसार को इसकी जड़े भेजी जाती हैं। इसकी और भी कई जातियाँ ब्रिटिश चिकित्सा-शास्त्र में उपयोग में ली गई हैं। एक जाति मायनस इपिकेकोना के नाम से मशहूर है जो ब्राझील में मायनस झेरियस नाम के स्थान में पैदा होती है। दूसरी जाति जोहोर इपिकेकोना है जोकि फेडरेटेड मलाया स्टेट्स के जोहोर और सेलिंगन नामक स्थान में पैदा होती हैं। इन दो भेदों के अतिरिक्त एक तीसरा भेद और होता है। यह कोलम्बिया में पाया जाता है। उपचार की दृष्टि से यह तीसरी जाति उपरोक्त दोनों जातियों के मुकाबिले में नहीं है।

इपिकेकोना वृक्ष की जड़ें बड़ी नाजुक और बेलनाकार होती हैं, इसकी छाल मोटी होती है, जिसपर बाकायदा रेखाएँ तथा गाँठें सरीखी पड़ी हुई रहती हैं, इसका रंग लाल और भूरा होता है। इसको तोड़ने से यह मोम के पदार्थ की तरह टूटती है। इसकी छाल और इसकी मोटी जड़ें ही वास्तव में व्यापार और उपचार की वस्तुएँ हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस औषधि के वृक्ष पैदा नहीं होते। मगर कुछ वनस्पतियाँ यहाँ पर ऐसी पैदा होती हैं, जो गुण और धर्म में बिलकुल इसके समान ही हैं। उनमें से एक अन्तमूल है, जिसको लैटिन में Tolophora Asthmatica. टायलोफोरा आस्थमेटिका और अंग्रेजी में Indian Ipecacaunha इण्डियन इपीकेकोना कहते हैं। इसका विवरण इस ग्रन्थ में पहिले दिया जा चुका है। एक और औषधि जिसको लैटिन में Naregamia Alata. नरगेमिया एलेटा और अंग्रेजी में Goanese Ipecacuanha गोआनीज इपीकेकोना और मराठी में पित्वल तथा तिनियानी कहते हैं। यह वनस्पति दक्षिणी भारत के पश्चिमीय प्रांतो में पाई जाती है। इसके गुण इपीकेकोना से मिलते-जुलते हैं। मद्रास में इसे तीक्ष्ण पेचिश और वमनकारक औषधि के रूप में काम में लेते हैं। इसमें नरगेमाइन Naregamine. नामक उपक्षार पाया जाता है, जो इमेटिन से कुछ मिलता-जुलता है। एक वनस्पति जिसको लेटिन में Asclepias Curassavica. एस्क्लीपिएस क्यूरासाविका तथा अंग्रेजीमें Bastard Ipecacuanha. और हिन्दी में काकतुंडि और मराठी में कारकी कहते हैं। यह वनस्पति भी इपीकेकोना से मिलते-जुलते गुण-धर्म रखती है। इसके अन्दर खास प्रभाव दिखाने वाला पदार्थ ग्लुकोसाइड एस्क्लेपाइन है। इस वृक्ष की छाल वमनकारक है। इसके अतिरिक्त आँकड़े की जड की छाल भी इपिकेकोना की उत्तम प्रतिनिधि मानी जाती है।

गुण धर्म और प्रभाव—

भारतवर्ष के अन्तर्गत इपिकेकोना एक बहुत महत्व की वस्तु सिद्ध हुई है। क्योंकि यह एमेबिक अतिसार की जगत् प्रसिद्ध औषधि है और यहाँ पर एमेबिक डिसेंट्री (एमोयबी नामक एक प्रकार के कृमि से होने वाला अतिसार) का रोग अधिक मात्रा में फैला हुआ है। कलकत्ता स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन एण्ड हॉयजिन के प्रोटोझूलॉजी डिपार्टमेंट में बहुत से लोगों के मल का परीक्षण किया गया और उसका परिणाम यह निकला कि १४ सैकडा रोगी एमेबिक अतिसार के पाये गये। इससे इस वनस्पति का महत्व भली प्रकार जाना जा सकता है। यह वनस्पति भारतवर्ष में नहीं बोई जाती है। इस कारण इसकी और इसके एमेटिन एलकालाइड्स की मात्रा प्रति वर्ष दूसरे देशों से बुलाई जाती है।

कर्नल चोपरा लिखते हैं कि इस वृक्ष को अच्छी मात्रा में भारतवर्ष में पैदा किया जा सकता है। गवर्मेंट ऑफ इंडिया ने इसके गुणों को महसूस कर सन् १९१६–१७ में नीलगिरी और दार्जिलिंग के पास इसे बोया और फिर बर्मा में भी इसकी खेती प्रारंभ की। इसके पौधे बहुत अच्छे परवरिश हुए। १९२० और २२ की रिपोर्ट में इसका बहुत आशाजनक भविष्य दिखलाई देने लगा। मगर टेम्परेचर

के शीघ्रता से बढ़ने और घटने का इस बनस्पति पर बहुत खराब असर होता है और कई खराबियाँ पैदा हो जाती हैं। जहाँ तक इस विषय में उचित इतजाम न हो, वहाँ तक इसके बिगड़ने की संभावना ही अधिक है। इन कठिनाइयों के बावजूद भी दार्जिलिंग के समीप मम्पू नामक स्थान पर यह वनस्पति अच्छी परविश हो रही है और ज्ञात हुआ है कि अकेले मम्पू में ही इसके २२६४६६ पौधे मौजूद हैं। बर्मा मे भी सिंकोना की खेती के साथ इसके ६८८५२ पौधे परवरिश हुए हैं।

इसकी जड़ के गुण और उसमें पाये जाने वाले एमेटिन और एलकोलाइड्स भी सतोषजनक हैं-जैसा कि नीचे लिखे अकों से ज्ञात होता है।—

इपीकेकोना	टोटल उपक्षार प्रतिशत	एमेटिक प्र० श०
ब्राफील की जड़	२.७	१.३५
ब्राफील का प्रकाण्ड	१.८०	१.१८
कोलम्बिया की जड	२ २०	०.८६
हिन्दुस्तानी पौधे की जड़	१ ६८	१.३६

ऊपर लिखे अकों से स्पष्ट मालूम होता है कि भारत में पैदा हुई इपीकेकोना की जड़ मे ब्राफील के एपिकेकोना की जड़ से एमीटाइन की मात्रा अधिक है। अगर भारत में इसकी खेती पर ध्यान दिया जाय तो इसमें अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है।

इमली

नाम—

संस्कृत—अम्लिका, अम्ली, अत्यम्ला, भुक्ता, चरित्रा, चिचा, चिंचिका, चुक्रा, दंतशठा, गुरुपत्रा, पक्तिपत्रा, सर्वाम्ला, तिंतिडका, यमदूतिका इत्यादि। हिन्दी—इमली। बंगाली—तेंतूल। मराठी—चिंच। गुजराती—आम्बली। तेलंगी—चितचेट्ट। तामील—पुलि। फारसी—खुर्माये हिंदी, तमरे हिन्दी। लैटिन—Tamarindus Indicus (टेमरिन्डस इन्डिकस)।

वर्णन—

इमली के वृक्ष प्रायः सब दूर होते हैं और सब लोग इनको जानते हैं। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से कची इमली भारी, वातनाशक, पित्तजनक, कफकारक, और रक्त को दूषित करने वाली है। पक्की इमली दीपन, रूखी, किंचित दस्तावर और गरमी, कफ तथा वात को नाश करने वाली है।

इमली का वृक्ष भारी, गरम, खट्टा, पित्तजनक, कफ पैदा करने वाला, रक्त को दूषित करने वाला और वातविनाशक है। इसके फूल कसैले, स्वादिष्ट, खट्टे, रुचिकारक, अग्निदीपक, हलके तथा वात, कफ और प्रमेह को नाश करने वाले हैं। इसके पत्ते सूजन और रक्तविकार को दूर करने वाले हैं। कच्ची इमली खट्टी, अग्निदीपक, मलरोधक, गरम तथा रक्त-पित्त और रक्त को कुपित करने वाली है। पकी हुई इमली मधुर, सारक, खट्टी, हृदय को बल देने वाली, दीपन, रुचिकारक, वस्तिशोधक और कृमि नाश करने वाली है। इसका रस मधुर, मीठा, खट्टा, रुचिकारक, व्रणविनाशक तथा सूजन और पक्तिशूल को नष्ट करने वाला है'।

इस वृक्ष की छाल पक्षाघात रोग में उपयोगी है। चेतनहीन अङ्गों पर इसे लगाने के काम में लेते हैं। इसकी छाल की राख सुजाक और मूत्र सम्बन्धी बीमारियो में देने के काम मे ली जाती है। इसके पत्ते कर्णरोग, नेत्ररोग, रक्तरोग, सर्पदंश और बड़ी माता के अन्दर उपयोग मे लिये जाते हैं। इसका कच्चा फल आँतो के लिये सकोचक, वातनिवारक और रक्त को दूषित करने वाला है। इसका पका फल घावों को तथा हड्डी की मोच को दूर करने वाला है। इसके बीज फोडे, फुंसी और प्रसवद्वार सम्बन्धी तकलीफों के लिये लाभदायक है''।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह दूसरे दर्जे में शीतल और रूक्ष है। यह स्वरयन्त्र, सीहा और और खाँसी तथा जुकाम मे हानिकारक है। इसका प्रतिनिधि आलूबुखारा तथा दर्प को नाश करने वाला बनफशा और उन्नाब है।

मखजनुल अदविया के मतानुसार यह हृदय को बल देने वाली, साफ दस्त लाने वाली, पित्त की वमन को रोकने वाली तथा मृदु-रेचन के द्वारा शरीर को शुद्ध करने वाली है, गले के घाव में इमली के पानी से कुल्ले करने से बड़ा लाभ होता है, आँख के रोगों पर इसके फूलों का पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है। खूनी बवासीर के अन्दर भी इसके फूलों का रस लाभदायक है। इसके बीजों को उबालकर विस्फोटक के समान फोड़ो पर पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

एक यूनानी लेखक के मत मे यह हृदय और आमाशय को बल देने वाली, मूर्छा को दूर करने वाली, सिरदर्द में लाभ पहुँचाने वाली और संक्रामक रोगों को दूर करने वाली है। इसके बीज संग्राही और वीर्य-स्तम्भक हैं। इसका पका फल ज्वर में शांति देने वाला, पेट के अफारे को दूर करने वाला और मृदु-विरेचक है। शरीर की जलन में नशा नशीले पदार्थों के असर में भी यह लाभ पहुँचाती है।

मेडागास्कर में इसका हर एक हिस्सा औषधि के प्रयोग में लिया जाता है। इसकी छाल को श्वास की बीमारी में लाभदायक समझते हैं। इसके पत्तों का सत्व कृमिनाशक औषधि के रूप में काम मे लिया जाता है। यह पेट की तकलीफों में भी उपयोगी है।

गायना में इसके पत्तों को पानी में उबालकर उस उबले हुए पानी को घाव धोने के काम में लिया जाता है। इसके सूखे पत्तों का चूर्ण खराब घावों पर लगाने के काम में लिया जाता है। इसके ताजे पत्तों की पुल्टिस सूजन और मोच के ऊपर बाँधी जाती है। इस फल का गूदा ज्वर और मंदाग्नि में उपयोगी समझा जाता है।

कम्बोडिया मे इसकी छाल अतिसार रोग में व मसूड़ों की सूजन में सकोचक औषधि की तरह काम में ली जाती है। यह पौष्टिक भी माना जाता है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके फल का गूदा पानी के साथ उबालकर शक्कर मिलाकर ज्वर, पेट का आफरा और कब्जियत मिटाने के काम में लिया जाता है। इसके बीज के ऊपर का लाल छिलका अतिसार, रक्तातिसार और पेचिश की उत्तम औषधि मानी जाती है। इस रोग में इसके पीसे हुए बीज ५ रत्ती, जीरा ५ रत्ती, और शक्कर ५ रत्ती, इनको मिलाकर दिन में दो-तीन बार देना चाहिये। शीतादिक रोग मे नींबू की अनुपस्थिति में इमली का उपयोग किया जाता है। इसके फल का पका हुआ गूदा रात-दिन की कब्जियत की बीमारी में विरेचन का काम करता है। आयुर्वेदीय-चिकित्सा में इसका बहुत-सी जगह उपयोग होता है। इसके पत्तों की पुल्टिस प्रदाहिक सूजन में काम में ली जाती है।

डाक्टर डायमॉक के मतानुसार इमली में कुछ शक्कर, ऐसेटिक साइट्रिक, टॉरटेरिक एसिड्स और पोटाश का सम्मेलन रहता है। इसमें ऐसा कोई भी तत्व नहीं दिखलाई देता, जिससे इसमें विरेचक गुण पाया जाय, भारतीय लोग इस वृक्ष के अम्ल निस्सरणों को स्वास्थ्य के लिये हानिकारक समझते हैं। ऐसा कहा जाता है कि इमली के वृक्ष के नीचे तम्बू के कपड़े को बहुत दिन तक रखने से उसका कपड़ा सड़ जाता है। यह भी कहा जाता है कि इसके वृक्ष के नीचे दूसरे पौधे नहीं उगते, मगर ऐसा मालूम होता है कि यह नियम सर्वव्यापक नहीं है। क्योंकि हमने इस वृक्ष की छाया में चिरायता या दूसरे प्रकार के छाया-प्रेमी पौधों को परवरिश होते देखा है।

सीलोन के अन्दर यकृत और प्लीहा में गाठ होने की बीमारी में इमली के फूल की एक प्रकार की मिठाई बनाकर रोगी को देते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि इमली की छाया में सोने से मनुष्य का शरीर ऐंठ जाता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसके पत्तियों के स्वरस को लाल किये हुए लोहे से छौंककर प्रवाहिका रोग में देते हैं। इसकी छाल की भस्म का पाचक रूप से आतरिक उपयोग होता है। इसका तरीका इस प्रकार है—इसकी छाल को सेंधे नमक के साथ एक मिट्टी के बर्तन मे रखकर जला लें। जब उसकी सफेद राख हो जाय, तब उसे रख लेना चाहिये। इस राख को १ रत्ती की मात्रा में देने से अजीर्ण और उदरशूल रोग में बड़ा लाभ होता है।

डा० आर० एन० खोरी के मतानुसार पकी इमली का गूदा 'स्कर्व्ही' रोग को नष्ट करने वाला और मृदुरेचक है। यह ज्वर, प्यास, सर्दी, गरमी और पित्त-प्रधान रोगों में व्यवहृत होती है। हमेशा की कब्जियत में इसका गूदा लाभदायक है। चोट लगने के कारण यदि किसी अङ्ग में सूजन आ गई हो तो कच्ची इमली और इमली के पत्तों को पीसकर गरम कर सूजन पर लेप करने से लाभ होता है। इमली के बीज आमातिसार और रक्तातिसार में लाभदायक हैं।

उपयोग—

आमातिसार—इसके पके हुए बीज के छिलके का चूर्ण ४ माशा, जीरा ६ माशा, मिश्री ६ माशे, इन सब को मिलाकर चूर्ण कर चार माशे की मात्रा मे तीन २ घटे के अन्तर पर देने से पुराना आमातिशार मिटता है।

एक वर्ष के इमली के पौधे की जड़ और काली मिर्चें दोनों बराबर लेकर मट्ठे के साथ पीसकर गोलियाँ बनाकर दिन में तीन बार देने मे कम से कम ६ दिन में आमातिसार मिट जाता है।

वीर्य की कमजोरी—इमली के बीजों को रात में भिगोकर सवेरे उन्हे छीलकर, पीसकर बराबर का गुड मिलाकर छः २ माशे की गोलियाँ बना ले। इनमें से एक २ गोली सवेरे-शाम लेने से वीर्य की कमजोरी मिटकर पुरुषार्थ बढ़ता है, गरीबों के लिये यह वस्तु बहुत उपयोगी है।

लू लगना—पकी हुई इमली के गूदे को हाथ और पैरों के तलवे पर मलने से लू का असर मिटता है।

हृदय की दाह—मिश्री के साथ पकी हुई इमली का रस पिलाने से हृदय की जलन मिटती है।

कब्जियत—पंद्रह-बीस वर्ष की पुरानी इमली का शर्बत बनाकर पिलाने से पुरानी कब्जियत मिटती है, ऐसा कहा जाता है कि पुरानी इमली पुरुषार्थ बढ़ाने के लिये अच्छी औषधि है।

शीतला—चक्रदत्त का मत है कि इमली के पत्ते और हलदी से तैयार किया हुआ ठंडा पेय शीतला की बीमारी मे बहुत मुफीद है।

बनावटें—

क्षुधा-वर्द्धक पन्ना—इमली के फल का गूदा २॥ तोला लेकर आधा सेर पानी में मसलकर छान लिया जाय, उसके बाद उसमें १ छटाक मिश्री, ३॥। माशे दालचीनी, ३॥। माशे लौंग और ३॥। माशे इलायची मिला दी जाय। शीतादिक रोगों के बाद की कमजोरी को मिटाने में और वात सम्बन्धी शिकायतों को दूर करने में यह शर्बत बहुत अच्छा है, यह क्षुधा-वर्द्धक भी है।

हलका विरेचन—इमली के फल का गूदा २॥ तोला, खारक २॥ तोला और दूध पाव भर, इन तीनों को उबालकर, छानकर पीने से हलका जुलाब लगता है।

———:०:———

इलायची छोटी

नाम—

संस्कृत—वयःस्था, तीक्ष्णगंधा, सूक्ष्मैला, द्राविडि, भृंगपर्णिका, छर्दिकारिपु, गौरागी, चन्द्र-बाला इत्यादि। हिंदी—छोटी इलायची। बंगाली—छोट एलाच, गुजराती इलायची। मराठी—वेलची। गुजराती—एलची कागदी। तेलगी—एलाकु। फारसी—हैल, हाल। अरबी—काकिले-सिगारा। लेटिन—Elettaria Cardamomum. (इलेटेरिया कार्डेमॉमम्)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का हमेशा हरा रहनेवाला पौधा होता है। इसका पौधा अदरख से मिलता-जुलता होता है। इसकी ऊँचाई ४ से ८ फीट तक होती है। इसकी जडें जमीन में जमती हैं। इसका पेड़ १० से १२ वर्ष तक रहता है। यह सामुद्रिक तर हवा में और छायादार जमीन में परवरिश होता है। इसके फल गुच्छों में लगते हैं। छोटी इलायची के चार भेद होते हैं। एक को मलाबारी इलायची कहते हैं, दूसरी को मैसूरी इलायची, तीसरी को मैंगलोरी इलायची और चौथी को लका की अथवा जंगली इलायची कहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से छोटी इलायची के बीज शीतल, तीक्ष्ण, कड़वे और सुगन्धित होते हैं। ये पित्तजनक, मुख और मस्तक को शुद्ध करनेवाले और गर्भ-घातक होते हैं। ये वात, श्वास, खासी, बवासीर, क्षयरोग, विषविकार, बस्तिरोग, गले के रोग, सुजाक, पथरी और खुजली का नाश करने वाले होते हैं।

भारतवर्ष के अन्दर इस वस्तु को प्राचीनकाल से ही बहुत मान प्राप्त है। यहाँ के खान-पान के अन्दर तथा उत्तम पकवानों के अन्दर सुगन्धित द्रव्य के रूप में इसका उपयोग होता आया है। इसी प्रकार आयुर्वेदिक औषधियों में चूर्ण, वटी, पाक, अवलेह इत्यादि सब चीजों में गुण और रुचिवर्द्धन की दृष्टि से यह चीज काम में ली जाती है।

सुश्रुत तथा वाग्भट्ट के अन्दर इलायची मूत्रकृच्छ्रनाशक, बंगसेन में हृदयरोगनाशक, द्रव्य-रत्नाकर में अश्मरी नाशक तथा धन्वतरि-निघण्टु और भाव-प्रकाश में श्वास, खाँसी, क्षय और बवासीर-नाशक मानी गई है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसका फल सुगन्धित, हृदय को बल देने वाला, अग्निवर्द्धक, विरेचक, मूत्रनिस्सारक और पेट के आफरे को दूर करने वाला है। इसके बीज सिरदर्द, कर्णवेदना, दाँत की पीड़ा, यकृत, वक्ष और गले के रोगों में भी लाभकारी है।

यह पाचक, आमाशय तथा हृदय को शक्ति देने वाली, अरुचि और उबाक को बन्द करने वाली तथा अपस्मार, मूर्छा और वायुजन्य सिरदर्द में लाभकारी है। इसके भुने हुए बीज संग्राही तथा गुर्दे और बस्ति की पथरी को निकालने वाले हैं। इसका तेल रतौंधी के लिये रामबाण दवा है। आँख में इसका तेल लगाने से पुरानी से पुरानी रतौंधी नष्ट हो जाती है। इसको कान में डालने से कर्णशूल नष्ट होता है। छोटी इलायची को मस्तगी और अनार के स्वरस के साथ देने से वमन और मिचलाहट का नाश होता है। यह पाचनशक्ति को बहुत सहायता पहुँचाती है। आमाशय के विकारों को नष्ट करती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार छोटी इलायची अग्निवर्द्धक और मूत्रनिस्सारक है। यह बिच्छू के डंक में भी काम में ली जाती है। इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल पाया जाता है।

उपयोग—

मस्तक पीड़ा—इलायची के बीजों को महीन पीसकर सूंघने से छींके आकर मस्तक पीडा मिटती है।

केले का अजीर्ण—इलायची के दाने खाने से केले का अजीर्ण मिटता है।

पेशाब की जलन—इलायची को सेक कर मस्तगी के साथ दूध में फकी देने से मूत्राशय की दाह मिटती है।

हृदय रोग—इलायची के दाने और पीपला-मूल के चूर्ण को घी के साथ चटाने से कफ-जनित हृदयरोग मिटता है।

विशूचिका—इलायची के २ तोला छिलकों को आधा सेर पानी में औटाकर पावभर पानी रहने पर, छानकर पीने से विशूचिका में लाभ होता है।

पथरी—खीरे के बीज के साथ इलायची को देने से गुर्दे और वस्ति की पथरी में लाभ होता है।

नकसीर—इलायची के अर्क को डेढ़-दो माशे की खुराक में सात-आठ वार पिलाने से नकसीर बंद होता है।

इलायची बड़ी

नाम—

संस्कृत—ऐला, स्थूलैला, कान्ता, दिव्यगधा, इन्द्राणी इत्यादि। हिन्दी—बड़ी इलायची। मराठी—वेलदोड़े, थोरवेला। गुजराती—मोटीएलची, एलचा। फारसी—हलेकलाँ। अरबी—काकलेकिबार। तेलंगी—पेद्दएलकुलू। लेटिन—Amomum Subulatum. (एमॉमम सुब्यूलेटम)

वर्णन—

बड़ी इलायची के वृक्ष भारतवर्ष तथा नैपाल के पहाड़ों में पैदा होता है। इसके वृक्ष दो-तीन हाथ ऊँचे होते हैं। इसके फल तिकोने और आधे इंच की लम्बाई के होते हैं। इसके बीज छोटी इलायची से कुछ बड़े होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से बड़ी इलायची रक्त-पित्तनाशक, वमननिवारक और पथरी को दूर करने वाली, शीतल, हलकी, वातनाशक और अग्निदीपन करने वाली है।

इसके बीज तेज, सुस्वादु, सुगन्धित, अग्निवर्द्धक और आक्षेपनिवारक होते हैं। कफ, वात, मदाग्नि वमन, प्यास, खुजली, उदररोग, गुदाद्वार की पीड़ा, पित्त सबन्धी विकार इत्यादि रोगों मे यह मुफीद हैं। धन्वन्तरि-निघंटु के मतानुसार बड़ी इलायची, तिक्त, हलकी, कफ, वात तथा विष एवम् व्रण का नाश करने वाली है।

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज तीक्ष्ण और सुस्वादु हैं। ये अग्निवर्द्धक, हृदय तथा यकृत को बल देने वाले, निद्राकारक, क्षुधावर्द्धक और आँतों को सिकोड़ने वाले हैं। इसके बाहर का छिलका सिरदर्द, दाँतों के रोग और मुख की सूजन में लाभ पहुँचाने वाला होता है।

इसके बीजों में से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है, जो सुगन्धित, अग्निवर्द्धक, दिल को प्रसन्न करने वाला और उत्तेजक होता है।

इसके बीज खरबूजे के बीज और सिकंजबीन के साथ देने से गुर्दे की पथरी का नाश होता है। पाचन-प्रणाली और रस-क्रिया के अव्यवस्थित होने पर भी इसके बीज लाभ पहुँचाते हैं।

सौंफ के साथ इसका सेवन करने से पाचनशक्ति की निर्बलता मिटती है। मिश्री के साथ लेने से आमाशय की जलन और गरमी मिटती है। काले नमक के साथ इसके चूर्ण को लेने से पेट का दर्द और अफरा मिटता है

इसके बीज स्नायुशूल में भी उपयोगी पाये गये हैं
मात्रा में कुनेन के साथ देने से ये अच्छा लाभ पहुँचाते हैं।

अ० सर्जन गुलाम नबी का मत है कि यह विशूचिका तथा अन्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई पेट की पीड़ा को दूर करती है। दाँतों और मसूड़ों की पीड़ा में इसके पानी से कुल्ले किये जाते हैं। गुर्दे और मूत्रकृच्छ्र के रोगों में खरबूजे के बीजों के साथ इसके बीज मूत्रनिस्सारक औषधि के रूप में दिये जाते हैं।

पेलेवरम (मद्रास) के सर्जन मेजर सी० आर० जी० पारकर लिखते हैं कि यकृत सम्बन्धी तकलीफों में और खासकर उस समय जब कि विद्रधि का भय हो, यह औषधि बड़ी उपयोगी है। इसकी मात्रा पाँच रत्ती की है।

सर्जन जे० मेटलेन्ड एम० बी० का मत है कि पाचनक्रिया के बिगड़ने पर व ग्रंथि-रस के अल्प मात्रा में बनने पर तथा यकृत के रक्तावरोध में यह औषधि उपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह अग्निवर्द्धक तथा स्नायुशूल, सर्पदंश और बिच्छू के दंश में उपयोगी है।

रासायनिक विश्लेषण--

इसके बीजों में एक प्रकार का उड़नशील तेल पाया जाता है, जो ४ प्रतिशत से ८ प्रतिशत तक की मात्रा में रहता है। इसमें Terpinylacetata और Cinule तथा सम्भवतः Limonene भी पाया जाता है।

इस इलायची का एक भेद और होता है, जिसे लेटिन में Amomum Xanthioides. (एमॉमम एक्सेंथीइस) कहते हैं। इसके वृक्ष बंगाल के पूर्व की सीमा के ग्रामों में होते हैं। इसके फलों को मोरग इलायची कहते हैं। यह अतिसार में, प्रवाहिका में तथा अतड़ियों में होने वाले मरोड़ों में बहुत उपयोगी है। उपरोक्त रोगों में इसको पीसकर मक्खन के साथ उपयोग करना चाहिये।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार इसके बीज उत्तेजक और पेट के आफरे को दूर करने वाले होते हैं।

इल्लन्दा

नाम—

यूनानी—इल्लन्दा ।

वर्णन—

यह एक वृक्ष होता है, जिसके पत्ते मोतिया के पत्तों से कुछ छोटे, मुलायम और रुएँदार होते हैं। इसका फल कच्ची हालत में हरा और खट्टा तथा पकने पर लाल और खट-मीठा हो जाता है। यह फालसे की तरह होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी प्रकृति मौतदिल, समशीतोष्ण और खुश्क है। यह सूजन को मिटाने वाला है। इसकी जड़ सर्प के विष को नष्ट करने वाली है। ऐसा कहा जाता है कि सांप इस वृक्ष को देखते ही अपना फण जमीन पर डाल देता है। इसकी छाल रक्त दोष और प्रमेह में लाभदायक है। इसका फल पौष्टिक, क्षुधावर्द्धक, कब्जियत और वमन तथा मतली का निवारण करने वाला है। (आयुर्वेदीय कोष)।
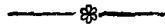
इश्कपेंचा

नाम—

संस्कृत—कामलता। हिन्दी—कामलता, चादरेल, अमेरिकन चमेली। बंगाली—तरुलता, कामलता। मराठी—विष्णुक्रांता। अरबी, फारसी—इश्कपेंचा, आशिकुश्शजर, लवलाबसगीर। लेटिन—Ipomoea Quamoclit. (इपोमोइआ क्वामोक्लिट)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की नाजुक वनस्पति है। इसकी पत्तिया सूत की तरह बारीक होती हैं। फूल आने की अवस्था में इसकी बेल बहुत ही सुन्दर होती है। इस पर रंग-रंगीले पुष्प आते हैं। जिस वृक्ष पर यह चढ़ती है, उसका रस चूस कर उसे सुखा देती है। इसका फल गोल और फिसलना होता है। यह वनस्पति अमेरिका में पैदा होती है, परन्तु भारतवर्ष के बगीचों में भी बहुत लगाई जाती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—हिन्दू लोग इसे शीतल बतलाते हैं। इसके पीसे हुए पत्ते खूनी बवासीर पर लगाये जाते हैं और इसके रस को गरम घी के साथ पकाकर बवासीर को दूर करने के लिए पिलाते हैं। बम्बई में इसके पत्ते सिर के साघातिक फोड़ों में लेप के रूप में लगाये जाते हैं।

इसका एक भेद और है जिसको लेटिन में Quamoclit Vulgaris (क्वामोक्लिट व्हलगेरियस) कहते हैं। इसके पत्ते भी सकोचक और रक्तार्श में उपयोगी हैं। ये सांघातिक फोड़ों में, वमन में और रक्तातिसार में लाभदायक है। गर्भवती स्त्री के गर्भाशय को दृढ़ करने में ये सहायता देते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि शीतल होती है और इसके पत्ते सांघातिक फोड़ों (Carbuncle) में लाभदायक है।

इश्रास

वर्णन—

यह एक वनस्पति की जड़ है। इस वनस्पति के फूल ललाई लिये हुए सफेद, फल गोल और कुछ कड़वे होते हैं। इसका शाक बनाकर भी खाया जाता है। इसके पत्ते प्याज के पत्तों की तरह होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि पहिले दर्जे में गरम और रूखी है और जला लेने के पश्चात् यह दूसरे दर्जे में गरम और तीसरे दर्जे में रुक्ष हो जाती है। इसकी जड़ आमाशय को शिथिल करके अवरोध पैदा करने वाली है। इसके दर्प को नाश करनेवाला गुलकंद है।

इसके पीने से पार्श्वशूल आराम होता है। यह पित्तजनित कामला और गले की खुश्की को दूर करता है। इसकी राख मूत्र और आर्तव-प्रवर्तक और कफ की सूजन को मिटाने वाली है। सिरके के साथ लगाने से सिर की गंज, दाद, अण्डवृद्धि फोड़े, फुन्सी और शोथ में लाभ पहुँचाती है। यह टूटी हुई हड्डी को भी जोड़ने में लाभकारी साबित हुई है। (आयुर्वेदीय कोष)

इस्पंद

नाम—

हिन्दी——इस्पद लाहोरी, हरमाल । मराठी—हरमाल । गुजराती—इस्पंद । उर्दू—इस्पद । बंगाली—इस्पंद । लेटिन—Peganum Harmala (पेगानुम हरमाल)

वर्णन—

यह औषधि विहार, संयुक्तप्रात, डेकन, कोकन, सिन्ध, बिलोचिस्तान इत्यादि स्थानों पर पैदा होती है, यह एक प्रकार का झाड़ीनुमा वृक्ष होता है । इसका फल गोल होता है । इसकी काली और सफेद के भेद से दो जातियाँ होती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से दोनों ही जातियाँ कफ निस्सारक, बलवर्द्धक, मज्जावर्द्धक, कृमिनाशक, मूत्रनिस्सारक, विरेचक और ऋतुस्राव नियामक होती हैं । कटिवात, पक्षाघात, मस्तक की कमजोरी, चक्षुरोग, आमवात और श्वासरोग में यह उपयोगी है । यह बच्चों की खाँसी को दूर करती है । इसका धूम्रपान, दन्त-पीड़ा और यकृत की पीड़ा को दूर करता है ।

डाक्टर मुहीउद्दीन शरीफ के मतानुसार इसके बीज मादक, उत्तेजक, आक्षेपनिवारक, वमनकारक, मासिकधर्म को नियमित करने वाले और शूल को दूर करने वाले होते हैं । वे इस औषधि को श्वास, कुक्कुर खाँसी और गुल्म वायु में उपयोग में लेने की सिफारिश करते हैं । इसके अतिरिक्त उदरशूल, पीलिया और गवीनी तथा पित्त की पथरी, स्नायु-शूल तथा रजोकष्ट में भी यह उपयोग में ली जाती है । इस वनस्पति से साधारण खाँसी और छाती के दर्दों में भी संतोषजनक फायदा होता है । यह एक उत्तम वमनोत्पादक औषधि है । अपने निद्राकारक स्वभाव के कारण यह कष्ट को दूर करके शीघ्र ही नींद लाती है ।

हॉनिक वगैर के मतानुसार इसके बीज नेत्र-ज्योति की कमजोरी में और मूत्रावरोध के काम में लिये जाते हैं ।

डाक्टर चोपरा के मतानुसार यह पार्य्यायिक ज्वर को दूर करने वाली, धातु-परिवर्तक, उत्तेजक, गर्भ-स्रावक और मासिकधर्म को नियमित करने वाली है । रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें हरमाइन और हरमेलाइन नामक दो उपक्षार पाये जाते हैं ।

फ्लूरी का कथन है कि हरमेलाइन में कृमिनाशक गुण हैं । गन और मार्शल के मतानुसार हरमाइन और हरमेलाइन मलेरिया में उपयोगी है ।

स्टेवार्ट के मतानुसार यह वनस्पति कामोद्दीपक, दुग्धवर्द्धक और मासिकधर्म को नियमित करने वाली है । गर्भ स्रावक औषधि के रूप में भी यह कभी २ काम में ली जाती है । इसकी जड़ के चूर्ण को सरसों के तेल के साथ मिलाकर बालों में कृमि नाश करने को लगाते हैं, इसके पत्तों का काढ़ा आमवात में उपयोगी है ।

इसबगोल

नाम—

संस्कृत—ईशद्गोलम्, स्निग्धबीजम्, स्निग्धजीरकम् । हिन्दी—इसबगोल । मराठी—इसबगोल । गुजराती—उथमुंजीरु । बंगाली—इसपगुल । तेलंगी—इसपगुल । फारसी—इस्पगलम् । अरबी—बज़रेकुतुना । लेटिन—Plantago Ovata, P. Isphagula (प्लेएटेगो ओव्हेटा) ।

वर्णन—

यह एक प्रकार का प्रकाड रहित झाड़ीनुमा वृक्ष होता है, जो लगभग गज भर ऊँचा होता है। इसके पत्ते धान के पत्तों के समान और डालियाँ बारीक होती हैं। डाली के सिरे पर गेहूँ की तरह बालें लगती हैं। इन बालों में बीज रहते हैं। इसके बीजों के ऊपर महीन और सफेद झिल्ली होती है। यह झिल्ली ही उतारने पर इसबगोल की भूसी के रूप में हो जाती है। यही इसमें पाये जानेवाले लुआब का केन्द्र है।

इसबगोल की एक बड़ी जाति और होती है, जिसको लेटिन में Plantago Amplexicaulis कहते हैं। यह पंजाब, मालवा और सिन्ध के मैदानों में अधिक पैदा होता है और इससे भूरे रंग का इसबगोल पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता। केवल निघण्टु-संग्रह और मोरेश्वर कृत वैद्यामृत में इसका उल्लेख मिलता है। इन आधुनिक ग्रन्थों के मतानुसार इसके बीज मृदु, पौष्टिक, कसैले, लुआबदार और आँतों को सिकोड़ने वाले होते हैं। ये कफ, पित्त, अतिसार और कोढ़ में उपयोगी हैं।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थों के अन्दर इसबगोल का बडा विशद विवेचन देखने में आया है। अरबी और परशियन लेखकों ने प्रायः इसका वर्णन किया है। १० वीं शताब्दी के करीब अलेवी नामक परशियन हकीम ने इसका वर्णन किया है। इसके बाद इब्नसीना ने इसका वर्णन किया है। इनके बाद में जितने मुसलमान लेखक हुए, उन सबने अपने २ ग्रन्थों में इसकी बहुत तारीफकी है। इससे मालूम होता है कि यह औषधि मुसलमानों के भारत में आने के बाद ही प्रयोग में ली गई है। इसका उपयोग प्राचीन रक्तातिसार और अँतड़ियों की पीड़ा में किया जाता रहा है। किसी भी प्रकार के रक्तातिसार व ऐसे अतिसार में जिसमें कि खून और आँव, टट्टी के साथ निकलती हो, यह एक प्रकार की लोकप्रिय घरेलू औषधि रही है।

यूनानी मत के अनुसार इसके बीज शीतल, शान्तिदायक और प्रकृति को मुलायम करने वाले हैं। ये साफ दस्त लाते हैं। मलावरोध को दूर करते हैं। पेटकी मरोड़, अतिसार, पेचिश और आँतों के घाव में यह औषधि बहुत उपयोगी है।

मुजरंबात अकबरी के मतानुसार मुट्ठी भर इसबगोल को प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से श्वास कष्ट और दमे में बहुत लाभ होता है। निरतर ६ मास से दो वर्ष तक सेवन करने से बीस-बाईस वर्ष का पुराना दमा भी इससे जाता रहता है।

उष्ण प्रकृति के रोगियों को होने वाले शुक्रमेह के अन्दर भी यह औषधि बड़ी लाभदायक है। पाचन-प्रणाली के प्रदाह में तथा पित्त सम्बन्धी विकारों में भी यह बहुत उपयोगी है। संधिवात, ग्रन्थि-वात व अन्य वात रोगों में इसकी पुल्टिस चढ़ाने से बड़ा लाभ होता है।

इसबगोल और आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान—

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अन्दर भी इस औषधि ने बहुत महत्व धारण किया है। सन् १८६८ में यह औषधि इण्डियन फरमाकोपिया के अन्दर प्रविष्ट की गई। १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में फ्लेमिंग,एन्सेली और रॉक्स वर्ग इत्यादि डाक्टरों ने पुराने अतिसार के अन्दर इस औषधि की उपयोगिता का दृढ़ता से समर्थन किया। उसके बाद तमाम रासायनिक खोजों के अन्दर इस औषधि की उपयोगिता सिद्ध हुई, जिसका वर्णन कर्नल चोपड़ा ने इस प्रकार किया है।—

"इसबगोल के बीज शीतल व शान्तिदायक हैं। अतिसार, रक्तातिसार, पेचिश व पाचन-प्रणाली के अन्य विकारों में तथा ज्वर की हालत में भी इनका इस्तेमाल करना उपयोगी माना गया है। इनमें मूत्रनिस्सारक गुण भी है। मूत्राशय, मूत्रनाली तथा गुर्दे की अन्य पीड़ाओं में छः माशे से लगाकर १ तोले तक की मात्रा में ये शक्कर के साथ देने के काम में लिये जाते हैं। इसके पीसे हुए बीज इन्द्रायन के बीजों के साथ मिलाकर पेचिश की बीमारी में देते हैं। इसके बीजों को कुचलकर उनका पुल्टिस बनाते हैं। इस पुल्टिस से ग्रंथि सम्बन्धी पीड़ाओं में और जोड़ों के गठिया रोग में लाभ होता है। इनके लुआब से तैयार किया हुआ शीतल जल सिर को शान्ति देने वाला है। इसके बीजों का काढ़ा ठंड व कफ की पीड़ाओं में दिया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण—

कर्नल चोपरा इसके रासायनिक तत्वों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि इसबगोल के बीजों में एक प्रकार का मेदावर्द्धक तेल और एक एल्ब्यूमिनस (Albuminous) भी रहता है। इसमें लुआब की मात्रा इतनी अधिक रहती है कि एक भाग बीज में बीस भाग पानी मिलाने पर भी एक प्रकार का स्वाद रहित गाढ़ा अवलेह बहुत थोड़े समय में तैयार हो जाता है। इसके लुआब में किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। गरम जल, अलकोहल, आयडिन, बोरेक्स व परक्लोराइट आफ आयर्न के द्वारा भी इसमें किसी प्रकार परिवर्तन नहीं हो सकता है। सिर्फ जल में ही यह किंचित मात्रा

में घुल सकता है। इसके बीज, जड़, पत्ते व फूल के डंठलों से एक्यूबिन नामका ग्लुकोसाइड प्राप्त किया गया है।

सन् १६३० में कर्नल चोपड़ा ने इस औषधि पर अपने विचार प्रगट किये। उन्होंने इस बात को पुष्ट किया कि इसबगोल के बीजों में ग्लुकोसाइड की कुछ मात्रा रहती है पर उपचार की दृष्टि से उसका विशेष महत्व नहीं है। इसमें टेनिन्स भी काफी मात्रा में मौजूद हैं, परन्तु प्रोटोमुआ और वेक्टेरिया नामक कीटाणुओं पर ये भी किसी प्रकार का असर नहीं दिखाते, अगर इसके अन्दर इसकी उत्तमता सिद्ध करने वाली कोई वस्तु है, तो वह इसमें पाया जाने वाला लुआब है। इसलिये इसी पर विशेष रूप से अनुसन्धान किये गये हैं।

कर्नल चोपड़ा ने इसके सम्बन्ध में १५ वर्षों से जो अनुसन्धान किये हैं। उनके परिणाम इस प्रकार हैं—

(१) जीर्ण आम रक्तातिसार (Chronic Bacillary Dysentery) इस बीमारी की हालत में दस्त में आँव रहता है। एक्टन और नाव्हल्स के मतानुसार हिन्दुस्तान में इस किस्म की पेचिश की बीमारी अधिक होती है। यह दो-तीन प्रकार के सक्रामक कीटाणुओं के जहर से पैदा होती है। इस बीमारी की हालत में आँतों में घाव पैदा हो जाता है। इससे पाचन-क्रिया-प्रणाली में जहर पैदा हो जाता है और उसकी शक्ति भी कमजोर हो जाती है। यह अतिसार कई वर्षों तक चालू रह सकता है, इसमें कभी २ कब्जियत भी रहती है।

(२) जीर्ण अमेबिक आँव रक्तातिसार (Chronic Amoebic Dysentery) इस बीमारी से पीड़ित बीमारों को दस्तों की अनियमितता और कब्जियत रहती है। इसमें घावों का परिणाम भिन्न २ रहता है। इन बीमारों के दो प्रकार रहते हैं। एक तो वे जो दुबले-पतले होते हैं और जिन्हें हमेशा ही कब्जियत रहती है और दूसरे वे जिनको प्रातःकाल के समय दस्त में आँत की पीड़ा रहती है। दूसरे प्रकार के बीमार दिखने में मोटे-ताजे होते हैं।

(३) पुरानी कब्जियत जिसमें कि अन्य कारणों से नशे की मात्रा भी रहती है।

इन रोगों में इसबगोल के बीज काफी फायदा पहुँचाते हैं। यद्यपि इन बीजो के अन्दर कोई भी ऐसा तत्व मौजूद नहीं है, जोकि कीटाणुजन्य विषों को शान्त कर सके, पर यह औषधि घावों के प्रदाहिक भाग को व आंतों के प्रदाहिक हिस्से को अपने लुआब से ढक देती है, इसका परिणाम यह होता है कि खाद्य सामग्री घावों से लगकर किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचा सकती, जिससे घाव और प्रदाह दोनों ही जल्दी मिट जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह औषधि शरीर की विषैली सामग्री को अपने में मिलाकर अपने साथही निकाल देती है। शरीर की आतरिक क्रिया इस औषधि के ऊपर कुछ भी असर नहीं दिखा सकती। इसलिए १२ घण्टे के अन्दर ही यह औषधि शरीर के तमाम विषैले पदार्थों को लेकर बाहर निकल जाती है। इससे बीमार को क्षणिक शान्ति ही नहीं मिलती, प्रत्युत विषैले पदार्थों के निकल जाने से उसकी हालत में बहुत सुधार हो जाता है।

बहुत दिनों के प्राचीन (एमेबिक) आम रक्तातिसार में जहाँ कि इमेटिन और इद्रायण या इद्रजौ के प्रयोग असफल सिद्ध हुए हैं, वहाँ पर इसबगोल और इद्रजौ तथा इद्रायण के तरलसार सफल सिद्ध हुए हैं। रोगी को ७॥ माशा की मात्रा मे उक्त सत्व दिन में ३-४ बार दिया जाय और दिन में दो बार इसबगोल के बीजों के दो या तीन बडे चम्मच दिये जायॅ तो ६ सप्ताह से ८ सप्ताह के बीच में रोगी के लक्षणों में ही सुधार नहीं होता, प्रत्युत मल की परीक्षा से यह पाया गया है कि रोग के कीटाणु बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं।

प्राचीन (एमेबिक) आम रक्तातिसार में जहाँ पर कि कब्जियत एक मुख्य चिन्ह है,ये बीज आँतों में जमकर के फूल जाते हैं और दस्त में किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं होने देते। मल बिना प्रयास के बाहर निकल आता है और कब्जियत की शिकायत मिट जाती है। अगर कठिन कब्जियत की शिकायत में इसके साथ कुछ हलका विरेचन भी दे दिया तो इसके गुण और भी बढ़ जाते हैं।

(४) पर्वतीय अतिसार (Hill Diarrhoea) यह बीमारी प्रायः उन लोगों को होती है, जो विशेष तौर से पहाड़ी स्टेशनों पर जाया करते हैं। यह यूरोपियन लोगों में भी ज्यादा पाई जाती है। इसमें रोगी को प्रातःकाल के समय कई दस्त होते हैं और उनमें कुछ आँव भी रहता है। इसकी प्रारंभिक अवस्था में इसबगोल के बीजे बहुत उपयोगी हैं। इससे केवल श्लेष्मिक झिल्लियों का प्रदाह ही कम नहीं होता प्रत्युत मल बँधकर दस्त साफ आता है।

(५) बालकों के चिरकालीन अतिसार में भी इससे बहुत लाभ होता है। इस बीमारी में भी इसका लुआब पाकस्थली और अँतड़ियों के घावों को ढाँक देता है और कीटाणुओं को बाहर निकाल देता है।

इसबगोल की खुराक और उसको लेने की विधि—

इसबगोल के बीजों को पहिले साफ करके उनकी धूल-मिट्टी को पहिले निकाल देना चाहिये। फिर इन्हें एक या दो कप पानी में धो लेना चाहिये। इनकी साधारण मात्रा ७॥ माशे से १। तोले तक की है। लेकिन २॥ तोले से पाँच तोला की मात्रा में भी लिये जायॅ तो भी कोई हानि नहीं है। क्योंकि इनमें किसी भी प्रकार का विषैला पदार्थ नहीं रहता और इनमे से अधिकांश १२ घण्टे में आँतों के विषैले पदार्थों को लेकर बाहर निकल जाते हैं। अगर कब्जियत अधिक हो तो इसका अधिक मात्रा में लेना ही मुफीद होता है। इससे दो लाभ हैं, पहला यह कि यह लुआब पेट में अधिक मात्रा में रहने से दस्त लाने में सुविधा करता है और दूसरा यह कि यह आँतों में ज्यादा मात्रा में पहुँचकर वहाँ के सब पदार्थों को फुला देता है, जिसके परिणाम स्वरूप मल फूलकर आँतों में आवश्यकता से अधिक हो जाता है और अधिक होने से वह आसानी से बाहर निकल जाता है। इन बीजों को प्रयोग में लाने के लिये चार तरकीबें बतलाई गई हैं—

(१) स्वच्छ सूखे बीज एक कप भर पानी में डालकर धो लिये जाते हैं। धोने के बाद उनमें एक या दो चम्मच शकर मिलाकर ले लेते हैं।

(२) दूसरी तरकीब यह है कि इसके बीज एक कप पानी में डाल दिये जाते हैं। आधे घंटे में वे सब फूल जाते हैं। अगर इच्छा हो तो कुछ शक्कर मिलाकर इस लुआब का सेवन कर लिया जाता है।

(३) आधा सेर से एक सेर पानी में इसकी दो-तीन खुराकें डालकर उबाल ली जाती हैं। आधा पानी शेष रहने पर उसे उतारकर २ से लेकर ४ औंस की खुराक में तकसीम कर तीन २ घंटे के अन्तर से ली जाती हैं।

(४) चौथी विधि में इसबगोल के बीज की जगह उसकी भूसी काम में ली जाती है। इस भूसी को आधा तोला से एक तोला तक की मात्रा में एक कप पानी में डालकर कुछ शक्कर के साथ मिलाकर लेना चाहिये। अगर अँतड़ियों के मार्ग मल से अवरुद्ध हों तो इस विधि का इस्तेमाल करना ज्यादा अच्छा बतलाया गया है। पाचन-प्रणाली की तीव्रता पर भारतीय वैद्य इसी तरकीब को ज्यादा इस्तेमाल में लेते हैं।

कर्नल चोपरा कहते हैं कि जीर्ण पेचिश की साधारण स्थिति में और अतिसार तथा रक्तातिसार की बाधाओं में पहली विधि अधिक उत्तम है। क्योंकि ये बीज आँतों में स्थित पदार्थों के साथ मिलकर काफी फूल जाते हैं और श्लेष्मिक झिल्लियों को पूरी तरह से ढँक देते हैं। अगर यह लुआब इकट्ठा हो जाय, तो इसकी गाँठें बंधकर यह पाचन-क्रिया-प्रणाली में से ज्यों का त्यों निकल आता है। अनुभव से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि जब यह लुआब बीजों के साथ रहता है, उसी हालत में पाचन-क्रिया-प्रणाली इसपर बहुत कम असर डाल सकती है। अगर इसके बीज निकाल-कर केवल इसकी भूसी या काढ़ा उपयोग में लिया जाय तो पाचन-क्रिया-प्रणाली उसपर असर डाल देती है। यहाँ तक की २४ घण्टे में कुछ लुआब का चिकनापन पेट में नष्ट भी हो जाता है। लेकिन अगर यही लुआब बीजों के ऊपर रहे तो उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होने पाता। इसलिये यह सिद्ध है कि भूसी के बजाय बीजों को उपयोग में लेना ज्यादा मुफीद है। प्रोटोझोल (Protozoal) और बेसीलरी (Bacillary) नामक कीटाणुओं से पैदा होने वाली पेचिश में इसकी भूसी लेना ज्यादा लाभदायक है।

पेरेफिन से बनाये हुए कई पदार्थ अंतड़ियों की स्निग्धता के लिये दिये जाते हैं। वे अँतड़ियों के भीतर के तत्वों के साथ मिल जाते हैं और अन्न-प्रणाली के मार्ग को नरम रखते हैं तथा आँतों के अन्दर संचित पदार्थों को वे जल्दी ही बाहर निकाल देते हैं। पेरेफिन यह एक प्रकार का खनिज तत्व है, इसलिये यह हजम नहीं किया जा सकता और ज्यों का त्यों दस्त के साथ बाहर निकल आता है। इसबगोल के बीजों के साथ पेरेफिन का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद हम (कर्नल चोपड़ा) इस तत्व पर पहुँचे हैं कि कब्जियत को दूर करने में व आँतों को स्निग्ध बनाने में जो कार्य्य तरल पेरेफिन करता है, वही कार्य इसबगोल के बीज भी करते हैं। लेकिन इन बीजों में विशेष लाभ यह है कि पेरेफिन के समान इनमें किसी प्रकार का अवगुण नहीं है। पेरेफिन की उत्तम से उत्तम बनावट भी पेट में जलन

व अन्य प्रकार के विकार फैलाए बिना नहीं रहती। इस पदार्थ को लेने वाले लोगों के गुदा-मार्ग में तकलीफ होती रहती है और इसका सतत उपयोग करने से यह अंतड़ियों के मार्ग में ज्यों का त्यों जम जाता है और पोषक-पदार्थों का समावेश नहीं करता। इसबगोल में ये दोष कुछ भी नहीं हैं। लिक्विड पेरोफिन (पेरोफिन का तेल) से जो फायदा होता है, वही रात को सोते समय इसबगोल के दो-तीन चम्मच बीजों को लेने से हो सकता है और किसी प्रकार का अवगुण भी नहीं होता।

मतलब यह है कि यह औषधि अतिसार, रक्तातिसार और आम रक्तातिसार में अत्यन्त उपयोगी और निरुपद्रव है। यह शीतल और मूत्रनिस्सारक है।

डाक्टर के० एल० दे का कथन है कि इसबगोल के बीज हिन्दुस्तान में पुराने अतिसार और पुराने आम रक्तातिसार के लिये एक अत्यन्त उपयोगी घरेलू दवा है। हम इसे गत पच्चीस वर्षों से तीव्र, पुरातन और अन्य सभी प्रकार की पेचिश में देते आये हैं और यह लाभदायक सिद्ध हुई है। हॉय-ब्लडप्रेशर (रक्तभार की अधिकता) की बीमारी में भी हम इसका उपयोग करते आये हैं। इस बीमारी में जिसके साथ अँतड़ियों व अन्य कार्यों से पैदा हुआ नशा भी हो, यह बहुत उपयोगी है। हमारे अनुभव से हमने यह देखा कि इसके सतत प्रयोग से बीमारी आगे नहीं बढ़ने पाती।

उपयोग—

मूत्र कृच्छ्र—इसबगोल, शीतलमिर्च और कलमीशोरे की फंकी लेने से मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है।

खूनी बवासीर—इसके बीजों को ठण्डे पानी में भिगोकर उनके लुआब को छानकर पिलाने से खूनी बवासीर में लाभ होता है।

पेशाब की जलन—बूरे के साथ इसका लुआब पिलाने से पेशाब की जलन मिटती है।

गठिया—गठिया और छोटे जोड़ों की पीड़ा पर इसका पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

नक्सीर—इसको सिरके में पीसकर कनपटियों पर पतला लेप करने से नक्सीर बंद होता है।

श्वास या दमा—साल छः महीने तक लगातार दिन में दो बार इसबगोल की फंकी लेते रहने से सब प्रकार के श्वास रोग मिटते हैं।

पित्तोन्माद—एक तोले इसबगोल का लुआब निकालकर उसमें बूरा मिलाकर पिलाने से पित्तोन्माद मिटता है।

अतिसार—सब प्रकार के अतिसारों में इसबगोल को उपयोग करने की विधियाँ हम ऊपर लिख चुके हैं।

नोट—ऐसा कहा जाता है कि इसबगोल के पीसने से वह जहरी हो जाती है। इसलिये खाने के उपयोग में इसको पीसकर उपयोग में नहीं लेना चाहिये। बल्कि भिगोकर, छानकर या भूसी निकालकर इसका उपयोग करना चाहिये।

इसरमूल

नाम—

संस्कृत—अहिगन्ध, अर्कमूल, सुनन्दा, अर्कपत्रा, विषापहा । हिंदी—इश्वरमूल, इसरमूल । गुजराती-अर्कमूल,नोलवेल । अरबी—जरवन्दहिन्द । बंगाली—ईशरमूल,ईश्वरी । मराठी—सापसन । तेलगू—गोविल । फारसी—जरावन्देहिन्दी । लेटिन—Aristolochia Indica (अरिस्टोलोकिया इण्डिका)

वर्णन—

यह एक प्रकार का झाडीनुमा वृक्ष होता है । इसका तना प्रारंभ में बड़ा नाजुक रहता है । इसकी छाल मोटी होती है । इसके पत्ते भिन्न-भिन्न आकारों के होते हैं । इन पत्तों की नोक तीखी और किनारे सीधी रहती हैं । इसके फूल कम मात्रा में आते हैं । ये छोटे और गोलाकार होते हैं । इसके बीज चपटे, कुछ गोल और तीखी नोकवाले होते हैं । इस औषधि की जड़ सुगन्धित और कड़वी होती है । यह औषधि विशेष कर बगाल, कोकण, ट्रावणकोर, सिलोन और समुद्र के पश्चिमी किनारों पर मिलती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ईश्वरमूल की जड़ कड़वी, कसैली, कृमिनाशक, विष-निवारक, ऋतुस्राव नियामक तथा श्वास, खासी और हृदयरोग को नष्ट करने वाली है । यह त्रिदोष, जोड़ों के दर्द और बच्चों की आँतों की तकलीफ में उपयोगी होती है ।

इसकी जड़ को औटाकर पिलाने से जोड़ों की सूजन उतर जाती है और रुका हुआ मासिकधर्म फिर से चालू हो जाता है । इसको घिसकर लगाने से बिच्छू के दर्द में लाभ होता है । इसकी जड़ गुड़ के साथ उबालकर पिलाने से शिशु-प्रसव के समय की वेदना मे बहुत लाभ होता है । यह दवा शक्ति-उत्पादन करती है और ज्वर का नाश करती है । सर्पदंश पर भी यह दवा खाने और लगाने के उपयोग में ली जाती है । इसके पत्तों का रस पिलाने से जलोदर रोग में लाभ होता है ।

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि पित्तप्रदाह, सूखी खाँसी और जोड़ों के दर्द में लाभदायक है । यह एक प्रकार का विरेचन है । उत्तेजक,पौष्टिक और ऋतुस्राव नियामक गुण के कारण यह औषधि वडी उपयोगी है ।

इसरमूल और साँप का जहर—

सर्पदंश के सम्बन्ध में यह औषधि बहुत लम्बे समय से इस देश के कई भागों में प्रसिद्ध रही है । पौराणिक ग्रन्थों के अन्दर भी इसके सर्प-विष-नाशक गुण का उल्लेख मिलता है, शिवपुराण के अन्दर एक कथा है कि शिव और पार्वती के विवाह के समय पर सब देवता इकट्ठे हुये थे, उस समय नारदजी को शिवजी के साथ कुछ मजाक करने की इच्छा हुई और वे जंगल में से ईश्वरबूटी को

उखाड़कर लाये और उसको लेकर हिमालय पर पहुँचे, उस समय विवाह का कार्य समाप्त हो चुका था और शिवजी अन्तःपुर में कई स्त्रियों के बीच में बैठे हुए थे। नारदजी अपनी वीणा को बजाते-बजाते वहाँ पहुँच गये और ईश्वरबूटी को चुपचाप शिवजी के पास रख दी। उसको रखते ही शिवजी के शरीर पर लिपटे हुए सब साँप भागने लगे, जिस साँप से शिवजी ने अपनी कमर के व्याघ्र चर्म को बाधकर रक्खा था, वह भी भागा, जिससे व्याघ्र-चर्म खुलकर शङ्कर दिगम्बर स्वरूप हो गए, जिससे सब स्त्रियाँ उठकर भाग गई और शिवजी बहुत शर्माए।

इस कथानक में कितना सत्यांश है, इसका विवेचन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं। हमारा केवल इतना ही मतलब है कि इश्वरमूल यह बहुत प्राचीनकाल से इस देश में सर्प-विष की अमूल्य औषधि की तरह प्रसिद्ध है।

बंगाल के लोगों को इस औषधि का सर्प-विषनाशक गुण जितना मालूम है, उतना दूसरे प्रांत के लोगों को मालूम नहीं है। इसीलिए यह औषधि वहाँ के गाँवों में बहुत लोकप्रिय है।

डाक्टर ब्रिटन और मिस्टर लोकास इत्यादि कितने ही यूरोपियन डाक्टरों ने इस औषधि के द्वारा साँप के काटे हुये बहुत से रोगियों को प्राण दान दिया है।

डा० ब्रिटन के पास साप की काटी हुई एक युवती संज्ञाहीन अवस्था में लाई गई। उसकी नाड़ी की गति वन्द हो चुकी थी और शरीर बरफ के समान शीतल हो गया था। इस औषधि के तीन पत्ते, दस कालीमिर्च के साथ वारीक पीसकर थोड़े पानी के साथ उसके मुँह में डाले गए। दवा पेट में पहुँचने के पश्चात् दूसरे मनुष्यों की सहायता से उस स्त्री को बिठाई, दस मिनट के बाद उसके नीचे के होठ की नाड़ी में कुछ गति होने लगी। रक्त-सचालन में सहायता पहुँचाने के लिए कुछ मनुष्यों की सहायता से उस स्त्री को खड़ी करके टहलाना प्रारम्भ किया गया। कुछ समय के पश्चात् रोगिणी अपने पैरों पर खड़ी होने की चेष्टा करने लगी। उसके बाद उसने एक लम्बी सास ली और उसमें चैतन्य का संचार होने लगा, उसके पश्चात् रोगिणी ने चिल्लाकर कहा कि मेरी छाती जलती है, तब उसे एकबार फिर से दवा दी गई और उसके घाव पर एक पत्ता पीसकर लगाया गया। दो घण्टे में वह युवती स्वस्थ होगई। (जङ्गलनी जड़ी-बूटी)

डा० रेवरेन्ड का कथन है कि साप के जहर को उतारने वाली औषधियों में से यह भी एक है।

पोर्तगीज लोगों ने सबसे पहिले सर्पदंश-नाशक होने की वजह से इसका नाम Raizde Cobra रक्खा। यह कोब्रा-डी-केपेला Cobra-de-capella नामक भयङ्कर सर्प के विष में भी उपयोगी है।

कोमान के मतानुसार इस वृक्ष के पत्तों का रस सर्प-विष को दूर करने वाला होता है। इसकी जड़ भी विषनिवारक है और यह भी विषैले जन्तुओं के काटने पर काम में ली जाती है। धवलरोग में इसकी जड़ का चूर्ण शहद के साथ दिया जाता है।

फिलिपाइन द्वीपसमूह में भी इसकी कड़वी जड़ विषैले जन्तुओं के काटने पर बहुत उपयोग में ली जाती है।

मतलब यह कि चरक-वाग्भट्ट इत्यादि प्राचीन और एन्सली, रीड्, राबर्टस्, रेवरेन्डस्, ब्रिटन, कोमान, नॉडकर्नी, चोपरा इत्यादि आधुनिक चिकित्सकों के मत से ईश्वरमूल की जड़, लकड़ी और पत्ते तीनों सर्पदंश में उपयोगी हैं, इनको देने की तरकीब इस प्रकार है।—

साप के काटे हुए स्थान पर तत्काल इसके पत्तों का रस मसलना चाहिए और दो-तीन पत्तों को आठ-दस कालीमिर्चों के साथ बारीक पीसकर पानी में मिलाकर पिला देना चाहिये। अगर रोगी मूर्च्छित अवस्था में हो तो भी इस पानी को किसी प्रकार युक्ति से पिला देने से बड़ा लाभ होता है। अचेतन अवस्था में इसके रस का हाईपोडर मिक्सरिंज से इन्जेक्शन देने से वह खून में मिलकर विष को नाश करने में सहायक होता है। जहां पर इसके ताजे पत्ते न मिल सकें, वहा पर इसकी जड़ काम में ली जा सकती है। इस जड़ को आधे या एक तोले की मात्रा में २१ कालीमिर्चों के साथ पानी में पीसकर, छानकर पिलाई जाती है। जरूरत के माफिक १५ मिनट और आधे २ घण्टे के अन्तर से इसकी दो-तीन खुराकें पिलाई जाती हैं। यह केवल साप ही नहीं बल्कि बिच्छू, चूहा तथा अफीम के बिष को भी दूर करता है।

विषनाशक गुण के अतिरिक्त इस औषधि में और भी कई विशेष गुण रहे हुए हैं। औषधि-संग्रह नामक मराठी ग्रन्थ के रचयिता डाक्टर वामन गणेश देसाई के मतानुसार ज्वर के अन्दर इस औषधि को देने से सिर का दर्द दूर होता है, पेशाब की जलन कम होती है, पसीना आता है और बुखार उतरता है। विषमज्वर और दूषित सूतिका-ज्वर में यह विशेष तौर से उपयोगी है। त्रिदोषिक सन्निपात में ईश्वरी को तगर और गठोंड़े के साथ देने से यह ज्ञानतन्तुओं को शाति देती है। नये और प्राचीन सधिवात में यवक्षार के साथ देने से और दर्द की जगह इसका लेप करने से बड़ा लाभ होता है।

गर्भाशय के ऊपर इस औषधि की उत्तेजक क्रिया बहुत स्पष्ट रूप से होती है। प्रसूति के समय अगर स्त्री कष्ट पाती हो तो ईश्वरी को पीपलामूल के साथ देने से लाभ होता है। प्रसूति के पश्चात् स्राव को साफ करने लिये इसका बड़ा उपयोग होता है। गर्भावस्था में इसको नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे गर्भपात होने का डर रहता है।

यह औषधि आतों के दर्द में भी बड़ी लाभदायक है। इसको साधारण मात्रा में लेने से आतों की शिथिलता कम होती है, अजीर्ण, वमन, हैजा, अतिसार, संग्रहणी और प्राचीन अजीर्ण में इसको कालीमिर्च के चूर्ण के साथ देने से बहुत लाभ होता है।

केस और महेस्कर के मतानुसार यह औषधि सर्प दंश के विषनाशक और लाक्षणिक उपचारों में बिलकुल निरुपयोगी है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि स्वाद में कड़वी होती है। इसमें कपूर के समान कुछ गंध आती है। इसकी जड़ का काढा २॥ से ५ तोले तक की मात्रा में उत्तेजक, पौष्टिक और ज्वरनाशक है। रक्तातिसार व आँतों की अन्य शिकायतों में तथा पेट का आफरा दूर करने के लिये इसे काली-मिर्च और सोंठ के साथ देते हैं। इसके पत्तों का ताजा रस सर्प-विष में लाभदायक है। यह ऋतुस्राव नियामक भी है।

डाक्टर नॉडकर्नी के मतानुसार इसकी जड़ पौष्टिक, उत्तेजक, रजःप्रवर्तक और संधिवात-नाशक है। इसके पत्ते पाचक, पौष्टिक और पार्य्यायिक ज्वरों को दूर करने वाले हैं। इसकी जड़ सर्पदंश तथा बिच्छू वगैरह दूसरे जहरीले जानवरों के लिये मूल्यवान औषधि है, विषों के उपचार में इसका भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार से उपयोग होता है। जलोदर रोग में भी यह उपकारी मानी जाती है। हैजा और अतिसार मे इसे कालीमिर्च के साथ मिलाकर देने से बड़ा लाभ होता है। बच्चों के अतिसार और सविराम ज्वरो में भी इसके पत्ते और छाल लाभदायक हैं।

इसरौल

वर्णन—

यह एक प्रकार की लता होती है, जो वृक्षों के आश्रय से अपना विस्तार करती है। यह रंग और पत्तों के भेद से तीन प्रकार की होती है। इसके फूल बैंगनी रंग के होते हैं। इसके बीज चपटे और सूखने पर काले रग के होते हैं। इसकी जड़ लम्बी और अंगूठे से भी अधिक मोटी होती है। ऊपर से देखने पर यह बादामी रंग की मालूम होती है। इसके पत्तों को मलने से एक प्रकार की तीव्र गंध आती है। इसका बीज कड़वा और तीक्ष्ण होता है। भारतवर्ष के उष्ण प्रधान पहाड़ी स्थानों पर इसकी बेलें पैदा होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ वात-ज्वरनाशक, फोड़े को बिठाने वाली और सर्प-विष में लाभदायक है।

फोड़ा पैदा होते ही इसकी जड़ कालीमिर्च के साथ पीसकर गर्म कर बाँधने से फोड़ा बैठ जाता है। कहा जाता है कि साँप के विष पर भी इसकी जड़ को कालीमिर्च के साथ पीसकर लगाने से लाभ होता है। (आयुर्वेदीय कोष)

इस्पिस्त

नाम—

फारसी—इस्पिस्त।

वर्णन—

यह पुनर्नवा की आकृति का एक पौधा होता है। इसका फूल ललाई लिये हुए पीला होता है। चौपायों के लिये इसका पौधा बड़ा पौष्टिक घास है। इसके लम्बी और टेढ़ी फलियाँ लगती हैं, जिनमें इसके बीज रहते हैं। इसकी बागी और जङ्गली दो जातियाँ होती हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह पहिले दर्जे में गर्म और तर है। किसी २ के मत से यह दूसरे दर्जे में गर्म और तर है।

यह पौधा कामोद्दीपक और मृदुता पैदा करने वाला और रक्तवर्द्धक है। इसके पत्तों को कुचल कर शहद के साथ लगाने से शीतल शोथ पर और सिरके के साथ लगाने से उष्ण शोथ पर लाभ होता है।

———:o:———

ईख

नाम—

संस्कृत—इक्षु, दीर्घच्छद, भूरिरस इत्यादि । हिन्दी—ईख, ऊख, गन्ना, पौण्डा, सांटा। गुजराती—शेरड़ी, शेरड़ीनुंमूल । बंगाली—कुशिर, आक । तैलगू—चिरक्कु । फारसी—नेशकर। अरबी—कसउसशकर । अंग्रेजी—Sugar-cane लैटिन—Saccharum Officinarum (सेकेहरम आफिसिनेरम्)

वर्णन—

ईख को भारतवर्ष में प्रत्येक व्यक्ति भली प्रकार से जानता है, इसलिए इसके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं। यह सफेद, काली और लाल के भेद से तीन प्रकार की होती है। इसी प्रकार उपयोगिता और जायके की दृष्टि से इसके ऊख, गन्ना और पौंडे ऐसे तीन भेद और हैं। ऊख विशेष कर विहार में पैदा होती है और शकर बनाने के काम में आती है। पौंडा सफेद रंग का मोटा और रसदार होता है, यह विशेष कर रस चूसने के काम में आता है और गन्ना कड़े छिलके का और लम्बा होता है। इससे हलकी शकर बनती है। आयुर्वैदिक मत से इसकी पौण्ड्रक, भीरुक, वशाक, शेतपोरक, कान्तार, तापसेक्षु, काण्डेक्षु, सूचिपत्र, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलेपोर, कोशकृत इत्यादि कई जातियाँ मानी गई हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से ईख रक्त-पित्तनाशक, बलकारक, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारी, पचने में मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रल और शीतल है।

सफेद ईख स्निग्ध, तृप्तिकारक, पुष्टिकारक, संजीवन, स्वादिष्ट, श्रमनाशक, रक्त-पित्त को शान्त करने वाला, दाहनाशक और कफकारक है।

कालीईख—या कालागन्ना गुणों में सफेद ईख के समान है। यह वीर्य्यवर्द्धक, तृप्तिकारक, दाहनिवारक, क्षारयुक्त, मधुर, शोषनाशक और व्रण को पूरने वाला है।

लाल ईख—शीतल, पाक में मधुर, मृदु, वीर्य्यवर्द्धक, बलकारक, कान्तिजनक, धातुवर्द्धक, भारी, कसैली तथा पित्त, दाह, वातविस्फोट, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और रुधिर-विकार को नष्ट करने वाली है।

पौंडा—शीतल, वात-पित्तनाशक, रस और पाक में मधुर, शीतल, पौष्टिक और बलवर्द्धक है।

बाल अर्थात् कच्ची ईख कफकारी, मेदजनक तथा प्रमेहकारक है, अधपकी ईख वातनाशक, स्वादिष्ट, किंचित, तीक्ष्ण और पित्तनाशक है और पकी हुई ईख रक्त-पित्तनाशक, क्षतनिवारक और बल, वीर्यकारक है।

दाँतों से चूसी हुई ईख का रस शीतल, रक्त-पित्तनाशक,मधुर,पौष्टिक,कफकारक, स्निग्ध, हृदय को बल देने वाला, सारक,श्रम को हरने वाला, लवणयुक्त, मूत्रवर्द्धक, मेदवृद्धि को मिटाने वाला, त्रिदोष-नाशक, इन्द्रियों को तृप्त करने वाला और अमृतोपम है।

ईख का रस—चरखी से निकाला हुआ दस्तावर,भारी,चिकना और कफ तथा मूत्र को जीतने वाला है, इसके अग्रभाग का रस क्षारयुक्त, मध्य भाग का मधुर और निम्न भाग का अत्यन्त मधुर होता है।

भोजन से पहले खाई हुई ईख पित्तनाशक, भोजन के मध्य में खाई हुई ईख भारीपन लाने वाली और भोजन के अन्त मे खाई हुई ईख वात को कुपित करने वाली होती है।

ईख स्वाद में मधुर और रसयुक्त होती है, यह मूत्रनिस्सारक, पौष्टिक, शीतल, कमोद्दीपक और थकान को दूर करने वाली होती है। इसके सिवाय यह प्यास, कोढ़, आँतों की तकलीफ, अग्निविसर्प, रक्ताल्पता इत्यादि रोगों में भी लाभ पहुँचाती है।

'वैद्य-कल्पतरु' नामक गुजराती मासिक पत्र के सन् १६१५ की जनवरी के अङ्क में एक वैद्य लिखते हैं—परिश्रम से थके हुए मनुष्य की थकावट ईख के रस से तुरन्त दूर होती है। शरीर में होने-वाली, दाह को मिटाकर यह अमृत के समान शान्ति-प्रदान करता है, इसमें एक विशेष उपयोगी गुण यह है कि तेल, मिर्च इत्यादि गर्म वस्तुओं के अत्यधिक सेवन से पैदा हुए रक्त-विकार, गर्मी, रक्त-पित्त इत्यादि रोग इससे नष्ट होते हैं। इसी प्रकार मूत्रावरोध इत्यादि मूत्राशय की बीमारियों में भी यह अच्छा काम करता है।

यूनानी मत—यूनानी मत से ईख का रस अवरोध को उद्घाटन करके खून में गति पैदा करता है, यह फेफड़े की रूक्षता को मिटाकर तरी पैदा करता है। जिससे खाँसी में लाभ होता है। यह दस्त साफ लाने वाला, कामोद्दीपक, पेट की जलन को दूर करने वाला और अधिक मात्रा में आफरा पैदा करने वाला है। यह शहद के समान शरीर का सशोधन कर, उसे निर्मल करता है। कोठे को मुलायम करने में यह शहद से बढ़ा-चढ़ा है। यह आमाशय की अम्लता को दूर कर वायु के प्रकोप को निवारण करता है।

इसके रस में अनार का रस मिलाकर पीने से रक्तातिसार में लाभ होता है। शहद के साथ इसका रस पीने से पित्त की उल्टी बन्द होती है और आँवले के रस के साथ इसके रस का सेवन करने से सुजाक में लाभ होता है। इसके रस के साथ हड के चूर्ण की फकी लेने से कण्ठमाला में लाभ होता है तथा इसको भूमल में भूनकर चूसने से बैठा हुआ गला साफ होता है।

प्रमेह के रोगी, निर्बल पाचनशक्ति वाले, पीनस के रोगी,कृमिरोग वाले तथा जिनके मुँह में दुर्गन्ध आती हो, ऐसे रोगियों को इसके रस का सेवन नुकसान करने वाला है। इसलिये उन्हे इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

इसके दर्प को नाश करने वाले अदरक का रस, आँवला, मस्तगी इत्यादि वस्तुएँ हैं।

ईख से बनी हुई वस्तुएँ—

फाणित—ईख के पकाये हुए कुछ गाढ़े और कुछ पतले रस को फाणित कहते हैं। यह फाणित आयुर्वेदिक मत से भारी, पौष्टिक, कफकारी, शुक्रजनक तथा वात, पित्त, श्रम को दूर करती है और मूत्र तथा वस्ति को शुद्ध करती है।

मत्स्यण्डी—ईख के पकाये हुए अधिक गाढ़े रस को मत्स्यण्डी कहते हैं। यह भेदक, बलकारक, हलकी, वात-पित्तनाशक, मधुर, पौष्टिक, वीर्यवर्द्धक और रक्त-विकार को हरने वाली है।

गुड़—ईख के रस को पूरी तरह पकाकर उसका गुड़ बनाते हैं। गुड़ भारतवर्ष में बहुत प्राचीन-काल से मङ्गलीक द्रव्य के रूप में व्यवहृत होता आया है। आयुर्वेदिक दृष्टि से प्राचीन और नवीन गुड़ के गुणों में अन्तर है। भारतवर्ष के कई प्रान्तों में प्रसूता स्त्रियों को पुराने गुड़ में बनाई हुई चीजों को देने का रिवाज है। इसके सिवाय गुड़ मूत्रशोधक, वीर्यवर्द्धक, अग्निदीपक, दस्तावर और पित्तकारक माना गया है। यह गुदारोग, कामलारोग, शोथ, प्रमेह, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, वात, रक्त-पित्त इत्यादि रोगों को हरने वाला है। कास और श्वास में भी यह उपयोगी है तथा भिन्न २ अनुपानों से और भी कई रोगों को हरने वाला माना जाता है।

हार्ट डिसीज (हृदय रोग) और गुड़—सन् १६३३ के २४ अक्टूम्बर के 'मुम्बई समाचार' में रतनशा के० दादा चानजी के नाम से " हार्ट अर्थात् हृदय को मजबूत बनाने के लिये यूरोप के अन्दर हाल ही में शोधा हुआ एक आश्चर्यजनक उपाय" नामक लेख प्रकाशित हुआ था। उसका आशय इस प्रकार है—

" मि० बरजोरजी संजाना एडवोकेट को बम्बई के डाक्टरों ने बतलाया कि तुमको हार्टडिसीज (हृदयरोग) हो गया है और हार्ट का एक रेस टूट गया है। इसलिये उनको सलाह मिली कि बिस्तर पकड़ लेना चाहिए और अधिक हिलना-डुलना नहीं चाहिए······तब मि० सजाना इस रोग का इलाज कराने के लिए विएना गये और वहाँ के प्रसिद्ध डाक्टरों को दिखलाया। वहाँ उनको कहा कि आपको हार्ट-डिसीज नहीं है और उन्हें दस मील रोज घूमने का आदेश दिया।

वहाँ से मि० संजाना इग्लैंड गये और वहाँ के एक हार्ट एक्सपर्ट के पास जाकर उन्होंने हार्ट को मजबूत बनाने का उपाय पूछा। उस डाक्टर ने एक गिन्नी फीस लेकर नुसखा लिखा और उस नुसखे में खाली "शार्प की सुपरक्रीम टॉफी" का नाम लिख दिया। इस नुसखे को देखकर मि० सजाना आश्चर्य चकित होगये और इन्होंने डाक्टर को फिर से दोहराया तब डाक्टर ने कहा कि 'टॉफी,खाने से हार्ट बहुत मजबूत होता है, इसी प्रकार गुड की पपड़ी या गुड की बनाई हुई चीज खाने से भी हार्ट पर बड़ा अच्छा असर होता है।

इस लेख के लेखक (रतनशा के० दादा चानजी।) ने जब उनके मुह से इस बात को सुना तब कुछ समय तक इन्होंने भी शार्प की सुपरक्रीम टॉफी का उपयोग किया था। इससे लेखक को विश्वास

हुआ कि गुड खाने से हार्ट के ऊपर आश्चर्यजनक ढंग से चमत्कारिक असर होता है। हमारे देश में गुड का बहुत भारी तादाद में उपयोग होता है। मगर इसके वास्तविक गुणों से लोग अपरिचित हैं। अगर इसके वास्तविक गुणों से लोग परिचित हो जायँ और इसका नित्य उपयोग जारी कर दें, तो हार्ट-फेल्युअर से होने वाली कई मौतों से बचाव हो जाय।"

उपरोक्त कथन से मालूम होता है कि गुड हृदयरोग में लाभ पहुँचाने वाली वस्तु है, इस कथन के साथ जब हम प्राचीन ग्रन्थों में बतलाये हुए गुड के गुणों की तुलना करते हैं तो उसमें बहुत कुछ साम्य नजर आता है।

पुराने गुड का वर्णन करते हुए आयुर्वेदिक ग्रथों में लिखा है कि यह रसायनरूप और अग्नि-दीपक है। चेहरे के फीकेपन को, पाण्डु को, पित्त को, त्रिदोष को और प्रमेह को मिटाने वाला है। तीन वर्ष का पुराना गुड़ सबसे उत्तम माना जाता है। पुराना गुड़ अदरख के साथ खाने से कफ, हरड़ के साथ खाने से पित्त और सोंठ के साथ खाने से वायु का नाश करता है। गुल्म, बवासीर, अरुचि, क्षत, खाँसी, हृदयरोग, छाती के जखम, क्षीणता, पाण्डु वगैरह रोगों में पुराना गुड पथ्य है। बवासीर तथा श्वास वाले को, हृदयरोग वाले को, परिश्रम से थके हुए को, मूर्छा वाले को, मूत्रकृच्छ् और पथरी वाले को, रक्तविकार वाले को, जीर्ण तथा विषम-ज्वर वाले को युक्तिपूर्वक अगर गुड का सेवन कराया जाय तो बड़ा लाभ होता है। गुड भोजन को पचाकर खून की वृद्धि करता है तथा उसे स्वच्छ करता है। पेट और श्वासोच्छ्वास के दर्दों को मिटाता है। शरीर की गठन को मजबूत करता है, मेद और चरबी को कम करता है। समाज में यह एक बहुत सामान्य वस्तु मानी जाती है, मगर यह अमृत के तुल्य है। द्राक्षासव, हरीतिकी अवलेह, वासावलेह इत्यादि मशहूर औषधियों में गुड का मिलाया जाना इसकी उपयोगिता को सिद्ध करता है। (वैद्य-कल्पतरु, दिसम्बर सन् १६३३)

शक्कर—आयुर्वेदिक मत से ईख की शक्कर शीतवीर्य, पाक में मधुर, सारक तथा दाह, तृषा, वमन, मूर्छा, रुधिरविकार और कृमिरोग को नष्ट करने वाली है। इसकी बनाई हुई मिश्री नेत्रों को हितकारी, स्निग्ध, धातुवर्द्धक, मुखप्रिय, मधुर, शीतल, इन्द्रियों को तृप्त करने वाली, हलकी, तृषा-नाशक तथा क्षत, क्षय, रक्त-पित्त, मूर्छा, कफ, वात,पित्त, दाह और शोष को हरने वाली है।

अरेबियन मटेरिया मेडिका के अनुसार यह विरेचक और रसयुक्त है। बहुत से लेखक इसे सीने के दर्दों में मुफीद मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह स्थूलता को नष्ट करती है और पथरी की शिकायतों में भी लाभदायक है।

विष के मामलों में खास करके ताँबा और सखिया के विष में शक्कर बहुत उपयोगी मानी गई है। रसकपूर के विष में भी यह उपयोगी है। इन मामलों में इससे सफलतापूर्वक काम लिया जा चुका है। घाव में और घाव सम्बन्धी दूसरी पीडा में शुद्ध, सफेद शक्कर मांसांकुर लाने के लिये घाव पर छिडकी जाती है।

उपयोग—

सूखी खाँसी—कच्चे गन्ने का रस पीने से सूखी खाँसी मे लाभ होता है।

पित्त विकार—पके हुए गन्ने का रस पिलाने से वात और पित्त के विकार मिटते हैं।

रुधिर की वमन—वृद्ध गन्ने का रस पिलाने से रुधिर की वमन बन्द होती है।

मूत्र रेचन—गन्ने का बासी रस पिलाने से मूत्र वृद्धि होती है।

विरेचन—गन्ने के रस में जौ की बाल के नीचे का डंठल मलकर पिलाने से शीघ्र विरेचन होता है।

रक्तातिसार—गन्ने के रस में अनार का रस मिलाकर पिलाने से रक्तातिसार मिटता है।

पित्तगुल्म—गन्ने के रस और आँवले के रस से शुद्ध किये हुए घी को खाने से पित्त गुल्म में फायदा होता है।

ईरसा

नाम—

हिन्दी—ईरसा, सौसन, इन्द्रधनुष पुष्पी। अरबी—इर्सा, सौसने आसमानी। लेटिन—Iris Versicolor. (आइरिस व्हर्सिकलर) Iris Florentina (आयरिस फ्लोरटिना)।

(Chopra)

वर्णन—

इस वनस्पति की जड़ चपटी, टेढ़ी, गाठदार और लता की भाति फैलने वाली होती है। इस पौधे के बीच में से एक डाली निकलती है, वही इसका तना होता है। उस डाली के ऊपर पत्तों के गुच्छे और फूल होते हैं। इसके फूल भिन्न २ रगों के नीले, पीले, सफेद और इन्द्र-धनुष के समान सम्मिलित रगों के होते हैं। इसीसे इसको इन्द्र-धनुष पुष्पी और ईरसा (इन्द्र-धनुष) कहते हैं। इसके पत्ते मोटे दल के और दीर्घ होते हैं। इसकी जड़ में बनफशा के समान खुशबू आती है। यह औषधि हिमालय पहाड़ पर ५००० फीट से ६००० फीट की ऊँचाई तक होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक ग्रन्थो के अन्दर इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

यूनानी मत—यूनानी ग्रन्थों के अन्दर बहुत प्राचीनकाल से इस औषधि का उल्लेख पाया जाता है। हकीम डिसकोरिडस और सावफरिस्तूस ने अपने ग्रन्थों में इसका उल्लेख किया है। प्राचीनकाल मे यूनान के अन्दर इस औषधि की जड के द्वारा एक उत्तम कोटि का मरहम तैयार किया जाता था।

यूनानी मत से इसकी जड शरीर मे गरमी पैदा करने वाली, प्रकृति को दुरुस्त करने वाली तथा आक्षेप, लकवा और अंग-स्फुरण को लाभ पहुँचाने वाली है। तेल और सिरके के साथ इसका लेप करने से पुराना सिरदर्द आराम होता है। जैतून के तेल के साथ इसको कान में टपकाने से पुराने बहरेपन में लाभ होता है। हड्डी के टूटने या चोट लगने के स्थान पर इसका लेप करने से लाभ होता है। सूजन और जलधर की बीमारी में भी यह फायदेमन्द है। इसको महीन पीसकर हड्डी पर भुरभुराने से हड्डी पर मास पैदा होकर गम्भीर व्रण भर जाता है। सधिशूल में भी इसके खाने से लाभ होता है। इसके पचांग का ताजा रस आख में डालने से आंख का जाला कट जाता है।

खांसी, दमा, पार्श्वशूल, सीने का दर्द और फेफडे की बीमारियों मे भी यह लाभकारी है। हृदय को भी यह शक्ति प्रदान करता है। कामला और बवासीर के रोग मे भी यह लाभ पहुँचाता है। गृध्रसी में इसकी वस्ति उपयोगी है। इसको गुदा में रखने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं तथा शहद के साथ गर्भाशय में रखने से गर्भपात होने का अन्देशा रहता है। सरदी से होने वाले यकृत और प्लीहा के दर्द में भी इससे लाभ होता है।

इण्डियन मेडिकल प्लान्ट्स के मतानुसार इसकी जड़ रक्त-शोधक और धातु-परिवर्तक होती है। यह अनेक रक्त-शोधक औषधियो का एक प्रधान अङ्ग है। यकृत और जलोदर की पीड़ा में भी यह बहुत मुफीद है। सम्भोग सम्बन्धी बीमारियों (Sexual Deseases) मे भी यह बहुत काम में आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह (Iris Florentina) आइरिश जर्मेनिका नामक वृक्ष की जड़ है जोकि काश्मीर में पैदा होता है। यह रक्त-शोधक, मूत्रनिस्सारक और मृदुरेचक है। इसमें एक प्रकार का ग्लुकोसाइड रहता है। पित्ताशय की तकलीफ में इसका उपयोग होता है।

इण्डियन मटेरिया मेडिका के मतानुसार इसकी सूखी जड़ में एक प्रकार का इसेन्शियल ऑइल, टेनिन, राल और सफेद सत्व होता है।

उटंगन

नाम—

संस्कृत—सितिवार, स्वस्तिक, सुनिषएएक, श्रीवारक, शितिवार इत्यादि। हिन्दी—शिरिश्रारी, चोपतिया, उटिंगन, गुठवा, उटगन के बीज। मराठी—कुरडू। गुजराती—श्रोटीगरण, श्रोटीगरणना-बीज, खड़कातेरा। फारसी व अरबी—श्रजरा, तुख्मेश्रजरा। तैलगू—सुनिषएण मनेशाकमु। लेटिन—Blepharis Edulis. (ब्लेफेरिस एड्यूलिस)

वर्णन—

उटगन के पौधे सजल स्थानों, ठडी जगहों तथा नदी के कछारों में उत्पन्न होते हैं। इसके पत्ते चाँगेरी के समान एक साथ चार २ लगते हैं। उन चार पत्तों के बीच में कली लगती है। इसके फलों के बीच में दो चपटे बीज होते हैं। ये बीज तालमखाने के सदृश चिकने होते हैं। इसके पत्तों की शाक बनाकर खाई जाती है। कहा जाता है कि इसकी शाक अच्छी निद्राजनक है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से उटंगन के पत्तों का शाक शीतल, मलरोधक, त्रिदोषनाशक हलका, स्वादिष्ट, कसैला, रूखा, दीपक, रुचिकारक तथा ज्वर, श्वास, प्रमेह, कोढ़ और भ्रम को दूर करने वाला है।

इसके पत्ते सुगन्धित और तिक्त होते हैं। ये आँतों के लिये संकोचक, कामोद्दीपक, क्षुधावर्द्धक, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक और निद्राकारक हैं। त्रिदोष और ज्वर में तथा मूत्र-नाली सम्बन्धी बीमारियों में और मानसिक विकृति में ये बड़े उपयोगी हैं। इनको लगाने से घाव और व्रण में भी लाभ होता है।

इसके बीज मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) की बीमारियों में बड़े लाभदायक हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से उटंगन की जड़ मूत्रनिस्सारक और मासिकधर्म को नियमित करने वाली है। इसके पत्ते पौष्टिक, कामोद्दीपक, विरेचक और नकसीर को बन्द करने वाले हैं। श्वास, कफ, गले की जलन, जलोदर,यकृत और तिल्ली सम्बन्धी रोगों में ये बड़े मुफीद हैं। इसके बीज यकृतरोग, सीने के रोग, फेफड़े के रोग, रक्तरोग तथा पेशाब सम्बन्धी बीमारियों में लाभदायक है। ये मूत्रनिस्सारक आक्षेप निवारक, कामोद्दीपक, वीर्यस्तम्भक, बलदायक और शुक्रमेह तथा शुक्रतारल्य को दूर करने वाले हैं। मूत्रदाह को दूर करके ये गुर्दे को बलप्रदान करते हैं। ये कफ-निस्सारक और चरबी को कम करने-वाले हैं। बिलोचिस्तान में इसके बीज आँखों की तकलीफ में काम में लिये जाते हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके बीज मूत्रनिस्सारक, कामोद्दीपक, कफनिस्सारक और शक्तिवर्द्धक हैं। इनमें एक प्रकार का कटुतत्व पाया जाता है।

उड़द

नाम—

संस्कृत—बीजरत्न, धान्यवीर, माष, कुरुविन्द, वृषांकुर, मांसल, बलाढ्य इत्यादि। हिन्दी—उड़द, उरिद, ठिकिरि। गुजराती—अरद, उडद। बंगाली—माषकलाई। मराठी—उडिद। तेलंगी—मिनुमुलु। कनाड़ी—उद्दू। तामील—पट्चैप्परी। फारसी—माष। अरबी—माषा। लेटिन—Phaseolus Radiatus. (फेसिओलस रेडिटस)।

वर्णन—

उड़द का उपयोग दाल के रूप में प्रायः सारे भारतवर्ष में होता है। इसलिये इसके विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से उड़द स्निग्ध, बलकारक, वीर्यवर्द्धक, पित्तकारक, भारी, तृप्तिजनक, स्वादिष्ट, पौष्टिक, मूत्रल, मलभेदक, दुग्ध पैदा करने वाले, मांसवर्द्धक, मेदवर्द्धक तथा श्वास, श्रम, परिणाम-शूल, अर्दित और बवासीर को दूर करने वाले हैं। किसी २ के मत से ये मल-भेदक और मूत्रजनक नहीं हैं।

इसके बीज मीठे और तेलयुक्त रहते हैं। ये मृदु-विरेचक, कामोद्दीपक, पौष्टिक, भूख बढ़ाने वाले, मूत्रल और दुग्धवर्द्धक हैं। ये हृदय के लिये उत्तम और थकान को दूर करने वाले हैं। ये प्यास, कफ और रक्तरोग को उत्पन्न करने वाले हैं।

यूनानी मत—यूनानी मत से उड़द के बीज कामोद्दीपक, पौष्टिक, मूत्रल, दुग्धवर्द्धक, रक्तस्रावरोधक हैं। ये खाज, धवलरोग, सुजाक और नकसीर में लाभदायक हैं। पक्षाघत, आमवात, स्नायु-मंडल के रोग, बवासीर और यकृत की तकलीफों में भी ये उपयोगी हैं। इनका उपचार भीतरी और बाहरी दोनों तरीकों से होता है।

ये पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में तर हैं। ये आफरे को पैदा करने वाले और कठिनता से हजम होने वाले हैं। इनके दर्प को नाश करने वाले कालीमिर्च, अदरख और हींग हैं।

उड़द की जड़ निद्राकारक मानी जाती है। सथाल लोग इसे हड्डियों के दर्द में लाभदायक बतलाते हैं। इडो-चायना में इसके बीज जलोदर और मस्तकशूल में काम में लिये जाते हैं।

सुश्रुत के मतानुसार इसके बीज सर्प और बिच्छू के डंक मे उपयोगी हैं। मगर केस और महेस्कर के मतानुसार ये दोनों ही प्रकार के विषों में निरुपयोगी हैं।

इंडियन मटेरिया मेडिका के लेखक डाक्टर नॉडकरनी के मतानुसार उड़द स्निग्ध, शीतल, काम-शक्तिवर्द्धक और स्नायु-मंडल को ताकत देने वाला है। इसमें केवल एक दोष यह है कि यह

वायु को पैदा करता है। इस दोष को नष्ट करने के लिये तथा इसको स्वादिष्ट बनाने के लिये इसमें हींग मिला देना आवश्यक है। इसका काढा अजीर्ण रोगी के लिये उपयोगी है। औषधिरूप में इसका भीतरी और बाहरी दोनों तरीक़ो मे प्रयोग होता है। आमाशय से पैदा होने वाले जुकाम, अतिसार, प्रवाहिका, लकवा, बवासीर, आमवात, यकृत की बीमारियाँ और वात-व्याधियों में इसका काढा पीने के लिये दिया जाता है तथा आमवात, यकृत के रोग और वात-व्याधियों मे इसका बाहरी प्रयोग भी होता है। इसकी दाल शरदऋतु में शीत के आक्रमण से रक्षा करती है। जरायु के विकारों में इसको भूनकर खाने से लाभ होता है। इसकी साधारण पकाई हुई दाल दुग्धवर्द्धक है।

उपयोग—

लकवा—उडद को सोंठ के साथ औटाकर पिलाने से लकवे में लाभ होता है।

गठिया—अरंड की जड की छाल के साथ उड़द को औटाकर पिलाने से गठिया में लाभ होता है। इसके मेल से बनाये हुए तेलों के मर्दन मे संधियो तथा कधे की वादी मे लाभ होता है।

फोड़ा—पीव वाले फोड़ों पर इसकी पुल्टिस बाँधने से लाभ होता है।

नकसीर—इसके आटे का तालू के ऊपर लेप करने से नकसीर बन्द होता है।

हिचकी—हलदी, सन की छाल और उडद के आटे का धूम्रपान करने से हिचकी बन्द होती है, उडद को हुक्के मे रखकर तमाखू की भाँति पीने से भी हिचकी बन्द होती है।

स्नायु-शक्ति—उडद के काढ़े पर एक रत्ती सफेद चिरमी का चूर्ण भुरभुरा कर पिलाने से स्नायु-जाल की शक्ति बढती है।

पित्त की सूजन—उड़दों को उबालकर पित्त की सूजन पर बाँधने से पित्त की सूजन मिटती है।

अर्दित रोग—उड़द के आटे के बडे बनाकर मक्खन के साथ खाने से मुंह का अर्दित मिटता है।

उड़द की पुल्टिस—उडद के आटे मे थोडा नमक, थोड़ी सोंठ और थोडी हींग मिलाकर उसकी रोटी बनाकर एक तरफ से सेक लें और उसको उतारकर कच्चे भाग की तरफ तिल का तेल लगाकर शरीर के किसी भी वेदनायुक्त स्थान पर बाँधने से बडा लाभ होता है।

उड़द पाक—छिले हुए उड़द का आटा डेढ़पाव, गेहूँ का सत्व डेढ़पाव, जौ का सत्व डेढपाव, साँठी के चाँवलों का चूर्ण तीन छटाक, छोटी पीपर शोधी हुई डेढ छटाक, घी एक सेर आधपाव, चीनी सवा दो सेर।

पहले ऊपर की पाँचों चीजों को घी में मंद २ आँच पर भूँज लो। जब चूर्ण लाल हो जाय और खुशबू आने लगे तब उसे उतार लो। फिर चीनी की गाढी चासनी करके उस चासनी में वह चूर्ण

डाल दो। ऊपर से बादाम, पिश्ते, किशमिश आदि मेवे पाव २ भर कतरकर डाल दो। फिर एक २ छटांक के लड्डू बना लो।

चिकित्सा-चन्द्रोदय के लेखक बाबू हरिदास वैद्य का कथन है कि इसमें से सवेरे-शाम एक २ लड्डू खाकर ऊपर से दूध पीने से अत्यत बलवीर्य बढ़कर धातु पुष्ट होती है। रतिशक्ति को बढ़ाने के लिये यह पाक बहुत मुफीद है। वे इसे अपना परीक्षित बताते हैं।

उड़द का हलवा—उड़द की धोई हुई दाल को लेकर ताजे गाय के दूध में भिगो दें। जब सब दूध उस दाल में रम जाय, तब उसे छाँह में सुखा लें। सूख जाने पर पीसकर आटा कर लें। इस आटे में सिंघाड़े का आटा, सफेद मूसली का चूर्ण और इमली के भुंजे हुए छिलके रहित चीयें का चूर्ण समान भाग मिलाकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण में से साढ़े तीन तोले चूर्ण का साढ़ेतीन तोले घी और पाँच तोला शक्कर के साथ हलवा बनाकर सेवन करें। अगर पाचनशक्ति कमजोर हो तो इस मात्रा में कमी भी की जा सकती है।

यह योग आयुर्वेदीय-विश्वकोष का है। इस योग के सेवन से भी वीर्यवृद्धि और पुष्टि होकर ओज, कांति और रतिशक्ति की वृद्धि होती है।

उतरण

नाम—

संस्कृत—फलकण्टका, चाण्डाल दुग्धिका, इन्दिवरा, युग्मफला इत्यादि। हिन्दी—उतरण। मराठी—उतरणी, उतरडी। बंगाली—छागुलवाटी। पंजाब—सियाली। तामील—उत्तमनी। गुजराती—नागली दुधैली। काठियावाड़ी—चमार दुधैली। तेलगू—गुरुति। लेटिन—Daemia Extensa (डेमिया एक्सटेन्सा)

वर्णन—

यह औषधि भारतवर्ष के तमाम गरम आबहवा वाले प्रांतों में तथा सीलोन और अफगानिस्तान में पैदा होती है। यह बहु वर्षजीवी वृक्षाश्रयी लता है। यद्यपि यह बारह मास होती है, फिर भी बरसात के दिनों में ज्यादा पाई जाती है। इसके पत्ते कुछ गोलाई लिये हुए नोंकदार और रुएँदार होते हैं। इसके फूल सफेद और फल आँकडे के समान, लेकिन दो २ मिले हुए रहते हैं। इसीसे इसे फलयुग्मा कहते हैं। इसके फलों पर कांटे होते हैं। इन फलों में से आँकड़े की तरह रूई निकलती है। इस फल को तोड़ने से उसकी डाली में से दूध निकलता है। इस बेल के अन्दर खराब गंध आती है।

गुण धर्म और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह पौधा तीक्ष्ण, शीतल, कृमिनाशक, विरेचक, ज्वरनाशक और पित्त, कफ, श्वास तथा त्रिदोष का नाश करने वाला है। यह व्रणों के लिये बहुत मुफीद है। नेत्ररोग, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय के रोग, पथरी, प्रदाह और धवलरोग में भी यह लाभदायक है।

इसकी जड़ की छाल पौने चार माशे से साढ़े सात माशे की मात्रा में गाय के दूध के साथ गठिया रोग में विरेचक औषधि के बतौर दी जाती है। इसकी ताजी पत्तियों की लुग्दी उत्तेजक पुल्टिस के बतौर साघातिक फोड़ों पर लगाई जाती है। इसके पत्तों का रस जुकाम और श्वास की बीमारी में लाभ-दायक है। चूने और सोंठ के साथ इस रस को मिलाकर लेप करने से सधिवात की सूजन में लाभ होता है। इसके पत्तों को मिर्ची के साथ पीसकर देने से रक्तातिसार में लाभ होता है।

कोमान कहते हैं कि यह औषधि मलेरिया के पार्य्यायिक ज्वरों में मुफीद बतलाई जाती है। मगर इसके पत्तों का रस आधे औंस की मात्रा में लेने पर भी मलेरिया के रोगियों को कोई लाभ न हुआ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि बम्बई प्रात में वामक तथा कफ-निस्सारक औषधि की तरह उपयोग में ली जाती है। इसके पीसे हुए पत्ते का रस पाँच से लगाकर दस ग्रेन तक की मात्रा में एक उत्तम कफ-निस्सारक औषधि है। इसके कफ-निस्सारक गुण को बढ़ाने के लिये इसमें कभी २ तुलसी के पत्तों का स्वरस और शहद भी मिला दी जाती है। इसके पत्ते कफ-निस्सारक और वामक होने से श्वासरोग में भी लाभदायक होते हैं। ये सर्पदंश में भी उपयोगी माने जाते हैं। इस औषधि में एक प्रकार का कड़वा ग्लुकोसाइड रहता है।

'जंगलनी जड़ी-बूटी' नामक ग्रन्थ के रचयिता वैद्य-शास्त्री शामलदास इस औषधि के अन्दर दो नवीन और चमत्कारिक गुणों का उल्लेख करते हैं। इनमें से पहला गुण खूनी बवासीर को बंद करने का है और दूसरा पारे की गोली बनाने का।

(१) उनका कथन है कि इस वनस्पति के अन्दर एक दिव्यगुण यह देखने में आता है कि इसके पत्तों को प्रति टाइम दो तोले के करीब लेकर उनके छोटे टुकड़े कर घी में लौंग के बघार के साथ तलकर खाने से बवासीर से गिरने वाला खून बंद हो जाता है। इस प्रयोग को १०-१५ रोज तक चालू रखने से कई रोगियों का हमेशा के लिये खून पड़ना बंद हो जाता है।

(२) प्राचीन निघंटों में इस औषधि को धातु-वृद्धि करने वाली, हृदय को हितकारी, गरम और पारे को बाँधने वाली लिखा है। मगर इससे पारा किस प्रकार बाँधा जाता है, यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है। हमको एक महात्मा ने इसका प्रयोग बतलाया, वह इस प्रकार है—

भलीभाँति शुद्ध किये हुए पारे को एक पत्थर की खरल मे डालकर फिर उतरण की जड़ों को मुँह में चबा २ कर उसका रस निकाल २ कर उस पारे में डालना चाहिये और नीम की हरी लकड़ी के डराडे से उसे घोटते जाना चाहिये। इस प्रकार सात दिन तक घोटने पर पारा मक्खन के समान हो जाता है। इस पारे को कपडे मे बाँधकर धतूरे के डोड़े मे बद कर उस डोड़े पर गाय के गोबर का थर चढ़ाकर सुखा लेना चाहिये। फिर एक रुपये भर ऊपले कडे का चूर्ण समाय इतना खड्डा खोदकर उसमे बकरी की मेगनी भरकर उसके बीच में पारे का डोड़ा रखकर आग सुलगा देना चाहिये। जब अग्नि ठडी हो जाय तब उसे निकालकर दूसरे धतूरे के डोड़े मे पारे को भरकर दूसरी बार दो रुपये भर बकरी की मेंगनियो मे उसे फूंकना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक बार एक २ रुपये भर मेंगनी बढ़ाते हुए उसे सौ पुट देना चाहिये। उसके बाद उसी प्रकार धतूरे के फल मे रखकर गाय के गोबर का थर चढ़ाकर दाल, चाँवल की खिचड़ी में उसे पकाना चाहिये। इस प्रकार ६० दिन तक उसे खिचड़ी में पकाते रहना चाहिये। उसके बाद उसे ऊपले कडों की आग में उसी प्रकार १०० पुट और देना चाहिये। इतनी क्रिया के पश्चात् पारे का जल शुष्क होकर उसकी एक गोली तैयार हो जाती है। कई गुणों के साथही-साथ इस गोली में वीर्य्य-स्तम्भन करने का बहुत बड़ा गुण है। इसको सोने या चाँदी के पतरे में रखकर मुह में रखने से वीर्य-स्तम्भन होता है।

उपयोग—

पेट के कृमि—इसके स्वरस को दस बूद से एक माशे तक की मात्रा में देने से या इसके पत्तों का काढा पिलाने से बच्चों के पेट के कृमि नष्ट होते हैं और उदररोग भी मिटते है।

साघातिक फोड़ा—(Carbuncle) इसके ताजे पत्तों की लुगदी पुल्टिस की तरह सांघातिक फोडो पर रखने से वह जल्दी भरता है।

श्वास और खाँसी—इसके पत्तों के रस को पाच रत्ती से दस रत्ती तक की मात्रा में लेने से श्वास और खाँसी में तत्काल फायदा होता है।

गठिया की सूजन—इसके पत्तो के स्वरस में चूना मिलाकर लेप करने से हाथ-पैरों की गठिया की सूजन में लाभ होता है।

उद्जाति

नाम—

हिन्दी—उद्जाति। कनाड़ी—कपूरकरणी। तामील—नीलाम्बरी। मराठी—रणवोलि,धाक्त। तेलगू—पच्चदवरम्। लैटिन—Ecbolium Liuncanum. (एक्बोलियम लिनकेनम्)।

वर्णन—

यह एक प्रकार की छोटी झाड़ी है। इसकी शाखाएँ सीधी, पत्ते बड़े, लम्बे और नोकदार, पुष्पावरण तीखे, फल मुलायम और बीज सफेद रहते हैं। यह वनस्पति कोकन,पश्चिमी घाट, दक्षिण और कर्नाटक में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी जड़ पीलिया और अत्यधिक रजःस्राव में उपयोगी है।

उन्नाव

नाम—

संस्कृत—सौवीर, सौवीरक, सौवीरवदर। हिन्दी—वनवेर,कॅडियारी, तितनीवेर, सिंगली,सिमली। काश्मीर—फिटनी, सिमली। बम्बई—रनबोर, उन्नाव। सीमाप्रांत—खॅडियारी। फारसी—पुनर, उन्नाप, सिंजिदेजेलानी। उर्दू—उन्नाब। लैटिन—Zizyphus Vulgaris. (झिझीफस व्हलगेरिस) और Zizyphus Sativa. (झिझिफस सेटिव्हा)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का वेर होता है। इसकी मूल उत्पत्ति अफगानिस्तान की है। मगर यह पंजाब और पंजाब के पास के हिमालय के प्रान्त में ६५०० फीट की ऊँचाई तक होता है। इसके अतिरिक्त पूर्व में बंगाल तक तथा सीमाप्रान्त, विलोचिस्तान और फारस में भी यह पैदा होता है। इसका वृक्ष वेर के समान झाड़ीदार और कॉटे वाला होता है। इसके पत्ते वेर के पत्तों से कुछ बडे, गोल,बर्च्छी के आकार के और नरम होते हैं। इसका फल मारवाड़ में पैदा होने वाले बड़े झड़वेर के बराबर होता है। इसका पका हुआ फल लाल रङ्ग का होता है। बगदाद का उन्नाव सर्वोत्कृष्ट होता है। यह मीठा, लाल रंग का, सुस्वादु और अधिक गूदा वाला होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से, ताजा उन्नाव समशीतोष्ण है । किसीके मत से यह पहले दर्जे में सर्द और तर और किसी के मत से यह पहले दर्जे में उष्ण और तर है । कठिनता से पचने वाला होने के कारण यह आमाशय को हानि करने वाला और आफरा पैदा करने वाला है । सूखा उन्नाव वीर्य को घटा कर मैथुन-शक्ति को कमजोर करता है । इसके दर्प को नष्ट करने वाले मुनक्का, शहद और शक्कर हैं तथा इसका प्रतिनिधि सपिश्ता (बड़गूँदा) है ।

इसका छिलटा घाव और फोड़ों को पूरने के लिये काम में लिया जाता है । इसके पत्ते विरेचक हैं । ये खाज तथा गले की बीमारी और शरीर की जलन में प्रयोग में लिये जाते हैं । इसका फल मीठा, खट्टा, कफ-निस्सारक, रक्तवर्द्धक और रक्तशोधक है । पुरानी खासी, वायु-नलियों के प्रदाह, ज्वर और लिव्हर के बढ़ने पर यह बहुत लाभदायक है । इसके बीज सूखी खाँसी और चमड़े के फटने पर बहुत उपयोगी हैं । इसका गोंद नेत्र रोगों के लिये मुफीद है ।

मखजन तुहफा के मतानुसार यह औषधि अवरोधोद्घाटक, दोषों को मुलायम करने वाली, मूत्र-निस्सारक और आर्तव-प्रवर्तक है । इसका काढ़ा बुद्धि और स्मरणशक्ति को तेज करता है । इस्तिक्का-बारिद (जलोदर) और यर्कानस्याह (काला कामला) में यह लाभदायक है । पेट के कृमियों को नष्ट करने में तथा कफ और वात से पैदा होने वाले ज्वरों में यह मुफीद है । सुजाक, संधिशूल और तिल्ली की वृद्धि को यह दूर करता है । घाव पर इसको महीन कर भुरभुराने से घाव भर जाता है । इसके ताजे पत्तों का लेप भी पुराने घावों में लाभदायक है । इसकी धूनी से जहरीले जानवर भाग जाते हैं ।

यह खून को साफ करने वाला, खासी में लाभ पहुँचाने वाला, गुर्दे और वस्ति के रोगों में लाभदायक तथा कंठ की कर्कशता को दूर करने वाला है । चेचक में तथा पित्ती उछलने की बीमारियों में इसको अर्क-कासनी और सिकजबीन के साथ देने से बहुत लाभ होता है ।

इसके सूखे फलों से बनाया हुआ शर्बत खाँसी, छाती और आमाशय की जलन को मिटाता है तथा रक्त की गरमी को नाश कर उसे शुद्ध करता है । शीतला की बीमारी में यह शर्बत बहुत शांतिदायक होता है ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह शान्तिदायक और कफ-निस्सारक है ।

———

हृदय के लिये यह एक बहुत भयंकर विष है। इस पदार्थ की तीन बूंदे पानी के साथ में मेंडक को देने से मालूम हुआ कि करीब सात मिनट में उसकी नाड़ी बन्द हो गई और दस मिनट में वह बिलकुल निश्चेष्ट हो गया। ट्रॉपिकल मेडिसिन स्कूल ऑफ कलकत्ता में बिल्लियों के ऊपर भी इसके अनुसन्धान किये गये, जिससे मालूम हुआ कि हृदय के लिये यह एक भयंकर विष है।

इस औषधि की प्रबलता को देखने से मालूम होता है कि अगर इसका उचित रूप से उपयोग किया जाय तो दूसरे तीव्र विषों की तरह यह भी मनुष्य-जाति के रोगों को दूर करने में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

इस समय कोकन और कनाड़ा में इसका बीज ज्वर और पेचिश की बीमारियों में काम में लिया जाता है। इसकी मात्रा तिहाई हिस्से से लगाकर आधे हिस्से तक दिन में तीन बार दी जाती है। कुर्ग में इस वृक्ष की अन्तर्छाल से थैले और वस्त्र बनाये जाते हैं।

उप्पी

नाम—

हिन्दी—उप्पी।

वर्णन—

इस वृक्ष के पत्ते मोतिया के पत्तों की तरह पर उससे कुछ छोटे होते हैं। इसमें चील की नाखून की तरह काटे होते हैं। इसका स्वाद तीक्ष्ण होता है। इसका फल गोल और सफेद मोती की तरह होता हैं। इसके फल का स्वाद मीठा और तीक्ष्ण होता है। इसके सफेद और काले दो भेद होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—खजानुल अदविया के मतानुसार इसका काला भेद प्रमेह, मूत्र तथा वस्ति के रोग में उपकारी है तथा सफेद भेद ज्वर,कफ,सरदी तथा पित्त का नाश करता है। इसकी जड़ उदरशूल, रक्त-दोष और सुजाक में लाभदायक है।

उफीमूनस

नाम—

लेटिन—Agrimonia Eupatorium

वर्णन—

यह औषधि हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्त में मरी और काश्मीर से लगाकर सिक्किम तक ७ हजार फीट से १० हजार फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। यह एक बहुवर्ष स्थायी रुएँदार वनस्पति है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी जड़ एक प्रकार की मृदु-सकोचक औषधि है। यह पौष्टिक और मूत्र-निस्सारक है। यूरोप के वनस्पति-विशारदों में इस औषधि की बडी तारीफ है। इसका काढ़ा खाँसी, अतिसार और आँतों के ढीलेपन को दुरुस्त करता है। यह पाचन-क्रिया-प्रणाली और पाचन-शक्ति को बढ़ाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि सुगन्धित, सकोचक,कृमिनाशक और मूत्र-निस्सारक है। इसमें एक प्रकार का इसेंशिअल ऑइल पाया जाता है।

उमरी

नाम—

हिन्दी—उमरी। तामील—उमरी, कट्टमारी, सितुमारी। तेलगू—कोयालु। लैटिन—Salicornia Brachiata.

वर्णन—

यह औषधि बंगाल, काठियावाड़, गुजरात, पश्चिमी प्रायद्वीप और लका में पैदा होती है। यह एक प्रकार की बहुशाखी झाड़ी है। इसकी शाखाएँ बड़ी नाजुक होती हैं। इसके बीज बादामी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसकी राख चर्मरोग और खुजली के काम में ली जाती है। यह ऋतुस्राव नियामक और गर्भ-स्रावक मानी जाती है। (इण्डियन मेडिकल प्लाट्स)

उम्बु

नाम—

पंजाब—हुम्बु, उम्बु। गढ़वाल—बुबु।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी हिमालय, कुनवाद, लदक और कुमाऊं में १४ हजार फीट की ऊंचाई तक पैदा होती है। इसका वृक्ष सीधा होता है। इसकी डालियाँ बादामी रंग की और मुलायम होती हैं। इसके पत्ते गोल और बरछी के आकार के होते हैं। इसके फूल सफेद और हलके गुलाबी रंग के होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

पंजाब में यह औषधि रगड़न के ऊपर लगाने के काम में ली जाती है।

उम्मुलकल्ब

नाम—

अरबी—उम्मुलकल्ब।

वर्णन—

यह औषधि मिश्र देश के खेतों में तथा अरब में बहुत पैदा होती है। इसके पत्ते मेंहदी के पत्तों की तरह पर कुछ चौड़े, फूल पीले रंग के और खराब गंधयुक्त होते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्तों का रस ६ माशे की मात्रा में या इसके सूखे पत्तों का चूर्ण ७ माशे की मात्रा में जैतून के तेल के साथ देने से साँप, बिच्छू और पागल कुत्ते का जहर वमन की राह निकलकर नष्ट हो जाता है।

———:०:———

उलटकम्बल

नाम—

हिन्दी—उलटकम्बल, सनुकपास । बंगाली—उलटकम्बल । गुजराती व मराठी—उलटकम्बल । लैटिन—Abroma Augusta (एब्रोमा अगस्टा) । अंग्रेजी Devils Cotton ।

वर्णन—

यह एक प्रकार का छोटे कद का झाड़ीनुमा पौधा होता है । इसके पत्तों का आकार स्थल पद्म के समान होता है । कभी २ तो इन दोनों को पहचानने में भी भ्रम हो जाता है । अन्तर केवल इतना ही होता है कि उलटकम्बल के पत्तों के बीच के डण्ठल कुछ लाल होते हैं । इस पौधे में से सन की तरह मजबूत और सफेद रेशे निकलते हैं । सरदी के दिनों मे इस पौधे पर लाल रग के छोटे फूल निकलते हैं तथा गरमी में इसके छत्राकार फल आते हैं । इन फलों के चारों तरफ छोटे २ पत्ते आते हैं और इनके भीतर पीले रग के बीज रहते हैं । यह पौधा गर्म प्रदेशों की पहाड़ी भूमियों पर कुदरती तौर से बहुत पैदा होता है और इसकी डालियाँ भी लगाने से लगती हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक और यूनानी ग्रन्थों में इस औषधि का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता । इसके गुणों की खोज सबसे पहले सन् १८०१ में डा० राक्सबर्ग के द्वारा हुई और उन्होंने इसे कष्टार्तव अर्थात् मासिकधर्म से होने वाले कष्ट के लिये उपयोगी बतलाया । तब से यह औषधि इस व्याधि के सम्बन्ध में बराबर कीर्ति प्राप्त करती आ रही है ।

उसके पश्चात् सन् १८७२ के इण्डियन मेडिकल गजट में भुवनमोहन सरकार ने इसकी रजःप्रवर्त्तिनी शक्ति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और इसके लिये उन्होंने इसके ताजे रस की तीस ग्रेन की मात्रा निर्द्धारित की ।

दी इकानमिक प्राडक्ट्स ऑफ इण्डिया के विख्यात लेखक सरजार्ज वॉट ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में इस औषधि के दिव्य रजःप्रवर्तक गुण का उल्लेख किया और इसपर कई नामी डाक्टरों की सम्मतियाँ भी उद्धृत कीं ।

सन् १८७३ में डाक्टर थार्नटन ने 'अमेरिकन मेडिकल साइन्स' में इसकी जड़ की छाल के ताजे रस की बहुत प्रशसा की और इसकी उपयोगिता को जाहिर किया । उन्होंने बतलाया कि यह रक्तसचय और स्नायुशूल दोनों ही कारणों से होनेवाले रजःकष्ट में बड़ा उपयोगी है । यह मासिकधर्म को व्यवस्थित-रूप में ला देता है । गर्भाशय के लिये यह एक पौष्टिक पदार्थ है ।

के० सी० बोस के मतानुसार भी इसकी जड़ का छिलका मासिकधर्म को नियमित करने वाला और गर्भाशय के लिए पौष्टिक है । इसकी ताजी जड़ का रस और सूखी जड़, दोनों का ही रसायन-शाला में परीक्षण हो चुका है । यह गर्भाशय पर अपना पौष्टिक और सङ्कोचक असर दिखलाता है ।

इसलिये यह गर्भाशय का ठीक तौर से संकोचन करके मासिकधर्म को नियमित कर देता है। अलकोहल के साथ मिलाने से इस वनस्पति का असर नष्ट हो जाता है। इसलिए इसका ताजा रस या चूर्ण ही उपयोग में लेना चाहिये।

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध 'बङ्गाल केमिकलवर्क्स' के विद्वान संचालक इस औषधि का वर्णन करते हुए अपने केटलॉग में लिखते हैं—"उलटकम्बल ने मासिकधर्म के समय की पीड़ा को नष्ट करने में रामबाण होने की ख्याति प्राप्त की है। इस औषधि का रासायनिक और वैद्यकीय अभ्यास करने के पश्चात् हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि इसका व्यवहार कभी व्यर्थ नहीं जाता। स्त्रियों का आरोग्य, उनका सौन्दर्य्य और उनका स्वभाव सब बातें उनके मासिकधर्म की शुद्धता पर अवलिम्बत रहता है। आँखों के आस-पास काले दाग पडना,हमेशा सिरदर्द रहना इत्यादि रोग कष्टार्तव की वजह से ही पैदा होते हैं। इस औषधि के कुछ दिनों तक सेवन करने से यह व्याधि नष्ट हो जाती है और स्त्रियों का बन्ध्यत्व दूर होकर वे गर्भाधान के योग्य हो जाती हैं।"

कलकत्ते के प्रसिद्ध कविराज द्वारकानाथ विद्यारत्न इस औषधि के सम्बन्ध में लिखते हैं कि उलटकम्बल की जड़ की छाल का चूर्ण एक ड्राम (पौने चार माशे) की मात्रा में इक्कीस कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर मासिकधर्म के सयम सात दिन तक सेवन करना चाहिये और भोजन में केवल दूध, भात लेना चाहिए। पति समागम का बिलकुल त्याग करके पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस प्रकार दो चार महीने तक प्रत्येक मासिकधर्म के समय सात दिन तक यह योग करने से गर्भाशय के सब दोष मिट जाते हैं। प्रदर और बन्ध्यत्व की यह सर्वोत्कृष्ट औषधि है।

मगर कर्नल चोपरा, घोष और चटर्जी ने इसके मद्यसार और अलग २ अङ्गों का विश्लेषण करके यह परिणाम निकाला कि रक्त-बहाव, श्वासक्रिया एवम् पाकस्थली और अँतड़ियों के मार्ग पर इस औषधि का कोई भी प्रशसनीय असर नहीं होता। गर्भाशय पर भी, फिर चाहे वह गर्भ से युक्त हो, चाहे विहीन, इसने कुछ भी असर नहीं दिखाया, संतोषजनक फल न होने से रोगियों पर इसका परीक्षण नहीं किया गया। रासायनिक विश्लेषण पर इसमें मिक्स्ड ऑइल, राल, अलकोहल और कुछ पानी में घुलने वाले पदार्थ पाये जाते हैं।

'जङ्गलनी जड़ी-बूटी' नामक ग्रन्थ के रचयिता कहते है कि हमने अनेक स्त्री रोगियों पर इस औषधि का प्रयोग किया है और हमें विश्वास हो गया है कि गर्भाशय के रोगों पर यह अचूक औषधि है।

आर० एन० खोरी के मतानुसार इसकी जड़ और उसका रस गर्भाशय को बल देनेवाला और आर्त्तव-प्रवर्त्तक है। अवरोध सहित तथा वातिककृच्छ्र रजोरोग और रुके हुए मासिकधर्म में कालीमिर्च के साथ ऋतुकाल के समय में एक सप्ताह तक इसका व्यवहार होता है। यह हाइड्रास्टिस, वाईवर्नम और पलसेटिला की उत्तम प्रतिनिधि है।

उलूमाली

वर्णन—

यह वृक्ष श्याम देश में पैदा होता है। इसकी लकड़ी और फूल से एक प्रकार का तेल प्राप्त होता है जो शिलारस की तरह होता है। इसे असलेदाउद भी कहते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

खजानुल अदविया के मतानुसार यह निर्बलता और आलस्य उत्पन्न करने वाला तथा दोषों को उत्सर्ग करने वाला है। सन्धिशूल पर इसके तेल की मालिश करने से लाभ होता है। इसकी डालियों के काढ़े में पकाये हुए तिल के तेल को आंख में डालने से धुन्ध में लाभ होता है और इसकी मालिश से पट्ठों के दर्द में फायदा होता है।

उल्लेकुल कल्ब

वर्णन—

इस वृक्ष को फारसी में सहगुल कहते हैं। इसका फल जैतून के फल की तरह होता है। यह पकने पर लाल हो जाता है। इसमें से रूई की तरह एक पदार्थ निकलता है। यह रूई मनुष्य के फेफड़ों और अन्नमार्ग में बहुत नुकसान पहुँचाती है। इसलिए फल में से रूई को अलग कर फल को सुखाकर काम में लेते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

खजानुल अदविया के मतानुसार इसका फल काबिज है तथा कफ रक्तातिसार और पित्तातिसार में लाभ पहुँचा कर आमाशय को बल प्रदान करते हैं। इनके सेवन से कफ में खून आना भी बन्द हो जाता है। घाव पर इसकी रूई लगाने से घाव भर जाता है।

उलौयन

वर्णन—

यह पौधा पानी के किनारे रेतीली जमीन में तथा गीले स्थानो में पैदा होता है। इसकी ऊँचाई एक हाथ से कुछ कम होती है। इसकी डालियाँ पतली और सख्त होती हैं। ऊपर की छाल कोमल होती है। पत्ता छोटा और बारीक होता है। फूल ललाई और पीलाई लिये हुये होता है। जड़ चुकदर की तरह और बीज अपतीमून की तरह होते हैं।

गुण धर्म और प्रभाव—

खजानुल अदविया के मतानुसार यह औषधि अत्यन्त उग्र और स्थायी उन्माद रोग में बड़ी लाभदायक है। उन्माद के लिये इसके बीज ३॥ माशे से ६ माशे तक की मात्रा में ३॥ माशे नमक, २। तोला सिरके और ६। तोला पानी के साथ देने चाहिये। काले कामले की बीमारी मे भी यह फायदेमन्द है।

उल्लैक

वर्णन—

यह एक काँटेदार वृक्ष है जो गुलाब के पेड़ की तरह होता है।

गुण धर्म और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से यह औषधि दूसरे दर्जे में शीतल और रुक्ष है। यह तिल्ली और गुर्दे को हानि पहुँचाती है। इसके दर्प को नष्ट करने वाला मुलेठी का सत्व, शकर और खट्टा अनार है।

यह औषधि व्रण, पित्ती, विसर्प तथा सिर की गंज में लाभदायक है। कहा जाता है कि, इसके काढ़े को मेंहदी में घोलकर सफेद बालों पर लगाने से बाल काले हो जाते हैं। इसका फल काबिज और रक्तस्राव मे उपयोगी है। मुँह का रक्तस्राव और बवासीर का खून इससे बन्द हो जाता है। मासिकधर्म के समय इसके पत्ते और फल का काढा पिलाने से स्त्री को संतान होना बन्द हो जाता है। इसके पत्तों को लेप करने से आँख की सूजन और सिर की गंज मिटती है। इसके पत्तों को चबाने से दांत और मसूड़े दृढ़ होते हैं। इसके फूलों के सेवन से खून की दस्त और कफ में खून आना बन्द हो जाता है। यह आमाशय की निर्बलता में लाभ पहुँचाता है।

उशाक

नाम—

अरबी—उश्शक, उसक, अजाकुजहब, कलख। हिन्दी—समगहमाम, कल्यान। गुजराती—उशक। तामील—गमनायकम। लेटिन—Dorema Ammoniacum. (डोरेमा एमोनायकम), Ferula Orientalis. (फेरुला ओरियण्टेलिस)।

वर्णन—

यह एक प्रकार का रालदार गोंद है, जो ईरान देश के अन्दर उशक नामक वृक्ष से पैदा होता है। इस वृक्ष को शीराज मे बदरान और बुखारा में कन्दल कहते हैं। किसी २ यूनानी लेखक ने इस वृक्ष का नाम तर्सूस भी लिखा है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—आयुर्वेदीय ग्रन्थों के अन्दर इस औषधि का कोई वर्णन नहीं पाया जाता। मगर यूनानी ग्रन्थों में बहुत प्राचीनकाल से इस औषधि का वर्णन चला आता है। सबसे पहिले हकीम डिस-कोरिडस ने इस औषधि का रोम देश के एमन नामक देवता के नाम से उल्लेख किया था। सम्भव है, डाक्टरी का एमोनायकम शब्द उसी के अपभ्रंश से बना हुआ हो।

खजाइनुल अदविया के मतानुसार यह औषधि उत्तेजक तथा सूजन और वात को नष्ट करने वाली है,यह कब्जियत को दूर कर आमाशय को साफ करती है। शहद के साथ इसको लेने से मृगी, लकवा और सुन्नवात दूर होती है। इसका लेप तिल्ली की सूजन और कठोरता को तथा सधियों की सूजन को नाश करता है। इसे सिरके में मिलाकर लेप करने से कंठमाला और अण्डकोष की सूजन में लाभ होता है। २। माशे की मात्रा में इसको शहद के साथ सेवन करने से मृगी में लाभ होता है। इसको आँख मे लगाने से आँख का जाला और फूली नष्ट होती है। ३।। माशे की मात्रा में इसको सिकजबीन के साथ चाटने से और पेटपर इसका लेप करने से यकृत, प्लीहा और जलोदर के रोगों का नाश होता है। यह कृमिनाशक भी है। इसको अफसन्तीन के काढ़े के साथ लेने से पेट के कीडे मरकर निकल जाते हैं। यह गुर्दे और वस्ति की पथरी को तोड़कर निकाल देती है।

पुरानी खाँसी और दमे के रोगों में भी कफ-निस्सारक होने की वजह से यह बहुत लाभ पहुँचाती है। शहद के साथ चाटने से यह श्वास, कष्ट-श्वास, आमवात, ग्रध्रसी, इत्यादि रोगों में लाभ पहुँचाती है। यह मूत्र-निस्सारक और आर्तव-प्रवर्तक है।

मतलब यह है कि यूनानी मतानुसार यह औषधि भिन्न २ अनुपानों के साथ अनेक रोगों में लाभ पहुँचाती है। एलोपेथी के अन्दर भी इसके कई प्रयोग बनते हैं, जो भिन्न २ रोगों पर काम आते हैं।

उश्तुरगाज

नाम—

अरबी—जंजबीलुल अजम, जंजबील । फारसी—असारियून ।

वर्णन—

यह पौधा विशेषकर रोम, बगदाद, अफगानिस्तान इत्यादि के जंगलों में पैदा होता है । इसको ऊँट बहुत खाते हैं । यह पौधा बदबूदार और बदजायका होता है । इसका दूध शरीर पर लगाने से घाव पड़ जाते हैं । विशेषकर इस पौधे की जड़ औषधि प्रयोग के काम में आती है ।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—इसकी जड़ मुश्किल से हजम होने वाली और मेदे को खराब करने वाली होती है। यह मगज, पुट्ठे, वस्ति और गुर्दे को हानि पहुँचाने वाली है । इसके दर्प को नष्ट करने के लिये खट्टे अनार का शर्बत या उसका रस मुफीद है । इस औषधि का प्रतिनिधि अंजदान है ।

यह औषधि मूत्र-निस्सारक, आमाशय को बल देने वाली और चौथिया ज्वर को नष्ट करने वाली है । सधिवात में भी इससे लाभ होता है । इसका सिरका आमाशय को बल देने वाला और भूख बढ़ाने वाला होता है ।

—❀❀—

उसबा मग़रबी

नाम—

हिन्दी—विलायती अनंतमूल, विलायती सारिवा, सालसा, उसबा । बंगाली—छालछा, सारसा । गुजराती—उसबो, उसबोमगरबी । अंग्रेजी—Sarsaparilla (सारसापरिला) । तामील—शीमैनन्नारि । तेलगू—सारसवेल । लेटिन—Sarsae Radix (सारसी रेडिक्स)।

वर्णन—

यह औषधि विशेष कर दक्षिण और मध्य अमेरिका में पैदा होती है । इसकी बेल अनन्तमूल की ही तरह होती है और इसके गुण भी प्रायः उसीसे मिलते-जुलते होते हैं । इसीलिये इसे देशी भाषा में विलायती अनन्तमूल या विलायती सारिवा कहते हैं । विलायती सारिवा की जड़ें बहुत लम्बी, सीधी और लचीली होती हैं । देशी सारिवा की जड़ों की तरह वे आड़ी-टेढ़ी नहीं होतीं ।

गुण दोष और प्रभाव—

कर्नल चोपडा इस औषधि का वर्णन करते हुए लिखते हैं।

"सारसा रेडिक्स स्माइलेक्स आरनेटा नाम की एक वेल से पैदा होता है, यह अमेरिका में पाई जानेवाली, इसी प्रकार की एक अन्य वनस्पति से भी पाया जाता है जो कि जमेका सार्सापरिला के नाम से मशहूर है। जमेका बन्दरगाह से बाहर भेजे जाने की वजह से इसका नाम जमेका पडा है। इसकी एक और जाति Smilax Officinalis (स्माइलेक्स ऑफिसनेलीस) हाण्डुरस से आती है, लेकिन व्यापारिक दृष्टि से स्माइलेक्स आरनेटा ही उत्तम माना जाता है।

यह वनस्पति कई वर्षों से उपदंश (Syphilis) के इलाज में और पाचन-क्रिया-प्रणाली की दुर्व्यवस्था के उपचार में उपयोग में ली जा रही है। चर्मरोगों में भी यह काम में ली जाती है। रक्तशोधक औषधि के रूप मे भी यह उपयोगी मानी जाती है। लेकिन आधुनिक अनुसधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि सारसापरिला में पाये जानेवाले मुख्य पदार्थ ऍन्झीम (Enzyme) इसेन्शियल ऑइल और सेपानिन (Saponin) ये तीनों ही पदार्थ उपदश तथा उन अन्य रोगों में,जिनमें यह अधिकता से प्रयोग आती है, निरुपयोगी है। इतना होते हुए भी इससे तैयार किये हुए कई कीमती पदार्थ बाजार में प्राप्त होते हैं और करीब ४००००) साल का सार्सापरिला ब्रिटिश इडिया में बाहर से आता है।

यूनानी मत—यूनानी चिकित्सक लोग भी इसको रक्तशोधक, सूजन उतारने वाला, मूत्र-प्रवर्तक वीर्य को पतला करने वाला, गुर्दे, वस्ति और जरायु सम्बन्धी रोगों को नष्ट करने वाला तथा गठिया, लकवा, चर्मरोग और कुष्ट को नाश करने वाला मानते हैं।

एलोपेथिक डाक्टर इसको धातु-परिवर्तक, मूत्र-निस्सारक और पसीना लाने वाला मानते हैं। मगर कई लोगों के मत से, जैसे कि ऊपर कर्नल चोपरा का उदाहरण दिया गया है, इसमें कोई खास प्रभाव नहीं है। फिर भी रक्त-विकार, उपदश, सधिवात, चर्मरोग इत्यादि रोगों में इसको दूसरी औषधि के साथ देते हैं। एक्स्ट्रेटम सार्सि लिक्विडम् तथा लिक्विड एक्स्ट्रेट ऑफ सार्सापरिला इत्यादि कई वस्तुएँ इसके योग से तयार की जाती हैं।

सार्सापरिला के समान गुण रखने वाली दो वनस्पतियाँ भारतवर्ष में भी पाई जाती हैं। एक तो अनन्तमूल जिसका वर्णन इस ग्रन्थ में पहले दिया जा चुका है और दूसरी रासना (Saccolabium Papillosum) जिसका वर्णन आगे के भागों में किया जायगा। अनन्तमूल के गुण यूरोपीय चिकित्सकों के द्वारा सन् १८६४ से ही मान्य कर लिये गये हैं और उसी समय से ब्रिटिश फर्माकोपिया के अन्दर यह दर्ज कर ली गई है। प्रत्यक्ष परीक्षण से यह बात तसदीक हो चुकी है कि इसकी उपचारिक योग्यता सार्सा-परिला से किसी कदर कम नहीं है।

उस्तखद्दूस

नाम—

हिन्दी—धारू,उस्तखद्दूस। अरबी—अनसुलरावाह। फारसी—उस्तखद्दूस। बंगाली—तुन-तुना। लैटिन—Brunella Valgaris. (ब्रूनेला व्हलगेरिस) Lavandula Stoechas.(लेवेण्डुला स्टीकास)

वर्णन—

यह औषधि हिमालय के समशीतोष्ण प्रान्त में काश्मीर से भूटान तक ४००० से ११००० फीट की ऊँचाई तक पैदा होती है। इसी प्रकार खासिया पहाड़ी, नीलगिरी, ट्रावनकोर तथा उत्तरी समशीतोष्ण कटिबन्ध में भी यह पाई जाती है।

इसका पौधा जाड़े के दिनों में पहाड़ों की तर भूमि में पैदा होता है। यह करीब हाथ भर लम्बा होता है। इसके पत्ते गोलाकार और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल लम्बे और बैंगनी रंग के होते हैं। इस पौधे में एक प्रकार की तीव्र गंध आती है। इसके बीज बहुत छोटे २ और श्याम-पीत वर्ण के होते हैं। इस बीज में भी पौधे की तरह तीव्र गंध आती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यूनानी मत—यूनानी मत से इसके बीज तीक्ष्ण और कडवे होते हैं। ये ज्वरनिवारक, रेचक, पौष्टिक, मूत्र-निस्सारक और परजीवी कीटाणुओं को नष्ट करने वाले होते हैं, प्रदाह, हृदयरोग, फेफडे के रोग, खाँसी, श्वास-कष्ट, उन्माद, रगड़, बवासीर, यकृत, तिल्ली और नाक तथा कान की तकलीफों में ये बड़े लाभदायक हैं। ये आँख के पपुटे और कान की पपड़ी के सफेद दागों को मिटाते हैं। वृद्धावस्था जनित दृष्टि की कमजोरी में भी ये लाभदायक हैं।

इसका काढ़ा वात-वेदना, आमवात तथा मृगी में लाभ पहुचाता है, क्योंकि यह दिमाग को पूरी तरह से संशोधन करता है।

स्टैवर्ट के मतानुसार हिमालय की तलहटी के लोग इसको कफ-निस्सारक और आक्षेप-निवारक मानते हैं। वे इसके हरे पत्तों को अरण्डी के तेल के साथ मिलाकर गरम करके बवासीर के ऊपर लगाते हैं।

डायमॉक के मतानुसार इसके फूल से एक प्रकार का तेल तैयार किया जाता है जो खून को बन्द करने में और घावों को पूरने के काम में आता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कफ-निस्सारक और कृमिनाशक है, यह पेट के आफरे

को दूर करने वाली, प्रदरनाशक और शोथ इत्यादि रोगों को उपशम करने वाली है। इसमें इसेन्शियल ऑइल और कटुतत्व पाया जाताहै।

उपयोग—

उदर रोग—दो भाग उस्तखद्दूस और एक भाग कबर की जड को पीसकर शहद के साथ चाटने से बवासीर, सूजन, जलोदर, तिल्ली और यकृत की वृद्धि में लाभ पहुँचता है।

मृगी—अकरकरा और सिकजवीन के साथ इसका उपयोग करने से मृगीरोग में लाभ होता है।

उस्तखद्दूस की गोली—पीली हरड, काबुली हरड़, प्रत्येक १७ माशे, निसोत २ तोला, एलुआ पौने दो तोला, उस्तखद्दूस, गारीकून, वसफाइज और अफ्तीमून प्रत्येक दस २ माशे, इन्द्रायन का गूदा ५ माशे, लौंग और पहाडी पुदीना चार २ माशे, इन सब औषधियों को कूट पीसकर गोलियाँ बनालें।

ये गोलियाँ मस्तक और सारे शरीर के दोषों का शोधन करती हैं। मालीखोलिया नामक उन्माद में भी ये बहुत लाभ पहुँचाती हैं।

सूँघनी उस्तखद्दूस—उस्तखद्दूस २ तोला, ऊदसलीब १ तोला, कुदश १ तोला, अरीठे की छाल ६ माशा, कालीमिर्च ३ माशा, कपूर २ माशा, नौसादर ४ रत्ती, सब चीजों को कूट, पीस, छानकर रख लें। इस औषधि को सूँघने से मस्तक के सब विकारों का नाश होता है।

शर्बत उस्तखद्दूस—उस्तखद्दूस १६ तोला, बस्फाइज, बिल्लीलोटन और गावजबाँ प्रत्येक तीन तोला, इनका विधिवत १ सेर शक्कर में शर्बत तैयार कर लें। यह शर्बत चार तोला की मात्रा में १२ तोला अर्क गावजवान के साथ लेने से विस्मृति और भ्रम मे बड़ा लाभ होता है। (आयुर्वेदीय-कोष)

उद्वि
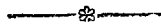
नाम—

संस्कृत—श्वेतधातकी। मराठी—उद्वि। मध्यप्रान्त—कोहरज। तैलगू—अदिविज्म। उड़िया—कुकुडिया। तामील—मिनरगोदि। लेटिन—Calycopteris Floribunda. (कालिकोपटेरिस फ्लोरिबन्दा)।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी प्रांत, उड़ीसा, आसाम, चटगाँव, उत्तर और दक्षिणी बर्मा तथा मलाया में पैदा होती है। यह एक प्रकार की पराश्रयी वनस्पति है। इसकी शाखाएँ बड़ी नाजुक होती हैं। इसके पत्ते

गोल और बरछी के आकार के होते हैं। इन पत्तों में पाँच से लगाकर आठ तक नसें होती हैं। इसके फूल पीलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं। इसकी पुष्प-कटोरी रुएँदार होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके पत्ते विरेचक और कृमिनाशक माने जाते हैं। इनका रस सूतिका-ज्वर में लाभदायक समझा जाता है। ज्वर उतारने के लिये शरीर पर इस रस का मालिश भी किया जाता है।

इसके पत्ते कड़ुवे और सकोचक हैं। इनका रस उदरशूल की बीमारी में मुफीद है। इसकी जड़ को चूका (खाटी भाजी) के रस में पीसकर तथा मिलाकर सर्पदंश के ऊपर लगाने के काम में ली जाती है। इसका फल पीलिये की बीमारी में लाभदायक है।

वाघट के मतानुसार समशीतोष्ण आबहवा वाले प्रान्तों में इसकी जड़ सर्पदंश के उपचार में विशेष उपयोगी होती है। मगर केस और महेस्कर के मतानुसार सर्पदंश के उपचार में इसकी जड़ बिलकुल निरुपयोगी है।

कम्बोडिया में इसका शीतल क्वाथ प्रसूति के बाद १५ रोज तक प्रसूता को दिया जाता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कड़वी, संकोचक, कृमिनाशक और विरेचक है। यह उदरशूल और सर्पदंश में उपयोगी है।

उपयोग—

पाण्डुरोग—उद्धि के फलों का चूर्ण, जायफल, जायपत्री, लवग, इलायची, दालचीनी और छाड़-छडीला, इन सबका चूर्ण करके दो २ माशे की मात्रा में शहद के साथ देने से पाण्डुरोग में लाभ होता है।

आग से जलने पर—आग से जले हुए स्थान पर इसके फलों की राख तेल में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

—*—

ऊँटकटारा

नाम—

संस्कृत—उष्ट्रकण्टकः, कण्टफलः, करभादनः, वृत्तगुच्छ, कटालू, इत्यादि । हिन्दी—ऊँटकटारा । मराठी—उटकटीरा । गुजराती—उत्कटो, शूलियो । अरबी—अस्तरखर । बंगाली—ठाकुरकाँटा । अंग्रेजी—Thistle (थिस्टल) लेटिन—Echinops Echinatus (एकिनोप्स एकिनटस)

वर्णन—

यह एक प्रकार का बहुशाखी पौधा होता है । इसकी शाखाएँ जड़ से ही फूटती हैं। इसके पीले रंग के डोडे लगते हैं, जिनपर काँटे होते हैं। इस वनस्पति को ऊँट बहुत प्रेम से खाते हैं। यह पौधा मध्यभारत, मालवा, मारवाड़, संयुक्त प्रान्त तथा दक्षिण में बहुतायत से पैदा होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से ऊँटकटारा चरपरा, कड़वा, कफ-वातनाशक, हलका, रुचिकारक, गरम, वीर्यवर्द्धक तथा मूत्रकृच्छ्र, पित्तवात, प्रमेह, तृषा, हृदयरोग और विस्फोटक को दूर करने वाला है । इसके बीज शीतल, वीर्यवर्द्धक, तृप्तिकारक और मधुर हैं । इसकी जड़ गर्भस्रावक और कामोद्दीपक है ।

प्रसूतिकष्ट और ऊँटकटारा—इस औषधि के अन्दर एक और चमत्कारिक गुण देखने में आता है । वह यह कि प्रसवकाल के समय में जब कोई स्त्री भयकर रूप से कष्ट पा रही हो और अनेक उपचार करने पर भी उसको प्रसव न होता हो, उस समय में इसकी जड़ को पानी के साथ घिसकर एक रुपये भर की मात्रा मे पिलाने से तुरन्त प्रसव हो जाता है । उपरोक्त कार्य में यह औषधि ऐसे समय में काम करती है, जब कि अच्छी २ दाइयें और मिडवाइफे भी निराश हो जाती हैं ।

यूनानी मत--यूनानी मत से यह वनस्पति कड़वी, अग्निप्रवर्द्धक और ज्वर-निवारक है। यह यकृत को उत्तेजना देने वाली और क्षुधावर्द्धक है। आँखों की तकलीफ, जीर्णज्वर, जोड़ों के दर्द और मस्तक की बीमारियों में भी यह लाभदायक है। इसकी जड़ कामोद्दीपक, पौष्टिक और मूत्र-निस्सारक है।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह वनस्पति अग्निवर्द्धक,स्नायु-मडल को बल देनेवाली तथा मंदाग्नि, कंठमाला, गुल्मवायु और खासी में हितकर है ।

उपयोग—

प्रमेह—इसकी जड़ की छाल ३ माशे, गोखरू ३ माशे और मिश्री ६ माशे, इन तीनों का बारीक चूर्ण कर सबेरे-शाम दूध के साथ सेवन करने से प्रमेह की शिकायत मिटती है।

ऊँटकटारे की जड़ की छाल पीस, छानकर उसका चूर्ण करके रख देना चाहिये। फिर मुगली बेदाना १ तोला और मिश्री २ तोला, इन सबको रात्रि के समय पावभर पानी में भिगो देना चाहिये। सवेरे उस पानी को मल, छानकर उसमें उपरोक्त चूर्ण ६ माशे की मात्रा में डालकर पी लेना चाहिये। इस योग के सेवन से पुराना प्रमेह और सुजाक नष्ट होकर वीर्यवृद्धि और पुरुषार्थवृद्धि होती है।

मंदाग्नि—इसकी जड़ की छाल का चूर्ण और छुहारे की गुठली का चूर्ण, तीन २ माशे लेकर फकी लेने से मन्दाग्नि में लाभ होता है।

खाँसी—इसकी छाल के चूर्ण को पान में रख कर खाने से कफ की खांसी मिटती है।

मूत्रकृच्छ्र—तालमखाना और मिश्री के साथ इसकी जड़ की छाल की फकी देने से मूत्र-कृच्छ्र में लाभ होता है।

पुरुषार्थवृद्धि—इसकी जड़ की छाल १ तोला लेकर उसे कुचलकर पोटली में बाँधकर आधा सेर गाय का दूध और १ सेर पानी में औटावें। उसमें चार खारक भी डाल दें। जब पानी जलकर दूध मात्र शेष रह जाय तब उस पोटली को निकालकर फेंक दें और उस दूध को पी ले। यह दूध अत्यन्त कामशक्ति वर्द्धक है।

सर्पदंश—ऊँटकटारे की जड़ को पानी में पीसकर लेप करने से और उसको पीने से सर्प और बिच्छू के विष में लाभ होता है।

ऊदसलीब

नाम—

हिन्दी—ऊदसालप। काश्मीर—मिदु। उत्तर पश्चिमी प्रान्त—चद्र। पंजाब—ममेख। उर्दू—ऊदसलीब। इंग्लिश—Official Peony (आफिशियल पीओनी)। लेटिन—Paeonia Emodi. (पीओनिया एमोडी)।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी हिमालय में काश्मीर से कुमायूँ तक पैदा होती है। यह पौधा बहुशाखी होता है। इसका तना ऊँचा होता है। इसके फूल खूबसूरत और तादाद में कम होते हैं और इसके पत्ते गाजर के पत्तों की तरह होते है। फूलों का रग नीला होता है और उनमें ४-५ पखडियाँ होती हैं तथा उनके बीच में पीले रंग का जीरा होता है। इस के फल गोल और ग्रन्थिनुमा होते हैं। इन ग्रन्थियों में इसके बीज रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

प्राचीन यूनानी हकीमों ने इस औषधि की जड़ की, गर्भाशय सम्बन्धी बीमारियों, मृगी, आक्षेप, जलोदर, शूल इत्यादि रोगों के लिये बड़ी प्रशंसा की है।

इसकी जड़े दो प्रकार की होती हैं। ये स्वाद में मीठी और तिक्त होती हैं। ये क्षुधा को नष्ट करने वाली तथा मृगी, सिरदर्द, गर्भाशय के रोग और मूत्राशय की व्याधियों के लिये मुफीद हैं। दूध के साथ इसका उपयोग करने से रक्त-विकार की बीमारी में बड़ा लाभ पहुँचाती है। मूत्रावरोध और कफ के साथ खून जाने में भी यह उपयोगी है।

इस वनस्पति की गाँठें गर्भाशय सम्बन्धी इलाज की उपयोगिता के लिये मशहूर हैं। ये उदर-शूल, जलोदर, अपस्मार, गुल्मवायु, आक्षेप और तानों की बीमारी मे भी लाभदायक है। यूनानी हकीम इस औषधि को मृगी के लिये अचूक और रामबाण इलाज मानते हैं। बच्चों की पथरी में भी वे इसे उपयोगी मानते हैं।

डायमॉक का कथन है कि हकीम जालीनूस के समय से यूनानी हकीमों का यह ख्याल है कि इसके बीजो को किसी तावीज मे या थैली में बन्द करके बच्चों के गले मे लटकाने से उसे चाहे कितनी ही पुरानी मृगी हो वह दूर हो जाती है। इस थैली से बच्चे की दोनों तरफ से रक्षा होती है अर्थात् मृगी का दौरा भी रुक जाता है और रोग-निवारण भी हो जाता है। यूरोप के किसानों का यह विश्वास है कि इन बीजो को धारण करने से बच्चो को दाँत आने के समय की तकलीफें नहीं होतीं। मगर आधुनिक खोजों ने प्रगट कर दिया है कि इन सब विश्वासों को कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। यद्यपि किसी २ ने कफवात, मृगी एव कुक्कुर खाँसी में इसके लाभदायक होने का उल्लेख किया है, पर इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध के प्रमाण बहुत कमजोर हैं।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह औषधि उदरशूल तथा पित्त सम्बन्धी तकलीफों में उपयोगी है। इसके बीज वमनकारक और विरेचक हैं। ये मृगी की बीमारी में काम मे लिये जाते हैं। इनमें ग्लुकोसाइड रहता है।

ऋद्धि

नाम—

संस्कृत—ऋद्धि, प्राणप्रिया, वृष्या, प्राणदा, जीवदात्री, लोककान्ता, जीवश्रेष्ठा, इत्यादि।

वर्णन—

ऋद्धि आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध अष्टवर्ग की एक औषधि है। ऐसा ख्याल किया जाता है कि अष्ट-वर्ग की औषधियाँ इस समय या तो दुष्प्राप्य हैं अथवा उन्हे पहिचानने वाला कोई भी नहीं है, फिर भी आयुर्वैदिक ग्रन्थों मे इस औषधि की पहिचान को लिखते हुए लिखा है कि ऋद्धि लता जाति की औषधि होती है। इस लता की जड़ में से एक कन्द निकलता है, जो कपास की गाँठ के समान होता है और

जिसके ऊपर सफेद रोम होते हैं। यह छिद्रयुक्त होता है । यह लता कौशल पर्वत पर उत्पन्न होती है। इस समय कई लोग अष्टवर्ग की इन औषधियों की छान-बीन में लगे हुए हैं। इमको मलेरकोटला के एक वैद्य ने अष्टवर्ग की इन आठों औषधियों को,बतलाया था, जो उन्होंने समीप-वर्ती हिमालय पहाड़ से प्राप्त की थीं। इन औषधियों का रूप और गुण आयुर्वेद मे बतलाए हुए लक्षणों से बहुत मिलता-जुलता था और वे इनके गुणों की भी बड़ी प्रशंसा करते थे। कई सुप्रसिद्ध कविराजों के प्रशंसा-पत्र भी उनके कथनानुसार इन औषधियों के सम्बन्ध में उन्हे प्राप्त हुए हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मतानुसार ऋद्धि मधुर, स्निग्ध, मेधाजनक, शीतल, कफकारक, शुक्रवर्द्धक, प्राणदायक, ऐश्वर्यजनक, बलकारक, रक्तशोधक, रुचिकारक, भारी तथा कोढ़, कृमिदोष, मूर्छा, रक्त-पित्त, तृषा, क्षय, पित्त, वातरक्त और ज्वर का नाश करने वाली है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार ऋद्धि बलकारक, त्रिदोष-नाशक, वीर्यवर्द्धक, मधुर, भारी, प्राणप्रद, ऐश्वर्यजनक तथा मूर्च्छा और रक्त-पित्त का नाश करने वाली है।

यूनानी और वनस्पति-विज्ञान सम्बन्धी दूसरे ग्रन्थों में इसका पता नहीं मिलता।

जिन नुस्खों में ऋद्धि का उल्लेख हो उनमें ऋद्धि न मिलने की हालत में वराहीकद या विदारीकंद लेना चाहिये, क्योंकि ये उसके प्रतिनिधि हैं।

ऋषभक

नाम—

संस्कृत—ऋषभ, दुर्धर, द्राक्षा, भूपति, कामी, ऋषिप्रिय, वनवासी, इत्यादि।

वर्णन—

भाव-प्रकाश के मतानुसार जीवक और ऋषभक, ये दोनों औषधियाँ हिमालय पर्वत के शिखर पर उत्पन्न होती हैं। इनका कंद लहसन के कद के समान होता है। इनके पत्ते सार-रहित और बारीक होते हैं। जीवक का आकार बुहारी के समान और ऋषभक का बैल के सींग के समान होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

निघटु-रत्नाकर के मतानुसार ऋषभक मधुर, शीतल, गर्भसधान-कारक, वीर्यवर्द्धक, कफकारक, बलदायक, वीर्यजनक, पुष्टिकारक तथा पित्त,रक्तरोग, रक्तातिसार, दुर्बलता, वातज्वर तथा दाह और क्षय का नाश करने वाला है।

भाव-प्रकाश के मतानुसार जीवक और ऋषभक बलकारक, शीतल, वीर्यवर्द्धक,कफकारक, मधुर, तथा पित्त, दाह, रुधिरविकार, वायु, और क्षय को नष्ट करने वाले हैं।

एकवीर

नाम—

संस्कृत—एकवीर, महावीर, सुवीरक,एकदिवि,इत्यादि। हिन्दी—एकवीर। मराठी—असाणा। गुजराती—एकलकंटो। आसाम—कंहीर। बंगाल—कटकोई। तेलगू—विगाडु, पतिंगा। मध्यप्रान्त—कर्क। बाँसवाड़ा—अगनेर। लेटिन—Bridelia Motana, (ब्रिडेलिया मोटेना) B. Retusa।

वर्णन—

यह एक प्रकार का मध्यम ऊंचाई का वृक्ष होता है। इसके पत्ते बहुत होते हैं। ये पाखर के समान होते हैं। इनका रंग गहरा हरा होता है तथा ऊपर से ये कुछ मखमली होते हैं। इनमें १५ से लेकर २५ तक धारियाँ रहती हैं। इसकी डालों में अलग २ दूर २ पर बड़े २ काँटे होते हैं। इसके फूल गहरे हरे रंग के और सफेद होते हैं। इसके फल छोटे २ बेर की तरह झूमकों में लगते हैं। ये बैंगनी और काले रंग के होते हैं। यह औषधि हिमालय में झेलम के पूर्व की ओर तथा बिहार, उड़िसा और बंगाल में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—आयुर्वैदिक मत से यह औषधि कड़वी, गरम, और वातनाशक होती है। कटिवात, लकवा, अर्द्धाङ्गवायु इत्यादि रोगों में यह लाभदायक है। इस वृक्ष की छाल, मूत्राशय की पथरी में बहुत मुफीद है। इसकी जड़ और छाल एक उत्तम सकोचक औषधि है।

इसकी छाल का लेप सोंठ के तेल के साथ मिलाकर करने से आमवात में बड़ा लाभ होता है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि कृमिनाशक और संकोचक है।

उपयोग—

कृमिरोग—इसके चूर्ण की फंकी देने से पेट के कृमि नष्ट होते हैं और वीर्य पुष्ट होता है।

अतिसार—बेलगिरी और मिश्री के साथ इसके चूर्ण की फंकी देने से अतिसार मिटता है।

एडोनिस

नाम—

लैटिन—Adonis Oespivalis.

वर्णन—

यह एक प्रकार की वर्षजीवी वनस्पति है। इसका वृक्ष झाड़ीनुमा और सीधा रहता है। इसके पत्ते कटे हुए अलग २ भागों में विभाजित रहते हैं। इसके फूल सुनहरी और लाल रंग के होते हैं। उनमें एक प्रकार की गहरी बैंगनी रंग की आख होती है। इसके फूलों के आवरण हरे और कुछ रगीन होते हैं। इसका फल गोल और लम्बे आकार का होता है। यह वनस्पति तीन प्रकार की होती है और यूरोप तथा एशिया के समशीतोष्ण भागों में, पश्चिमी हिमालय में, पेशावर से हाजरा और कुमायूँ तक पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

यह साराही पौधा हृदय के लिये पौष्टिक माना जाता है। यूरोप के अन्दर यह मूत्रनिस्सारक समझा जाता है। इसके फूल विरेचक, मूत्रनिस्सारक और पथरी को नाश करने वाले होते हैं।

इसमें ग्लुकोसाइड अडूनाईडिन नामक एक सत्व और अडूनेट नामक दूसरा सत्व पाया जाता है।

एरक

नाम—

संस्कृत—एरक, गुन्द्रमूला, शिम्बि, गुन्द्रा, शरी। हिन्दी—एरक, गोन्दपटेर, मोथीतृण। मारवाड़ी—एरो। बङ्गाली—होंगला। बम्बई—रामबाण। मराठी—एरका, पाणलव्हाणा। गुजराती—एरका। पंजाव—पतीर। तामील—चम्बु। तैलगू—जम्मूगड्डे। लैटिन—Typha Alephantina (टायफा एलिफोंटिना)

वर्णन—

यह कीचड में पैदा होने वाली एक वनस्पति है। इसके पत्ते घास की तरह लम्बे और सीधे रहते हैं, जो मूल से ही निकलते हैं,इनकी चौडाई इच-सवा इच रहती है। इसके फूल के झॅवरे मूल से ही पैदा होते हैं। इसके फूल नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। इसके पत्तों के बीच में एक लम्बी डण्डी होती है। उस पर एक फुट लम्बा एक रुएँदार सिट्टा लगता है। यह भारतवर्ष में सभी दूर नदियों और तालाबों के किनारे होता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, कामोद्दीपक, नेत्रों को फायदा पहुँचाने वाली तथा पथरी, सुजाक, दाह, रक्त-पित्त और तिल्ली बढने के रोग में लाभदायक है। यह वात को कुपित करती है।

इसके फूलों के तन्तु फोडे और घावों पर लगाने के काम में लिये जाते हैं। यह अपना गुण उसी प्रकार दिखलाते हैं, जिस प्रकार औषधि युक्त सूतीऊन, जो अस्पतालों में प्रयोग में ली जाती है।

इसकी जड़ संकोचक और मूत्रल है। पूर्वी एशिया में यह पेचिश, सुजाक और खसरे की बीमारी में लगाने के काम में ली जाती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि ज्वरनाशक, कामोद्दीपक और उत्तेजक है।

उपयोग—

व्रण—इसके पके हुए सिट्टे की रूई व्रण और क्षत पर लगाई जाती है।

शीत-पित्त—इसको जल में औटाकर स्नान करने से शीत-पित्त में लाभ होता है।

सुजाक—इसकी जड़ को मिश्री के साथ औटाकर, छानकर, ठण्डा कर पिलाने से सुजाक में लाभ होता है।

एरावेगेसा

नाम—

बर्मा—पदौक। तैलगू—एत्वेगिसा। लेटिन—Pterocarpus Indicus. (टेरोकारपस इण्डिकस)

वर्णन—

यह औषधि मलाया पेनिनशुला, तिनासरिम, मलाया द्वीप समूह, जावा और बोर्नियो में पैदा होती है। इसकी पत्तियाँ गोल नुकीदार और चौड़ी होती हैं। इसकी पुष्प-कटोरी, बादामी और मुलायम रहती है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक और यूनानी ग्रन्थों मे इस औषधि का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इण्डियन मेडिकल प्लाट्स के रचयिताओं के मतानुसार इसके फल का गूदा वमनकारक है। गायना में इसके पत्तों का हलका और शीतनिर्यास-ज्वर में दिया जाता है। यह प्रायः लोशन और बफारे की क्रिया में ही उपयोग में लिया जाता है। इसकी लकड़ी कम्बोडिया में बहुत उपयोग में ली जाती है। यह मूत्र-निस्सारक और पेचिश को दूर करने वाली होती है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसकी गोंद बड़ी उपयोगी वस्तु है। यह वस्तु शीतल होती है।

ओखराढ्य

नाम—

संस्कृत—ओखराड़ी, भिस्सता । हिन्दी—ओखराढ्य, गन्धिबुद्धि । गुजराती—धोलोओखराड़ । बङ्गाली—ओखड़ । लेटिन—Mollugo Hirta (मोल्यूगो हिरटा) ।

वर्णन—

यह औषधि प्रायः सारे भारत, सीलोन और ससार के अन्य उष्ण भागों में पैदा होती है । यह एक वर्षजीवी वनस्पति है । यह सूखी तलाइयों की तलहटी और नदियों के किनारों पर होती है । इसका पेड़ एक से तीन फुट तक ऊँचा होता है । इसके फूल हलके गुलाबी रग के रहते हैं । ये तीन २ चार २ के गुच्छे में लगते हैं । इसकी फलियाँ लम्बी और गोलाई लिये हुए रहती हैं । इसमें बहुत से बीज रहते हैं । उनका रंग काला रहता है ।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वैदिक मत—यह औषधि पेशाब रुकने पर तथा सुजाक की बीमारी में बहुत हितकारी है । इसको पीसकर सिरपर लगाने से सिर का व्रण, खुजली, दाद और सूजन दूर हो जाती है ।

इसके सूखे पत्ते सिंध में अतिसार रोग में और पंजाब में उदररोगों में विरेचक औषधि की तरह दिये जाते हैं ।

इक्सबूलर के मतानुसार यह औषधि लासबेला में फोड़े, घाव और पित्तजन्य तकलीफों के उपयोग मे ली जाती है ।

कर्नल चोपड़ा के मतानुसार यह खुजली और चर्मरोगों में लगाने के काम में ली जाती है ।

उपयोग—

कफरोग—बच्चों के कफ रोग मे इसकी जड़ की भस्म देने से लाभ होता है ।

रक्त विकार—इसके सूखे पत्तों के पचाग का क्वाथ कर, उसपर थोड़ी राई भुरभुराकर पिलाने से रक्त शुद्ध होता है ।

पुराने व्रण—इसके पंचाग की भस्म और कालीमिर्च को तेल में मिलाकर लगाने से पुराने व्रण अच्छे होते हैं ।

पेशाब का रुकना—इसके पंचांग और कालीमिर्च को ठण्डाई की तरह घोट, छानकर पिलाने से पेशाब की रुकावट दूर हो जाती है ।

ओट

नाम—

संस्कृत—लामफल, वक्रशोधन, भव्य, भव्यफल इत्यादि। हिन्दी—ओट, दंपेल। मराठी—जरंबी, ओटींचेफल। बंगाली—चालत। गुजराती—ओटफल। तेलगू—सीता कमरखु। तामील—पचलई, तमालू। लेटिन—Garcinia Xanthochymus गारसीनिया एक्सन्थोचाइमस।

वर्णन—

ओट का वृक्ष सीधा और बडा होता है। इसकी शाखाएँ चारों ओर भिन्न २ दिशाओं में फैलती हैं। इसके तने तथा बडी डालों की छाल, चौथाई इञ्च मोटी, खरदरी और चमकदार होती होती है। इसमें बहुत सी छोटी २ दरारें होती हैं। इसके पत्ते आठ-दस इञ्च लम्बे तीखी नोक वाले चमकीले और कटे हुए किनारों के होते हैं। इसके फूल सफेद और पीले रंग के तथा खुशबूदार होते होते हैं। ये नर और नारी दो प्रकार के होते हैं। ये वर्षाऋतु में आते हैं। इसका फल मध्यम श्रेणी की नासपाती के बराबर होता है। यह चिकना और कुछ नुकीला रहता है। इसमें एक से लगाकर चार तक बीज रहते हैं। यह पकने पर बिलकुल गहरे पीले रंग का हो जाता है। इसके फल के भीतर का गूदा चिकना रहता है। यह फल पौष-माघ में पकता है।

गुण दोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मत—आयुर्वेदिक मत से इसका कच्चा फल खट्टा,चरपरा,गरम तथा वात और कफ को नष्ट करने वाला होता है तथा इसका पका फल मीठा, कुछ खट्टा, रुचिकारक, शूल और श्रमनाशक, आक्षेप-निवारक, त्रिदोष-नाशक तथा हृदय सम्बन्धी रोगों को दूर करने वाला होता है। इसके सूखे फल से तैयार किया हुआ अमसूल ढाई तोला लेकर, थोडा सेंधानमक, कालीमिर्च, सोंठ, जीरे और शक्कर के साथ शर्बत बनाकर लेने से पित्त सम्बन्धी शिकायतें दूर होती हैं।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पित्त-जन्य बीमारियों में लाभदायक है।

वनौषधि-गुणादर्श के मतानुसार इसके फल की बनाई हुई अमसूलें दूसरी अमसूलों की अपेक्षा विशेष पथ्यकारक होती हैं। दूसरी अमसूलें रक्त-शोषक होती हैं, मगर इस फल की अमसूलें रक्त को बढ़ाने वाली होती हैं। ओट के फल का रायता व लोणचा बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसके फलों के रस में शक्कर, जीरा और मिर्च डालकर बनाया हुआ शर्बत शीत-पित्तशामक, पथ्यकर, रुचिवर्द्धक और दीपक होता है। प्रसूता स्त्रियों के लिये ओट के फल का सार-पथ्यकर होता है।

उपयोग—

ज्वर की दाह—इसके फल के रस में मिश्री और जल मिलाकर पीने से ज्वर की दाह मिटती है।

खाँसी—इसके फल के रस में शहद मिलाकर पीने से खाँसी मिटती है।

अतिसार—इसके पत्तों का क्वाथ पिलाने से अतिसार में लाभ होता है।

ओगई

नाम—

पंजाब—ओगई। लेटिन—Astragalus Tribuloides. (एस्ट्रागेलस ट्रिब्यूलाइडस)

वर्णन—

यह औषधि पंजाब, अफगानिस्तान और इजिप्ट में पैदा होती है।

गुण दोष और प्रभाव—

इसके बीज शान्तिदायक औषधि के तौर पर काम में लिये जाते हैं। यह औषधि कोठे को मुलायम करने वाली है।

ओलंकराइ

नाम—

मराठी—ओलंकराइ। तामील—उलंगराई। बंगाल—जलपाई। कनाड़ी—पेरिंकर। मलाया-पेरंकर। संस्कृत—चिरिविलु। उड़िया—जुलोपारि।

वर्णन—

यह औषधि पश्चिमी प्रायद्वीप, सीलोन और मलाया में पैदा होती है। यह एक प्रकार का छोटा वृक्ष होता है। इसके पत्ते तीखी नोक वाले और कटी हुई किनारों के होते हैं। इसके फूल नीचे की बाजू झुके हुए और गुच्छों में लगे हुए रहते हैं।

गुण दोष और प्रभाव—

इण्डियन मेडिकल प्लान्ट्स के मतानुसार इसके पत्ते गठिया रोग मे उपयोगी है तथा ये विष-प्रतिरोधक भी हैं। इसके फल पेचिश और अतिसार की बीमारियों में लाभदायक है।

कर्नल चोपरा के मतानुसार इसके पत्ते आमवात में लाभ पहुँचाते हैं तथा ये विषनाशक हैं। इसके फल पेचिश और रक्तातिसार में लाभदायक हैं।

ओसदी

नाम—

बंगाल—डोकंटि । बम्बई—ओसदी । सीलोन—पंपिलु । गुजराती—अजगध । मराठी—गनेसैसदि । लेटिन—Ageratum Conyzoides (एगेरेटम कोनीजोइडस) ।

वर्णन—

यह औषधि सारे भारतवर्ष और गरम देशों में पैदा होती है । यह एक मध्य कद का सीधे तने वाला वृक्ष होता है । इसके पत्ते एक दूसरे के आमने-सामने होते हैं । ये गोलाकार और नोकदार होते हैं । इनका पत्र-वृंत रुऍदार होता है । इसके फूल हलके नीले रंग के तथा सफेद होते हैं । इसकी फली काले रंग की होती है, जिसमें बीज होते हैं ।

गुण दोष और प्रभाव—

इन्डियन मेडिकल प्लाट्स के मतानुसार इसके पत्ते घावों के ऊपर रक्तस्राव को रोकने वाली औषधि के बतौर लगाये जाते हैं । इनके लगाने से घाव जल्दी ही भर जाता है । इसकी जड़ के रस में बहुत गुण होते हैं । पथरी के रोग को नष्ट करने में यह औषधि अपना खास प्रभाव रखती है । यह कृमिनाशक भी होती है ।

जूड़ी के बुखार में यह औषधि वाह्योपचार के काम में ली जाती है । इसका रस गुदा की पीड़ा में बहुत लाभदायक है । गुदा-निर्गमन में यह मुफीद है ।

सीलोन में इसके पत्ते घावपर लगाने के लिये तथा इंडोचायना में इसकी जड़ और पत्ते पेचिश रोग को दूर करनेवाले माने जाते हैं । मेडागास्कर और लॉरियूनियन में इसके पत्ते और डालियाँ चर्मरोग और कुष्ट रोगों में बफारा देने के उपयोग में लिये जाते है । इसके पत्तों की पुल्टिश अर्बुद पर बाँधी जाती है । अगर यह दवा घाव पर लगाई जाय तो उसे साफ कर देती है । इसका शीतनिर्यास नेत्ररोगों में डालने के काम में लिया जाता है ।

ब्राझील और गायना में इसका शीतनिर्यास एक उत्तेजक पौष्टिक पदार्थ के रूप में दिया जाता है । ये रक्तातिसार और वातजन्य उदरशूल में उपयोगी हैं ।

कर्नल चोपरा के मतानुसार यह औषधि पथरीरोग में खास तौर से लाभदायक है । इसमें एक प्रकार का इसेंशियल ऑइल पाया जाता है ।